अखण्ड ज्योति

VOl. 53 1990 No. 7, 10, 12

G.K.V. Lib:
Hardwar

Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079521

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification-2014

Stock Verification-2014

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड ज्योति

079521

079521

Vol 53, 199
7, 10, 12

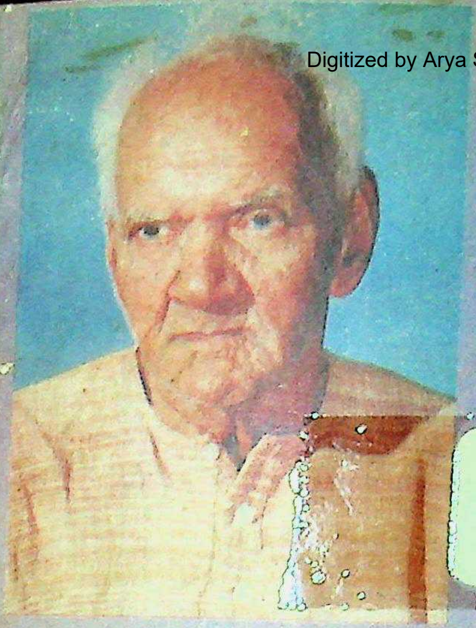

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम सन्देश

अस्सी वर्ष जी गई लम्बी सोद्देश्य शरीर यात्रा पूरी हुई। इस अवधि में परमात्मा को हर पल अपने हृदय और अंतःकरण में प्रतिष्ठित मानकर एक-एक क्षण का पूरा उपयोग किया है। शरीर अब विद्रोह कर रहा है। यूँ उसे कुछ दिन और घसीटा भी जा सकता है, पर जो कार्य परोक्ष मार्गदर्शक सत्ता ने सौंपे हैं, वे सूक्ष्म और कारण शरीर से ही संपन्न हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में कृशकाय शरीर से मोह का कोई औचित्य भी नहीं है।

"ज्योति बुझ गई" यह भी नहीं समझा जाना चाहिये। अब तक के जीवन में जितना कार्य इस स्थूल शरीर ने किया है, उससे सौ गुना सूक्ष्म अंतःकरण से संभव हुआ है। आगे का लक्ष्य विराट है। संसार भर के छह अरब मनुष्यों की अन्तश्चेतना को प्रभावित और प्रेरित करने, उनमें आध्यात्मिक प्रकाश और ब्रह्मवर्चस् जगाने का कार्य पराशक्ति से ही संभव है। जीवन की अंतिम घड़ियाँ उसी उपक्रम में बीती हैं। इसके उपरान्त वे सभी परिजन, जिन्हें हमने ममत्व के सूत्रों से बाँधकर परिवार के रूप में विस्तृत रूप दे दिया है, संभवतः स्थूल नेत्रों से हमारी काया को नहीं देख पायेंगे। पर हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि इस शताब्दी के अंत तक, जब तक सूक्ष्म शरीर कारण के स्तर तक न पहुँच जाय, हम शांतिकुंज परिसर व प्रत्येक परिजन के अन्तःकरण में विद्यमान रहकर अपने बालकों में नवजीवन और उत्साह भरते रहेंगे। उनकी समस्या का समाधान उसी प्रकार निकलता रहेगा जैसा कि हमारी उपस्थिति में उन्हें उपलब्ध होता।

हमारे आपसी संबंध अब और भी प्रगाढ़ हो जायेंगे क्योंकि हम बिछुड़ने के लिये नहीं जुड़े थे। हमें एक क्षण के लिये भी भुला पाना आत्मीय परिजनों के लिये कठिन हो जायेगा।

ब्रह्मकमल के रूप में हम तो खिल चुके किन्तु उसकी शोभा और सुगन्धि के विस्तार हेतु ऐसे अगणित ब्रह्मबीज - देवमानव उत्पन्न कर जा रहे हैं जो खिलकर समूचे संस्कृति सरोवर को सौंदर्य सुवास से भर सकें, मानवता को निहाल कर सकें।

ब्रह्मनिष्ठ आत्माओं का उत्पादन, प्रशिक्षण एवं युग परिवर्तन के महान कार्य में उनका नियोजन बड़ा कार्य है। यह कार्य हमारे उत्तराधिकारियों को करना है। शक्ति हमारी काम करेगी तथा प्रचण्ड शक्ति प्रवाह अगणित देवात्माओं को इस मिशन से अगले दिनों जोड़ेगा। उन्हें संरक्षण, स्नेह देने - खरादने, सँवारने का कार्य माताजी सम्पन्न करेंगी। हम सतयुग की वापसी के सरंजाम में जुट जायेंगे। जो भी संकल्पनाएँ नवयुग के संबंध में हमने की थीं, वे साकार होकर रहेंगी। इसी निमित्त काय पिंजर का सीमित परिसर छोड़ कर हम विराट घनीभूत प्राण ऊर्जा के रूप में विस्तृत होने जा रहे हैं।

देव समुदाय के सभी परिजनों को मेरे कोटि-कोटि आशीर्वाद, आत्मिक प्रगति की दिशा में अग्रसर होने हेतु अगणित शुभकामनायें।

श्रीराम शर्मा, आचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

अखण्ड ज्योति

वर्ष ५३
अंक ७
जौलाई १९९०

संस्थापक—श्रीराम शर्मा आचार्य

वार्षिक चन्दा—३०/—
विदेश में—२५०/—
आजीवन—३००/—

स्वर्ग और नरक अपने ही हाथ में

अन्तःकरण की पवित्रता स्वर्ग और उसकी मलिनता ही नरक है । इन दोनों दशाओं का भोग करने के लिए मनुष्य को अन्यत्र किसी लोक में नहीं जाना पड़ता । वह इन दोनों ही अवस्थाओं को अपने अन्तःकरण की स्थिति के माध्यम से घर में-बाहर, सोते-जागते, खाते-पीते, उठते-बैठते हर समय भोगता रहता है ।

पवित्र अन्तःकरण वाला मनुष्य मानो अपनी जेब में स्वर्ग डाल कर घूमता है और मलिन अन्तःकरण वाला मानो नरक की विभीषिका लिए फिरता है । पवित्र अन्तःकरण का अर्थ है- एक पुलक, एक सिहरन, एक अलौकिक सुख, एक आनन्द तथा मलिन अन्तःकरण का अर्थ है- एक त्रास, एक यंत्रणा, भयानक अस्तव्यस्तता, एक जलन । दोनों में से एक अनुकूल है, अभीष्ट है, दूसरा प्रतिकूल है, त्याज्य है ।

पाप से बचना है, ताप से अपनी रक्षा करनी है, आनन्द की अनुभूति पानी है, देवत्व का अनुभव करना है तो अन्तःकरण को परिष्कृत करना होगा । दुष्प्रवृत्तियों की कँटीली झाड़ियाँ उखाड़ कर सद्विचारों के सुन्दर, सुकुमार प्रसून बोने होंगे ।

स्वर्ग और नरक जाना अपने ही हाथ में है । अन्तःकरण की अवज्ञा कर अन्तर्दृष्टि की आग में जलना और आत्म प्रताड़ना सहना भी अपने ही हाथ है । यह हम पर ही निर्भर करता है, हम अपने लिए क्या निर्धारण करते व क्या कदम उठाते है ?

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरसाधना, जनजागरण का माध्यम भी

"तोम दिर दिर, नादिर दिर दिर तोम" "त दिर न"। वातावरण संगीतमय हो उठा। स्वर लहरियाँ हवा के साथ लहराती हुई बल खाने लगीं। कभी बलवती सागर की तरंगों की तरह घोर गर्जना करती हुई प्रतीत होतीं तो कभी कान्त कुसुम की तरह कोमल बन कर हवा पर पग रखती हुई उड़ जातीं। सुनने वाले विभोर थे। चारों ओर भावों का सागर उमड़ पड़ा। ऐसा कीर्तन- संगीत और गीत की यह कलुष-नाशिनीधारा जिसमें दोषों के मैल स्वतः धुलते जा रहे थे। यत्किंचित मन की गंदगी बचती भी तो वह गायिका की टिप्पणियों की पटकन से पलायन कर जाती। खड़े हुए लोग मानो अपना अस्तित्व खोने लगे। लगा जैसे सभी कुछ सौन्दर्य, समस्वरता और सामंजस्य के सागर में विलीन हो जायगा। कहीं कोई विषम स्वर न था और न लय टूटती थी।

"जीवन भी एक वाद्य यंत्र है, जो समस्वरता और सामंजस्य के अभाव में बेसुरा हो रहा है। बटती-बिखरती, टूटती जिन्दगी को यदि सँवारा जा सके, मन्द तार और मध्यम सप्तक के रूप में शरीर, आत्मा और मन भली प्रकार सक्रिय हो सकें तो होने वाली अनोखी स्वरसृष्टि जिन्दगी की सार्थकता सिद्ध किए बिना न रहेगी"। वाद्य यंत्र एक ओर रखते हुए उसने अपनी बात कही।

जन समुदाय मंत्र-मुग्ध हो सुन रहा था। सुनने वालों में से कई ऐसे थे जिन्होंने राजदरबारों में श्रेष्ठतम् कलाकारों के गायन-वादन का रस लिया था। किन्तु वहाँ उन्माद था, यहाँ थी शान्ति। वहाँ दोष उद्दीप्त होते थे, यहाँ विलय हो रहे थे। वहाँ विलासिता का नर्तन था, यहाँ वैराग्य की सृष्टि, कैसा विरोधाभास है। शायद इसी कारण कुछ ने संगीत और विलासिता दोनों को एक दूसरे का पर्याय मान लिया था। अब तक उनके मन में संगीत के संबन्ध में जो भ्रान्तियाँ थीं, वे मिटती जा रही थीं क्योंकि सामने थी वैराग्य मण्डित दिव्य भावों की जीवन्त मूर्ति- पच्चीस वर्ष की वय की गेरुए वस्त्रों से मण्डित गौरवर्ण, तपश्चर्या के प्रखर तेज से युक्त उस देवी का दीप्तिमान मुखमण्डल जनश्रद्धा को बरबस अपनी ओर खींच लेता था।

तभी एक ने पूछ लिया- "देवी जी मैं आपके संगीत कीर्तन की बात कहना चाहता था। दरबारी संगीत की अपेक्षा यह ....।" "अच्छा ! अच्छा !! यह बात है, उसने सामने खड़े व्यक्ति के मनोभावों को पढ़ते हुए कहा- दोषी संगीत नहीं है। यह तो सिर्फ भावों का वाहन है। इसके माध्यम से लोकजीवन को कामुकता और विलासिता की कैद में डाला जा सकता है और इसी के माध्यम से जनजागरण भी किया जा सकता है- "जनजाग्रति भी ।" आश्चर्य प्रकट करने के साथ वह स्वयं में झेंप-सा गया। झेंपा इसलिए, क्योंकि उसने इस जाग्रति को अभी कुछ क्षणों पूर्व अनुभव किया था। वही क्यों, सभी ने अपने अन्दर के सच्चे इंसान को अंगड़ाइयाँ लेते हुए महसुस किया था। फिर पूछने की क्या जरूरत थी, पर अब तो पूछ ही लिया।

उसकी इस सोच-विचार से अनजान वह बोल उठी, "हाँ जनजाग्रति"। स्वर में तेजी थी, अँगुलियों की थिरकन संगीत सृष्टि नहीं करती। इसमें प्राण भरने के लिए स्वयं के प्राणों की प्रखरता चाहिए। आज के संगीत को तो विलासियों और व्यसनियों की गुलामी करनी पड़ रही है। उसकी पीड़ा देखकर स्वरों की देवी शारदा व्यथित है वे सामगान के उद्गाता ऋषिगण, जिन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था कि उनके द्वारा की गई स्वरों की सृष्टि को हतभाग्य मनुष्य पाशविकता की ओर मोड़ कर तहस-नहस कर देगा"। हृदय की पीड़ा आँखों में छलछलाने लगी- प्रश्नकर्ता ही क्यों पास खड़े सभी इस दृश्य परिवर्तन को देखकर हतप्रभ थे।

इधर वह भावाविष्ट हो बोले जा रही थीं - "संगीत अब बनकर रहेगा- जनजाग्रति का माध्यम। ऐसा होगा और अवश्य होगा। शुरुआत मैंने कर दी है। मेरे काम को पूर्णता देने के लिए प्रभु स्वयं अनेकानेक रूप धर कर आएँगे- तीसरी सहस्राब्दी में प्रवेश होने के पूर्व ही" । जैसे वह अन्तर्चक्षुओं से भविष्य निहारने लगी, "धरती पर प्रेम-सुन्दरता और सामंजस्य का साम्राज्य होगा। तब तक एक-एक कदम आगे बढ़ने की कोशिश तो करो। लो उठो ! अपने प्रयास में लग जाओ....।"

अन्तरचेतना की अतुल गहराइयों से निकले इन वाक्यों ने सब के मनों में चैतन्य उर्जा भर दी। संगीत द्वारा लोकजीवन में जाग्रति की शुरुआत करने वाली यह तपस्विनी थी मीराबाई। जिन्होंने अपने महान उद्देश्य के लिए राजरानी का वैभव छोड़कर वैराग्य का बाना पहना था। उनका कार्य इन्हीं दिनों पूर्णता प्राप्त करने वाला है। तोड़ फैंकें उन बेड़ियों को जिनसे संगीत की आत्मा संतप्त है, कलेवर जकड़ा पड़ा है। सुगम संगीत की स्वर लहरियों से झंकृत हो उठे जनचेतना। नगर-नगर, गाँव-गाँव, घर-घर और हर दिल में, नए जीवन का नया तराना गूँज उठे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवेदना का सरोवर सूखने न पाये

संग्रह और उपभोग की ललक-व्याकुलता इन दिनों ऐसे उन्माद के रूप में लोकमानस पर छाई हुई है, कि उसके कारण धन ही स्वार्थ-सिद्धि का आधार प्रतीत होता है। ऐसी दशा में यदि उलटा मार्ग अपनाने का निर्णय करते बन पड़े, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

मानवी दिव्य चेतना के लिए इस प्रचलन को अपनाना सर्वथा अवांछनीय है। ऐसा कुछ तो कृमि-कीटक और पशु-पक्षी भी नहीं करते। वे शरीर चर्या के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्त करने के उपरान्त, प्रकृति के सुझाये उन कार्यों में लग जाते हैं, जिसमें उनका स्वार्थ भले ही न सधता हो, पर विश्व-व्यवस्था के सुनियोजन में कुछ तो योगदान मिलता ही है। संग्रह किसी को भी अभीष्ट नहीं, उपभोग में अति कोई नहीं बरतता। सिंह, व्याघ्र तक जब भरे पेट होते हैं, तो समीप में ही चरने वाले छोटे जानवरों के साथ भी छेड़खानी नहीं करते।

मनुष्य का दर्जा ऊँचा इसलिए नहीं है कि वह अपनी विशिष्टता को साधनों के संग्रह एवं उपभोग की आतुरता पर विसर्जित करता रहे। उसके लिए कुछ बड़े कर्तव्य निर्धारित हैं। उसे संयम-साधना द्वारा ऐसा आत्म परिष्कार करना होता है, जिसके आधार पर विश्व-उद्यान का माली बनकर वह सर्वत्र शोभा-सुषमा का वातावरण विनिर्मित कर सके। जब सभी प्राणी अपनी प्रकृति के अनुरूप अपनी गतिविधियाँ अपनाते हैं, तो मनुष्य के लिए ऐसी क्या विवशता आ पड़ी है, जिसके कारण उसे अनावश्यक संग्रह और उच्छृंखल उपभोग के लिए आकुल-व्याकुल होकर पग-पग पर अनर्थ सम्पादित करते फिरना पड़े।

गहरी डुबकी लाााने पर इस उलटी रीति का निमित्त कारण भी समझ में आ जाता है। भाव-संवेदनाओं का स्रोत सूख जाने पर सूखे तालाब जैसी शुष्कता ही शेष बचती है। इसे चेतना क्षेत्र की निष्ठुरता या नीरसता भी कह सकते हैं। इस प्रकार उत्पन्न संकीर्ण स्वार्थपरता के कारण, मात्र अपना ही वैभव और उपभोग सब कुछ प्रतीत होता है। उससे आगे भी कुछ हो सकता है, यह सूझता ही नहीं। दूसरों की सेवा-सहायता करने में भी आत्मसंतोष और लोकसम्मान जैसी उपलब्धियाँ संग्रहीत हो सकती हैं, इसका अनुमान लगाना-आभास पाना तक कठिन हो जाता है। आँख खराब हो जाने पर, दिन में भी मात्र अन्धकार ही दीख पड़ता है। कान के पर्दे जवाब दे जायें, तो कहीं से कोई आवाज आती सुनाई ही नहीं पड़ती। ऐसी ही स्थिति उनकी बन पड़ती है, जिनके लिए अनर्थ स्तर की स्वार्थपूर्ति ही सब कुछ बन कर रह जाती है।

शरीर से चेतना निकल जाने पर मात्र लाश ही पड़ी रह जाती है, जिसे ठिकाने न लगाया जाय, तो स्वयं सड़ने लगेगी, घिनौना वातावरण उत्पन्न करेगी। जब तक कि शरीर में चेतना विद्यमान थी, वह जीवित शरीर को समर्थ एवं सुन्दर बनाये हुए थी। निर्जीव तो नीरस और निष्ठुर ही हो सकता है। मुर्दा तो समीप बैठे आश्रितों या स्वजनों का विलाप भी नहीं सुनता, उस पर कुछ ध्यान भी नहीं देता। मानो उन सब से उसका कभी दूर का संबंध भी न रहा हो। भाव-संवेदनाओं का स्रोत सूख जाने पर मनुष्य भी ऐसा ही घिनौना हो जाता है। अपना हित-अनहित तक उसे नहीं सूझता, तो दूसरों की सेवा-सहायता करने की उत्कंठा उठने का तो प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

जीवितों और मृतकों की अलग-अलग दुनिया है। मुर्दे श्मशान, कब्रिस्तान में जगह घेर कर जा बैठते हैं और उधर से निकलने वालों को भूत-प्रेतों की तरह डराते-भगाते रहते हैं। जीवितों में से भला कोई ऐसी हरकत करता है ? उन्हें तो आवश्यक प्रयासों में ही निरत देखा जाता है। इन दिनों संवेदनाहीनों को प्रेतों जैसी और संवेदनशीलों को जीवितों जैसी गतिविधियाँ अपनाये हुए प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करुणा उभरे बिना दूसरों की स्थिति और आवश्यकता का भान ही नहीं होता । इस अभाव की स्थिति में लकड़ी चीरना और किसी निरपराध की बोटी-बोटी नोच लेना प्रायः एक जैसा ही लगता है । किसी के साथ अन्याय बरतने में, सताने-शोषण करने में कुछभी अनुचित प्रतीत नहीं होता । भावना के अभाव में मनुष्य का अन्तराल चट्टान की तरह नीरस-निष्ठुर हो जाता है । संवेदनाशून्यों को नर-पशु भी तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पशुओं की भी अपनी मर्यादाएँ होती हैं, जो प्रकृति-अनुशासन के विपरीत एक कदम भी नहीं उठाते, भले ही मनुष्य की तुलना में उन्हें असमर्थ-अविकसित माना जाता रहे ।

लगता है भाव-श्रद्धाविहीनों के लिए नर-पिशाच, ब्रह्मराक्षस, मृत्युदूत, दर्दुान्त दैत्य जैसे नामों में से ही किसी का चयन करना पड़ेगा, क्योंकि उन्हीं की आपा-धापी उस स्तर तक पहुँचती है, जिसमें दूसरों के विकास-विनाश से-उत्पीड़न एवं अभिवर्धन से कोई वास्ता नहीं रहता । उनके लिए "स्व" ही सब कुछ बनकर रह जाता है । बस चले तो वे हिरण्याक्ष दैत्य की तरह, दुनिया की समूची सम्पदा समेट कर ले उड़ें, भले ही उसे समुद्र में छिपाकर निरर्थक बनाना पड़े । जिनके लिए सभी विराने हैं, वे किसी का कुछ भी-अनर्थ कर सकते हैं । ऐसा ही पिछले दिनों होता भी रहा है । स्वार्थान्धों से इतना भी सोचते न बन पड़ा कि इस सृष्टि में दूसरे भी रहते हैं और उन्हें भी जीवित रहने दिया जाना चाहिए । वस्तुतः प्रस्तुत समस्याएँ अगणित हैं । उलझनों, संकटों, विग्रहों का कोई अन्त नहीं । यह सब कहाँ से उत्पन्न होते हैं और क्यों कर निपट सकते हैं, ? इसकी विवेचना करने पर इसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि मात्र अपने आपे तक, गिने-चुने अपनों तक सीमित रहने वाला किन्हीं अन्यों की चिन्ता नहीं कर सकता और न उदार न्यायनिष्ठा का ही परिचय दे सकता है । ऐसी दशा में अनाचार के अतिरिक्त और कुछ बन ही न पड़ेगा और उसका प्रतिफल अनेकानेक विग्रहों के रूप में ही आकर रहेगा, यही दुष्प्रवृत्ति जब बहुसंख्यक लोगों द्वारा अपनायी जाती है तो उसका परिणाम वातावरण को विक्षुब्ध किये व प्रतिक्रिया उत्पन्न किये बिना नहीं रहता ।

संवेदना आत्मीयता के रूप में विकसित होती है, तब मनुष्य दूसरों के दुःख को अपना दुःख और अन्यों के सुख को अपना सुख मानने लगता है । सहानुभूति के रहते ऐसा व्यवहार करना संभव नहीं होता है, जिनसे किसी के अधिकारों का अपहरण होता हो, अथवा किसी को शोषण का शिकार बनना पड़ता हो ।

आमतौर से अपना, अपनों का हित-साधन ही अभीष्ट रहता है । यदि यह आत्मभाव सुविस्तृत होता चला जाय, जन-समुदाय को अपने अंचल में लपेट ले, अन्य प्राणियों को भी अपने कुटुम्बी जैसा मानें, अपने जैसा समझें, फिर वैसा ही सोचते-करते बन पड़ेगा, जिससे सुख-शान्ति का पथ-प्रशस्त होता हो । मात्र आतुरता और निष्ठुरता ही ऐसी दुष्प्रवृत्ति है, जो अनाचार के लिए उकसाती है और उसके फलस्वरूप अगणित संकटों का परिकर विनिर्मित करती है । यदि भाव-संवेदना जीवन्त और सक्रिय बनी रहे, तो सृजन और सहयोग के आधार पर उत्थान और कल्याण का सुयोग ही सर्वत्र बन पड़ेगा । यही नवयुग की प्रतिष्ठापना का मूल आधार होगा । ✱

बुद्ध का अन्तिम दिन था । आनन्द छाती पीटकर रोने लगा और बोला-"प्रभु अब आप तो जा रहे हैं मेरा क्या होगा ?" बुद्ध ने कहा-"आनन्द ! पागल मत बनो ! मुझ से पहले कितने ही बुद्ध हो गये और मेरे बाद अनेकों होंगे । यह सिलसिला कभी समाप्त नहीं होगा । यदि तू सीखने में कुशल है, तो किसी से भी सीख लेना । तू चालीस वर्षों तक मेरे साथ रहा तू कहता है कि मुझे ज्ञान नहीं हुआ । "मैं जा रहा हूँ, उस दिन कह रहा है कि अब क्या होगा ?यदि चालीस साल में तू ज्ञान को प्राप्त नहीं हुआ, तो चालीस जन्मों में भी तेरी क्या समझ में आवेगा ? हो सकता है मेरे होने के कारण तेरी सीखने की क्षमता क्षीण हो गई हो । तू समझता था कि गुरु मिल गये, सब कुछ मिल गया । मिलना ही पर्याप्त नहीं, तुझे भी बदलने की जरूरत थी, बनने की जरूरत थी । संभव है मेरे न रहने पर तू बुद्धत्व को प्राप्त हो " और इतना कहकर बुद्ध ने अन्तिम सांस ली । ऐसा ही हुआ । कहते हैं कि आनन्द को बुद्ध के जाने के बाद ही परम ज्ञान उपलब्ध हो सका ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह, जिसने भविष्य को घटते देखा

सहस्राधिक नेत्र उस पर टिके थे । फ्रांस का राजदरबार आज उसे राजकीय सम्मान प्रदान कर रहा है । यों यह सम्मान अब तक औरों ने भी पाया होगा, लेकिन उसके जैसा नहीं । पहले के सम्मान समारोहों में सिर्फ राजदरबार के वर्ग अथवा कतिपय गण्यमान्य व्यक्ति आकर्षित होते थे । लेकिन आज जन-सामान्य भी उमड़ पड़ा था । दर्शक दीर्घा के खचाखच भर जाने के कारण अनेकों दरबार के बाहर खड़े थे, इस आशा के साथ कि निकलने पर तो देख ही सकेंगे ।

वह कोई बहुत बड़ा कवि-कलाकार न होकर पेशे से सामान्य चिकित्सक भर था । पर यहाँ उसे चिकित्सा विद्या नहीं वह अनूठी क्षमता लायी थी, जिसके बल-बूते उसे अज्ञात की अनबूझ राहों पर चलने में कोई कठिनाई नहीं होती थी । सबके लिए अनजाना, अनसुलझा रहने वाला भविष्य उसके लिए सर्वथा परिचित और स्पष्ट था । अपने इस भविष्यदर्शन के करतब के कारण वह न केवल मोन्टपेलियर-पेरिस बल्कि समूचे फ्रांस में प्रसिद्धि पा चुका था ।

अद्भुत् है मानवी कलेवर भी- ऊपर से देखने पर तो हड्डियों के सहारे टिका, सर्वथा निकृष्ट दर्जे के चमड़े से मढ़ा खोल भर दीखता है, जिसका बाजार भाव मुश्किल से चालीस-पचास रुपए लगे ; पर क्या इतना ही है, ? "नहीं तो " शरीर, प्राण, मन और मन से आत्मा तक अनेक विधि स्तरों में ऐसे-ऐसे खजाने छुपे हैं, ऐसी-ऐसी सम्पदाएँ भरी पड़ी हैं जिसे देखकर अवाक् होना पड़ता है । मानने के लिए विवश होना पड़ता है कि मनुष्य निःसंदेह परमेश्वर का राजदुलारा है । आज लोग उसे देखकर कुछ इसी तरह विवश हो रहे थे । महारानी कैथरीन द मेदिसी ने सम्राट और राजपुत्रों के भविष्य को जानने के लिए ही उसे बुलाया था ।

उसके इस कर्तृत्व पर दरबारी आपस में कुछ खुसफुसा रहे थे, पर बोले कौन ? राजदरबार की मर्यादाएँ । साम्राज्ञी की दृष्टि उधर गई, उनकी तेज आँखों से तथ्य छुपा न रह सका । उन्होंने उद्घोषक को बुलाकर कुछ कहा ।

अगले ही पल वाणी गूँज गई- दरबार के सदस्य यदि कुछ कहना या पूछना चाहें तो पूछ सकते हैं; सम्राट व साम्राज्ञी आज्ञा देते हैं ।

उत्तर में मंत्रिपरिषद के एक सदस्य खड़े हुए । उन्होंने दरबारी शिष्टाचार का पूर्ण निर्वाह करते हुए पूछा- हमारे माननीय अतिथि सिर्फ व्यक्तियों के ही भविष्य बता सकते हैं अथवा उनमें समूचे विश्व, अखिल मानव समाज की भवितव्यता उद्घाटित करने की भी क्षमता है ।

कथन चुनौती भरा था । परन्तु इसके साथ ही अन्यों के चहरों पर सन्तोष के भाव तैर गए । हो भी क्यों न ? आखिर वे भी यही तो पूछना चाहते थे । उसने महारानी की ओर देखा, आँखों-ही-आँखों में बोलने की इजाजत माँगी । मिलने पर एक भरपूर दृष्टि मंत्रिपरिषद के सदस्यों, दरबारियों पर डालते हुए कहा- "आपका प्रश्न वाजिब है, यदि आप लोग व्यक्ति से ऊपर उठकर विश्व तक न पहुँचेंगे तो कौन पहुँचेगा ? संभवतः आप सभी उत्तर भी चाहेंगे ?" सभी का उत्तर सकारात्मक था ।

तो सुनिये ! आवाज किन्हीं अतल गहराइयों से आ रही थी । चहरे पर पहले के सभी भाव लुप्त हो चुके थे । पहले का हास-परिहास सहज मुसकान सब गायब थी । अब थी एक अनोखी चमक-द्रष्टा का आभामण्डल । सभी दम साधे सुन रहे थे । "विश्व को अनेक कठिनाइयों से गुजरना पड़ेगा । अठारहवीं सदी के अन्तिम दशक में फ्रांस को राज्य क्रांति से गुजरना होगा । बीसवीं सदी में धरती दो महायुद्धों से हुए रक्तपात से भीग जाएगी । हिंसा, आग, बवण्डर, अलगाव-आतंक, क्रान्तियाँ और.....।"उसके कहने के भाव इतने भयंकर थे- जैसे प्रत्येक शब्द से ज्वाला बरस रही हो । जन समुदाय सहम गया । क्या होगा ? अभी तो १५५२ चल रहा है, यह सब तो दूर है ।

"हिटलर नामक तानाशाह का उदय-अस्त, मार्क्सवाद का प्रादुर्भाव और विनाश, ब्रिटेन पर आघात न जाने कितनी बातें बयान कर डालीं । विनाश-विध्वंस चीत्कारें तो क्या धरती के भाग्य में महानाश के अलावा और कुछ नहीं है । सभी के मनों में उथल-पुथल थी । १९९९ के होते-होते धरती पर एक महाक्रांति सम्पन्न होगी - एज ऑफ ट्रुथ, "सत्ययुग" का आगमन होगा । सर्वत्र शान्ति, चहुँ ओर सृजन, मानव के रूप में देवताओं का विहार, धन्य हो उठेगी धरा, स्वयं को स्वर्ग का आधार बनते देखकर ।" "कौन करेगा यह सब ? कहाँ से उठेगी महाक्रांति" एक ने दूसरे की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इशारा किया । महारानी सम्राट सभी आश्चर्यचकित थे, इस भावान्तर को देखकर । तभी प्रधान आमात्य ने सभी को शान्त किया ।

वह कह रहे थे - "जहाँ तीन समुद्र मिलते हैं, उसी देश में आयेगा क्रान्ति का संचालक । उसे गुरुवार प्रिय होगा । वही महाशिल्पी इस आलौकिक सृजन को सम्पन्न करेगा । समस्त धरावासी "न भूतो न भविष्यति" कह कर सिर झुका लेंगे" जिन्हें भौगोलिक जानकारी थी, वे भारत का संकेत समझ चुके थे । पर असमंजस में थे । क्योंकि वे तो उसके वर्तमान को जानते ही न थे एवं यह महापुरुष तो साढ़े चारसौ वर्ष बाद की भवितव्यता बता रहा था । महाविनाश से महासृजन तक का भविष्य दर्शन कर सभी भाव-विभोर थे । कुछ ही क्षणों में वे फिर पहले की तरह सामान्य सरल और हँसमुख बन गए, जैसे कुछ हुआ ही न हो ।

मोशिए ! आपका कथन कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ । मंत्रिपरिषद के एक वृद्ध सदस्य ने अचकचाहट के साथ सवाल किया । "धरती की वर्तमान अवस्था और .....।"

समझा मैंने भी नहीं है । मैंने तो सिर्फ देखा है सूक्ष्म में घटते हुए । अब समझना चाहते हैं समझ लीजिए एक छोटी सी कहानी सुनना पसंद करेंगे ? उसने हल्की मुसकराहट के साथ अपनी बात पूरी की । अवश्य-अवश्य । सभी ने अनुमोदन किया ।

जवाब में वह हँसते हुए सुनाने लगे । अपने फ्रौंस में एक फकीर थे मोपलिए । एक दिन एक युवक उनके पास आया - उसे तीव्र वैराग्य था, आशा थी कि सन्त उसे मानवीय चेतना का मर्मज्ञ बनाएँगे । सन्त ने अनेकों तरह की परीक्षा की, समस्त लक्षणों को परखा और उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा - तुममें सम्राट होने के लक्षण हैं ।

पर मैं तो ....। युवक ने सकरुण नेत्रों से उनकी ओर ताका ।

ठीक है, ठीक है साधना करो । सन्त की आँखें किसी अदृष्ट को निहार रही थीं । साधना की प्रक्रिया समझायी, युवक भी तन्मय होकर साधना करने लगा । एक दिन सन्त ने कहा - "पुत्र तुम्हारे अन्दर योगी के लक्षण दीखने लगे हैं । तुम किसी भी अवस्था में क्यों न हो, इच्छा होते ही मुझे अपने पास अनुभव कर सकोगे ।

इसके एक-आध साल बाद ही साधनारत युवक के प्राणों ने शरीर छोड़ दिया । शरीर छोड़ने के बाद भी उसके प्राण सचेतन थे । उसने देखा कि वह एक अन्धेरी, संकीर्ण दुर्गन्ध भरी गुफा में प्रवेश कर रहा है । दुःख और क्रोध से तमतमा कर उसने गुरु को पुकारते हुए कहा यही है आपका सत्य ? आपने कहा था मैं सम्राट बनूंगा, आपने कहा था मैं योगी बनूंगा और मैं यह नारकीय यातना भुगत रहा हूँ ।

पुकारते ही सन्त की सूक्ष्म उपस्थिति अनुभव हुई । "धैर्य मत खोओ बालक ! तुम वैसे ही बनोगे जैसा मैंने कहा था । लेकिन तैयारी के लिए तुम्हें इस अँधेरी, विकट गुफा से गुजरना होगा । तुम इस देश की महान साम्राज्ञी के गर्भ में हो । जन्मते ही साम्राज्य तुम्हें विरासत में मिलेगा और योग संस्कारोंवश प्राप्त होगा ।" आज वह बालक...... कहते हुए उसने राजकुमार की ओर देखा ।

सभी ने एक साथ कहानी के आवरण में छुपी यथार्थता को अनुभव किया । महारानी के मन में राजकुमार के जन्म से पूर्व के दिन सन्त का आशीर्वाद, सुखद अनुभूतियाँ एक-एक करके साकार हो उठीं ।

समझ में आया रहस्य, उसने अपनी रहस्यमयी दृष्टि सब पर घुमाई । विश्व व्यवस्था, अखिल मानव समाज अपनी गर्भावस्था से गुजर रहा है । प्रसव होने तक उसे अनेकों कष्ट सहने होंगे ।

कौन है इस गर्भ को धारण करने वाला ? अनेकों सवाल एक साथ उभरे । स्वयं सम्राट चकित थे । स्वयं महाकाल । संक्षिप्त उत्तर था । तो विश्व मानवता महाकाल के गर्भ में है ।हाँ महाकाल के गर्भ में, जहाँ उसे क्षण-क्षण परिवर्तन और अनिश्चितता का सामना करना पड़ेगा । दुःसह यातना जिसकी नियति होगी । यह यातना ही तो उसे सर्वांग सुन्दर बनाने वाली है ।

काल के महाकाल के गर्भ में । ये शब्द सभी कानों में हथौड़े की तरह बज उठे । मस्तिष्क झनझना उठा । रुक-रुक कर सिहरन दौड़ उठती । नया मानव जन्म लेगा । सब कुछ नया होगा । नए प्राण, नया मनुष्य, नया समाज, नया जमाना, समूचा युग नया सब कुछ नया-नया । स्पष्ट हो गया न तथ्य । रहस्मयी मुस्कान के साथ बोले गए शब्दों ने जैसे सभी को अज्ञात भविष्य से वर्तमान में ला दिया । फ्रौंस की राजसभा में तथ्य को स्पष्ट करने वाले यह भविष्यद्रष्टा थे - "माइकेल नोस्ट्राडेमस" जिनकी भविष्यवाणियों को अपने में सँजोने वाली पुस्तक "सेन्चुरीज" आज भी प्रत्येक के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है । बीतती सदियों ने जिसे धुँधला करने के बजाय अधिकाधिक उज्ज्वल किया है ।

१९९ की घड़ियाँ निकट आती जा रही हैं । महाकाल की चेतना सघन से सघन तर सघनतम होती जा रही है । नवयुग जन्म लेने को है । अगवानी का समय आ रहा है । ऐसे में कदम पीछे क्यों हटें ? जबकि कार्यक्षेत्र भारतवर्ष ही बनने जा रहा है । *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत समस्यायें सुलझने ही जा रही हैं

कोई समय था, जब घर-घर में अंधविश्वासों की भरमार थी । भूत-प्रेत, टोना-टोटका घर-घर में चर्चा के विषय बने रहते थे । कोई किसी पर जंत्र-मंत्र करा रहा है, किसी ने किसी पर जादू करा दिया है, यह चर्चा घरों में किसी न किसी के मुँह से सुनने को मिलती रहती थी । संदेह और आशंका का भय, पारस्परिक कलह और विद्वेष का कारण बना रहता था ।

कुछ धूर्तों ने इस विडम्बना को अपना व्यवसाय बना लिया था । छोटी बीमारियों को किसी भूत-पलीत की करतूत मान लिया जाता था और जिस-तिस पर आरोप लगा दिया जाता था कि उसने यह टोना-टोटका कराया है । भोले लोग इन बातों पर विश्वास भी कर लेते थे और तिल का ताड़, राई का पहाड़ बन जाता था । आये दिन परस्पर कलह, संदेह, अन्धविश्वास और विग्रह खड़े होते रहते थे । झाड़-फूँक करने वाले इसी बहाने अपना अच्छा-खासा धंधा चला लेते थे । जहाँ शान्तिपूर्वक रहना चाहिए था और कोई कारण न होने पर दुर्भाव का कोई आधार नहीं बनना चाहिए था, वहाँ भी, छोटे-मोटे गाँवों तक में भी संदेह, अविश्वास और दुर्भाव का वातावरण बन जाता था । आग में ईंधन पड़ने पर और भी बढ़ोत्तरी होती है । कौतुकी भी मनोरंजन हेतु किन्हीं किंवदंतियों को तिल से ताड़ बना दिया करते थे और उसी बहाने किसी न किसी से कुछ-न-कुछ ठग लिया करते थे ।

यह अविश्वास कहाँ से उपजता था और अब न जाने कहाँ चला गया, इस पर आश्चर्य होता है । नासमझी ही बात का बतंगड़ बनाती थी । समझदारी का उदभव होते ही वह सारा जाल-जंजाल इस प्रकार तिरोहित हो गया, मानो गधे के सिर पर कभी सींग उगे ही नहीं थे ।

ऐसी ही कुछ भ्रांतियाँ मनुष्य को अपने संबन्ध में अभी भी होती हैं । शरीर में आये दिन बीमारियाँ होती रहती हैं और उनके इलाज-उपचार के लिए नित नई औषधियों का प्रयोग होता रहता है । इतने पर भी यह विवाद बना ही रहता है कि इनमें से कौनसी-लाभदायक सिद्ध हुई, कौनसी-हानिकारक । एक रोगी के लिए जो चिकित्सा उपयोगी हुई, वही दूसरे रोगी के उसी रोग में हानिकारक सिद्ध होती देखी जाती है । आये दिन चिकित्सकों एवं औषधियों की अदला-बदली इसलिए होती रहती है । यह सिलसिला मुद्दतों से चल रहा है, पर अभी तक किसी एक निश्चय पर पहुँचना संभव न हो सका ।

इतने दिनों बाद अब एक सही निष्कर्ष हाथ लगा है कि मन का शरीर के प्रत्येक पुर्जे पर अधिकार है । यदि मन को नियंत्रित और सन्मार्गगामी बनाया जा सके, तो शरीर के सभी कल-पुर्जे अपना-अपना काम सही रीति से करने लगते हैं और बीमारियों की जड़ कट जाती है । इसके विपरीत यदि चिन्तन का क्रम उलटा चलता रहे, कुविचार मस्तिष्क पर छाये रहें, तो शरीर में कोई स्थानीय व्यथा न होने पर भी कल्पनाजन्य अनेकों अव्यवस्थाएँ उठ खड़ी होती हैं और दवाओं में सिर्फ वही थोड़ा-बहुत काम करती हैं, जिन पर विश्वास गहरा होता है । इससे प्रतीत होता है कि बीमारियों की जड़ तो मन के भीतर रहती है । शरीर में तो उनका आभास भर होता है । यदि सरल, सौम्य और सद्भावपूर्ण विचार बने रहें, तो बीमारियों का जो प्रकोप आये दिन बना रहता है, उनका अस्तित्व ही न रहे । यह तथ्य यदि समय रहते लोगों को पहले ही अवगत हो गया होता, तो हर कोई अपना इलाज आप कर लेता और उसके लिए जहाँ-तहाँ भटकते रहने की आवश्यकता न पड़ती ।

यही बात खिन्नता, उद्विग्नता के संबन्ध में भी है । लोग प्रतिकूल परिस्थितियों को चिन्ताओं, आशंकाओं और प्रतिकूलताओं का कारण मानते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि उन्हीं परिस्थितियों में उतने ही साधनों में अनेक लोग प्रसन्न रहते और जीवनयापन करते हैं । प्रतिकूलताएँ अनुभव करने में चित्त की प्रवृत्तियाँ ही प्रधान भूमिका निभाती हैं । परिस्थितियों को बदलने के लिए भाग-दौड़ करने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षा, यदि मन की बेतुकेपन की रीति-नीति को ही सुधार लिया गया होता, तो हर स्थिति को अपने अनुकूल बन जाने में कोई बड़ी कठिनाई न पड़ती। अपनी गलती को दूसरों के सिर इसलिए मढ़ा जाता है। यदि कुटेव अभ्यास में न घुस पड़ी होती, तो सरलता और सज्जनता का सौम्य जीवन जीते हुए हर व्यक्ति अपनी वर्तमान परिस्थितियों को सुधार लेता। गलती सुधर जाने पर, जो प्रतिकूलताएँ चारों ओर घिरी दीखती हैं, उनमें से एक भी घिरी न दीख पड़तीं।

इन्द्रियों का दुरुपयोग कठिनाइयों का निमित्त कारण बनता है, यदि इस मोटे तथ्य को लोगों ने हृदयंगम कर लिया होता, तो इच्छा-आकांक्षाओं को पूरा करने की दौड़-धूप न करनी पड़ती, मात्र संयम-साधना से ही अधिकांश समस्याएँ सुलझ गयी होतीं। यदि स्वादेन्द्रिय पर काबू रखा जाता, तो अनावश्यक-अभक्ष्य खाने की ललक न उठती और पेट के संतुलित बने रहने पर पाचन-तंत्र में कोई व्यतिक्रम न खड़ा होता। कामुकता, मानसिक विकार है। लोग उसे शारीरिक माँग या आवश्यकता मानते हैं, जो कि सही नहीं है। यदि इस मोटे सिद्धांत को समझ लिया जाय, तो फिर कामुकताजन्य जो अनेक अनाचार दीख पड़ते हैं, उनमें से एक भी कहीं दीख न पड़ता। नर-नारी मिलजुल कर उन उपयोगी और महत्वपूर्ण कामों में लगे होते, जिससे सुविधाओं की कमी न रहती और जिन अनौचित्यों का आये दिन सामना करना पड़ता है, उनसे कोई भी किसी को हैरान-परेशान न कर रहा होता। आँख, कान, नाक, इन्द्रियों में से जिन्हें क्रियाशील कहा जाता है, यदि उनके प्रयोग से पहले ही यह विचार कर लिया जाता कि औचित्य और अनौचित्य में क्या अन्तर होता है, और क्या अपनाने योग्य है, क्या अपनाने योग्य नहीं, तो मस्तिष्क द्वारा उलटी दिशा अपनाने और उसके फलस्वरूप कोई भी अहितकर प्रयास करने के लिए कदम न बढ़ता। फिर अच्छे-खासे सुख-शान्ति भरे जीवन को विद्रूप बनाने की किसी को भी आवश्यकता न पड़ती।

उपलब्ध वस्तुओं को ठीक प्रकार प्रयुक्त करना मनुष्य की बुद्धिमानी का प्रथमचिन्ह है। जीवनचर्या के साथ जुड़े हुए मन को यदि सबसे अच्छा साधना माना गया होता और उसके सदुपयोग-दुरुपयोग का आरंभ से ही ध्यान रखा गया होता, तो सदा-सर्वदा हर किसी को हँसती-हँसाती जिन्दगी जीने का अवसर मिला होता। जिन विग्रहों और अनाचारों का आये दिन सामना करना पड़ता है. उनमें से एक भी हैरान करने के लिए सामने न आते। इस संसार में ऐसी एक भी कठिनाई नहीं है, जिसका बुद्धिमत्ता अपनाने पर समाधान न खोजा और निवारण निराकरण का मार्ग न निकाला जा सके यह संसार भगवान का सुरम्य उद्यान है। उसमें हर दिशा में, हर प्रकार की सुविधाएँ ही भरी पड़ी हैं, जहाँ-कहीं प्रतिकूलताएँ दीख पड़ती हैं, वहाँ समझना चाहिए कि चिन्तन में कहीं कोई गड़बड़ी पड़ गई है। यदि उसी खोट को ढूँढ़ लिया जाय, तो वह कारण सहज ही समझ में आ सकता है। अगले दिनों मनुष्य अपने चिन्तन को सही करने जा रहा है और साथ ही उन सभी समस्याओं से पीछा भी छुड़ाने की तैयारी कर रहा है, जो आज हैरानी का वातावरण बनाये हुए हैं। ✱

अमेरिका की हैरियट स्टो कई बच्चों की माँ थी। घर की आर्थिक स्थिति भी अब दीन थी। सुबह से शाम तक उन्हें काम में जुटा रहना पड़ता था।

इस व्यस्त जीवन में भी वे बच्चों के सो जाने के बाद चुपके से उठतीं और उस पुस्तक को लिखने में लग जातीं। जिसे पूरी करने की उनके मन में भारी उत्कंठा थी।

उन दिनों अफ्रीका में नीग्रों लोगों को पकड़कर लाया जाता था उन्हें पशुओं की तरह खरीदा, बेचा और वैसा ही कड़ा काम लिया जाता था। स्टो के मन में इसी क्रूर प्रथा के प्रति आग जल रही थी, वे इस प्रचलन के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करना चाहती थीं। पुस्तक इसी प्रयोजन के लिए लिखी जा रही थी।

पुस्तक पूरी हुई और छपकर बाजार में आई तो जन-जन ने उसे बड़े गौर के साथ पढ़ा। भावनाएँ उमड़ीं। पीड़ितों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हुई और उस व्यवसाय में लगे वर्ग के प्रति विद्रोह खड़ा हो गया। कुछ समय के संघर्ष के बाद उस देश में कानून बना और दास प्रथा से लाखों को छुटकारा मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य को गौरवान्वित करने वाली विभूति- प्रतिभा

सैनिकों को युद्ध मोर्चों पर पराक्रम दिखाने के लिए तैयार कराने के लिए, उन्हें भेजने वाला तंत्र यह व्यवस्था भी करता है कि उन्हें आवश्यक सुविधाओं वाली साज-सज्जा मिल सके, अन्यथा वे अपनी ड्यूटी ठीक प्रकार पूरी करने में असमर्थ रहेंगे । नवसृजन के दुहरे मोर्चे पर इसी प्रकार की व्यवस्था, युग परिवर्तन का सरंजाम जुटाने वाली सत्ता ने भी कर रखी है । सफलता के उच्च लक्ष्य तक पहुँचने में कितनी ही बाधाएँ पड़ सकती हैं, उन्हें पार करने के लिए - वांछित प्रगति के लिए अनेक आवश्यकताएँ पूरी करनी होती हैं । समझना चाहिए कि इस सन्दर्भ में किसी अग्रगामी आदर्शवादी को निराश न होना पड़ेगा, क्योंकि उसकी पीठ पर सर्वशक्तिमान सत्ता का हाथ जो रहेगा ।

तेज हवा पीछे से चलती है, तो पैदल चलने वालों से लेकर साइकिल आदि के सहारे लोग कम परिश्रम में आगे बढ़ते जाते हैं और मंजिल सरल हो जाती है । इसी प्रकार नवसृजन का लक्ष्य, कल्पना करने वालों को कठिन दीखता तो है, पर उस स्रष्टा को विदित है कि उनकी नवसृजन योजना को पूरा करने के लिए, जो अपने प्राण हथेली पर रखकर अग्रगमन का साहस दिखा रहे हैं, उन्हें सफलता का लक्ष्य प्रदान करने के लिए क्या-क्या आवश्यकताएँ जुटानी और क्या जिम्मेदारी निभानी चाहिए ।

माँगने वाले भिखमंगे दरवाजे-दरवाजे पर झोली पसारते, दाँत निपोरते, गिड़गिड़ाते हैं और दुत्कारे जाते हैं । मनोकामनाएँ पूरी कराने वाले ईश्वर भक्ति का आडम्बर ओढ़कर इसी प्रकार निराश रहते हैं और उपेक्षा सहते हैं, पर जिन्हें ईश्वर का काम करना पड़ता, उन्हें तो आदरपूर्वक बुलाया जाता है और अभीष्ट साधनों का उपहार भी दिया जाता है । इन दिनों गरज ईश्वर को पड़ी है । उस का उद्यान समुन्नत करने के लिए कुशल माली चाहिए । उसी की दुनिया को समुन्नत, सुसंस्कृत, सुसम्पन्न बनाने के लिए कुशल कलाकारों और शूरवीर सैनिकों की आवश्यकता पड़ रही है । जो उसकी पुकार पर अपनी क्षमता को प्रस्तुत करेंगे, वे दैवी अनुग्रह से किसी प्रकार वंचित न रहेंगे, वरन् इतना कुछ प्राप्त करेंगे, जिसे पाकर वे निहाल बन सकें ।

हनुमान, सुग्रीव के सुरक्षा कर्मचारी थे । भयभीत सुग्रीव के लिए दो वन आगन्तुकों का भेद लेने के लिए वे वेष बदलकर राम-लक्ष्मण के पास गये थे और सिर नवाकर विनम्रतापूर्वक पूछ-ताछ कर रहे थे । पर बाद में स्थिति बदली, सीता की खोज के लिए राम को हनुमान की जरूरत पड़ी । अनुरोध उनने स्वीकारा तो बदले में इतनी सामर्थ्य के धनी बन गये, जो उनकी मौलिक विशेषताओं में सम्मिलित नहीं थी । समुद्र छलाँगने, लंका को जलाने, पर्वत उखाड़ कर लाने जैसे असाधारण काम थे, जो उन्होंने अतिरिक्त शक्ति प्राप्त करके सम्पन्न किये ।

ईश्वर के लिए आड़े समय में काम आने वालों को भी ऐसे ही उपहार-अनुदान मिलते हैं । विभीषण को लंका का सम्राट् बनने का सुयोग मिला । सुग्रीव ने अपना खोया राज्य पाया । भगवान के काम के लिए देवपुत्र माँगन वाली कुन्ती को उत्कृष्ट स्तर के पुत्र रत्न देने में उनने आना-कानी नहीं की । भक्ति का प्रचार करने वाले नारद देवर्षि कहलाये । सूर-तुलसी ने ईश्वर के काम के लिए प्रतिज्ञारत होकर ऐसी प्रतिभा पायी, जिसके सहारे वे अनन्त कीर्ति पा सकने के अधिकारी बने ।

इन दिनों स्रष्टा ने ही विश्व-कल्याण, नवसृजन के लिए कर्मवीरों को पुकारा है । जो उस हेतु हाथ बढ़ायेंगे, वे खाली क्यों रहेंगे ? भगीरथ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँधी, बुद्ध आदि को जो समर्थता मिली, वह इसलिए मिली कि परमार्थ प्रयोजन के काम आये ।

इस दुनिया में ऐसी भी सुविधा है कि जब-तब बहुत सी उपयोगी वस्तुएँ बिना मूल्य भी मिल जाती हैं । हवा, पानी, छाया, खुशबू आदि हम बिना मूल्य ही पाते हैं, पर जौहरी या हलवाई की दुकान पर सुसज्जित रखी हुई वस्तुएँ उठा कर चल देने का कोई नियम नहीं है । उनका मूल्य चुकाना पड़ता है । गाय को घास न खिलायी जाय, तो दूध प्राप्त करते रहना कठिन है ।

भगवान ने सुदामा को अपनी द्वारिकापुरी, टूटी सुदामापुरी के स्थान पर स्थानान्तरित कर दी थी, पर इससे पहले यह विश्वास कर लिया था कि इस अनुदान को उस स्थान पर कारगर विश्वविद्यालय चलाने के लिए ही प्रयुक्त किया जायेगा । चाणक्य की शक्ति चन्द्रगुप्त को ही मिली थी और वह चक्रवर्ती कहलाया था ।

भवानी की अक्षय तलवार शिवाजी को मिली थी । अर्जुन को दिव्य गण्डीव धनुष एवं वाण देने वालों ने अनुदान थमा देने से पहले यह भी जाँच लिया था कि उस समर्थता को किस काम में प्रयुक्त किया जायेगा ? यदि बिना जाँच-पड़ताल के किसी को कुछ भी दे दिया जाय, तो भस्मासुर द्वारा शिवजी को जिस प्रकार हैरान किया गया था, वैसी ही हैरानी अन्यों को भी उठानी पड़ सकती है ।

भगवान ने काय-कलेवर तो आरंभ से ही बिना मूल्य दे दिया है, पर उसके बाद का दूसरा वरदान है-"परिष्कृत प्रतिभा"। इसी के सहारे कोई महामानव स्तर का बड़प्पन उपलब्ध करता है । इतनी बहुमूल्य सम्पदा प्राप्त करने के लिए वैसा ही साहस एकत्रित करना पड़ेगा, जैसा कि लोकमंगल के लिए विवेकानन्द जैसों को अपनाना पड़ा था । इन दिनों परीक्षा भरी वेला है, जिसमें सिद्ध करना होगा कि जो कुछ दैवी-अनुग्रह विशेष रूप से उपलब्ध होगा, उसे उच्चस्तरीय प्रयोजन में ही प्रयुक्त किया जायेगा । कहना न होगा कि इन दिनों नवयुग के अवतरण का पथ-प्रशस्त करना ही वह बड़ा काम है, जिसके लिए कटिबद्ध होने पर 'परिष्कृत प्रतिभा' का बड़ी मात्रा में अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है । उसे धारण करने पर 'हीरक हार' पहनने वाले की तरह शोभायमान बना जा सकता है ।

ईश्वरीय व्यवस्था में यही निर्धारण है कि बोया जाय और उसके बाद काटा जाय । पहले काट लें, उसके बाद बोयें, यह नहीं हो सकता । लोकसेवी उज्ज्वल भविष्य वाले लोग ही प्रायः वरिष्ठ, विश्वस्त गिने और उच्चस्तरीय प्रयोजनों के लिए प्रतिनिधि चुने जाते हैं । विशिष्ट पुरुषार्थ का परिचय देने के उपरान्त ही पुरस्कार मिलते हैं । परिष्कृत प्रतिभा ऐसी सम्पदा है, जिसकी तुलना में मनुष्य को गौरवान्वित करने वाला और कोई साधन है नहीं । उसे प्राप्त करने के लिए यह सिद्ध करने की आवश्यकता है कि मानवी गरिमा को गौरवान्वित करने वाली धर्म-धारणा के क्षेत्र में कितनी उदारता और कितनी सेवा-साधना का परिचय देने का साहस जुटा पाया ।

दूसरों के हाथ रचाने के लिए, मेंहदी के पत्ते पीसने पर अपने हाथ स्वयमेव लाल हो जाते हैं । समय की माँग के अनुरूप पुण्य-परमार्थ का परिचय देने वालों को भी सदा नफे में ही रहने का सुयोग मिलता है । बाजरा, मक्का आदि का बोया हुआ एक दाना हजार दाने से लदी बाल बनकर इस तथ्य को प्रमाणित और परिपुष्ट करता है । भगवान के बैंक में जमा की हुई पूँजी इतने अधिक ब्याज समेत वापस लौटती है, जितना लाभ अन्य किसी व्यवसाय या पूँजी-निवेश में कदाचित् ही हस्तगत होता हो ।

किसी की वरिष्ठता उसके पारमार्थिक पौरुष के आधार पर ही आँकी जाती है । श्रेष्ठों, वरिष्ठों का आकलन इसी एक आधार पर होता रहा है । साथ ही यह भी विश्वास किया जाता है कि बड़े कामों को सम्पन्न करने में उन्हीं की मनस्विता काम आती है । पटरी पर से उतरे इंजन को उठाकर फिर उसी स्थान पर रखने के लिए मजबूत और बड़ी क्रेन चाहिए । उफनती नदी में जब भँवर पड़ते रहते हैं, तब बलिष्ठ नाविकों के लिए ही यह संभव होता है कि वे डगमगाती नाव को खेकर पार पहुँचायें । समाज की सुविस्तृत संसार की उलझन भरी बड़ी समस्याओं को सही तरह सुलझा सकना, उन साहसी और मेधावीजनों से ही बन पड़ता है, जिन्हें दूसरे शब्दों में प्रतिभावान भी कहा जा सकता है । युग परिवर्तन जैसे महान प्रयोजनों को हाथ में लेने के लिए अपनी साहसिकता का, गौरवभरी गरिमा का परिचय दे सकने वाले व्यक्ति चाहिए । आड़े समय में ऐसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रखर प्रतिभावानों को खोजा, उभारा और खरादा जाना है ।

एक संभावना यह है कि संचित अनाचारों का विस्फोट इन्हीं दिनों हो सकता है । उसे न रोका गया, तो कोई महायुद्ध भड़क सकता है । बढ़ता हुआ प्रदूषण, भयावह बहुप्रजनन, बढ़ता हुआ अनाचार मिल-जुलकर महाप्रलय या खण्डप्रलय जैसी स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं । उसे रोकने के लिए सशक्त अवरोध चाहिए । ऐसा अवरोध, जो उफनती हुई नदियों पर बाँध बनाकर उस जल-संचय को नहरों द्वारा खेत-खेत तक पहुँचा सके । वह साधारणों का नहीं, असाधारणों का काम है ।

ताजमहल, मिस्र के पिरामिड, चीन की दीवार, पीसा की मीनार, स्वेज और पनामा नहर, हालैण्ड द्वारा समुद्र को पीछे धकेलकर उस स्थान पर सुरम्य औद्योगिक नगर बसा लेने जैसे अद्‌भुत् सृजन-कार्य जहाँ-तहाँ विनिर्मित हुए दीख पड़ते हैं, वे आरंभ में किन्हीं एकाध संकल्पवानों के ही मन-मानस में उभरे थे । बाद में सहयोगियों की मंडली जुड़ती गई और असीम साधनों की व्यवस्था बनती चली गयी । नवयुग का अवतरण भी इन सबमें बढ़ा-चढ़ा कार्य है, क्योंकि उसके साथ संसार के समूचे धरातल का जन समुदाय का संबन्ध किसी न किसी प्रकार जुड़ता है । इतने बड़े परिवर्तन एवं प्रयास के लिए अग्रदूत कौन बने ? अग्रिम पंक्ति में खड़ा कौन हो ? आवश्यक क्षमता और सम्पदा कौन जुटाये ? निश्चय ही यह नियोजन असाधारण एवं अभूतपूर्व है । इसे, बिना मनस्वी साथी-सहयोगियों के सम्पन्न नहीं किया जा सकता । विचारणीय है कि उतनी बड़ी व्यवस्था कैसे बने ?

आरम्भिक दृष्टि से यह कार्य लगभग असंभव जैसा लगता है, पर संसार में ऐसे लोग भी हुए हैं, जिन्होंने असंभव को संभव बनाया है । आल्पस पहाड़ को लाँघने की योजना बनाने वाले नेपोलियन से हर किसी ने यह कहा था कि जो कार्य सृष्टि में आदि से लेकर अब तक कोई नहीं कर सका, उसे आप कैसे कर लेंगे ? उत्तर बड़ा शानदार था । असंभव शब्द मूर्खों के कोश में लिखा मिलता है । यदि आल्पस ने राह न दी, तो उसे इन्हीं पैरों के नीचे रौंदकर रख दिया जायेगा । अमेरिका की खोज पर निकले कोलम्बस को भी लगभग ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत करना पड़ा । समुद्र से अंडे वापस लेने में असफल होने पर जब टिटहरी ने अपनी चोंच में बालू भरकर समुद्र में डालने और उसे पाटकर समतल बनाने का संकल्प घोषित किया और उसके लिए प्राणों की बाजी लगाने के लिए उद्यत हो गयी, तो नियति ने संकल्पवानों का साथ दिया । अगस्त्य मुनि आये, उनने समुद्र पी डाला और टिटहरी को अंडे वापस मिल गये । फरहाद द्वारा पहाड़ काट कर ३२ मील लम्बी नहर निकालने का असंभव समझे जाने वाला कार्य संभव करके दिखाया गया । इसे ही कहते हैं "प्रतिभा" । ✱

भोज विद्वानों की बड़ी कदर करते थे और उन्हें समुचित सम्मान देते थे । एक बार उनके दरबार में एक विद्वान गीता की कथा सुनाने के अभिप्राय से गये । उनका उद्देश्य इस प्रकार कुछ धन प्राप्त करने का था । राजा उनका स्तर समझ गये और अवकाश न होने का बहाना बनाकर उन्हें लौटा दिया । कुछ समय बाद वे पन्डित फिर पहुँचे और अवकाश निकाल कर कथा सुनने का आग्रह करने लगे । राजा ने अब की बार कहा आप गीता में प्रवीण हो जाइए तब कथा सुनाइये । पन्डित जी ने गीता कंठाग्र कर ली । सन्देश भेजा और कब कथा सुनाने आयें यह पूछा । राजा ने इस बार उत्तर भिजवाया कि जब आप गीतामय हो जायें तब सूचित करें । पन्डित जी ने इस व्यवहार पर गंभीरतापूर्वक विचार किया,बार-बार अपमानित होने का कारण समझा । उनने लोभवृत्ति छोड़ दी और मन, वचन, कर्म से अपने आपको गीता के अनुरूप ढालने में लग गये ।

बहुत दिन बीत जाने पर राजा ने उनकी खोज खबर ली । जब पता चला कि उनका चरित्र-चिन्तन एक दम बदल गया है । तो उनने बुलावा भेजा । पर पन्डित जी ने मना कर दिया और कहा अपने आप में संतुष्ट हूँ । कहीं जाने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती ।

राजा ने परिवर्तन की वस्तु स्थिति समझ ली। वे स्वयं पन्डित जी के घर पहुँचे और अठारह दिन वहीं रहकर अठारह अध्याय कथा सुनी । साथ ही दक्षिणा में उनके घर जिन वस्तुओं की कमी प्रतीत हुई वे सभी पहुँचा दीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखनी की सृजन-सामर्थ्य

"भाभी, तुम्हारे अन्दर मानवता के प्रति कसक है। लगता है पीड़ितों, असहायों का दर्द तुम्हारे अन्तःकरण में उतर आया है। तुम्हारे मन में जो करुणा, दया और प्रेम निहित है, उसे पा दुःखी और भ्रमित, पीड़ित और दलित-समाज को नई ज्योति मिलेगी। इसलिए तुम्हें अपनी रोजी-रोटी बेटा-बेटी की समस्या से ऊपर उठकर समाज सेवा का भी कुछ व्रत पालन करना चाहिए।" पति की छोटी बहिन ने उक्त शब्द कहे।

उस समय उसकी गोद में नवजात बालक था। उसने कहा - "दीदी भला मेरे पास ऐसी कौन सी प्रतिभा है जिससे समाज का उद्बोधन और समाज का मार्गदर्शन करूँ। किससे क्या कहूँ, मेरी कौन सुनेगा? सेवा का मार्ग कठिन है, उस पर मुझ जैसी स्वल्प शक्ति वाली स्त्री चल सकेगी, इसमें संदेह है।"

"ऐसा कहकर मनुष्य को प्रदत्त परमात्मा की शक्ति को तिरस्कृत न कीजिए भाभीजी। भगवान ने हर व्यक्ति को कुछ न कुछ दिया है, जिससे वह दूसरों की सेवा कर सकता है। दूसरों को ऊपर उठाने में मददगार साबित हो सकता है। कठिनाई तो कुल इतनी सी है, लोगों ने अपने स्वार्थ की एक छोटी सी रेखा खींच ली है। बढ़िया कपड़ा, दमकते जेवर और सुस्वादु भोजन हो तो सिर्फ अपने लिए। दूसरे के बच्चे कैसे भी रहें, पर मेरे बालक को उच्च शिक्षा, अधिक सुविधाएँ, स्नेह और आदर मिलना चाहिए। अपने सुख अपनी तृष्णा, अपने स्वार्थ की मृगतृष्णा से कुछ समय निकले तो सेवा के लिए सर्वत्र स्थान है।

बहिन ने आगे समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा -"भाभीजी आप लिखा कीजिए। अपनी बौद्धिक क्षमता, सूझ-बूझ और भीतर भरे गुणों का प्रकाश तो आप समाज को दे ही सकती हैं।"

"अच्छा जीजी लिखूँगी! जरूर लिखूँगी! उसने वचन दिया - जैसे ही बच्चा थोड़ा संभला, मैं लिखना अवश्य प्रारम्भ करूँगी।"

यह वह समय था, जब अमेरिका में दास प्रथा खूब प्रचलित थी। दक्षिणी अफीका में तो सामन्तवादियों ने दासों का घोर उत्पीड़न किया था, उनके साथ पशुवत व्यवहार करते थे। मनमाना दण्ड देते और उनके जीवन को कंकड़-पत्थर की तरह अपनी सम्पत्ति मानते।

ऐसे समय में जब उनके खिलाफ एक शब्द भी कहने की किसी की हिम्मत न होती थी। दृढ़ संकल्प करके एक साधारण गृहणी जब कलम लेकर बैठ गई तो नजारा ही बदल गया। जो कल तक यह कहा करती थी कि उसके पास तो कुछ है ही नहीं, वह समाज का क्या हित कर सकती है। उसने जब सेवा का संकल्प ठान लिया तो सारे अमेरिका की आबोहवा गर्म होने लगी। उसने अपना सारा दर्द उतार कर कागजों में रख दिया। "अंकिल टाम्स केबिन"- "टाम काका की कुटिया" नाम से जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई तो सारे देश में परिवर्तन का तूफान उठ खड़ा हुआ। अवांछनीयताओं के विषवृक्ष की जड़ें उखड़ने लगीं।

उसने इस किताब में दासत्व की अवांछनीय प्रथा के खिलाफ ऐसे सशक्त विचार भरे थे कि हर पढ़ने वाला - तिल-मिला उठता और यही कहता -"मनुष्य, मनुष्य को उत्पीड़ित करना बंद करे।" घर-द्वार, कल-कारखाने, पार्क-पाठशाला सर्वत्र ये विचार व्याप्त हो गये। दास प्रथा समाप्त हो गई। दुनिया की २२ भाषाओं में अनुदित इस कृति को सभी ने सराहा।

एक दिन तत्कालीन राष्ट्रपति लिंकन ने उसका सार्वजनिक अभिनन्दन किया और कहा - यही हैं - हैरियट स्टो- जिन्होंने अमेरिकी समाज से सदियों से चली आ रही इस अवांछनीयता को उखाड़ फेंका। यह इनकी निष्ठा और संकल्प का बल था - जिसने इतना बड़ा कार्य कर दिखाया। आप लोग यह अनुमान करें कि आप के पास भी उतनी ही शक्ति है। यदि आप कुछ करने को उद्यत हों, तो इससे भी अधिक चमत्कारपूर्ण कार्य कर सकते हैं। ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजयोग के विभिन्न प्रयोगों का स्पष्टीकरण

अष्टांग योग नाम से जाना जाने वाला राजयोग यों स्थूल क्रिया कृत्यों के साथ भी जुड़ा हुआ है, पर उनका वास्तविक उद्देश्य चेतना के अन्तरंग क्षेत्र को पवित्र एवं प्रखर बनाना है । शारीरिक क्रिया-कलापों का भी यों चेतना पर प्रभाव पड़ता है, पर साथ में सिद्धान्तों, आदर्शों का उसके साथ सघन समन्वय भी होना चाहिए । यदि उसकी उपेक्षा की जाय और मात्र कर्मकाण्डों को ही सब कुछ मान लिया जाय, तो उतने भर से अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

शरीर का अपना महत्व है, उसके क्रिया-कलापों का भी । इतने पर भी यह मानना पड़ेगा कि अध्यात्म क्षेत्र में क्रिया की अपेक्षा भावना का महत्व असंख्य गुना अधिक है । भावनाविहीन भक्ति का कोई मूल्य नहीं । देव प्रतिमाएँ बनती तो धातु-पाषाण आदि जड़ पदार्थों की हैं, पर उनमें चेतना का समावेश भक्त की सघन श्रद्धा के अनुरूप होता है । यदि श्रद्धा न हो, तो वे दुकानों पर रखे खिलौनों से बढ़कर और कोई अतिरिक्त प्रभाव दिखाने में समर्थ नहीं होते । यही बात मंत्र, अनुष्ठान, पूजन, अर्चन आदि के संबन्ध में भी है । उनकी शक्ति-सामर्थ्य उसी अनुपात से घटती-बढ़ती रहती है, जैसी कि उपासक की भावना गहरी-उथली होती है । आध्यात्मिक साधनाओं में से प्रत्येक का यही स्वरूप एवं यही प्रतिफल है । जो मात्र कर्मकाण्डों को ही साधना मान बैठते हैं, वे भूल करते हैं । शारीरिक अथवा पदार्थ परक क्रिया-कृत्यों का मूल्य नगण्य ही होता है । श्रमिक दिन भर काम करके थोड़ा-सा पारिश्रमिक पाते हैं, फिर कुछ समय तक किये जाने वाले जप-ध्यान आदि का कोई बड़ा माहात्म्य या मूल्य कैसे हो सकता है ? इतने पर भी जिनका यही आग्रह है कि अमुक जप या पूजन का असाधारण महत्व होना चाहिए, उतने भर से बढ़ी-चढ़ी सिद्धियाँ मिलनी चाहिए, उनकी मान्यता फलीभूत नहीं होती । उन्हें निराश ही रहना पड़ता है । आशा के अनुरूप फल तो श्रद्धासिक्त भावना ही प्रदान करती है ।

राजयोग की सभी साधनाओं के संबन्ध में यही बात है । यम-नियम जीवन के चिन्तन-चरित्र एवं आचरण में उतारने पड़ते हैं । आसन व्यायाम नहीं, वरन् आसन जमा कर बैठना है । रसोई भी आसन पर बैठकर की जाती है । बोल-चाल की भाषा में किसी कार्य के लिए दृढ़तापूर्वक आरूढ़ होना भी आसन लगाना या आसन जमाना है । प्राणायाम प्राणवान बनने के लिए किया जाता है । प्राणवान् अर्थात् मनस्वी-मनोबल सम्पन्न ।

इसी प्रकार प्रत्याहार को संघर्षशीलता कहते हैं । गीता में अर्जुन को जिस युद्ध के लिए प्रेरित किया गया है, वह वस्तुतः आत्मिक क्षेत्र का युद्ध ही है । मारकाट वाली लड़ाई के लिए गीता जैसे आत्मिक प्रवचन की आवश्यकता नहीं थी । वह प्रत्याहार ही है, जिसे गीतोक्त महाभारत नाम दिया गया है । यह धर्मक्षेत्र में- कर्मक्षेत्र में लड़ा जाता है । संचित कुसंस्कारों एवं हेय प्रचलनों के आकर्षणों, दबावों को अस्वीकार करना ही प्रत्याहार है ।

अब तीन प्रयोग और शेष रहते हैं- धारणा, ध्यान और समाधि । धारणा का तात्पर्य है- मान्यता, स्थापना, स्वीकृति, निष्ठा । आदर्शों के विषय में यही तथ्य लागू होता है । आदर्शों को तर्क और तथ्य के आधार पर तो सहज ही स्वीकारा जा सकता है, पर जिस आदर्श को श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा के आधार पर हृदयंगम किया गया हो, फलित केवल वही होता है । आस्तिकता, आध्यात्मिकता, धार्मिकता के त्रिविध आदर्श प्रमुख हैं । ईश्वर पर विश्वास, आत्मक्षमता पर विश्वास, कर्तव्य कर्मों के दायित्व पर विश्वास - इन तीनों के विश्वास को धारणा कहते हैं यों साधारणतया किन्हीं देवी-देवताओं, मंत्रों, गुरुजनों, शास्त्रों पंथों आदि पर विश्वास करना भी धारणा के अर्थ में प्रयुक्त होता है । एक शब्द में धारणा को विश्वास भी कह सकते हैं ।

ध्यान का तात्पर्य है - अभीष्ट निर्धारण का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार-बार चिन्तन करना । इससे मान्यता परिपक्व होती है । भूली हुई बातों का स्मरण भी ध्यान के आधार पर हो आता है । अपने आदर्श का, लक्ष्य का, निश्चय का बार-बार स्मरण करने से वह आस्था के रूप में परिणत हो जाता है । यों किसी चित्र का, प्रतिमा का, व्यक्ति का, कल्पना-सपनों का इच्छानुसार ध्यान किया जाता है । नाद-योग में शब्दों का, मेरुदण्ड में षट्चक्रों का, मस्तिष्क में ब्रह्मकमल का, मूलाधार में कुण्डलिनी का ध्यान किया जा सकता है । मस्तिष्क में ब्रह्मग्रन्थि, हृदय में विष्णुग्रंथि, नाभि में रुद्रग्रंथि के ध्यान का विधान है । श्वास-प्रश्वास के समय सोऽहम् ध्वनि की ध्यान-धारणा की जाती है । इसी प्रकार और भी योग सम्प्रदायों में कई-कई प्रकार के ध्यानों का निर्धारण है, विचार-चेतना को केन्द्रीभूत करने की साधना है । इन्हीं माध्यमों से मन एकाग्र होता है, बिखरी शक्तियों के केन्द्रीकरण का चमत्कार दृष्टिगोचर होता है ।

अष्टांग योग की अन्तिम स्थिति है - समाधि । उसके दो पक्ष हैं- एक सविकल्प समाधि, दूसरी निर्विकल्प समाधि । सविकल्प में चिन्तन बना रहता है और निर्विकल्प में चेतना शून्य स्थिति आ जाती है ।

समस्त शरीर पर मस्तिष्क अपना अधिकार जमाये हुए है । इच्छाशक्ति के साथ सुदृढ़ संकल्प करके योगीजन शरीर के किसी भी अवयव को मंद गति शिथिल एवं अवरुद्ध कर देते हैं । देखा गया है कि इस मार्ग में क्रियाकुशल साधक हृदय की धड़कन बन्द कर देते हैं, रक्त प्रवाह और श्वास-प्रश्वास का क्रम अवरुद्ध कर देते हैं । प्राण ब्रह्माण्ड में चढ़ जाता है, तो काया निश्चेष्ट हो जाती है । यों इस स्थिति में भी जीवन बना रहता है । शरीर को सुरक्षित रखकर मनःचेतना को लक्ष्य पर केन्द्रीभूत कर दिया जाता है । ऐसी स्थिति आने पर भूमि समाधि भी ली जा सकती है । कई लेते भी हैं, पर वस्तुतः इसकी आवश्यकता नहीं है । मात्र प्रचार विज्ञापन होता है, जिससे साधक का लक्ष्य की तन्मयता से ध्यान बँटता है और ब्रह्मपरायणता का प्रयोजन दूर हटता जाता है । इस निर्विकल्प समाधि में खतरा भी है । यदि प्राण को ब्रह्माण्ड में चढ़ा तो लिया जाय, पर उतारना संभव न हो सके, तो उससे प्राण-हानि होने का संकट उत्पन्न हो जाता है । सविकल्प समाधि ही जोखिम से रहित है । उसमें बिना मार्गदर्शक के भी क्रमशः एकाग्रता परिपक्व की जाती रहती है और एक दिन ऐसी स्थिति आ जाती है कि चित्त संसार प्रयोजनों से विरत होकर परमात्म सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित कर ले ।

लौकिक जीवन को पारलौकिक, पारमार्थिक बना लेना भी समाधि है । आत्मा को ईश्वर के अंश रूप में देखना- संसार के प्रति विराट ब्रह्म की मान्यता रखना और क्रिया-कलापों को ऐसा बना लेना कि वे स्वार्थ पूर्ति के लिए नहीं, परमार्थ प्रयोजन की पूर्ति के लिए किये जा रहे हैं, तो इसे भी समाधि का ही एक अन्य रूप कहा जा सकता है । आत्मसत्ता के स्वरूप, प्रयोजन एवं उपयोग के संबन्ध में तत्वदर्शी ज्ञान भूमिका का रहना समाधि भावना का ही एक स्वरूप है । अपने को ईश्वर का अंश- युवराज मानना- चरित्र चिन्तन और व्यवहार को उच्चस्तरीय रखना गतिविधियों को विश्वउद्यान को समुन्नत बनाने में लगाये रहना, प्रकारान्तर से समाधि अवस्था ही है । सम्यक+धी =समाधि । बुद्धितत्व को दूरदर्शी विवेकशीलता में नियोजित रखे रहना है, ऋतम्भरा प्रज्ञा है । इसी को भूमा या तुर्या कहते हैं । योगी-तपस्वी इसी स्थिति में अपनी चेतना को बनाये रहते हैं । यद्यपि शरीर धर्म के अनुरूप नित्यकर्मों की, निर्वाह-व्यवस्था की गतिविधियाँ उन्हें भी सामान्य जनों की तरह सम्पन्न करनी पड़ती हैं । शरीर जब तक जीवित है, तब तक उसके लिए निर्वाह साधन तो जुटाने ही पड़ेंगे, पर राजयोग का योगी अपनी आत्मिक विशिष्टता को बनाये रहता है और समाधि लाभ सहित विभूतिवान जीवन जीता है । ✱

प्रसिद्ध दार्शनिक डायोजिनीज से जब सिकन्दर महान मिलने गये तो संत डायोजिनीज धूप में लेटे हुए थे । सम्राट ने उन्हें नम्र स्वर में संबोधित किया और पूछा "मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?" सिर्फ मेरी धूप छोड़ दो " संत डायोजिनीज ने उत्तर दिया । यह उत्तर सुन कर सिकन्दर आश्चर्य से स्तंभित रह गया । उसके दरबारी साथी उक्त दार्शनिक को एक मूर्ख कह कर हँसी उड़ाने लगे तो सिकन्दर ने कहा " यदि मैं सिकन्दर न होता, तो चाहता कि मैं डायोजिनीज बन जाऊँ ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामुकता की कुदृष्टि

प्रकृति ने प्राणियों में से मात्र मादा को ही यह क्षमता प्रदान की है कि जब उसकी शारीरिक शक्ति नया शिशु उत्पन्न करने की हो, तो ही वह नर को कामुक संदेश दे और वह उस आदेश का पालन करने में रुचि दिखाये । अपनी ओर से प्राणि जगत का कोई भी नर—नारी के साथ किसी प्रकार की छेड़छाड़ नहीं करता है । दोनों वर्ग इस प्रकार साथ—साथ रहते और संयत जीवन जीते हैं जिसमें नारी और नर—बिना किसी प्रकार की उत्तेजना का परिचय दिये स्वाभाविक जीवन जीते हैं । नर को कामुकता प्रदर्शन करने की ऐसी छूट बिलकुल भी नहीं मिली है कि वह मादा के आदेश या संकेत के बिना किसी प्रकार की अनुपयुक्त छेड़छाड़ करे । अपनी ओर से प्रथम कदम उठाये ।

बच्चे को बहुत दिनों तक दूध की आवश्यकता होती है । जब वह साधारण आहार खाने और पचाने योग्य हो जाता है, तब कहीं मादा की स्थिति ऐसी बनती है कि वह नया बालक उत्पन्न करने सँभालने की अपनी क्षमता का परिचय दे और वैसा संकेत करे । मनुष्यों की यह नासमझी ही है कि पशुओं की संतानों को जितने दिनों तक जितनी मात्रा में दूध मिलने की सहज आवश्यकता रहती है, उससे कहीं पहले वे उस बच्चे को उसके स्वाभाविक आहार से वंचित करके उसकी खुराक को झपटने—हड़पने लगते हैं । यदि ऐसा न किया जाय तो पशुओं के बालक कई वर्ष तक माता के दूध पर निर्भर रहकर अपने शारीरिक विकास को परिपोषित करते रह सकते हैं । पर जब उनकी प्रकृति प्रदत्त खुराक को मनुष्यों द्वारा दुह लिया जाता है तो बच्चों का अविकसित रह जाना तो स्वाभाविक है ही , साथ ही अत्यधिक दबाव से मादा के प्रजनन अंग भी समय से पूर्व विकसित होने लगते हैं । फिर वे जोड़ा मिलाते हैं और जननी पैदा करने की प्रक्रिया से अपनी पीढ़ियाँ दुर्बल बनाती है । दूध सभी का स्वाभाविक भोजन है । जब तक बच्चा माँ के दूध पर निर्भर रहता है, तब तक उसके लिए दूध पीने का औचित्य भी है । यदि इस नियम का सर्वत्र पालन होने लगे तो संतान वृद्धि की वैसी समस्या उत्पन्न न हो , जैसी कि मनुष्य और पशुओं में देखी जा रही है उनकी बढ़ती हुई वंशवृद्धि के कारण अनेकों समस्याएँ पैदा हो गयी हैं व उनकी जड़ कामुकता ही है ।

नारी के साथ यदि अतिरिक्त छेड़खानी न की जाय तो वह पहला बच्चा चार—पाँच वर्ष का होने से पूर्व शारीरिक दृष्टि से इस तरह कमजोर न बने कि वह संतान की ठीक तरह साज संभाल करने के अनुपयुक्त ही बन जाए । ऐसा क्रम चल पड़े तो महिलाओं को आये दिन दुर्बलता और रुग्णता से छुटकारा मिल सकेगा ।

बच्चा और जननी दोनों को स्वस्थ रखना हो तो यह आवश्यक है कि दो प्रसवों के मध्य लम्बा समय हो । पिता का स्वास्थ्य , दायित्व और व्यवस्था, आर्थिक देखभाल , सुसंस्कृत बनाने का अवसर इसी आधार पर मिलता है । जल्दी बच्चे जनने में दूने स्तर की हानि ही हानि है । जल्दी बच्चे न हों, इसके लिए अनेक समाधानों की जानकारी अब सर्द सुलभ होती जा रही है । इनमें सबसे महत्वपूर्ण यह है कि पुरुष नारी के प्रति कामुकता की दृष्टि न रखे । उसे मात्र अपनी सहचरी समझे । कामुकता के विचार ही मस्तिष्क को खराब करते हैं और यौनाचार के लिए प्रेरित करते हैं । इसलिए नर और नारी के बीच स्नेह—सहयोग तो घनिष्ट रहना चाहिए , पर साथ ही यह ध्यान भी रखना चाहिए कि कामुकता की दृष्टि का सीमा से बाहर हो जाना नर, नारी और बच्चे इन सभी के लिए समान रूप से हानिकारक है । इस व्यवधान को खड़ा कर देने के कारण तीनों ही घाटे में रहते हैं और साथ ही समूचे समाज को हानि पहुँचाते हैं ।

शारीरिक और मानसिक स्वस्थता एवं समर्थता के प्रति जिनकी भी रुचि है , उन्हें इस तथ्य को स्मरण रखना चाहिए कि जिस कर्म से हर प्रकार हानि ही हानि हो, सबका अहित ही अहित हो, उससे जितना बचा जा सके , उतना ही अच्छा है । कामुकता की कुदृष्टि को यदि मस्तिष्क से हटाया और व्यवहार से मिटाया जा सके तो इसमें हर किसी का हर प्रकार से हित साधन ही है ।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब जाग उठता है ब्राह्मणत्व तो....

महल की सीढ़ियाँ चढ़ने के साथ ही एक बार फिर उनके हाथ कुर्ते की जेब में गए । दूसरे ही क्षण एक लिफाफा हाथ में था । इसमें मोड़ कर रखे गए कागज को खोला और पढ़ने लगे । अक्षरों के क्रम के साथ ही चेहरे पर भावों की लहरें उठ रही थीं । इन लहरों में उर्जस्विता भर रहा था यह कागज का टुकड़ा । ऐसा क्या था इस सोलह अंगुल के कागज में । वह भी तो एक कागज ही था जिसने कल से ही उनके मन को मथ रखा था । कितनी बार पढ़ा होगा उसे कुछ ख्याल नहीं , हाँ यह अवश्य है कि जितनी भी बार पढ़ा विकलता बढ़ती गई और आखिर में लिखना ही पड़ा इस कागज को जो इस क्षण उनके हाथ में था । यह कागज का एक टुकड़ा नहीं, उनका आत्म निर्णय था ।

दरबान काफी देर से उनको बड़ी बारीकी से देख रहा था । जेब से लिफाफे का निकालना-उलटना पलटना कागज खोलकर पढ़ना फिर भावों के दरिया में डूब जाना । आखिर उससे रहा न गया पूछ ही बैठा क्या सोचने लगे पण्डित जी ?

ॐ वह जैसे सोते से उठे । चिन्तन की निमग्नता टूटी । दरबान को सम्बोधित करते हुए बोले-हिज हाइनेस को सूचना दो कि मैं मिलना चाहता हूँ ।

अरे आपके लिए क्या सूचना चले जाइए ।

नहीं-नहीं तुम बताकर आओ ।

"अच्छा कहकर वह चला गया और वे फिर सोचने लगे ठीक ही तो लिखा है महामना ने ब्राह्मणत्व एक साधना है । मनुष्यता का सर्वोच्च सोपान है । इसकी साधना की ओर उन्मुख होने वाले क्षत्रिय विश्वामित्र और शूद्र ऐतरेय भी ब्राह्मण हो जाते हैं । साधना से विमुख होने पर ब्राह्मण कुमार अजामिल और कौण्डिलायन शूद्र हो गए । सही तो है जन्म से कोई कब ब्राह्मण हुआ है । ब्राह्मण वह जो समाज से कम से कम लेकर उसे अधिकतम दे । स्वयं के तप, विचार और आदर्श जीवन के द्वारा अनेकों को सुपथ पर चलना सिखाए । इस कसौटी पर कसे जाने......। आगे कुछ सोच पाते कि दरबान ने खबर दी महाराज आपको बुला रहे हैं ।

उनके नपे तुले कदम महल के एक आलीशान कक्ष की ओर बढ़ गए । यहाँ महाराज अपने खास मित्रों के साथ बैठ कर वार्तालाप किया करते हैं । उन्हें सामने देख कर वह बोल उठे आज असमय कैसे आना हुआ, खैरियत तो है ।

जवाब में उन्होंने वही कागज थमा दिया । पढ़कर कर राजा साहब चौंक उठे जैसे कागज न होकर बिच्छू हो । बड़ी मुश्किल से उनके मुख से निकला क-क.... क्यों ? यह सब ! कहकर नरेश ने उनके चेहरे की ओर देखा जैसे वह पूर्ण कारण जानना चाहते हों ।

"कल मालवीय जी का पत्र आया था, उन्होंने लिखा है यदि तुम में ब्राह्मणत्व जागे तो रियासत की आराम तलबी छोड़कर हिन्दू विश्व विद्यालय के कर्तव्य क्षेत्र में आ जाओ "। यहाँ तुम्हारी उपयोगिता और आवश्यकता कहीं अधिक है ।

ब्राह्मण तो आप हैं हीं इसमें जगने और सोने की क्या बात है ? महाराज को वाकया समझ में नहीं आ रहा था ।

"आज से पहले मैं भी यही समझता था । किन्तु अब मालवीय जी की परिभाषा पढ़कर लगा कि अर्थ लोलुप भी कहीं ब्राह्मण हो सकता है ?"

"कितना मिलेगा वहाँ "? "यही तकरीबन अढ़ाई तीन सौ " "और यहाँ आपको साढ़े तीन हजार प्रतिमास मिलता है आवास तथा अन्य सुविधाएँ अलग । मालवीय जी से पूछियेगा । ब्राह्मण होने का मतलब बुद्धिहीन होना तो नहीं है ? "और विवेकहीन होना भी नहीं है ।""बुद्धि और विवेक ? क्या अन्तर है इनमें ?"

"बुद्धि येन केन प्रकारेण तिकड़म भिड़ाकर उल्लू सीधा करती है और विवेक भावनाओं से एक होकर उच्चादर्शों के लिए अपनी राह खोजता है ।

"तो आपका यह अंतिम निर्णय है ?"

"हाँ आत्मा की इस प्रकार की अवहेलना करने में असमर्थ हूँ ।"सुनकर नरेश उनकी ओर देखते हुए बोले "आप हमेशा से मेरे श्रद्धाभाजन रहे और आज तो आपके प्रति मेरी श्रद्धा पहले की अपेक्षा द्विगुणित हो उठी है । सच पण्डित जी आज मैंने जाना कि ब्राह्मण राजा से भी बड़ा होता है ।"

यह महामानव थे पं.रामचंद्र शुक्ल जिनने कर्त्तव्य की पुकार पर कालाकांकर नरेश के हिन्दी सचिव का पद ठुकराकर मालवीय जी का सहकर्मी बनना श्रेयस्कर माना । यही है सही माने में ब्राह्मणत्व का जागरण । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य से असामान्य

परमात्मा ने–प्रकृति ने–मनुष्य मात्र को बहुत कुछ ऐसा असाधारण दिया है, जिसके आधार पर वह सुख–सौभाग्य, प्रगति स्वयं प्राप्त करने के साथ–साथ औरों के लिए भी सहायक सिद्ध हो सकता है । परन्तु मनुष्य की दुर्बुद्धि कहें या माया का भटकाव–जिसके प्रभाव से सुख–सौभाग्य के स्थान पर वह अपने तथा औरों के लिए समस्याएँ एवं विडम्बनाएँ ही रचता रह जाता है । लालसा, वासना और अहंता के चक्र में मनुष्य स्वयं को दयनीय स्थिति तक पहुँचा देता है ।

इस स्वनिर्मित दुर्गति से पार निकलना कैसे हो ? गिरना तो किसी के लिए भी सरल हो सकता है, पर उबरने और ऊँचा उठने के लिए मात्र अपने पुरुषार्थ से भी काम नहीं चलता, उसके लिए किसी समर्थ सहायक की जरूरत पड़ती है । यह सहायता भी किसी को अकस्मात् अप्रत्याशित रूप से मुफ्त में नहीं मिलती । उधार देकर समर्थ सत्ता भी उसका कुछ बदला चाहती है । मुफ्त में तो यहाँ किसी को कुछ भी नहीं मिलता ।

पात्रता के नियम मनुष्य पर तीन प्रकार से लागू होते हैं–एक उत्साह और स्फूर्ति भरी श्रमशीलता , दूसरी तन्मयता, तत्परता भरी अभिरुचि तीसरी उत्कृष्टता के लिए गहरी लगन और ललक । यह तीनों जहाँ–कहीं भी सम्मिलित रूप से पायी जायेंगी , समझना चाहिए कि सफलता तक दौड़कर जा पहुँचने का अवसर मिला । पात्र हो तो पानी से न सही, हवा से वह जरूर भर जायेगा । खाली तो कभी रहेगा ही नहीं । ईश्वर की अनुकम्पा भी ऐसे ही लोगों पर बरसती है । उच्च पदों पर नियुक्ति उन्हीं की होती है, जो निर्धारित प्रतिस्पर्धाओं में बाजी मारते हैं ।

यों ईश्वर के लिए सभी समान और सभी प्रिय हैं, पर उनके साथ बेइंसाफी भी तो नहीं की जा सकती , जिनने अथक परिश्रम करके अपनी योग्यता का परिचय दिया है । कोई बड़ा कारखाना खड़ा किया जाना होता है और उसके निर्माण में जल्दी करनी होती है , तो एक ही उपाय रह जाता है कि सुयोग्य एवं अनुभवी अधिकारियों की बड़ी संख्या में नियुक्ति की जाय । अधिक कारीगर खोजे और जुटाये जायें । यही अगले दिनों होने जा रहा है ।

प्रतिभावान व्यक्ति जहाँ तहाँ मारे–मारे नहीं फिरते । गुणवानों, प्रतिभावानों को कभी खाली नहीं पाया जाता । इस पर भी यह आपत्तिकाल है । गरज कारीगरों को उतनी नहीं पड़ी है, जितनी कि निर्माणकर्ताओं को अपने अच्छे और भव्य काम समय रहते करा लेने की है ।

भक्त भगवान से सदा अनुग्रह माँगते हैं, पर अब की बार इन दिनों ऐसा समय है, जिसमें निर्माणकर्ता को ही बड़ी बेचैनी से सत्पात्रों की खोजबीन करनी पड़ रही है । काम तो नियन्ता का ही रुका पड़ा है । उसे ही उतावली है । जैसी सड़ी–गली परिस्थितियाँ आज हैं , वैसी अधिक दिनों नहीं रहने दी जा सकतीं । बदलाव में बढ़ –चढ़कर जो भूमिका निभाई जानी है, उसके लिए सत्पात्र तेजी से ढूँढ़े जा रहे हैं । विशेष अनुदान और उपहार भी उन्हीं को अविलम्ब मिलने वाले हैं । औसत स्तर के व्यक्तियों से लेकर प्रतिभावानों तक को, इस अभिनव सृजन में भाव–भरा योगदान प्रस्तुत करने के लिए समुचित अनुदान उदारतापूर्वक दिये जाने हैं ।

साधारण और औसत दर्जे का व्यक्ति भी यदि सामान्य चाल और धीमी गति से प्रगति पथ पर आगे बढ़ता चले, तो इसका परिणाम भी ऐसा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है, जिससे उज्ज्वल भविष्य का स्वप्न साकार होते देखा-समझा जा सके । प्रतिभाशालियों का समुदाय इसके अतिरिक्त है । जिनमें शारीरिक स्फूर्ति , मानसिक साहसिकता, और अन्तःकरण में उमंग भरी रहती है, वे परिस्थितियों की दृष्टि से सामान्य होने पर भी इतना कुछ कर सकते हैं, जिसे अद्‌भुत कहा जा सके । जटायु जैसे अपनी आदर्शवादी उमंगों के आधार पर इतना कुछ कर सके, जितना कि हीन मनोबल वाले तरुण और बलिष्ठ भी नहीं कर सके । ऐसी कृतियाँ सदा स्मरण की जाती रहेंगी । अष्टावक्र जैसे टूटे-फूटे शरीर वालों ने ऐसे इतिहास की संरचना की, जिसका स्मरण करने मात्र से मन उल्लास से भर जाता है । लक्ष्मीबाई जैसी लड़कियाँ शत्रुओं के दाँत खट्टे करके अपने पौरुष का परिचय दे सकीं । भामाशाह की थोड़ी सी पूँजी ने राणा प्रताप की हारती बाजी को जिता दिया । संसार ऐसी प्रतिभाओं की कथा-गाथाओं से भरा पड़ा है।

साहित्य, कला, लगन, संगठन , सुनियोजन जैसे कितने ही गुण मनुष्य में ऐसे हैं, जिनका आंशिक उपयोग हो सके, तो वैयक्तिक और सामूहिक क्षेत्रों में आश्चर्यजनक चमत्कार सामने आ सकते हैं । ऐसे लोगों में वे साधन-सम्पन्न भी आते हैं, जिन्हें साधारण लोगों की तुलना में कहीं अधिक उपलब्धियाँ प्राप्त हैं । पैसे वाले ऐसे व्यापक व्यवसाय खड़े कर देते हैं, जिसके उत्पादन से अनेकों बहुमुखी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं । वकील, इंजीनियर, डॉक्टर , वैज्ञानिक आदि बुद्धिजीवी अपने कला-कौशल के आधार पर इतनी बड़ी सफलताएँ अर्जित करते हैं, जितनी की साधारण लोगों से तो कल्पना करते भी नहीं बनती । गायक, वादक, अभिनेता स्तर के कलाकार इतना यश और पैसा कमा लेते हैं, कि साधारण लोगों की दृष्टि में वह कोई वरदान जैसा प्रतीत होता है । कितने ही ऐसे विश्वासपात्र प्रतिभावान होते हैं कि वे जिस काम को भी हाथ में लेते हैं, उसे सफलता के उच्च शिखर पर पहुँचा देते हैं ।

देखा गया है कि ऐसे विभूतिवान भी मात्र लिप्सा, लालसा, तृष्णा, वासना, अहंता और संकीर्ण स्वार्थपरता जैसे हेय प्रयोजनों में ही अपनी उन उपलब्धियों को खपा देते हैं , जिनका उपयोग यदि लोक कल्याण के लिए हो सका होता, तो उतने पौरुष से निर्माण की दिशा में इतना कुछ बन पड़ा होता , जिनकी कीर्ति-गाथा चिरकाल तक गाई जाती और उनका अनुकरण करके कितने ही लोग अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर सके होते।

भगवान ने जिनको ऐसी सद्‌बुद्धि , सत्प्रेरणा और सत्साहसिकता प्रदान की है, उनने अपने साधनों को विलासिता अहंता और मोहजन्य वासना में न लगा कर, ऐसे महान प्रयोजनों में लगाया है कि उनसे प्रेरणा पाकर अनेकों लोग उसी मार्ग पर चल पड़ें । तब उस समुदाय का सम्मिलित क्रिया-कलाप इतना बड़ा होता है, जिनकी कल्पना मात्र से लोगों का हृदय हुलसने

> *दूसरों की निन्दा करने में खर्च किया जाने वाला समय अपने दोष ढूँढ़ने में लगाओ । दूसरों को सुधारने के लिए प्रयत्न करने का पहला चरण अपने सुधार से आरम्भ करो ।*

लगता है और देखा-देखी वे भी ऐसा कुछ कर बैठने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं, जिससे असंख्यों का हित-साधन हो । जब सामान्य साधनों और सामान्य परिस्थितियों के लोगों ने इतने भर से बड़े कार्य कर दिखाये, तो जिनके पास साधन है, शक्ति है, संगठन है, मनोबल है, सूझबूझ है, वे कुछ अतिरिक्त उच्चस्तर के काम न कर सकें, ऐसी कोई बात नहीं ।

मनुष्य की कृपणता, कायरता, संकीर्णता ही ऐसा अभिशाप है, जो उसे समर्थ रहते हुए भी कुछ करने नहीं देती, कठिनाइयों के जैसे-तैसे बहाने गढ़ लेती है । इसी को धिक्कारते हुए गीताकार ने कहा था कि -"क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप "। हृदय की इस क्षुद्रता, कृपणता से कोई अपना पीछा छुड़ा सके, तो आदर्शवादी उदारता उसके ऐसे पुष्ट आधार बना देती है, जिसके बल-बूते वह महामानवों की पंक्ति में बैठ सके और अपने साथ अन्यों को भी निहाल कर सके ।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिष्कृत अन्तराल विभूतियों का भाण्डागार

प्राणियों को उनकी आवश्यकतानुसार प्रकृति ने भविष्यज्ञान की क्षमता प्रदान की है । शीतऋतु में मक्खी , मच्छर जैसे प्राणी कहीं सुरक्षित स्थान में छिप कर अपने प्राण बचाते हैं, पर जैसे ही उनके फलने–फूलने का अवसर आता है प्रजनन कृत्य में लगते और असाधारण रूप से वंश वृद्धि करते देखे गये हैं । हिम प्रदेशों में रहने वाले सफेद भालू जैसे प्राणी घोर शीत के दिनों आहार उपलब्ध न होने की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए किसी गुफा में लम्बे समय के लिए निद्राग्रस्त हो जाते हैं । मेढ़क और साँप भी प्रायः ऐसा ही करते हैं । सर्दी के दिनों वे किसी बिल में इस प्रकार शिथिलता धारण करते हैं कि उन दिनों उन्हें भोजन की आवश्यकता ही न पड़े । धरती में गहराई में छिपे पड़े रहने पर भी अनुकूल मौसम का भविष्यज्ञान उन्हें हो जाता है और वे उपयुक्त समय में बाहर निकल आते हैं ।

पक्षियों में से अनेकों ऐसे हैं जो ऋतु प्रतिकूलता का आभास होते ही अनुकूल क्षेत्रों में जा पहुँचने के लिए लम्बी उड़ानें भरते हैं । समय काटते हैं और जब अनुकूलता उत्पन्न होती है, तो फिर अपने पूर्व निवास पर लौट आते हैं । यह सब भविष्य ज्ञान की पूर्वानुभूति के आधार पर संभव होता है । ऋतुओं के अनुरूप मकड़ी अपना ताना फैलाती और समेटती देखी गई है । उपयुक्त ऋतु का ध्यान रखते हुए भी प्राणिवर्ग में उत्साह उभरता है, पर प्रतिकूलता का अनुमान रहने पर वे सर्वथा शान्त बने रहते हैं । कितने ही प्राणी भूकम्प, तूफान, महामारी जैसे प्रकोपों की समय से पहले ही जानकारी प्राप्त कर लेते हैं । अपने–अपने समुदाय को चिल्ला–चिल्ला कर सचेत करते हैं और कहीं अन्यत्र सुरक्षित स्थान के लिए पलायन कर जाते हैं।

मनुष्यों में भी कितनों में ही ऐसी अतीन्द्रिय क्षमताएँ पाई जाती हैं जिसके आधार पर वे अपने या दूसरों के संबंध में किन्हीं विशेष परिवर्तनों का आभास पा सकें और उस निमित्त पूर्व तैयारी कर सकें । ऐसी कितनी ही घटनाएँ घटित होती रहती हैं जिसमें मृत्यु का आभास समय से पहले ही मिल जाता है । कितनों को ही स्वयं के भावी घटनाक्रम की जानकारी मिल जाती है और वे समय पर सही भी उतरती हैं । कई वैज्ञानिकों को भी अपने आविष्कारों संबंधी गुत्थियाँ हल करने में स्वप्न संकेतों के आधार पर सहायता मिली है । अतीन्द्रिय क्षमताओं के अभ्यासी अनेक बार ऐसी अद्भुत जानकारी देते हैं जैसा कि घटित होने की उन दिनों आशंका तक न थी ।

फ्राँस के प्रख्यात साहित्यकार जैक कजोट को अपने देश में होने वाली महाक्रान्ति का आभास बहुत पहले हो गया था और पेरिस नगर में आयोजित एक समारोह में उसकी उन्होंने सार्वजनिक घोषणा भी कर दी थी । उक्त समारोह में देश के प्रायः सभी मूर्धन्य दार्शनिक, वैज्ञानिक , मनीषी, साहित्यकार , पत्रकार एवं गण्यमान्य नागरिक उपस्थित थे । उनमें उस काल के बहुमुखी प्रतिभा के धनी विख्यात दार्शनिक एवं संगीतकार मारकस, नाटककार निकोलस, नाटककार एवं आलोचक जॉन हार्पी भी सम्मिलित थे । जैक ने यह कह कर सभा में उत्तेजना पैदा कर दी थी कि यहाँ एकत्र सभी लोग सन्निकट खूनी क्रान्ति में मारे जायेंगे, फ्राँसीसी क्रान्ति के नायक मारकस के बारे में उनने भविष्यवाणी की थी कि उन्हें बंदी बना लिया जायगा और फाँसी की सजा सुनायी जायगी किन्तु उससे पूर्व ही वह जहर खाकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेंगे । इतिहासवेत्ता जानते हैं कि मारकस, को जो उस समय क्रान्तिकारियों के सर्वोच्च कमेटी के सदस्य भी थे, और साथियों की दमनकारी नीति का विरोध करते थे, उन्हें जेल में डाल दिया गया । फाँसी की तिथि निश्चित हो चुकी थी, किन्तु उससे पूर्व ही उनने विष खाकर आत्महत्या कर ली ।

सुप्रसिद्ध नाटककार निकोलस की ओर देखते हुए जैक ने कहा था–'मरने से पूर्व वह बाइस बार ब्लेड से अपनी नाड़ियाँ काट कर मरने का प्रयास करेगा, किन्तु इसमें सफल नहीं होगा । हुआ भी ऐसी ही सन् १७९३ में उसे गिरफ्तार कर लिया गया । कैदी जीवन में उसने आत्महत्या करने की इच्छा से २२ बार प्रयत्न किया पर हर बार असफलता ही हाथ लगी । बाद में उसकी स्वाभाविक मृत्यु हुई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तरह ख्याति प्राप्त नाटककार एवं आलोचक हार्पी के बारे में किया गया भविष्य कथन अक्षरशः सही सिद्ध हुआ। उसके बारे में कहा गया था कि वह नास्तिक से आस्तिक बन जायेगा। जेल की कोठरी में बंद रहने पर ऐकान्तिक जीवन अंतर्मुखी बन गया। आत्मचिंतन करते रहने के कारण जब वह कैद से छूटे तो सच्चे आस्तिक एवं कैथोलिक मत के अनुयायी बन कर निकले। उनके जीवन में कायाकल्प स्तर का परिवर्तन हो गया था। जैक को न केवल दूसरों के भविष्य में झाँकने की अतीन्द्रिय सामर्थ्य प्राप्त थी वरन् अपने बारे में भी उनने स्पष्ट कर दिया था कि उन्हें कई बार जेल की यात्रा करनी पड़ेगी और अंत में मृत्यु दंड दे दिया जायेगा। सभी घटनाएँ समयानुसार घटित होकर रहीं।

पीटर हरकौस का नाम मूर्धन्य भविष्य वक्ताओं में लिया जाता है। उनकी अतीन्द्रिय क्षमता का विकास एक दुर्घटना में हुआ जिसमें सीढ़ी से गिर जाने के कारण सिर में गंभीर चोट लग गई थी। दुर्भाग्य सौभाग्य में बदल गया और दिव्य दर्शन की क्षमता का नया आयाम लेकर सामने आया। अपराधियों, हत्यारों की तलाश करने में एवं खोये हुये व्यक्तियों की जटिल गुत्थियों को सुलझाने में पुलिस भी उनकी मदद लेती थी। अपने जीवन में उनने जितनी भी भविष्यवाणियाँ की थीं, समयानुसार सभी सच निकलीं।

मानवी अन्तराल में एक से बढ़ कर एक अद्भुत क्षमताएँ विद्यमान हैं जिन्हें अभ्यास द्वारा हर कोई विकसित कर सकता है। दूर श्रवण, दूरानुभूति, दूरदर्शन, पूर्वाभास, भविष्य कथन जैसी अगणित क्षमताएँ प्रसुप्त स्थिति में दबी पड़ी हैं और कभी कभी किन्हीं व्यक्तियों में किसी कारणवश उभर भी आती हैं, पर कितने ही व्यक्ति इन्हें सतत् अभ्यास द्वारा विकसित कर लेते हैं। न्यूजर्सी की परामनोविज्ञानी श्रीमती डोरोथी एलीसन एक ऐसी ही महिला हैं जिन्होंने भविष्य के गर्भ में झाँकने की सामर्थ्य विकसित कर ली है। इसके माध्यम से उनने अब तक कितनी ही जटिल गुत्थियों को सुलझाया है। खोये हुए व्यक्तियों, हत्याओं एवं अपराधों के रहस्य खोले हैं। न्यूयार्क के प्रसिद्ध परामनोवेत्ता रिचार्ड रिचनर ने डोरोथी की अतीन्द्रिय क्षमता को जाँचा परखा है और सही पाया है। एक दिन तो वह स्वयं यह जानकर आश्चर्यचकित रह गये कि उनके कमरे में बैठा व्यक्ति आत्महत्या करने की सोच रहा है। यह रहस्योद्घाटन भी डोरोथी ने ही किया था और बताया कि यदि उस व्यक्ति को बचाया जा सके तो एक दृढ़ मनोबल वाला सफल व्यक्ति होगा। पूछ ताछ करने पर बात सही निकली। उपचार हो जाने पर बाद में वह एक सफल उद्योगपति बन कर रहा।

इसी तरह इंग्लैण्ड की सुजेन पेडफील्ड, न्यूयार्क की एस्टेला राबर्ट्स एवं डर्बन–दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन पामर ने भी अभ्यास द्वारा अतीन्द्रिय सामर्थ्य विकसित कर ली हैं। ये सभी व्यक्ति किसी वस्तु को देखकर ही उसके प्रयोक्ता के सम्बन्ध में सारे रहस्य उद्घाटित कर देते हैं। खोये हुए व्यक्तियों एवं छिपे हुए अपराधियों को, जिसका पता लगाने में प्रशिक्षित पुलिस भी असमर्थ रहती है, उनकी दूरदर्शी आँखें खोज निकालती हैं। सुप्रसिद्ध परामनोविज्ञानी जोसेफ बुकनन ने अपनी कृति में इस तरह की अनेकों घटनाओं का वर्णन किया है जिसमें दिव्यदर्शियों की सहायता ली गई और सफलता मिली।

दिव्यदर्शन की एक घटना महात्मागाँधी की अन्यतम् सहयोगिनी रेहाना व्याबजी के जीवन से सम्बन्धित है। गान्धी जी उन दिनों पूना के आगारवान महल में कैद थे और रेहाना नासिक में रहकर इनकी गतिविधियों का संचालन कर रही थीं। गाँधी जी के साथ जेल में कब कैसा व्यवहार हो रहा है? महा भारत कालीन संजय की तरह प्रत्येक घटनाक्रम का वे बारीकी से नासिक में रहकर ही अनुभूति करतीं और उसे अपनी डायरी में अंकित करती रहतीं। जेल से छूटने के पश्चात् जब इसे बा और बापू को दिखाया गया तो उन्होंने सभी घटनाक्रमों को सही ठहराया। सुविख्यात अमेरिकी खगोलविज्ञानी डॉ. जार्ज डाडवेल के बारे में प्रसिद्ध है कि बिना किसी दूरदर्शी उपकरण के ही उनकी आँखें सुदूर आकाश में स्थिति सौर मण्डल के सदस्यों–ग्रह–नक्षत्रों, धूमकेतुओं आदि में हो रहे परिवर्तनों की स्पष्ट झाँकी प्राप्त कर लेती थीं।

वस्तुतः मनुष्य की चेतना में असीम एवं अप्रत्याशित क्षमता विद्यमान है। यदि उसे परिष्कृत एवं विकसित किया जा सके तो न केवल भविष्य कथन जैसी अतीन्द्रिय सामर्थ्यों का वरन् भौतिक सिद्धियों एवं आत्मिक ऋद्धियों का भी स्वामी बना जा सकता है। आवश्यकता मात्र अन्तःकरण को पवित्र एवं प्रखर बनाने तथा अध्यात्म सिद्धान्तों को अभ्यास एवं व्यवहार में उतारने भर की है। उच्चस्तरीय चेतनात्मक विभूतियाँ तभी हस्तगत होती हैं। ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उठो ! यह समय सोने का नहीं है"

अचानक दरवाजा खुलने की आवाज से उसका ध्यान भंग हुआ । पुस्तक से सिर उठा कर देखा तो डाक बँगले का चपरासी सामने खड़ा था । उसकी ओर देखते हुए पूछा कहो क्या कहना है ? "साहब कोई आपसे मिलना चाहता है टूटी-फूटी अँग्रेजी में चपरासी का जवाब था । "

"अच्छा भेज दो सुनने के साथ ही चपरासी के कदम दरवाजे की ओर मुड़ गए । "

उसने कलेण्डर की ओर देखा, सन् १९३८ चल रहा था । कुछ हिसाब लगाते हुए वह होंठों में बुदबुदाया आज तीन महीने हो गए । ठीक तीन मास पूर्व वह भारत की ब्रिटिश सरकार के निमन्त्रण पर अमेरिका से चला था, उद्देश्य था-आधुनिक मनोविज्ञान पर आयोजित भाषण श्रंखला में बोलना । प्रत्यक्ष में तो मकसद यही था पर परोक्ष में उसने अनेकों आशाएँ सँजोई थीं । कुछ सीखना चाहता था अभी तक वह यही पढ़ता आया था कि विश्व में भारत एक मात्र ऐसा देश है जिसने मानवीय चेतना पर सर्वाधिक काम किया है । स्वयं भी उपनिषदों, पुराणों, शास्त्रों को कितना कुछ नहीं पढ़ा किन्तु...। वह आगे कुछ सोचता कि इसके पहले श्वेत पैण्ट कमीज पहने एक युवक ने कमरे में प्रवेश किया ।विदेशी परिधान में वह भारतीय था' ।

ओह ! आप ! बैठिए ! एक ही वाक्य को तीन खण्डों में विभक्त कर बोलने के साथ ही उसने पास की कुर्सी की ओर इशारा किया ।"

''मैंने आपके बारे में बहुत कुछ सुन रखा है थोड़ा बहुत पढ़ा भी है । सुना है आपने स्वप्नों पर मन की गहराइयों पर काफी काम किया है ! मेरी अपनी भी एक समस्या है । समस्या का निराकरण और आप से मिलने का लोभ दोनों के सम्मिलित आकर्षण से आप तक खिचा चला आया । "

''बताइए उसने सहज भाव से कहा ।"

"मुझे कोई पुकारता है, उठो ! समय सोने का नहीं है । जब में प्रगाढ़ निद्रा में होता हूँ तो कोई मेरा नाम लेकर स्पष्ट पुकारता है । उसने बतलाया सदा वह मुझे दो बार पुकारता है । हृदय से उठती है पुकार – कहती है "'उठो ! "

"आप को स्मरण है उस समय कैसे स्वप्न देखते हैं ? मनोवैज्ञानिक ने पूछा । "

''हाँ ध्यान आया नीले प्रकाश के सागर जैसा आकाश और उसमें अदभुत ढंग से चमकता सुनहला सूर्य फिर जैसे दोनों ज्योतियाँ सम्मिलित होकर मेरे पास आती हैं और साथ ही एक अलौकिक संगीत के स्वरों में पुकार । अच्छा सुनने वाले के स्वर में कुछ आश्चर्य था । उसने अब तक अनेकों स्वप्नों की मीमाँसा की है पर ऐसा स्वप्न ? युवक आगे बोला "मुझे स्वयं आश्चर्य है, जब यह पुकार आती है मेरी गाढ़ी निद्रा पहली ही पुकार में टूट जाती है । उसने बताया परन्तु आखें खोलने या सिर उठाने के पूर्व ही दूसरी बार पुकार आती है । दूसरी बार का पुकारना मैं सदा जागकर पूरी सावधानी से सुनता हूँ ।"

"जब आप उठते हैं, आप को कैसा लगता है ?" मनोवैज्ञानिक ने बीच में पूछा ।

जब-जब में पुकार सुनता और स्वप्न देखता हूँ उठने पर अपने को एक अद्भुत आनन्द में डूबा पाता हूँ । ' मनोवैज्ञानिक की आशा के सर्वथा विपरीत उसने बताया-हमेशा की अपेक्षा दुगनी स्फूर्ति रहती है, मन प्रसन्न रहता है ।

दुबारा नींद आने में कितना समय लगता है ? उसने फिर पूछा यह सर्वथा मेरी इच्छा पर रहा है । उसने फिर मनोवैज्ञानिक की इच्छा के विपरीत उत्तर दिया-कभी मैं लघुशंकादि कर दस पन्द्रह मिनट बाद सोता हूँ , कभी केवल सिर उठाकर देखकर एक मिनट बाद सोता हूँ और कभी तो नेत्र भी नहीं खोलता । सोने का प्रयत्न करते ही निद्रा आ जाती है पहले की भाँति प्रगाढ़ निद्रा ।

समस्या टेढ़ी है । उसने गम्भीरतापूर्वक कहा शायद मैं अभी मानव मनकी गहराइयों को ठीक से नहीं जान सका हूँ । मैं यहाँ कुछ सीखने आया था । सुना था भारत ऋषियों का देश है उसके स्वरों में कुछ विवशता थी । अब ऋषि नहीं आगन्तुक युवक अपना वाक्य पूरा करता इसके पूर्व डाक बंगले का चपरासी अन्दर आया और उत्साह भरे स्वर में बोला साहब कुछ ही किलो मीटर दूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहाड़ पर एक ऋषि रहते हैं ।मिलना चाहेंगे ? वह शायद कोई वस्तु उठाने आया था , सुनकर बोल पड़ा । दोनों अवाक् हो उसके चेहरे पर देख रहे थे । फिर उन्होंने एक दूसरे की आखों में देखा और हाँ कहने के साथ जाने की योजना बन गई ।

अगले दिनों वह अरुणाचलम कहे जाने वाले पहाड़ के पद प्रान्त में एक कौपीनधारी किंचित प्रौढ़ के पास बैठे थे । अद्भुत था दृश्य–हिंसक जानवर भी शालीन हो बैठे थे । मनुष्यों और पशुओं को एक साथ अनुशासित बैठे देख उसने जो कुछ पढ़ा था साकार होता लगा । संक्षेप में पूरी बात कही ।

महर्षि कहे जाने वाले इस महामानव ने तनिक हँसते हुए कहा आप लोगों ने मन को दो भागों में बाँटा है बहिर्मन–अन्तर्मन । परन्तु भारतीय मनोवैज्ञानिक चार भाग करते हैं , मन बुद्धि चित्त अहंकार । उन्होंने अपनी व्याख्या सुनाई । जगते समय हम संकल्प करते हैं और उसके अनुसार काम करें या न करें यह निर्णय भी करते हैं । आपने इन दोनों को बहिर्मन का काम माना है । पर भारतीय मानते हैं कि संकल्प करना मन का काम है और निर्णय करना बुद्धि का ।

मनोवैज्ञानिक को अभी कुछ नहीं बोलना था । वह कहते गए –अन्तर्मन को भारतीय चित्त कहते हैं । उसकी व्याख्या और कार्य की मान्यता में कोई मतभेद नहीं । वह संस्कारात्मक स्मृतियों का भण्डार है । सपने में वही कार्यरत होता है । परन्तु उसमें निर्णय की शक्ति न होने से स्वप्नों में कोई क्रम कोई ठीक व्यवस्था नहीं रहती । स्वप्न में ऊँट के धड़ पर बकरी का सिर या बकरी के हाथी जैसी सूँड़ इसी अव्यवस्था की उपज है ।

"अब भी मनोवैज्ञानिक कुछ बोले नहीं । वे गम्भीरता से सुन रहे थे । उन्होंने बताया सामान्य अवस्था में बहिर्मन और निर्णायक मन (बुद्धि) सो जाते हैं । अन्तर्मन भी सो जाय तो प्रगाढ़ निद्रा आएगी । अन्तर्मन जागता रहे तो स्वप्न दीखेंगे परन्तु किसी कारण केवल बहिर्मन सो जाय और अन्तर्मन के साथ निर्णायक मन (बुद्धि) भी जागता रहे तो मनुष्य जाग्रत के समान व्यवस्थित रूप से काम करने लगेगा ।"

"यद्यपि पश्चिमी चिन्तन के लिए" "अहं" को समझना कठिन है फिर भी कोशिश करो " वह बताने लगे –"आपने सुना होगा जब कोई समाधि लगा लेता तब हृदय की गति खून का प्रवाह तक बन्द हो जाता है । समाधि का अर्थ है मन के सभी कार्यालयों को बन्द कर देना । शरीर का अन्तर्बहिः सचालन मन के द्वारा ही होता है । मन के इस संचालक भाग को, जो गहरी नींद में भी सदा जागता रहता है अहंकार कहते हैं । "

"बात समझ में आ रही थी" सुनकर वह बोले "आपने तो मनकी व्याख्या ही अनूठी कर दी । पर इनकी समस्या ?" उसका इशारा युवक की ओर था । वह भी उनकी बात को गहराई से सुन रहा था इनकी समस्या वैश्व चेतना से जुड़ी है "। स्वरों में स्पष्टता के साथ सौम्यता थी ।

"वैश्व चेतना ?" उसका वैज्ञानिक मन बोल उठा । "हां ! मन यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति में अलग–अलग होता है परन्तु सब मनो को अपने आप में समेटने वाला विपुल ब्राह्माण्ड व्यापी एक समष्टि मन भी है । इसी की संचालक है वैश्व चेतना जो प्रत्येक व्यक्ति को समय–समय पर संकेतों द्वारा जीवनोद्देश्य समझाती है । बताती है मनुष्य वैसा कुरूप भोंडा बनने के लिए नहीं है उसे अपने जीवन को, दिव्य व्यक्तित्व को परिष्कृत बनाना है । अन्तर की पुकार तमकी तमिस्रा त्याग सत्य में प्रवेश करने का संकेत मात्र है । सुनहला सूर्य परम सत्य का प्रतीक है और नीला आकाश देवत्व की दिव्य चेतना का । पुकार का तात्पर्य है कि देवत्व ही सत्य है जीवन में इसी को लाना है । इसे लाए बिना चैन की नींद हराम है "

"मनोवैज्ञानिक आश्चर्यचकित थे । उनके आश्चर्य को परखते हुए महर्षि ने –युवक की ओर इशारा करते हुए कहा "पुकार सिर्फ इन्ही के लिए नहीं है । सभी के लिए है । हर एक को अपने जीवन में सोते–जागते संकेत मिलते हैं । घटनाएँ घटती हैं सिर्फ यह बताने के लिए बहको मत, छलावे में मत आओ–तुम पशु नहीं अमृत पुत्र हो । जीवन बीज की तरह बन्द है । इसे जीने का मतलब है कर्तव्य की बेदी पर आत्मदान कर वृक्ष की तरह पुष्पित दिव्यता की सुरभि बिखेरना । मनुष्य में देवत्व का उदय मानवी चेतना का रहस्य है । इसे ही समझना और क्रियान्वित करना है ।"

धन्य हो गया मनोवैज्ञानिक सफल हो गई उसकी भारतयात्रा । मनोविज्ञान के संसार में सर्वप्रथम सामूहिक मनकी घोषणा कर मनुष्य में दिव्य जीवन की प्रेरणा भरने वाले मनोवेत्ता थे ,कार्ल गुस्ताव जुंग और मानवी चेतना के मर्मज्ञ वे ऋषि थे– महर्षि रमण । वैसा ही संक्रान्तिकाल आज भी है और हम सबके मनको पुनः महाकाल की पुकार नींद से उठ बैठने का संकेत दे रही है । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर कैसा है व कहाँ है ?

आदिकाल से अब तक के मानवी इतिहास का अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि चाहे मनुष्य विश्व के किसी भी कोने का रहने वाला हो, वह सदा एक ऐसी सत्ता का अनुभव करता रहा है, जो उससे बड़ी हो, फिर चाहे वह ईश्वर हो, गॉड हो, मोनाड हो, खुदा अथवा अननोएबिल कुछ भी हो, पर है अवश्य । प्रायः सबने उसकी निराकार कल्पना की है पर यदि उसका साकार स्वरूप देखना हो, तो उसकी छवि मनुष्य के रूप में ही देखी जा सकती है ।

हिन्दू धर्म के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के मंडल १ सूक्त २४ में इस संबंध में लिखा है कि ईश्वर सर्वव्यापक होने से हमारे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में निवास करते हुए हमें दोष–दुर्गुणों में फँसने से बचाने की क्षमता रखता है । उसकी प्रार्थना से दुष्कर्मों का विनाश और सत्कर्मों का विकास होता है । श्वेताश्वेतर उपनिषद (३/२०) में कहा गया है कि जो संसार के सभी भौतिक तत्वों से सूक्ष्म और वृहत् है, उसी को परम अविनाशी तत्व अथवा परब्रह्म की संज्ञा दी गई है ।

बुद्ध के उपदेशों और आदर्शों से समूचा मानव समुदाय प्रभावित होने लगा तो बहुत से लोगों ने उनके समक्ष जाकर पूछा –'आप कौन हैं ? क्या आप ईश्वर हैं ? देवदूत हैं ? अथवा साधु ?' बुद्ध ने कहा "नहीं मैं यह सब कुछ नहीं हूँ फिर लोगों ने पूछा 'तो आप क्या हैं ? प्रत्युत्तर में उनने कहा "मैं बुद्ध हूँ" । इसी उत्तर ने उनके नाम का स्वरूप ग्रहण कर लिया । बुद्ध का अभिप्राय ही होता है–ज्ञानवान –प्रज्ञावान । उस समय बुद्ध ने ईश्वर के अस्तित्व संबंधी व्याख्या को भले ही टाल दिया हो, पर अनुयायिओं के अन्तराल में किसी समर्थ सत्ता के विद्यमान होने की भावना को अवश्य जगा दिया । बौद्धों के धर्म ग्रन्थ 'असंग' और 'मध्यमिका कारिका ' में यही लिखा है कि 'वह है भी और नहीं भी । न वह इस तरह है और न किसी तरह । वह न पैदा होता है न बढ़ता है, न मरता है । वह कोई एक चीज नहीं है न उसका अस्तित्व है, न वह अस्तित्वहीन है । न वह दोनों से अलग है । इन अवस्थाओं से परे शाश्वत सत्य ही ईश्वर है । जो लोग मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हैं वे ही उस परमात्म सत्ता के स्वरूप को भली भाँति समझ सकते हैं । बौद्ध धर्म में 'महायान' और 'हीनयान ' दो प्रकार के मत प्रचलित हैं । महायान सम्प्रदाय के लोग दया और करुणा को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मानते हैं । सदाचरण के अभाव में ज्ञान की उपलब्धि निरर्थक ही समझी जाती है , जबकि हीनयान मार्ग के समर्थक एक मात्र ज्ञानवान बनने पर ही बल देते और इसे परमात्मा की प्राप्ति का प्रमुख आधार मानते हैं ।

जैन धर्म की मान्यताओं के अनुसार ईश्वर को बीतराग और जितेन्द्र कहा गया है । जिसके राग–द्वेष बीत चुके हों , उसे बीतराग और इन्द्रियों को जीत कर वशवर्ती बनाने वाले को जितेन्द्र के नाम से जाना जाता है । जैनधर्म ग्रन्थों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि २४ प्रकार के अध्यात्मवेत्ताओं ने इस धर्म को अपने–अपने मतों से परिपुष्ट किया । जिन्हें तीर्थंकर के नाम से पुकारा जाता है । वे किसी देवी देवता को नहीं मानते । उनका ईश्वर जिन है यानी जन्म–मरण से मुक्त आत्मा ही परमात्मा है । "जैसा करोगे वैसा भरोगे" उनका अकाट्य सिद्धान्त है । उनके प्रत्येक तीर्थंकर के साथ 'पंचकल्याण 'की घटना अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । स्वर्ग से अवतरण, धरती पर जन्म लेना, तपस्वियों की तरह दिनचर्या बिताना, सर्वज्ञता की प्राप्ति और निर्वाण की उपलब्धि आदि की घटनाएँ तीर्थंकर की विशिष्टता को ही प्रकट करती हैं । दूसरे शब्दों में इन्हीं को परमात्म तत्व की विशेषताएँ भी कहा जा सकता है । हर व्यक्ति अपने साधनात्मक प्रयत्नों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इस परम स्थिति तक पहुँच सकता है । जैन धर्म गन्थों में ईश्वर के अस्तित्व का वर्णन इस प्रकार भी देखने को मिलता है "मैं उस निरंजन को नमस्कार करता हूँ, जो अनेक में एक है और एक में अनेक है और जो न एक है और न अनेक में है"

गुरु नानक ने ठीक ही कहा है 'काहे रे मन ! वन खोजन जाई । सरब निवासी सदा अलेखा तो संग रहत सदाई "। अर्थात् ऐ मेरे दिल ! तू क्यों जंगलों में खोजने जाता है वह परमात्मा तो सबके अंदर विराजमान है । सब जगह विद्यमान है, पर दिखाई नहीं देता । जिस प्रकार फूल में सुगंधि छिपी रहती है वैसे ही परमात्मा भी सब के दिल में बसता है ।"

पारसी धर्म में ईश्वर के लिए "आहूर मजूद" शब्द प्रयुक्त किया गया है । सरगॉन के असुरियन शिलालेख में ६७५ ईसा-पूर्व भी इस नाम का अस्तित्व देखने में आया है । पारसी धर्म के संस्थापक जरथुस्त्र ने अपनी भजनमाला और प्रार्थना में इसी शब्द को बार-बार प्रयोग किया है । उनके कथनानुसार आहूर-मजूदा का निवास स्वर्ग की उच्चतम स्थिति में अवस्थित है, समूचे भूमण्डल पर है और पवित्र एवं पुण्यात्माओं के हृदय में भी । वह दैवीय गुणों से सम्पन्न और सामान्यजनों से महान और श्रेष्ठ है । वह सद्बुद्धि का अधिष्ठाता भी कहा जाता है इसलिए उसे 'बुद्धिमान स्वामी ' भी कह कर पुकारते हैं । उसकी विवेक बुद्धि के आधार पर ही इस सृष्टि की संरचना संभव हो सकी है । वह सर्वज्ञ, दूरदर्शी और सर्व-दर्शी है । त्रिकालदर्शी उसी को कहा गया है । उनकी स्तुति में 'ख्रतु ' और चिस्ति' सद्बुद्धि के लिए ही प्रयुक्त किये गये हैं, यानी मानवी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करने वाली शक्ति को ही ईश्वरीय सत्ता के नाम से पुकारा जाता है ।

जरथुस्त्र ने अपने प्रतिपादनों में जिस 'आशा' शब्द का प्रयोग किया है, उसकी संगति वेदों के ऋतु के साथ बैठती है । 'ऋतम्भरा प्रज्ञा इसी को कहते हैं । ईरानी में 'अर्त' और अरेता के नाम से प्रख्यात है । प्राचीन फारसी आलेखों में 'अर्त' वस्तुतः दिव्य सत्ता की सद्प्रेरणाओं के लिए ही प्रयुक्त होता है ।

ईसांई धर्मगन्थ बाइबिल में ईश्वरीय सत्ता का वर्णन इस प्रकार है "मैं ही आदि हूँ और मैं ही अंत हूँ । मेरे सिवा कोई नहीं है । मैं वह रोशनी हूँ जो हर आदमी को रोशन करती है । मैं नहीं रहूँ तो तुम कुछ नहीं कर सकते हो "। ईसाई लोग प्रार्थना में इसी समर्थ सत्ता की आराधना करते और कहते हैं 'हे परम पिता तू स्वर्ग में रहता है , पर हम स्वर्ग इसी धरती को बनायेंगे । मैथ्यू: ५:४४,४५,४८ में यही लिखा है कि परमपिता सब प्राणियों के प्रति समता और एकता का भाव रखता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी उसी के अनुरूप अपनी मनोवृत्ति का निर्माण करना चाहिए । ईसा के अनुसार ईश्वर एक ऐसे विवेकवान गड़रिये की तरह है जो समूचे भेड़ समुदाय को खाई-खड्ड में गिरने से बचाता और हित साधन का रास्ता दिखाता है । सेंट पॉल ने प्रथम कॉरिथियन्स के तेरहवें अध्याय में परमात्मा की स्नेह सहकार की प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि यदि उससे कोई दो कदम साथ चलने को कहे, तो वह उसके साथ एक मील तक जाने का उत्साह दिखाता है, किन्तु शर्त एक ही है कि वह उसका सुपुत्र हो उसका अनुशासन पाले स्वयं ऊँचा उठे और दूसरों को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने का दायित्व निभाये , तभी परमपिता भी पग-पग उसके साथ चलने का अपना वचन निभाते हैं अन्यथा अनुशासनहीन कुपात्रों की तरह उसकी उपेक्षा कर देता है ।

यदि भक्ति में कटौती करके सेवा में समय लगाना पड़े तो उसे घाटा नहीं समझना चाहिए ।

भक्ति बिना, स्वर्ग हाथ से जा सकता है , पर सेवा के बिना तो आत्मा ही सड़ जायेगी ।

इस प्रकार विश्व के लगभग सभी धर्मों ने ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारा है और उसकी व्याख्या विवेचना एक कल्याणकारी सर्वोच्च सत्ता के रूप में की है । अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक थोरो जब मृत्यु शय्या पर अपनी अन्तिम साँसें गिन रहे थे, तो किसी ने उससे पूछा "क्या आपने ईश्वर से मित्रता कर ली है ?" थोरों ने बड़े सहज भाव में उत्तर दिया "मेरी उससे शत्रुता ही कब थी । यदि इस संसार में सचमुच ही ईश्वर है, तो मैं उसकी मनुष्य में झाँकी करता हूँ और एक मानवतावादी होने के नाते उसकी सेवा सहायता में ही भगवान की भक्ति समझता हूँ । "इनके इस कथन की संगति प्रसिद्ध दार्शनिक मार्क ट्वेन के उस कथन से शब्दश: बैठ जाती है, जिसमें उनने कहा था कि "मेरा भगवान न गिरिजाघर में है, न क्रूस में, मेरा भगवान तो चलता फिरता मनुष्य है , वह मनुष्य जिसकी मैं अब तक सेवा करता आया हूँ ।" सचमुच आने वाली सदी का भगवान मनुष्य रूप में ही होगा, तभी यह पृथ्वी उनका निवास अर्थात् स्वर्ग बन सकेगी । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति को चाहिए अभिव्यक्ति के लिए व्यक्ति

वह अपनी बस्ती की ओर लौट रहा था। उसके कदमों में तेजी थी। पेशानी में रह रहकर बल पड़ जाते, मुख पर व्यथा की छाप स्पष्ट थी। चाह कर भी नहीं भूल पा रहा था कल के नगरवास का अनुभव। उसने अपने होंठों को दाँतों से काटा, एक गहरी उसांस ली और ऊपर की ओर देखा। नगर के ऊपर को होता हुआ सूर्य पश्चिम दिशा की ओर ढल रहा था। उसकी तिरछी किरणें वृक्षों की पत्तियों पर पड़ कर उन्हें स्वर्णिम बना रही थीं। वायु शीतल हो चली थी। आकाश के विस्तार में पक्षियों की एक पंक्ति उड़ती चली जा रही थी ठीक उसी की तरह अपनों का सामीप्य पाने।

वह फिर सोचने लगा वे सुसभ्य हैं और हम असभ्य। क्या पहिचान है उनकी सभ्यता की? शराब के ढलते जाम, नर्तकियों के कुत्सित हाव भाव। कल इसी में तो डूबे थे सब, जब वह फरियाद लेकर पहुँचा था जन जीवन की दुरवस्था की। ये शासक हैं या शोषक। यदि शोषक नहीं हैं तो कहाँ से जुटते हैं ये विलासिता के संरजाम? वासना के पशुओं की उठती हुँकारे कितनों का उत्पीड़न नहीं करतीं सब कुछ तो कृत्रिम था वहाँ। बेशकीमती साजो सामान और भोजन उसके तो प्रकार ही नहीं गिने जा सकते इसके ऊपर से मनो जूठन फेंकी गई। जब वह घुसा तब महोत्सव चल रहा था। सोचा तो था नरेश से मिल कर दुःख दर्द बयान करेंगे। किन्तु घुसते ही आवाजें उठीं निकालो इस भिल्ल को। असभ्य बेहूदा यहाँ कहाँ आ गया? असभ्य! हां, वह असभ्य है क्योंकि उसके पास उन जैसी सभ्यता के दो प्रधान आधार विलासिता और कृत्रिमता कहाँ हैं? सोचते-सोचते कब आ पहुँचा बस्ती में, पता नहीं चला।

बस्ती में प्रवेश करते ही अनेकों ने उसे लिपटा लिया। वृद्धों ने सिर सूंघ कर आशीर्वाद दिया। बच्चे पैरों से लिपट गये। कितनी प्यारी है उसकी यह असभ्य दुनिया जिसमें चारों ओर प्यार छलकता है, सहकार उफनता है। "क्या कहा ईदर नरेश ने" एक वृद्ध ने प्रश्न किया। "यही कि हम असभ्य हैं।" उसका जवाब था। फिर उसी वृद्ध को सम्बोधित करते हुए बोला हम लोग तो फिर भी ठीक हैं बेचारे ग्राम वासी नगर के सामान्य जन....। क्या हुआ उनको? प्रश्न उभरा बेचारे जीने के लिए तरस रहे हैं। खैर छोड़। वृद्ध ने अनमने भाव से कहा तू नहा धोले बेटा एक बड़े तेजस्वी साधु आए हैं रोज शाम को हम लोगों के पास बैठते हैं जिन्दगी जीना सिखाएँगे। नई व्यवस्था आएगी और पता नहीं क्या-क्या सचमुच बड़ी अच्छी-अच्छी बातें बताते हैं। तुझे भी पूछ रहे थे। "अच्छा" कहकर वह चला गया।

शाम को सभी एक स्थान पर जमा थे। ऊँचे टीले पर बैठे साधु कुछ कह रहे थे। वह सुनने का प्रयास करते हुए कोने में बैठ गया। साफ सुनाई पड़ रहा था—आज देश की नौका में अनेकों छेद हो गए हैं, समाज शतधा छिन्न हो रहा है। तनिक विचार करो। आज जो परिस्थितियाँ बनी हैं, यदि ये बढ़ती जायँ तो कल और नहीं तो परसों देश की अखण्डता समाप्त हो जाएगी, समाज टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा, धर्म बिखरता नजर आएगा। फिर कोई भी हो ब्राह्मण या भंगी, आक्रान्ताओं के आतंक से कोई बचेगा न। यदि तुमसे कुछ बच भी गए तो सपनों मे डर-डर उठा करोगे और मौत की कामना करोगे।

साधु ने अपनी वक्तृता की बाढ़ को जो हर वाक्य के बाद और अधिक भयंकर होती जा रही थी, एक क्षण के लिए रोका परन्तु वह फिर कहने लगा "ऐसे समय में हमारा दुर्भाग्य कि समाज का बुद्धि जीवी वर्ग महात्वाकांक्षाओं के मद में चूर है और धनिक! उन्हें भला विलास से आवकाश कहाँ? ये जाग्रत हों इसकी आशा बहुत कम है। इस दशा में मैं हारीत महाकाल का सेवक जन सामान्य को जगाकर एक चमत्कार करना चाहता हूँ। शोषण, उत्पीड़न कुरीतियों चारों ओर फैलती जा रही मूढ़ताओं की भयावह बाढ़ को रोकने के लिए हर नगर से ईंट पत्थर इकट्ठे कर आया हूँ। परन्तु अभी तक मुझे इन ईंटों को जोड़ कर मजबूत बाँध बनाने वाला कारीगर नहीं मिला था। परन्तु आज..... कहने के साथ ही उन्होंने कोने में बैठे उसकी ओर ईशारा किया "इधर आओ।"

वह साधु के समीप आ खड़ा हुआ। गौर से देखा विचित्र था वह साधु। उसके हाथों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमकता त्रिशूल जिसकी तीनों नोकें सिंदूर से रँगी थीं और इससे बढ़कर उसकी धधकती आँखें जो सैंकड़ों हजारों पर पड़कर उनको निस्तेज बना सकती थीं। दूसरे लोगों की आत्मा की गहराई तक पैठकर उनका अन्तर्दर्शन करने की क्षमता रखती थीं।

साधु ने उसका हाथ अपने हाथों में लिया और बहुत ही कोमल स्वरो में पुकारा–पुत्र ! अरे यह क्या ? स्वरों में तो माँ का वात्सल्य था, आखों से स्नेह झर रहा था। समाज देवता के लिए मैं तुमसे भीख माँगने आया हूँ, इनकार मत करना वत्स !

"मुझ से! मेरे पास है ही क्या महाराज"

"मुझे पत्थरों के ठीकरे और धातुओं के टुकड़े नहीं चाहिए। मेरी चाहत है भाव–संवेदना से अभिपूरित मनुष्य जो जमाना बदल डालने के लिए अपने को न्योछावर कर सके।

"मैं ही क्यों मेरे अनेक साथी देश और धर्म के लिए अपने को सहज उत्सर्ग कर देंगे। किन्तु हम असभ्य हैं फिर जमाना बदलना कोई आसान काम तो नहीं"। 'वाणी' में शिथिलता थी। "मुझे प्रसन्नता हुई आयुष्मान। जमाना हम नहीं बदलेंगे, हम सभी तो सहायक भर बनेंगे, बदलने वाला तो कोई और है। जहाँ तक असभ्यता का सवाल है, वह हमेशा से सुसभ्यता की अकड़ में फूलने वालों का अंह चूर करता आया है। राम राज्य की स्थापना में उसने न तो सेठ–साहूकारों को पूछा और न अकल के ठेकेदारों को उसके साथी बने जंगली रीछ वानर और पूरा कर लिया अपना उद्देश्य। अद्‌भुत है वह–अपनी पर आजाए तो गँवार ग्वालों के सामने वज्रधारी इन्द्र को भी कँपकँपी छूट जाती है। फिर हमें तो सभ्यता के मान दण्ड बदलने हैं, विलासिता और कृत्रिमता की जगह सहकार भरा प्राकृतिक जीवन स्थान ग्रहण करेगा। पूरी तरह बदला होगा भावी समाज" कहने के साथ ही वह किसी सोच में डूब गए वे मानो कल्पना के नेत्रों से नवयुग की छटा निहार रहे हों ?

वह खड़ा सोच रहा था, कौन है इस विराट अभियान का सूत्र संचालक ? जिसका संकल्प उठते ही समस्त असफलताएँ दुम दबा कर भाग जाती हैं। आखिर पूछ ही लिया कौन है वह ? शब्दों ने उन्हें प्रकृतिस्थ किया बोले स्वयं महाकाल ! महाकाल !!

"हां पुत्र महाकाल ! महारुद्र ! सदाशिव ! भगवान, एकलिंग ,अनेकों नाम हैं उसके !"

ओह ! उसने श्रद्धा भरे मन से मस्तक नवाया। एकलिंग के प्रति तो उसकी बचपन से भक्ति रही है। भला ऐसा कौन भील है जो भगवान एकलिंग के नाम पर प्राण न्योछावर न कर सके। किन्तु वह सोचने लगा कि पूछे या न पूछे।

साधु महाराज उसके चेहरे के भाव को ताड़ गए। स्वयं बोल पड़े "कुछ पूछना चाहते हो तो निःसंकोच पूछो"।

"महाकाल की चेतना अभी तक क्यों नहीं पसीजी। सदियों की दुरवस्था बिलखते –छटपटाते प्राणियों पर उसे अब तक क्यों दया नहीं आयी ? आँसुओं की बरसात से धरती भीगती रही। निर्दोषों के रक्त से बर्बर अपना तर्पण करते रहे, यह देखकर भी सदाशिव मौन कैसे रह सके ? "तुम्हारा आक्षेप उचित है, पर तनिक समझने का प्रयास करो। इस मानव ने ही उनकी शक्तियों को तिरस्कृत किया है। जब–जब वह आँसू पोछने आए हैं उन्हें भगा दिया है।

सो कैसे ? वह समझ न सका। "साधु समझाने का प्रयास करते हुए कहने लगे–भगवान, सत्यनिष्ठ, कर्मठ, श्रमिकों के पसीने में सुगन्धि और प्राणों को न्योछावर करने वाले वीरों के कर्म में अमोघत्व पैदा कर सकते हैं। वह स्वयं शक्ति हैं उन्हें अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य चाहिए। उन्हें किसी से कोई पक्षपात नहीं जहाँ भी जिस देश में उदारता, ज्ञान, संघर्ष, त्याग और साहस का निवास है वहीं वह भी वर देने लगते हैं। इसके विपरीत जहाँ दुराचार, अज्ञान, और स्वार्थान्धिता का कुचक्र चलता हो वहां भला वे कैसे अभिव्यक्त होंगे ?

"पर पुत्र गलती करे तो पिता को दण्ड देना चाहिए न ?"

"विषमताएँ, आज की परिस्थितियाँ दण्ड नहीं तो और क्या हैं ? अब वह सब सुधार करके रहेंगे। भली प्रकार नहीं तो कान उमेठ कर। अब उनका संकल्प जाग्रत हो गया है वत्स ! जिसका कोई प्रतिरोध नहीं।

बात उसकी समझ में आ चुकी थी सारे भील एक जुट हो गए। फैल गया सर्वत्र सद्‌विचारों का प्रवाह उलटा उलटकर सीधा किया गया। महाकाल के संकेतो के अनुसार काम करने वाले युवक का नाम इतिहास ने स्वर्णाक्षरों में लिखा। कभी के साधारण भील बालक को आज इतिहास सम्राट बाप्पा रावल के रूप में जानता है। औढ़र दानी सदाशिव भला अपने सहचरों को पुरस्कृत करने से कब चूके हैं। आज वह पुनः महाकाल बन पुकार रहे हैं। ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की अखण्डता एकता का स्वप्न द्रष्टा

रात्रि के सघन अन्धकार में एक युवा अपनी कुटिया में टिमटिमाते दीपक के सामने बैठा कुछ पढ़ रहा था । पढ़ते–पढ़ते किसी गम्भीर सोच में डूब जाता । माथे पर चिन्ता की रेखाएँ उभर आतीं । तब तक दूसरे कोने से एक वृद्धा के खाँसने की आवाज उभरी । खाँसते –खाँसते बुढ़िया ने पूछा अरे बेटा ! तू अभी सोया नहीं, क्या सोच–सोच कर परेशान हो रहा है ।

"नहीं माँ ! सोना चाहकर भी नहीं सो पा रहा ।" युवक के स्वरों में पीड़ा थी । उसने बात आगे बढ़ाते हुए कहा–कहाँ वेदों में वर्णित भारत (अजनाभ वर्ष) की भव्यता । ऋषितन्त्र और राजतंन्त्र का समन्वित गौरव । कहाँ आज–चारों ओर टकराहट, देश का एक भाग दूसरे से बड़े–बड़े पत्थरों की तरह एक दूसरे से टकरा रहे हैं । इनकी टकराहटों में जन सामान्य बुरी तरह पिस रहा है । ओह ! आज कोई ब्राह्मण तपस्वी नहीं बचा जो इस टूटते बिखरते देश को सँवार सके ।

वृद्धा अपने युवा पुत्र की चिन्ता को सुनती रही । सुनने के पश्चात् बोली *"न जाने क्या सोचा करता है । अरे तू विवाह कर ले ? मैं भी तेरी बहू का मुख देख लूँ ।" "नहीं यह मेरे से न होगा माँ ! मेरा सुख विवाह में नहीं सबके सुख में समाया है । " "अच्छा "* कहकर वृद्धा चली गयी वह फिर अपने चिन्तन में डूब गया ।

उसके दिन रात इसी सोच में बीतने लगे । इसी बीच वृद्धा माँ भी चल बसी । अब वह एकाकी था । इसी समय पता चला कि यूनान देश का राजा सिकन्दर अनेक देशों को कुचलता –रौंदता भारत की सीमा पर आ पहुँचा है । तक्षशिला के राजा आम्भी ने उसका स्वागत किया । देशभक्त पुरु के विरोध में उसकी मदद की । कुछ छोटे छोटे राज्यों को उसने जीत भी लिया था ।

इन जीते हुए राज्यों में यवन सैनिकों और शासकों ने जो अत्याचार किये उसे देखकर उसका दिल दहल गया । भारतीय सभ्यता और संस्कृति को इस प्रकार लुटते देखकर झोंपड़ी में रहने वाले उस ब्राह्मण की आत्मा तड़प उठी । देश का अपमान तथा बहू बेटियों की लुटती अस्मत को वह चुप बैठ कर देख न सका । उसने प्रतिज्ञा की कि इन अत्याचारियों के व्यूह को धवस्त कर ऋषितन्त्र व राजतन्त्र के समन्वित स्वरूप की स्थापना करूँगा । एक बार पुनः इस धरती पर सतयुग ला कर रहूँगा ।

उस समय देश में मगध का राज्य अपेक्षाकृत शक्तिशाली और बड़ा था । यद्यपि वहाँ का राजा घनानन्द खुद भी अत्याचारी था । फिर भी युवक को आशा थी कि शायद देश के गौरव की रक्षा के नाम पर वह कुछ कर सके । बस इसी आशा में तक्षशिला से मगध अर्थात् पेशावर से पाटिलपुत्र की पदयात्रा शुरू कर दी । रास्ते में जन सामान्य की दीनता, पीड़ा कराहटों को सुन कर उसका सत्ययुग के अवतरण का संकल्प वज्रवत दृढ़ हो जाता । पर घनानन्द के दरबार में पहुँच कर भी उसे असफलता हाथ लगी । विलासी भला संवेदना के स्वरों को कब सुनते हैं ? किन्तु इस असफलता के बाद भी वह दुगने उत्साह के साथ सत्पात्र की खोज में जुट गया ।

वह एक गाँव से निकला चला जा रहा था कि देखा कुछ लड़के खेल में मग्न हैं । वे आँख–मिचौनी , आइस पाइस नहीं राज्य व्यवस्था का खेल खेल रहे हैं । युवा ब्राह्मण खड़े देखते रह गये राजा बने बालक का कौशल । उसकी तत्परता, कुशलता अन्य सभी के प्रति प्रेम भाव देख कर उन्हें लगा इस किशोर में वे सभी सद्गुण बीजरूप में विद्यमान हैं जिनकी उन्हें खोज थी । इसके माध्यम से ब्रह्म तेज अर्थात उत्कृष्ट चिन्तन और क्षात्र तेज अर्थात् प्रखर कर्म का समन्वय किया जा सकना सम्भव है ।

वह बालक की माँ से मिले । अपने उद्देश्य से उसे अवगत कराया और बालक की माँग की । आपका परिचय ? लड़के की माँ का प्रश्न ठीक ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था । भला अनजाने आदमी को कौन अपने हृदय का टुकड़ा सौंपता । ब्राह्मण ने संक्षेप में अपना परिचय दिया। मैं तक्षशिला विश्व विद्यालय का आचार्य चाणक्य हूँ । तक्षशिला और चाणक्य इन दो नामों को समूचा भारत जानता था । इनकी प्रामाणिकता में किसी को भी कोई सन्देह न था । आचार्य के सुयोग्य हाथों में बालक को सौंपने में उसे कोई हिचकिचाहट न हुई ।

चाणक्य ने उसे पढ़ाया लिखाया , उच्च चरित्र बल से सम्पन्न किया । विन्ध्यबासी दस्युओं को धर्म व देश के नाम पर संगठित किया । सीमावर्ती जन पदों में अपने –शत–सहस्त्र विद्यार्थियों के द्वारा जनजाग्रति का शंख फूँका । लाखों जन युगान्तरकारी परिवर्तन के लिए आ जुटे । यवनों को निकाल बाहर किया । सिल्यूकस की पराजय मगध के क्लीव व्यवस्था के स्थान पर चन्द्रगुप्त के नायकत्व में अखण्ड बृहत्तर भारत की, स्थापना की, पर इतना भर करके आचार्य ने अपने कार्य को विराम नहीं दिया ।

उनका यथार्थ कार्य तो अब शुरू हुआ । दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन के बाद सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन बृहत्तर अखण्ड भारत का संस्थापक यह ब्राह्मण अभी भी कुटिया सेवी था सारे समय उनका एक ही कार्य था । मानवों में सुप्त सम्वेदना को जगाने उमगाने के लिए चिन्तन व श्रम । इसी के तहत उन्होंने कौटिल्य के नाम से अर्थशास्त्र व्यक्ति व समाज में नैतिक साहस जगाने के लिए चाणक्य नीति । इसको सुबोध बनाने के लिए विष्णु शर्मा के नाम से पंचतंत्र की रचना की ।

उन्हीं के प्रयास थे कि मेगस्थनीज को विवश हो कहना पड़ा *"भारत धरती का स्वर्ग है और यहाँ के नागरिक जीवन्त देवता । हरेक के उन्नत चरित्र बल के कारण घरों में ताले तक जरूरी न थे । किसी महिला को भयभीत न होना पड़ता था ।"* उसने एक अन्य स्थान पर आश्चर्य प्रकट करते हुए लिखा "जहाँ सामान्य जन भव्य भवनों में निवास करता हो , वहाँ का प्रधान मंत्री, सम्राट का गुरु एक टूटी झोंपड़ी में निवास करता है । "

यह था उनका त्याग । श्रेय और सम्मान से निस्पृहता । निष्कामता –कर्म योग और अनासक्ति की वह सम्पत्ति जिसके बल पर वह आज से बाइस सौ वर्ष पहले धरती पर स्वर्ग का अवतरण कर सकने में सक्षम हुए ।

इतिहास अपने को दोहराता है । आज की स्थिति कितनी ही टूटी –बिखरी बदतर क्यों न लगे पर चाणक्य के कार्य के प्रारम्भ के समय से कहीं अच्छी है । मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण जिसे चाणक्य ने चरितार्थ किया था , पुनः मूर्त होने को है ।

इस महत्तर कार्य में अपनी भूमिका तलाशें। क्रियापद्धति आज की परिस्थिति के अनुरूप बदली हुई लगने पर भी सारतः समान है । आज भी जन जाग्रति की आवश्यकता है । जागरण शंख को गली–गली दरवाजे –दरवाजे जाकर फूँकने में जुट पड़ने की आवश्यकता है । अब युग की भाव धारा से स्वयं अनुप्राणित हो, दूसरों को अनुप्राणित करने में सहायक बनना ही अभीष्ट है । ✳

युवक तार्किक था । सन्त ने ईश्वर के पक्ष में अनेक प्रमाण दिये, किन्तु वह मानने के लिए तैयार न था । युवक ने कहा–स्वामी जी विज्ञान ने इतनी प्रगति करली है कि ईश्वर यदि हृदय की गुफा में भी होता, तो भी डॉक्टरों को हार्ट ओपरेशन के समय मिल गया होता ।

स्वामीजी को युवक की स्थूल दृष्टि समझते देर न लगी । उन्होंने युवक को इस तरह समझाया जिस तरह फूल की गंध आँख से नहीं, घ्राण से मालूम देती है, और संगीत का रस आँख से नहीं, कान से अनुभव होता है । दूध के अन्दर का मक्खन मथने से प्रकट होता है, उसी प्रकार कण–कण में व्याप्त ईश्वर करुणा और सेवा के दो नेत्रों से ही देखा जा सकता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम बीज का परिष्कार—वर्चस एवं उल्लास के रूप में

जीवधारियों में काम एक प्रचण्ड शक्ति है, जिसका रूपान्तरण या ऊर्ध्वीकरण पशु–पक्षी, कीट–पतंगे जैसे प्राणी नहीं कर पाते, मात्र अपने जैसे दूसरे प्राणियों को उत्पन्न करने में ही उसे नियोजित करते और जीवन की इतिश्री कर लेते हैं।

मनुष्य की स्थिति अन्य प्राणियों से सर्वथा भिन्न है। स्रष्टा ने उसे विवेक बुद्धि सहित उन अगणित क्षमताओं से सम्पन्न बनाया है, जो काम प्रवृत्ति का प्रयोग वंश–प्रवाह को बनाये रहने के अतिरिक्त शारीरिक बलिष्ठता, मानसिक दक्षता–प्रतिभा एवं आत्मिक प्रखरता के रूप में कर सकता है। आवश्यकता मात्र प्रवाह–परिवर्तन की होती है। वेगवती नदियों के प्रचंड प्रवाह को उपयुक्त दिशा में रूपान्तरित कर देने पर उससे विद्युत शक्ति का असीम भण्डार पैदा हो जाता है। जल–वाष्प से बड़े–बड़े स्टीम इंजन चलने लगते हैं। इसी तरह यदि कामशक्ति को—जीवन ऊर्जा को ऊर्ध्वगति प्रदान की जा सके, तो वह प्राण–विद्युत के भाण्डागार के रूप में बदल कर मानवी गौरव–गरिमा के उपयुक्त उत्कर्ष में सहायक बन जाती है। कामशक्ति का दमन नहीं, वरन् उदात्तीकरण ही उसके सदुपयोग का सही मार्ग है। फ्रायडवादी प्रतिपादनों के अनुरूप आचरण करना अपने विनाश को स्वयं आमंत्रित करना है। इस शक्ति का समुचित सुनियोजन ही मानव जीवन के लिए कल्याणप्रद है।

काम तत्व की महत्ता एवं समर्थता से प्राचीन ऋषि–मनीषी भली–भाँति परिचित थे। यही कारण था कि उनने उसके दमन की नहीं, अपितु सृजनात्मक कार्यों में लगाने की विचारधारा को जन्म दिया था, और कामना की संज्ञा दे कर उसे व्यापक अर्थ प्रदान किया था। अथर्ववेद ९/२/१९ में इस सम्बन्ध में कहा गया है, "कामो जज्ञे प्रथमम् .... विश्वहा महान्" अर्थात् इस सृष्टि में कामशक्ति सबसे महान है। वह सृजन भी कर सकती है और दुरुपयोग होने पर ध्वंस भी खड़ा कर सकती है। यही वह शक्ति है, जो प्रत्येक प्राणी के अन्तराल में समाहित उल्लास के रूप में उमँगती, आगे बढ़ने, ऊँचा उठने, विनोद का रस लेने एवं साहसिक प्रयास करने के रूप में निरन्तर प्रस्फुटित होती रहती है। इसी को आकर्षण शक्ति कहते हैं। जड़ पदार्थों में ऋण और धन विद्युत के रूप में इसे ही कार्यरत देखा जाता है। भौतिकी के अनुसार भी सृष्टि की गतिविधियों का उद्गम् यही है। शक्ति तरंगे उसी से उद्भूत होनी और संसार की अनेकानेक हलचलों का सृजन करती हैं।

अध्यात्मवेत्ताओं एवं कार्लगुस्ताव जुंग जैसे विख्यात मनोविज्ञानियों ने काम प्रवृत्ति को साइकिक एनर्जी—मानसिक ऊर्जा के रूप में वर्णन किया है और कहा है कि इसका परिष्कृत स्वरूप ही शारीरिक बलिष्ठता, मानसिक दक्षता एवं आत्मिक प्रखरता के रूप में दृष्टिगोचर होता है। प्राणियों में उसका उभार उत्साह, उल्लास एवं उमंगों के रूप में होता है। पारस्परिक प्रेम, सहयोग से उत्पन्न उपलब्धियों से परिचित होने के कारण आत्मा इस स्तर के प्रयासों में और सहज विनोद के लिए उन प्रयासों में प्रवृत्त होती है। शास्त्रकारों ने भी इसी को काम कहा है और उसकी उपयोगिता का समर्थन किया है। मनोवेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित मानसिक ऊर्जा ही शास्त्रकारों के शब्दों में वह जीवन तत्व है, जिसे उत्तेजनाओं, वासनाओं को भड़काने से रोक कर मस्तिष्क की ओर प्रवाहित कर देने पर मनुष्य को ऊर्ध्वरेता बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है। रेतस्–जीवन ऊर्जा का ऊपर –ही –ऊपर मस्तिष्क की तरफ प्रवाहित होना ही ब्रह्मचर्य है। यही ऊर्जा जब आध्यात्मिकता की ओर मुड़ जाती है, तो आत्मा–परमात्मा में विचरण करने लगती है। ब्रह्मवर्चस पारायण जीवन इसी का नाम है। वेदों, उपनिषदों एवं महापुरुषों का यही आदर्श एवं आदेश भी है।

फ्रायड एवं एडलर जैसे पाश्चात्य मनोविज्ञानियों ने काम प्रवृत्ति को अर्जेज, इड, लिबिडो, विल आदि नाम देकर जिस संकुचित रूप में उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या–विवेचना की है । शास्त्रकार के शब्दों में वह ऐषणाओं , का एक छोटा रूप है । ऐषणा का अर्थ है–मनुष्य को प्रेरणा देने वाली शक्ति । इसका उदात्तीकरण ही सदुपयोग का सही मार्ग है । यह मात्र कामोल्लास तक सीमित नहीं है । बृहदारण्यक उपनिषद् के सूत्र १/४ के अनुसार 'काम' –कामना रूप में व्यापक अर्थों वाला शब्द है । इसके उभार पर प्राणियों की प्रगति और पदार्थों की हलचलें निर्भर हैं । यही शक्ति अगणित उमंगों के रूप में प्रकट होती और विनोद भरे क्रियाकृत्य करने की प्रेरणा देती है । जीवन में सामान्य क्रियाकलापों में मन लगाने और आनन्द मनाने का अवसर जिस अन्तःस्फूर्ति के आधार पर मिलता है मनीषियों ने उसे 'काम'कहा है । सद्कामना की पूर्ति में उत्साह और उमंग के साथ संलग्न होने वाली प्रवृत्ति ही 'काम' है । इसका रसास्वादन जो न कर सका वह अर्धमृतकवत् जीवित रहेगा , उसे महत्वपूर्ण सफलताओं के दर्शन जीवन में कभी भी न हो सकेंगे । संसार में जितने भी महत्वपूर्ण काम हुए हैं , जितने भी महान व्यक्तित्व उभरे हैं, उन सब के मूल में अदम्य अभिलाषा और उसकी पूर्ति के लिए आतुर साहसिक पुरुषार्थ ही प्रधान भूमिका निभाता रहा है ।

हँसती–हँसाती , खिलती–खिलाती, उछलती–फुदकती जिन्दगी के मूल में जो भाव भरा उल्लास काम करता है, वस्तुतः वही काम है । यह विनोद उल्लास अनेक अवसरों पर अनेक स्तर के व्यक्तियों में अनेक प्रकार से उभरता है । बच्चे इठलाते , इतराते , उछलते , मचलते रहते हैं । किशोर क्रीड़ांगन में अपनी स्फूर्ति का परिचय देते देखे जाते हैं तो प्रौढ़ों को दूरदर्शी योजनाएँ बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने में संलग्न देखा जाता है । गायन् वादन में झूमते हुए नृत्य करते हुए, अभिनय में थिरकते हुए कलाकार वस्तुतः अन्तरंग के उल्लास का परिचय दर्शकों को कराते और उन्हें भी अपनी ही तरह सरसता के निर्झर में आनन्द लेने का अवसर देते हैं ।

वनस्पति जगत में पुष्पों का सौन्दर्य और सौरभ उनके अन्तराल में उभरे हुए कामोल्लास का परिचय देते हैं । मयूर का नृत्य, भ्रमर का गुंजन , पक्षियों की चहचहाट और फुदकन आदि में उनके उभरते हुए अन्तः उल्लास का परिचय मिलता है । इसे चेतना की विकास के लिए उभरती हुई उमंग ही समझा जा सकता है । उत्साह के अभाव में नीरसता और निस्तब्धता का अंधकार ही छाने लगेगा । प्रगति क्रम रुक जाने की इस स्थिति में पूरी आशंका है । अतएव प्रकृति ने जड़ चेतन में अपने–अपने स्तर का उत्साह उत्पन्न किया है और उनका कलेवर ऐसा सृजा है , जिसमें क्रीड़ा–कल्लोल की हलचलों को कार्यान्वित होने का अवसर मिलता है । प्रगति और हलचलों का उभार इसी पर निर्भर है । संक्षेप में यही कामक्रीड़ा है, जो अगणित उमंगों के रूप में प्रकट होती है और विनोद भरे क्रियाकृत्य करने की प्रेरणा देती है ।

कामशक्ति का प्रवाह विषयभोग –यौनलिप्सा की ओर मुड़ जाने पर मात्र विनाश ही हाथ लगता है । वासना, कामुकता, अश्लील चिन्तन आदि का समस्त परिकर वस्तुतः उस सुविस्तृत सृष्टि–संचरण प्रक्रिया एवं मानव जीवन की अतिशय महत्वपूर्ण और प्रेरक शक्ति का बहुत ही छोटा और हेय स्वरूप है । इसकी व्याख्या–विवेचना क्रीड़ा, उल्लास के रूप में ही हो सकती है । उसे उत्साह , उभार या उमंग भी कहा जा सकता है । वह सभी उपाय–उपचार 'काम' की परिधि में सम्मिलित किये जा सकते हैं, जिनसे स्नेह, सौजन्य, सहयोग , मिलन आदि की सुखद अनुभूति होती है । सहृदयता, करुणा, सेवा , सहायता उदारता, साहसिकता के रूप में इसी की परिणति होती है । सृजनात्मक सत्प्रयोजनों के लिए किये जाने वाले त्याग–बलिदान में जो भाव–संवेदना काम करती है , उसे भी इसी शक्ति का ऊर्ध्वगमन कह सकते हैं । संगीत, साहित्यकला के विभिन्न विधाओं के रूप में हम दिन–प्रतिदिन जो कुछ भी देखते हैं, वह भी काम शक्ति का परिष्कृत और प्रखर रूप है।

कामतत्व की उच्चस्तरीय परिणति वह है, जो भाव संवेदनाओं की उत्कृष्टतम् कोमलता, करुणा के रूप में प्रस्फुटित होती है । इसे ईश्वर के साथ, विराट् ब्रह्म के साथ, नियोजित करने पर उसका स्वरूप उस भक्त जैसा बन जाता है जिसका इतिहास के पृष्ठों में गाँधी, बिनोवा , विवेकानन्द के रूप में उल्लेख है ।

इस महाशक्ति का परिष्कार एवं ऊर्ध्वीकरण कार्यक्षेत्र में ओजस् , मनःक्षेत्र में तेजस् और अन्तराल में आत्मिक विभूतियों के रूप में वर्चस् बनकर उद्भूत होता और मानव जीवन को धन्य बना देता है । वेदों में कामशक्ति के इसी दिव्य स्वरूप का नमन वन्दन किया गया है । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांसाहार "गुनाह बेलज्ज़त"

मनुष्य प्राकृतिक रूप से शाकाहारी है। मांस उसका खाद्य नहीं है। उसकी संरचना भी शाकाहारी स्तर की आँतों वाले मनुष्य से तनिक भी तालमेल नहीं खाती, फिर दुष्पाच्य भी होता है। मारे गये पशु के शरीर में जो रोग कीट पाये जाते हैं, वे उबालने, तलने पर भी बने रहते हैं और खाने वाले के शरीर पर अहित कर प्रभाव छोड़ते हैं। वधकाल की पीड़ा, व्याकुलता, और चीत्कार के सूक्ष्म प्रभाव मांस पर छाये रहते हैं। वे खाने वाले में ऐसी प्रवृत्ति बढ़ाते हैं जो मानवी गरिमा के अनुरूप नहीं होती। इन दुष्प्रभावों की चपेट में मनुष्य अपनी करुणा एवं शालीनता तक गँवा बैठता है।

भारत में मांसाहार का प्रचार प्रोटीन पौष्टिकता के नाम पर दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, जापान मैक्सिको, चीन जैसे देशों के निवासी जहाँ अपने आहार में विशेष परिवर्तन कर शाकाहारी बनते जा रहे हैं, वहीं अपने देश में मांसाहार का प्रचलन अभिवृद्धि पर है। लगभग सत्तर प्रतिशत व्यक्ति सामिष भोजन करते हैं। प्रत्येक दस व्यक्ति में से सात व्यक्ति मांसाहारी हैं जबकि स्वास्थ्य विशेषज्ञों ने निरंतर अनुसंधान के पश्चात् इस भ्रांतिपूर्ण धारणा को अब गलत सिद्ध कर दिया है कि मांस-मछली पौष्टिक तथा स्वास्थ्यवर्धक आहार हैं। इससे न केवल पाचन प्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता और शरीर रोगग्रस्त होता है, वरन् अप्राकृतिक आहार होने से मन भी दूषित और विकारग्रस्त बन जाता है। बध किये जाते समय जानवर को जिस भयभीत और चीत्कार भरी स्थिति में होकर गुजरना पड़ता है, उसके कारण उनकी अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ तेजी से विष उगलने लगती हैं। उस स्थिति में तीव्रता से उभरते हुए हारमोन्स रसायन कुछ ही क्षण में समस्त रक्त में घुल जाते हैं और उसका प्रभाव मांस पर भी पड़ता है। इसके सूक्ष्म प्रभाव खाने वालों में भी पहुँचे बिना रहते नहीं। पेट में पहुँचते ही वह मनुष्य की तामसिक प्रवृत्तियों को भड़काते हैं, जिसके कारण हिंसा, क्रोध, तनाव जैसे अनेकानेक मानसिक विकार पैदा हो जाते हैं और समाज में पारस्परिक मनमुटाव, गृहकलह, लूट-खसोट खून खराबे आदि का निमित्त बनते हैं।

आहार विशेषज्ञों का कहना है कि मांस मनुष्य का प्राकृतिक आहार नहीं हो सकता। मानवी काया के उचित विकास के लिए जिन पोषक तत्वों की संतुलित मात्रा का होना अनिवार्य है, उसकी पूर्ति शाकाहार से ही होती है।

मांसाहार में जिन तत्वों को पुष्टिकर बताया जाता है उनमें एक और विपत्ति जुड़ी रहती है यूरिक एसिड की अधिकता। ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध चिकित्सा विज्ञानी डॉ. अलेग्जेंडर के अनुसार यह तत्व शरीर के भीतर जमा होकर गठिया, मूत्र विकार, रक्त विकार, हृदयरोग, यक्ष्मा, अनिद्रा, हिस्टीरिया, यकृत रोग आदि कितनी ही बीमारियों को जन्म देता है। इसके अतिरिक्त मांस में उपस्थित चर्बी एवं कोलेस्ट्राल की अत्यधिक मात्रा खाने वाले के शरीर में पहुँच कर रक्तवाही धमनियों में जमकर उसे मोटी बना देती है जो हृदय रोग, उच्च रक्त चाप, गुर्दे की बीमारी, पथरी आदि का प्रमुख कारण बनती है। समृद्ध औद्योगिक देशों में दो तिहाई लोगों की मृत्यु प्रायः इसी के कारण होती है।

अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिकों ने पाया है कि मांसाहारियों के रक्त में उपस्थित क्षार और अम्ल के बीच का निर्धारित अनुपात बिगड़ जाता है और आँतों की बढ़ी हुई गर्मी के दबाव से उसकी अधिकांश मात्रा मूत्र के साथ बाहर निकल जाती है। उस कमी को पूरा करने के लिए शरीर में हड्डियों के अतिरिक्त और दूसरा स्रोत मिलता नहीं। फलस्वरूप रक्त अपना सन्तुलन बनाये रखने के लिए क्षार और अम्ल हडिड्यों से चूसने लगता है। इस प्रकार मांसाहारी की हडिड्याँ कमजोर पड़ती जाती हैं और उसे गठिया एवं संधिवात जैसी व्यथाएँ जल्दी ही धर दबोचती हैं। शरीर को शक्ति और स्फूर्ति उस खाद्य पदार्थ से प्राप्त होती है जिसे हमारा पाचन संस्थान सरलतापूर्वक पचा लेता है। शाकाहार न केवल पाचन की दृष्टि से शरीरोपयोगी है, वरन् मानव अंतःकरण को प्रिय लगने वाले समस्त गुण उसी से उपलब्ध होते हैं। इसलिए शाकाहार ही वरेण्य है

आहारशास्त्री एल.एच. एण्डरसन ने ठीक ही कहा है -"हम सभ्यताभिमानियों के हाथ मूक और उपयोगी पशुओं के रक्त से रँगे हैं। हमारे माथे पर उनके खून का कलंक है। हमारा पेट एक घिनौना कब्रिस्तान बन गया है। शरीर की दुर्गन्ध हमारे मुख से निकल रही है। क्या यही मानवोचित आहार है? मांसाहार मानवता के नाम पर एक कलंक, गुनाह है इसे बंद किया ही जाना चाहिए ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने दीपक स्वयं बनें

भगवान बुद्ध का कथन है—"अप्पदीपो भव" अर्थात् अपना दीपक आप बनो। वे आत्म विश्वास को बहुत महत्व देते थे। धर्मचक्र प्रवर्तन की प्रचार यात्रा में शिष्यों को इसकी महत्ता समझाते हुए वह कहते थे "आज अथवा मेरी मृत्यु के पश्चात् वे लोग जो अपने आप से प्रकाश ग्रहण करेंगे, आत्मनिर्भर होकर अपने आप पर विश्वास करेंगे, सत्य को अपना दीपक मानकर उसे दृढ़तापूर्वक धारण करेंगे और सत्य में ही अपने मोक्ष की खोज करेंगे, उन्हें किसी बाहरी सहायता की आवश्यकता न पड़ेगी। ज्ञान प्राप्ति की अभीप्सा रखने वाले वे ही लोग उच्चतम् स्थिति को प्राप्त कर सकेंगे, जिनके हृदय आत्मविश्वास से भरे होंगे। दूसरों का नेतृत्व भी ऐसे ही व्यक्तित्व कर सकेंगे, जिनमें आत्मविश्वास कूट-कूट कर भरा होगा।"

जिसे अपनी योग्यता, क्षमता और शक्ति सामर्थ्य पर विश्वास होता है, विजय श्री भी उसे ही वरण करती है। जीवन की प्रत्येक सफलता इसी एक केन्द्र के चहुँ ओर चक्कर काटती है। दृढ़ निश्चयी ही आगे बढ़ते ऊँचा उठते और उच्चस्तरीय सफलताएँ अर्जित करते हैं। जिन्हें स्वयं की क्षमता पर विश्वास नहीं, दूसरे लोग भी उन पर विश्वास नहीं करते। ऐसे व्यक्ति संशय और दुविधा के दलदल में फँसकर छटपटाते भर रहते हैं। साथी सहयोगी भी उनका साथ छोड़ जाते हैं।

गीताकार ने इसी तरह की मनःस्थिति वाले मनुष्यों के लिए —'संशयात्मा विनश्यति" कहकर सावधान किया है। घड़ी के पेन्डुलम की तरह दोलनयुक्त अनिश्चयात्मक मनःस्थिति व्यक्ति को कहीं का नहीं रहने देती। वह कभी आगे बढ़ता है तो कभी दो कदम पीछे खिसकता है। इसके विपरीत दृढ़ विश्वास वाला व्यक्ति जो निश्चय कर लेता है, उसे पूरा करके ही छोड़ता है। भले ही उसके मार्ग में कितने ही अवरोध चट्टान, बन कर अड़ क्यों न रहे हों। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व सम्पर्क में आने वालों में भी प्राण फूँक देता है और वे अनायास ही उसके मित्र सहायक बनते चले जाते हैं। मूर्धन्य मनीषी जेम्स एलेन का इस सम्बन्ध में यह कथन उपयुक्त ही है कि जिनके व्यक्तित्व से विश्वास और मस्तिष्क से श्रेष्ठता के भाव टपक रहे होंगे, सफलता उन्हें ही मिलेगी।

सुप्रसिद्ध मनीषी स्वेट्मार्डन कहते हैं कि दूसरों का सफल मार्गदर्शन प्रतिभा के धनी आत्मविश्वासी व्यक्ति ही कर सकते हैं। जो स्वयं प्रज्ज्वलित नहीं, वह दूसरों को प्रकाशित कैसे कर सकता है। उनके अनुसार यदि हम दूसरे के प्रकाश पर निर्भर रहेंगे तो हो सकता है कि अंधकार हमें अभिभूत कर ले। यदि ऐसा नहीं चाहते तो स्वयं को प्रज्ज्वलित करना होगा। यह हो सकता है कि हम दूसरों से प्रकाश ग्रहण करके उस प्रकाश की परम्परा को आगे बढ़ायें, परन्तु अपने दीपक को उपेक्षापूर्वक जंग लगते रहने देना और केवल दूसरों के प्रकाश को पर्याप्त मान लेना अन्ततोगत्वा हमें अन्धकार के गर्त में गिरा देगा। अपना आन्तरिक आत्मविश्वास ही वह प्रकाश है, जो कभी साथ नहीं छोड़ता, धोखा नहीं देता। आत्मविश्वास से बढ़कर इस संसार में और कोई दूसरी शक्ति है नहीं। आत्मविश्वासी के सामने दुनिया की कोई बाधा टिक नहीं सकती और न ही वह कभी किसी से हार मानता है।

आत्मविश्वास के चमत्कारिक प्रभाव से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। 'स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का उद्घोष करने वाले लोकमान्य तिलक का वह आत्मविश्वास ही था जिसने समूचे देशवासियों को स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ने के लिए झकझोर कर रख दिया था। महात्मा गान्धी का आत्मविश्वास ही था जिनके अहिंसात्मक आन्दोलन ने सदियों से परतंत्र बने भारत को अँग्रेजों से मुक्त करा लिया। अब्राहम लिंकन एवं हैरियटस्टो के आत्म विश्वास ने हजारों वर्ष पुरानी दास प्रथा को अमेरिका से सदा के लिए जड़ से उखाड़ फेंका। महाभारत की वह कथा प्रसिद्ध है जिसमें कुरुक्षेत्र की रणभूमि में अर्जुन अपना आत्मविश्वास खो बैठा था और गाण्डीव को एक ओर रखकर भयभीत बना रथ के एक कोने में जा बैठा था। तब कृष्ण ने उसके हृदय में आत्मविश्वास भरा और उसकी परिणति पाण्डवों की विजय एवं महान भारत के अभ्युदय के रूप में हुई थी। हनुमान के प्रसुप्त पड़े आत्मबल को जामवन्त ने जगाया था और उसका परिणाम समुद्र लाँघने, लंका का विध्वंस कर सीता वापसी एवं राम राज्य की स्थापना के रूप में सामने आया था। प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिए पग-पग पर आत्मविश्वास की आवश्यकता पड़ती है। इसके अभाव में सफलता संदिग्ध ही बनी रहती है। ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्त आयामीय चेतन सत्ता

मनुष्य की मूल प्रकृति आध्यात्मिक है। उसका मूल्यांकन खगोलकीय पिण्डों या पार्थिव वस्तुओं की तरह लम्बाई, चौड़ाई ऊँचाई आदि के त्रिआयामीय मापों द्वारा नहीं किया जा सकता। वह घनीभूत चेतना का पुँज है जिसकी एक से एक बढ़कर उच्चस्तरीय परतें हैं। गीता में वर्णित कीर्ति, श्री, वाक, स्मृति, मेधा, धृति एवं क्षमा जैसी दिव्य विभूतियों का वह स्वामी है। उसकी चेतना बहुआयामीय है जिसे दिक्काल की सीमा में भी नहीं बाँधा जा सकता।

भौतिक अनुभवों एवं उपलब्धियों से भी बढ़कर उच्चस्तरीय चेतनात्मक अनुभूतियों का भाण्डागार मानवी अन्तराल में भरा पड़ा है। साधना द्वारा अपनी चेतना का जो व्यक्ति जिस सीमा तक विकास कर लेता है, उसी अनुपात से वह आत्मिक प्रगति के उच्च सोपानों पर आगे बढ़ता और दिव्य क्षमताएँ अर्जित करता जाता है। योग एवं तप के द्विविध साधना उपक्रमों के आधार पर विकसित होती हुई चेतना अपनी अन्तिम स्थिति को पहुँच जाती है, जिसे ही पूर्णता की निर्वाण की प्राप्ति कहा जाता है। नर का नारायण में मनुष्य का देवत्व में परिवर्तन भी।

ब्रह्म विज्ञान में चेतना के सात आयामों की चर्चा की गई है। उन्हें सात लोक भी कहा जाता है। गायत्री मंत्र के साथ प्राणायाम करते समय सात व्याहृतियाँ का उच्चारण किया जाता है। भूः भुवः, स्वः, महः जनः, तपः, सत्यम्–यह सात व्याहृतियाँ सात लोकों की परिचायक हैं। इनकी चर्चा इस सन्दर्भ में होती है कि प्रगति पथ पर अग्रसर होते हुए हमें अगले आयामों में पदार्पण करना चाहिए। तीन लोक भौतिक हैं–भूः भुवः स्वः,। इन्हें धरती, पाताल और आकाश भी कहते हैं। भौतिकी इसी सीमा में अपनी हलचलें जारी रखती है। अगले चार लोक सूक्ष्म हैं। चौथा भौतिकी और आत्मिकी का मध्यवर्ती क्षेत्र है। पाँचवां, छठा एवं सातवां लोक विशुद्ध चेतनात्मक हैं। इन्हें पदार्थ सत्ता से ऊपर माना गया है। इसे और भी अच्छी तरह समझना हो तो भूः, भुवः स्वः को सामान्य जगत, तपःको चमत्कारिक सूक्ष्म जगत एवं जनः, महः सत्यम् को देवलोक कह सकते हैं। मनुष्य सामान्य जगत में रहते हैं। सिद्ध पुरुषों का कार्य क्षेत्र सूक्ष्म जगत है। देवता उस देवलोक में रहते हैं, जिनकी संरचना जनः महः, सत्यम् तत्वों के आधार पर की गई है।

प्रायः समझा जाता है कि उक्त सातों लोक ग्रह–नक्षत्रों की तरह वस्तु विशेष हैं और उनका स्थान कहीं सुनिश्चित है। वस्तुतः ऐसा है नहीं। यह लोक अपने ही चेतन जगत की गहरी परतें हैं। इनमें क्रमशः प्रवेश करते चलने पर चक्रव्यूह को बेधन करते हुए परम लक्ष्य तक पहुँचना संभव हो सकता है। इस प्रगतिक्रम में सशक्तता बढ़ती चलती है और अंतिम चरण पर पहुँचा हुआ मनुष्य ही सर्व समर्थ बन जाता है। इसी को आत्मा की परमात्मा में परिणति कह सकते हैं।

महायोग विज्ञान के अनुसार सात लोक आकाश में ढूँढ़ना व्यर्थ है। वे किसी ग्रह नक्षत्र के रूप में नहीं, वरन् आत्मसत्ता में सप्त चक्रों के रूप में विद्यमान हैं। भूः लोक मूलाधार में, भुवः लोक स्वाधिष्ठान में, स्वःलोक मणिपूरक में, महःलोक हृदय में, जनःलोक कंठ में, तपःलोक ललाट में तथा सत्य लोक ब्रह्मरंध्र में विद्यमान हैं। इनकी जाग्रति ही चेतन सत्ता के सप्त आयामों के सप्त विभूतियों के रूप में, भौतिक और आत्मिक सफलताओं के रूप में दैवी अनुग्रह बनकर उभरती हैं।

अध्यात्मशास्त्रों में वर्णित सात लोकों, सप्त ऋषियों सप्त प्राणों की व्यख्या–विवेचना पाश्चात्य अध्यात्मवेत्ताओं ने अपने ढंग से की है। उनकी स्थापना में ब्रह्माण्ड और पिण्ड को [illegible] माना गया है और चेतना के आयामों को सात लोकों की संज्ञा दी गई है। प्रथम भौतिक शरीर को वे 'फिजिकल बॉडी' कहते हैं जो पंच भौतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्वों से बना है । इसे इन्द्रियगम्य भी कहते हैं जिसमें मात्र शरीरगत अनुभूतियाँ ही विकसित हो पाती हैं । इससे आगे उच्चस्तरीय परत "ईथरिक बॉडी' है जो अदृश्य एवं सूक्ष्म चेतन स्वरूप है । इच्छा , आकांक्षा, भाव संवेदना, इस शरीर के जागरण की विशेषताएँ हैं । 'एस्ट्रल बॉडी सूक्ष्मतम, दिव्यस्वरूप सुव्यवस्थित विचारणाओं का तर्क शक्ति का केन्द्र है । सामान्यजनों से लेकर सभ्य सुसंस्कृत नागरिकों तक को इसी स्थिति में विकसित हुआ देखा जा सकता है ।

किन्तु इससे ऊँची परतें दिव्यक्षमताओं से सम्पन्न अन्तराल की गहराई में छिपी रहती हैं । 'मेण्टल बॉडी को प्रतिभा का केन्द्र माना जाता है । मनस तत्व की प्रबलता वाले इस क्षेत्र का विकास कला–सौन्दर्य विज्ञान एवं उच्चस्तरीय कल्पनाओं के विकास की स्थिति है । मनीषी, विचारक , कवि, कलाकार , वैज्ञानिक इसी भावलोक में विचरण करते हैं । समस्त सांसारिक भौतिक उपलब्धि, श्रेय–सम्मान इसी मानस्–शरीर के विकास की परिणति हैं । इससे आगे की विकसित अवस्था स्प्रिचुअल बॉडी ' कहलाती है । इस पाँचवे आयाम में अतीन्द्रिय क्षमताएँ सन्निहित मानी जाती हैं । भविष्य कथन , दूरश्रवण दूरानुभूति , पूर्व बोध आदि चमत्कारी दिव्य अनुभूतियाँ इसी से सम्बन्धित हैं । छटा आयाम–'कास्मिक बॉडी अर्थात् देव शरीर है । इसके विकसित हो जाने पर मानवी अन्तःकरण देवत्व से ओतप्रोत हो जाता है । सातवें स्तर 'बॉडी लेस बाडी' तक पहुँचा हुआ साधक ब्रह्म से सम्बन्ध स्थापित कर उस जैसा ही बन जाता है । वेदान्त की अद्वैत स्थिति यही है । सृष्टि संतुलन विठाने एवं लोक मंगल के लिए जीने वाली अवतारी आत्माएँ सातवें शरीर में पहुँची आत्माएँ होती हैं । वे निर्विकार, निर्लिप्त एवं निस्पृह बने रहकर अनेकानेकों को अपने साथ तारती देखी जाती हैं ।

अनुसंधानकर्ता परामनोवेत्ताओं एवं गुह्य् विज्ञानियों का कहना है कि चेतना के विभिन्न आयाम वस्तुतः अपनी ही आत्म सत्ता के सूक्ष्म केन्द्रों में सन्निहित हैं । उनके अनुसार निम्न स्तरीय कायिक चेतना का सम्बन्ध मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र से है, तो मणिपूरक का अतीन्द्रिय चेतना से । अनाहत चक्र को साइकोकाइनेसिस का केन्द्र माना जाता है । विशुद्ध एवं आज्ञा चक्र दिक्काल से परे वैश्वचेतना से संयुक्त अति समर्थ परते हैं तथा सहस्रार सुपर चेतना का आधार है ।

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक डॉ. हरबर्ट के अनुसार उक्त तथ्य यह रहस्य उद्घाटित करते हैं कि चेतना के कितने ही धरातल अथवा रहस्यमय अनुभूतियों के आयाम हैं । वर्तमान भौतिक जीवन से परे भी जीवन सातत्य विद्यमान है जो उच्च आयामों को अपने अंदर समाविष्ट रखता है । जैसे–जैसे चेतना का विस्तार एवं परिष्कार होता जाता है, वह ऊर्ध्वारोहण करती जाती है और दिव्य क्षमताओं के द्वार खुलते जाते हैं । उनके अनुसार सत्कर्मों के आधार पर ही अनुभुतियों का एवं भविष्य का निर्धारण होता है ।

वस्तुतः अभी हम जिन अनुभवों के चेतना– के धरातल पर निवास कर रहे हैं, वह द्विआयामीय या त्रिआयामीय हैं । सत्य का अनुभव भी हम इन्हीं आधारों पर करते हैं । गुह्यविज्ञानी एडगर केसी का कहना है कि जब हम तीसरे आयाम को ही भलीभाँति नहीं जानते जिसमें हम सभी निवास कर रहे हैं, तो फिर उच्च आयामों को कैसे जान सकते हैं ? उनके अनुसार चौथा आयाम सद्भावना का सद्विचारणा का है परन्तु यह कहाँ से आरंभ होता, कहाँ पर समाप्त होता और किधर प्रक्षेपित या प्रयुक्त होता है कहा नहीं जा सकता । यह अन्तहीन है । चारदशक पूर्व मनीषी प्रवर आइन्स्टीन ने विश्व–ब्रह्माण्ड में संव्याप्त अनेक आयामों की संभावना व्यक्त की थी और कहा था कि जब मनुष्य चतुर्थ आयाम के तथ्यों को कार्य रूप में परिणत करने लगेगा तब उसका ज्ञानबोध अब की तुलना में अनेक गुना अधिक बढ़ जायेगा । साथ ही ऐसी शक्ति हस्तगत होगी जिसे चमत्कारिक कहा जा सके ।

उच्चस्तरीय आयामों में पाँचवां, छठा एवं सातवाँ आयाम पदार्थ सत्ता से परे है । ये विशुद्ध रूप से चेतना से सम्बन्धित हैं , किन्तु यदि चतुर्थ आयाम की जानकारी एवं प्रभाव–परिणाम से ही हम अवगत हो सकें तो हमारे सम्पूर्ण बोध क्षेत्र में उथल–पुथल मच जायेगी । जिन व्यक्तियों को अभी हम अपना मान बैठे हैं, वे भी पराये दीखने लगेंगे अथवा पराये भी अपने हो जायेंगे । व्यक्ति एवं वस्तु के प्रति वर्तमान मोह का दुराग्रह टूट जाने और पदार्थ एवं जीव का वास्तविक स्वरूप विदित होने पर उस भ्रम जंजाल से छुटकारा मिल सकेगा जिसमें सामान्यतया हम सभी आबद्ध रहते हैं । चेतना का उच्चस्तरीय विकास कर लेने पर हमें उस तत्वदर्शन की सत्यता का भी बोध होगा जिसमें ऋषियों ने आत्मवत् सर्वभूतेषु' की –'सर्वंखिल्विदं ब्रह्म की कल्पना की है । *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने लिए उपयुक्त वातावरण चुनें या विनिर्मित करें

आवश्यक नहीं कि मनुष्य जहाँ जन्मे वहीं मरे भी । सुविधाओं और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अनेकों को अपने क्षेत्र छोड़ने पड़ते हैं । धन उपार्जन या सुविधा-साधनों पर ध्यान केन्द्रित करके हमें ऐसे क्षेत्रों में रहने के लिए आकर्षित नहीं होना चाहिए जहाँ की जलवायु उपयुक्त नहीं है । कारण कि जलवायु का प्रभाव स्वास्थ्य पर तो पड़ता ही है, स्वभाव से भी उसका गहरा संबंध रहता है । शीतलता गर्मी की अपेक्षा अधिक उपयोगी है । यदि अवसर मिले तो अपने निवास के लिए ऐसे क्षेत्र का चयन करना चाहिए जिसमें हरियाली, शान्ति एवं शीतलता हो । ठंडे क्षेत्र प्राकृतिक न हों तो छोटे देहातों में प्रयत्नपूर्वक वैसी स्थिति पैदा की जा सकती है ।

वातावरण का मानव स्वास्थ्य एवं स्वभाव पर पड़ने वाले प्रभाव का मूर्धन्य विज्ञानियों ने गहन अध्ययन किया है और पाया है कि ठण्डे क्षेत्रों में प्रकृति के साहचर्य में रहने वाले व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक श्रमशील, सहनशील, बहादुर तथा आत्मनिर्भर होते हैं । उनकी सृजनात्मक क्षमता बढ़ी चढ़ी होती है । इसके विपरीत गर्म जलवायु में निवासरत व्यक्तियों का स्वास्थ्य दुर्बल एवं उत्साह शिथिल होता है । सुविधा-साधनों की अधिकता रहते हुए भी ऐसे क्षेत्रों के बच्चे निरुत्साही तथा स्वभाव से चिड़चिड़े देखे गये हैं । कनाडा के ठण्डी जलवायु में निवास करने वाले उल्कू एस्किमों के सम्बन्ध में उनका कहना है कि वातावरण के प्रभाव के कारण उनके बच्चे ६ वर्ष की उम्र से ही संवेदनाशील बन जाते हैं ।उनकी प्रसन्नता-प्रफुल्लता सहिष्णुता देखते ही बनती है । अभिभावक या माता-पिता शान्त स्वभाव के होते हैं, जिसका अनुकूल प्रभाव बच्चों पर भी पड़े बिना नहीं रहता ।

केन्या की गूजी जातियाँ अधिकतर अपना समय घर के बाहर गरमी वाले क्षेत्रों में व्यतीत करती हैं । उनमें भावनात्मक एकात्मकता एवं रचनात्मक प्रवृत्ति का प्रायः अभाव पाया जाता है । अनुसंधानकर्ता विशेषज्ञों का कहना है कि गरमी के कारण वे सदैव तनाव एवं आवेश से ग्रस्त रहते हैं और लड़ते-झगड़ते रहते हैं । पुलिस -आंकड़े भी बताते हैं कि ठण्डे क्षेत्रों की अपेक्षा गरमी वाले क्षेत्रों में अपराध अधिक होते हैं । मनोविज्ञानी भी जलवायु को मनुष्य की शारीरिक-मानसिक शक्ति को उत्तेजित करने में सहायक मानते हैं ।उनके अनुसार जिन योरोपीय देशों ने अपने देश के शीतलता वाले क्षेत्रों में व्यवसायिक एवं औद्योगिक इकाइयाँ खड़ी कीं और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बने,वहाँ भी वातावरण में काफी गरमी बढ़ जाने के फल स्वरूप जन मानस में अपराधी वृत्ति बढ़ी है ।

स्वास्थ्य विज्ञानियों के अनुसार वर्षा के दिनों में जब कभी आकाश में इन्द्र धनुष दिखाई देता है तो सूर्य की किरणें भिन्न-भिन्न रंगों को पार करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं । मानव मस्तिष्क पर उनका गहरा प्रभाव पड़ता है । शरीर में हार्मोन रसायनों की वृद्धि होती है और उत्साह उमगता है ।

अभी तक हमने केवल जलवायु के प्रभाव का अध्ययन जीव विज्ञान के आधार पर किया है और माना है कि गरमी वाले क्षेत्रों में पसीना निकाल कर तथा शीत प्रधान क्षेत्रों में कँपकँपी सहते हुए असाधारण वातावरण को सह सकते हैं । इन्हीं उतार चढ़ावों की प्रतिक्रिया को झेलने के लिए असीम सुविधा साधन भी जुटा लिये गये हैं, फिर भी उक्त वातावरण के अनुसार हमारा स्वभाव एवं व्यवहार वैसा बन ही जाता है । कभी-कभी तो वातावरण परिवर्तन का दुर्बलों पर विशेष एवं बलिष्ठों पर कम प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । कई बार यह प्रतिकूलता शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बहुत कष्टकारक होती है । अमेरिकी वैज्ञानिक विशेषज्ञों ने इसका उपाय बताते हुए कहा है कि हर मौसम में प्रातःकाल ठंडे पानी से स्नान करने की आदत यदि डाली जा सके तो इससे इतनी सहनशक्ति पैदा हो जाती है कि जलवायु परिवर्तन के विपरीत प्रभाव से आसानी से बचा जा सकता है ।

यदि किसी का आजीविका उपार्जन हेतु कार्य क्षेत्र घने शहरों, आग उगलते कारखानों, शोरगुल, घिचपिच या सड़न भरा है, तब तो उसे बदलना ही चाहिए । काम करने के लिए कुछ घण्टे ऐसे गरम क्षेत्र में रहना पड़े तो भी प्रयत्न करना चाहिए कि रात्रि बिताने के लिए , बच्चों को खेलने के लिए हराभरा, पानी की बहुलता वाला ग्रामीण क्षेत्र ही चुना जाय । भले ही उसमें आने-जाने की कठिनाई ही क्यों न उठानी पड़े । जिनका कारोबार शीतल क्षेत्र में है, उन्हें तो भाग्यवान ही कहना चाहिए । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन जीने की कला का शिक्षण

"मैं भी एक सम्पन्न घराने का था, पर जुए और शराब की लत ने मुझे सड़क पर लाकर खड़ा कर दिया " एक व्यक्ति अपनी करुणकथा दीनबन्धु एण्ड्रूज से कह रहा था –"माता –पिता के प्यार और भाई –बहन के स्नेह से वंचित होना पड़ा । तभी से दर–दर की खाक छान रहा हूँ और अब स्थिति ऐसी है कि खाने के भी लाले पड़ रहे हैं । इसी मजबूरी ने चोरी करना भी सिखा दिया और कई वर्षों की जेल की सजा भी मैं भुगत चुका हूँ । मेहनत–मजदूरी करते बन नहीं पड़ता । स्वास्थ्य भी साथ नहीं देता और फिर ऊपर से कोढ़ में खाज की तरह टी.बी. की शिकायत !जीवन से ऊब चुका हूँ । आत्महत्या करने को जी चाहता है । "

दीनबन्धु बड़े धैर्य से उसकी कथा सुन रहे थे । *सब कुछ सुनने के उपरान्त उनने प्रश्न किया–"क्या तुम्हें पता नहीं बुरी आदतों का परिणाम भी बुरा होता है ?"* युवक ने सकारात्मक जवाब में सिर *हिला दिया ।*

"फिर तुमने यह गलती क्यों की ?" दीनबन्धु का सवाल था ।

"कुछ तो मित्रों के बहकावे में आकर और कुछ बड़प्पन का अहंकार जताने हेतु ।"

दीनबन्धु उसे समझाने की दृष्टि से कहने लगे –"व्यक्ति यहीं भ्रमित हो जाता है । वह समझता है कि वह पड़ोसियों पर, समाज पर ऐसे कृत्यों द्वारा अपनी छाप डाल लेगा । लोग उसे बड़ा , प्रगतिशील, सभ्य, और आधुनिक मानने लगेंगे , पर होता ठीक इसके विपरीत है । उन्हीं के बिरादरी वाले ऐसे लोगों को बड़ा और आधुनिक मान सकते हैं, पर यदि कोई सचमुच ही विचारशील व्यक्ति हो, तो इस आधुनिक सभ्यता, और चिन्तन–चेतना की प्रवृत्ति द्वारा स्वयं को बड़ा बनाने और कहलाने को कभी उचित नहीं ठहरायेगा । व्यक्ति बड़ा और महान बाह्याडम्बर से पहनावे–ओढ़ावे से नहीं, वरन् कर्तृत्व से बनता है, चिन्तन –चरित्र से बनता है और यदि यह सब ओछे और बचकाने हों, तो भले ही आडम्बर का ढकोसला वह ओढ़े रहे, पर वास्तविकता जग–जाहिर हो ही जाती है और लोग उसके तथाकथित 'बड़प्पन ' पर उँगली उठाने लगते हैं । याद रखो महानता सदा सादगी में होती है, बड़प्पन में नहीं ।"

युवक का समाधान हो चुका था । वह बड़ी आर्तदृष्टि से दीनबन्धु की ओर देख रहा था, जैसे उसे अपना अपराध–बोध हो गया हो और वह उसे मन से स्वीकार रहा हो । दीनबन्धु ने उसे कई महीनों तक अपने साथ रखा एवं उसका उपचार कराया । अनेक महीनों के पश्चात् जब उसका स्वास्थ्य और रोग लगभग सही हो गया, तो उनने युवक से कहा –"अब तुम जा सकते हो, पर फिर से इन गंदी लतों को पास फटकने मत देना और कहीं मेहनत–मजदूरी कर ईमानदारी की जिन्दगी जीना ।"

युवक उनकी नसीहत की स्वीकारोक्ति में नतमस्तक हो प्रणाम कर चल पड़ा । अनेक वर्षों बाद एक सुबह दीनबन्धु की झोंपड़ी के सामने आकर एक कार रुकी । उससे सीधे –साधे लिबास में एक प्रौढ़सा दीखने वाला व्यक्ति उतरा । दरवाजा खटखटाया । कुछ क्षण पश्चात् दीनबन्धु बाहर आये । व्यक्ति ने भाव विभोर होकर कहा –"पहचाना ।" दीनबन्धु असमंजस में पड़ गये , तभी अपना परिचय देते हुए उसने कहा "मैं वही हूँ , जिसने आपसे अनेक महीनों तक सेवा करवायी थी ।"

परिचय पाकर दीनबन्धु ने मुस्कराते हुए कहा–"अरे !तुम । अन्दर आओ ।" युवक ने संक्षेप में अपनी प्रगति–कथा सुनायी कि किस तरह अखबार बेचते हुए आज वह एक फैक्ट्री का मालिक बन गया है । वह अपने साथ ढेर सारे उपहार और एक प्रस्ताव लेकर आया था कि वह इस झोंपड़ी से एक अच्छे मकान में चले चलें , जिसे उसने हाल ही में खरीदा था । प्रस्ताव अस्वीकारते हुए उन्होंने कहा–इस पैसे को गरीबों की सेवा में लगा देना । रही उपहार की बात तो उनने एक गुलदस्ता भर रख कर शेष को अभावग्रस्तों में बाँट देने को कहा । चलते–चलते दीनबन्धु ने एक बात और कही कि "जीवन भर दूसरों की सेवा करना , पिछड़ों को उठाना । यही मेरे प्रति तुम्हारा सच्चा कृतज्ञता–ज्ञापन होगा" । निहाल वह व्यक्ति एक और मंत्र सीखकर पुनः सेवा क्षेत्र की ओर चल पड़ा । ✵

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सम्पदा का क्षरण रोकिए

विक्षिप्त और मूर्छित कुछ काम कर सकने में समर्थ नहीं होते । निद्राग्रस्त भी नशे पीने वालों की तरह सुध-बुध गँवा कर बेसुध पड़े रहते हैं । आपरेशनों के समय रोगी को दवा सुंघाकर बेहोश कर दिया जाता है । यह सभी अवस्थाएँ ऐसी हैं जिनमें समर्थ सुयोग्य होते हुए भी व्यक्ति कुछ कर नहीं पाता, फिर और कमाये बिना गुजारा कैसे चले ? इसके लिए परावलम्बन ही एक मात्र गति रह जाती है । स्वजन सम्बन्धी ऐसी स्थिति में जो सहारा देते रहते हैं , उतने से ही किसी प्रकार काम चलता है । अपंगो, अपाहिजों की भी यही स्थिति है उन्हें जहाँ से भी भिक्षा स्तर का सहयोग मिल जाता है , उसी के सहारे जीवित रहते और दिन गुजारते हैं । उन्मादी पागल की तो गतिविधियों पर भी दृष्टि रखनी पड़ती है, अन्यथा वे अपने लिए , दूसरों के लिए कोई संकट भी खड़ा कर सकते हैं ।

उपरोक्त सभी दुर्दशाओं, दुर्भाग्यों का समुच्चय एक और भी है, जिसमें दीखने वाला शरीर तो भला चंगा प्रतीत होता है , पर कठिनाइयाँ वही सब सहनी पड़ती हैं जो ऊपर वाले दुर्भाग्यग्रस्तों पर सवार होकर उन्हें त्रास देती रहती हैं । इस व्यथा का नाम है-आलस्य । अन्यविपत्तियों में तो कितनी ही प्रारब्धवश आतीं और परिस्थितिवश व्यक्ति को अपने चँगुल में फँसाती हैं । वे चढ़ दौड़ती हैं, कोई निमन्त्रण नहीं देता । नशेबाजी जैसी कुछ आदतें ही ऐसी हैं जो कुसंग के कारण आदत स्तर तक पहुँचती हैं फिर छूटने का नाम नहीं लेती , किन्तु आलस्य ही एक ऐसा है जो पूर्णतया मनुष्य की इच्छा पर निर्भर रहता है । उसी के बुलाने पर आता है और जब उससे पीछा छुड़ाने की बात सोची जाती है तो अपनी इज्जत बचाते हुए चला भी जाता है ।

आलस्य देखने-सुनने में एक असाधारण सी कुटेव है । एक भ्रान्ति के अनुसार उसे सौभाग्य का चिन्ह भी माना जाता है । जिन्हें हाथ-पैर हिलाने न पड़ें, किन्तु जरूरतें यथा समय पूरी होती रहें तो उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह पूर्वजन्म के किसी संचित पुण्य का प्रारब्ध लाभ ले रहे हैं । इतना भी उनके सम्बन्ध में कुछ ठीक बैठता है जो बढ़ी-चढ़ी सम्पदा के स्वामी हैं, जिनका खर्च आसानी से चल जाता है , सहायता के लिए नौकर-चाकर उपस्थित रहते हैं । शेष आलसी अपनी और दूसरों की दृष्टि में गई-गुजरी स्थिति में ही दिन काटते हैं ।

इज्जत सद्गुणों की होती है । सद्गुण दो प्रभाव दिखाते हैं -एक सम्मान दिलाते हैं और दूसरे धनोपार्जन में सहायता करते हैं । परमार्थ परायण ऋषिकल्प व्यक्ति अपना अभ्युदय उत्कर्ष करते हैं और साथ ही अनेकानेक को ऊँचा उठाने , आगे बढ़ाने का दायित्व भी संभालते हैं । यह सब बन पड़ना कठोर परिश्रम के द्वारा ही सम्भव होता है । व्यस्तता के फल स्वरूप ही समृद्धियाँ , सफलताएँ और विभूतियाँ हस्तगत होती हैं । आलसी तो निद्राग्रस्त, मूर्छितों की तरह पड़े रहते हैं । नित्यकर्म भी वे तब करते हैं जब प्रकृति गत दबाव उन्हें विवश करते हैं । यदि ऐसा न होता तो वे कदाचित शौच , स्नान , भोजन आदि से भी कतराते और किसी प्रकार पड़े-पड़े समय काटने में संतोष करते ।

तत्पर श्रमशीलता प्राणियों का स्वाभाविक गुण है । चिड़ियाँ सबेरे से शाम तक उड़ती , फुदकती रहती हैं । पशु चरने के बहाने निरन्तर यहाँ-वहाँ चलते रहते हैं । बन्दरों से लेकर मच्छरों तक सभी को विशेष उद्देश्य न होने पर भी इधर से उधर दौड़ लगाते देखा जाता है । अंग संचालन शरीर को सक्रिय एवं समर्थ रखने वाली एक परमावश्यक प्रक्रिया है । इसकी उपेक्षा करने पर अंग-अवयव जकड़ने, सिकुड़ने लगते हैं । निरर्थक पड़ी रहने पर क्रियाशक्ति चली जाती है, साथ ही उस समर्थता का भी समापन हो जाता है, जिसे कभी प्रयत्नपूर्वक अर्जित किया गया होगा । अध्ययन क्रम छूट जाने पर अर्जित ज्ञान विस्मृत हो जाता है । संगीतकार -कलाकार भी उस स्थिति में पहुँच जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है मानों उनने कभी कुछ सीखा–समझा ही न था। निष्क्रिय रहने पर पाचनतंत्र, श्वसनतंत्र, रक्ताभिसरण, स्नायुतंत्र आदि सभी में निष्क्रियता आ जाती है। कालान्तर में स्वभाव ऐसा बन जाता है कि जी करने पर भी कुछ करते–धरते नहीं बन पड़ता।

आदतें देर में पड़ती हैं, पर जब वे अभ्यास में उतर कर आदतें बन जाती हैं तो छुड़ाये नहीं छूटतीं। नशेबाजी का व्यसन ऐसा ही है जो पनपता तो धीरे–धीरे है, पर जब परिपक्व हो जाता है तो छुड़ाये नहीं छूटता। शरीर की क्षीणता, आर्थिक दरिद्रता, समाज में बदनामी, परिवार की दुर्गति आँखों से देखते रहने पर भी इतना मनोबल शेष नहीं रहता जिसके आधार पर उन बंधनों से छुटकारा मिल सके। सामने उपस्थित शत्रु से तो अपने, दूसरों के साधन जुटाकर निपटा जा सकता है, किन्तु कैन्सर के विषाणुओं की तरह जो दुर्गुण अभ्यास एवं स्वभाव की गहराई में उतर जाते हैं, वे बिना विशिष्ट प्रयास के सहज विदा नहीं होते।

आलस्य के लिए किसी वैद्य, डाक्टर से चिकित्सा नहीं करानी पड़ती, किन्तु फिर भी वह ऐसा रोग है जिसकी तुलना क्षय रोग के साथ की जा सके। क्षयग्रस्त व्यक्ति भी क्रमशः अपनी जीवनी शक्ति खोता और खोखला बनता जाता है। यही हाल आलसी का भी होता है। वह कुछ करना चाहता है, पर यह भूल जाता है कि करने के लिए श्रम और मनोयोग की आवश्यकता होती है। समय का अनुशासन पालना पड़ता है। यदि वह सब न बन पड़े तो फिर शक्ति घटती जाती है। वह निरर्थक पड़ी रहने पर स्थिर नहीं रहती। जो उपार्जन नहीं करते उनकी पूँजी समाप्त होती चली जाती है। घटना या बढ़ना एक क्रम है। जो बढ़ेगा नहीं, सो घटेगा ही।

शरीर का स्थान मन से भी है। पुरुषार्थरत का मात्र शरीर ही काम नहीं करता साथ में मस्तिष्कीय क्षमताओं का भी नियोजन होता रहता है। बुद्धिमत्ता की अभिवृद्धि का यही तरीका है कि उसे बड़े उत्तरदायित्व सौंपे और पूरा करने के अवसर दिये जायँ। माँ के पेट से कोई बुद्धिमान नहीं जन्मता। मानसिक शक्तियों का निरन्तर प्रयोग करते रहने पर ही दार्शनिक, वैज्ञानिक, विद्वान, व्यवसायी, विशेषज्ञ कलाकार अपने–अपने क्षेत्रों में अधिकाधिक कुशलता प्राप्त करते प्रवीण, पारंगत होते देखे गये हैं, पर आलसी तो इस प्रकार के सुयोग से अपने आपको वंचित ही करते चले जाते हैं। जब शरीर ही काम नहीं करेगा तो मन को भी व्यावहारिक चिन्तन करते न बन पड़ेगा। शेख चिल्ली जैसी रंगीन कल्पनाओं वाली बिना पंख की काल्पनिक उड़ाने भर भले ही उड़ता रहे।

आलस्य का अर्थ काम को पूरी तरह छोड़ बैठना, पलंगों पर पड़े रहना ही नहीं है वरन् यह भी है कि कार्य को धीमी गति से, रुक–रुक कर उपेक्षापूर्वक, अन्यमनस्क होकर किया जाय। ऐसे कामों की परिणति बड़ी फूहड़ और कुरूप होती है। उसे बेगार की तरह भुगतने पर काम के बदले उपहास, तिरस्कार ही मिलता है।

आलस्य और प्रमाद का जोड़ा है। जहाँ एक रहेगा, वहाँ दूसरा पहुँचे बिना रहेगा नहीं। आलसी से प्रमाद उग आते हैं और प्रमादी को आलसी बनने की आदत पड़ जाती है। शरीर सक्रिय रहता है तो नियत कामों में पन भी लगता है। मनमें उत्कंठा उभरे तो उस के लिए शरीर को भी काम करना पड़ेगा। यह डायनुमो और बैटरी जैसा संयोग है। दोनों की मध्यवर्ती सक्षमता तभी गतिशील रहती है। जब अपने को व्यस्त रखा जाय– शारीरिक दृष्टि से भी और मानसिक दृष्टि से भी। यही प्रगति का समृद्धि का मूल मंत्र है।

इन दिनों श्रम क्षेत्र में भी असन्तुलन का दौर चल पड़ा है। बुद्धिजीवी शारीरिक श्रम से बचते हैं और श्रमिकों को बुद्धिबल बढ़ाने की उत्सुकता नहीं उठती। यह एकाकीपन अस्वस्थता और मूढ़ता को जन्म देता है। शरीर श्रम से बचने वाले बुद्धिजीवी प्रायः अनेक रोगों से घिरे रहते हैं। इसी प्रकार जिन्हें पसीना बहाने वाले परिश्रम भर से संतोष करना पड़ता है उनकी बुद्धिमत्ता अविकसित स्थिति में ही पड़ी रहती है। होना यह चाहिए कि हर वर्ग को शारीरिक और मानसिक श्रम करने का समान अवसर मिले। कोई भी आलस्य और प्रमाद से ग्रसित न होने पाए। इसी में सबका सब प्रकार कल्याण है। ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़प्पन का आधार—श्रमनिष्ठा

उसके कदम ठिठक गए। चेहरे पर कुछ झल्लाहट के चिन्ह भी उभरे। सोचने लगा किससे मिलना था, कहाँ भेज दिया, वह भला यहाँ क्यों होंगे। उन्हीं से मिलने के लिए तो वह इतनी दूर से आया है, नहीं तो कहाँ अमेरिका और कहाँ यह भारत। बम्बई की भूमि का स्पर्श करके सीधा चला आ रहा था। चेहरे पर थकावट के चिन्ह, कपड़ों पर गर्द स्पष्ट दीख रही थी। प्रश्न थकावट का नहीं उनके दर्शन का था। पर। आगे कुछ सोच पाता इसके पूर्व पानी बाल्टी ले जा रहे एक सज्जन ने टोका आपको बापू जी से मिलना है ?

"बापू जी नहीं, महात्मा गाँधी से उसका संक्षिप्त सा जवाब था।" वह रहे।" उसने तरकारी काट रहे व्यक्तियों में से एक की ओर इशारा किया क्या। आश्चर्य के मारे वह ठीक से बोल न सका। सब्जी काटने में तन्मयता से जुटा तनिक साँवले रंग का यह व्यक्ति—सामान्य वस्त्रों में कुछ पास तो नहीं दिखता। वह गौर से उनकी ओर देखने लगा, लम्बे कान, सिर पर हल्के से बाल मुस्कान की आभा को सर्वदा धारण करने वाला मुख और आँखें... । इस ओर दृष्टि जाते ही उसे लगा व्यक्ति सचमुच गहरा होगा। उनकी दृष्टि जैसे तीर के अग्रभाग की तरह अतिदूर अदृश्य की ओर लक्ष्य किए है साथ ही दम भर में लौटकर पास की चीज पर भी बिजली की तरह चोट कर सकती है। वह अवाक् सा खड़ा उनकी ओर देख रहा था सोचा पर यहाँ सब्जी क्यों काट रहा है ? इतने में यह स्वयं सब्जी काटना छोड़ ठीक उसी के सामने आ कर बोले "आप तो अचानक रुक गए आइए न। कहने के साथ ही उन्होंने उसे सिरसे पाँव तक देखा। दो क्षण बाद कहने लगे शायद आप थके अधिक हैं। स्नान आदि से निबट लीजिए भोजन पर बातें होंगी।" आने वाला एक व्यक्ति के साथ दूसरी ओर चला गया।

ठीक दो घण्टे बाद दोनों साथ बैठकर भोजन करने लगे

"भोजन ठीक लग रहा है"। गाँधी जी ने स्नेह पूर्ण शब्दों में पूछा। "क्यों न लगेगा। आखिर तरकारियाँ आपने जो काटी हैं। हाँ इसमें सामूहिक श्रम का स्वाद है।

"पर आप इन सब साधारण कामों में जुटते हैं यह आज पता चला। वह अपने अन्दर के आश्चर्य को व्यक्त करने से रोक न सका"।

"साधारण क्यों, हर एक की अपने स्थान पर उतनी ही आवश्यकता और उपयोगिता है"। कहते हुए उन्होंने रोटी के कौर को थाली में रखी नीम की चटनी में डुबोया।

"किन्तु आप जैसे बड़े आदमी" "दुर्भाग्य है मानव समाज का जहाँ आलसी, विलासी, कामचोर, मुफ्त खोर बड़े माने जाते हैं। इस मामले में मनुष्य से समझदार तो मधु मक्खियाँ है जो आलसियों मुफ्तखोरों को निकाल बाहर करती हैं। वाणी से हृदय की व्यथा छलक पड़ी। वह तो उनके चेहरे की ओर ताकता रह गया।

इधर वह कह रहे थे मेरा अटल सिद्धान्त है जो श्रम की अवहेलना करके भोजन करता है निश्चित रूप से चोर है। भले कोई भी क्यों न हो। मि. गाँधी श्रम मानसिक भी तो होता है उसके लिए क्या आवश्यक है कि सब्जी काटी जाय। कहकर उसने पानी का गिलास उठाया।

यह तो है पर अपाहिज हो जाना कोई अच्छी बात तो नहीं। अपाहिज स्वर में आश्चर्य था।

और नहीं तो क्या ? जिस तरह शरीर के अनेकों अंग है उनमें से किसी के काम न करने पर अपाहिज माना जाता है। उसी प्रकार मानवीय व्यक्तित्व के अंग हैं शरीर मन, आत्मा। इनमें से किसी की निष्क्रियता बर्दाश्त नहीं। किसी के निठल्ले पड़े रहने का मतलब है अपाहिज हो जाना। जब शरीर को ही जड़ता घेर लेगी, तब मन, और आत्मा तो तम के गहरे कुएँ में चले जाएँगे।

बात समझ में आने वाली थी "और जहाँ तक बड़े होने की बात है, उसका एक ही मानदण्ड है जो जितना अधिक श्रम करे वह उतना ही बड़ा। भावी मनुष्यता इसी पैमाने के आधार पर सम्मानित करेगी"।

उसे भोजन की तृप्ति के साथ एक और भी तृप्ति मिल रही थी। समाधान पाने की। श्रम की गरिमा समझने वाले यह मुलाकाती अमेरिकन सज्जन थे रिचर्ड बी. ग्रेग और समझाने वाले थे अपने राष्ट्रपिता। अच्छा हो हम भी उनकी इस स्वानुभूति को अपना सकें कि श्रमशीलता ही यथार्थ बड़प्पन और सम्मान का आधार है। ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहकार का सत्कार

है मौंग यह सबसे बड़ी, मिलकर चलो–मिलकर चलो ।।
बाती किसी की, स्नेह सबका, किन्तु तुम मिलकर जलो ।।

हैं अति कठिन, भीषण बहुत, इस जिन्दगी के रास्ते ।
संघर्ष करना है जरूरी , सफलता के वास्ते ।।
कटता कठिन रस्ता, कि जब हमराह कोई साथ हो ।
उठता वजन भारी, कि जब, सहयोग का भी हाथ हो ।।
सुख दुख सहो, मिलकर परस्पर–पीर सबकी बाँट लो ।
है मौंग यह सबसे बड़ी,मिलकर चलो, मिलकर चलो ।।

नदियाँ निरंतर दे रहीं, जलदान खारे सिन्धु को ।
श्रम कर उदधि बादल बनाता जा रहा हर बिन्दु को ।।
सहकार की इस नीति पर , संसार सारा चल रहा ।
रस–प्राप्ति भी इस तरह, यों सृष्टि का क्रमचल रहा ।।
सहयोग का व्रत लो–घृणा, विद्वेष, ईर्ष्या को दलो ।
है मौंग यह सबसे बड़ी, मिलकर चलो–मिलकर चलो ।।

संवेदना का रस, बहुत मीठा–बहुत ही लाभप्रद ।
"कोई हमारे साथ है "–अनुभूति यह अति ही सुखद ।।
मिलकर करो, तो काम दुस्तर भी सरल, लगता सखे !
मिलकर जियो तो बोझ जीवन का मृदुल लगता सखे !
सहकार की जय बोलकर सुख–शान्ति के रस में पलो ।
है मौंग यह सब से बड़ी, मिलकर चलो मिलकर चलो ।।

–माया वर्मा

अभिनन्दनीय मानव

इस समय जो ज्योतिवाहक बन सकेगा ।
कल उसी का काल अभिनन्दन करेगा ।।
आत्म केन्द्रित हो गया हर कार्य अब तो ,
दृष्टि मानव की हुई अब संकुचित है ,
किन्तु केवल स्वार्थपरता की परिधि में ,
घूमते रहना नहीं बिल्कुल उचित है ,
दीन दुखियों के हृदय की वेदना से ,
जो हृदय होगा द्रवित, क्रन्दन करेगा ।
कल उसी का काल अभिनन्दन करेगा ।।
उचित पथ पर चल पड़ें ले ज्योति कर में,
यह नयी पीढ़ी हमें नेतृत्व देगी ,
आज मानवता अँधेरे में भटकती ,
कल दिशा पाकर हमें अमरत्व देगी ,
लोकहित के ताप में खुद को तपाकर ,
जो कि निज जीवन यहाँ कुन्दन करेगा ।
कल उसी का काल अभिनन्दन करेगा ।।
हम जहाँ हों सौम्य मुस्कानें बखेरें ,
फूल सा खिलता हुआ निज आचरण हो,
कार्य पद्धति और चिन्तन से हमारे ,
श्रेष्ठता से पूर्ण हर वातावरण हो ,
हर तरफ उगती लताओं पादपों को ,
गंध देकर क़ाष्ठ से चन्दन करेगा ।
कल उसी का काल अभिनन्दन करेगा ।।
सौगुना होगा फलित–पुष्पित वही तो ,
बीज सा भूगर्भ में जो गल सकेगा ,
बाँटने को जो यहाँ आलोक सबको ,
दीप सा तिल तिल निरन्तर जल सकेगा ,
लोक मंगल के लिए जो हो समर्पित ,
युग उसी मनु पुत्र का वन्दन करेगा ।
कल उसी का काल अभिनन्दन करेगा ।।

–शचीन्द्र भटनागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सविता देवता की समर्थ साधना

गायत्री महामंत्र की गरिमा सर्वविदित है । उसकी साधना से जिस चमत्कारी शक्ति-सम्पदा की उपलब्धि होती है, उसका उद्‌गम केन्द्र 'सविता' है । गायत्री का अधिपति सविता देवता है । विशिष्ट साधना विधानों की सहायता से उसी की दिव्य शक्तियों को आकर्षित किया जाता है और साधक को भौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से सर्व समर्थ बनने का अवसर मिलता है । प्राचीन काल के दिव्यदर्शी ऋषि-मनीषी इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे । उनने भूतकाल से ही सूर्य का उपयोग सविता-साधना के रूप में मनुष्य की सर्वतोमुखी प्रगति के लिए-उत्कर्ष के लिए किया है । युगान्तरकारी महापरिवर्तन की प्रस्तुत संधिवेला में भी उसी की दिव्य शक्तियों का आव्हान किया गया है ।

अगले ही दिनों सूर्य की प्रबल प्रेरक शक्तियाँ अपने प्रचण्ड प्रवाह से मानवी मस्तिष्कों की अवांछनीय दिशा धारा को , ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को मोड़कर-मरोड़कर सृजनात्मकता की ओर उन्मुख कर दें और धरित्री पर सर्वत्र स्वर्गोपम परिस्थियाँ तथा मानव में देवत्व के दर्शन होने लगें , तो इसमें किसी को कोई आश्चर्य नहीं मानना चाहिए ।

सूर्य विज्ञान और सविता साधना एक ही तथ्य के स्थूल और सूक्ष्म रूप हैं । सूर्य विज्ञान से भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का सुयोग मिलता है तो सविता साधना स आध्यात्मिक उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं । वैदिक युग में सूर्योपासना सर्वोपरि थी । वेद एवं उपनिषदों में सूर्य को जगत की आत्मा के रूप में उल्लेख किया गया है और कहा गया है कि सारा जगत उसी से प्रकाशित होता और प्राणवान बनता है । वह जीवनी शक्ति और चेतना शक्ति का घनीभूत रूप है । सबको वर्चस् और ज्योति उसी से मिलती है । प्राणियों की उत्पत्ति , पोषण आदि का तथा संसार की सृष्टि , स्थिति और संहार का निमित्त कारण भी सूर्य है । सूर्य न केवल प्रकाशक , प्रवर्तक एवं प्रेरक है , वरन् वह आरोग्यकारक , अरिष्ट निवारक एवं पीड़ा पतन का, बिगाड़ का परिहार करने वाला भी है । समस्त आशंकाओं, अनिष्टों , अनाचारों का निवारक भी वह है । प्राकृतिक नियमों, मानवी मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाले दुरात्माओं का संहारक-विघातक भी उसे कहा गया है । 'ज्योतिषां ' रविरंशुमान' कहकर गीताकार ने उसे अपनी विभूति के रूप में निरूपित किया है । सूर्य की सविता देवता की प्रचण्डता, समर्थता एवं श्रेष्ठता के प्रतिपादनों से वैदिक साहित्य भरा पड़ा है । सूर्योपस्थान, सूर्य आराधना, सूर्य नमस्कार, सविता साधना जैसे आध्यात्मिक उपाय-उपचार मानवी चेतना की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही विनिर्मित किये गये हैं ।

पाश्चात्य मनीषी भी सूर्य को सम्पूर्ण सृष्टि का कारण मानते हैं । प्रख्यात दार्शनिक प्लेटो के अनुसार सूर्य मात्र प्रकाश या ताप का पुंज नहीं, वरन् जीवन ज्योतियों का रश्मि समूह है जो सौर मंडल में एकत्र होतीं और नाना विधि शक्ति उत्पन्न करती हैं । इसे उन्होंने सेफिरो ' 'डिवाइनइन्टैलिजैन्स' के नाम से सम्बोधित किया है । स्कॉट ने अपनी कृति "द साइकिल्स आफ हेवन " में इसे ही 'ब्रह्माण्डीय प्रभाव ' कहा है । उनके अनुसार सूर्य मंडल की शक्तियाँ न केवल भौतिक परिवर्तन प्रस्तुत करती हैं, वरन् हमारे मस्तिष्क एवं व्यवहार को भी प्रभावित परिवर्तित करती रहती हैं । इनके बिना तो पृथ्वी पर जीवन की कल्पना तक नहीं की जा सकती । सूर्य की किरणें यदि धरती तक न पहुँचें तो यहाँ जीवन एवं हरीतिमा नाम की कोई वस्तु दृष्टिगोचर न होगी ।

वस्तुतः सौर मंडल के समस्त ग्रह-गोलकों सहित अपने धरातल की सारी हलचलें सूर्य के अनुदान पर ही अवलम्बित हैं । पृथ्वी की अपनी विशिष्टताएँ एवं क्षमताएँ परोक्ष रूप से सूर्य की ही देन हैं । ब्रह्माण्डीय अनुदानों के रूप में उसे जो कुछ प्राप्त होता है , उसमें सूर्य का भाग ही प्रमुख होता है । भौतिक जगत पर सविता का अजस्र अनुदान ऊर्जा, ताप और प्रकाश के रूप में बरसता है, तो आत्मिक क्षेत्र पर उसका अभिवर्षण प्राण के रूप में,सत्प्रेरणाओं -सद्‌भावनाओं के रूप में होता है । साम्ब-उपनिषद् में उल्लेख है कि सूर्य का समग्र तेजो मंडल दो शक्ति धाराओं में विभक्त है जिन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'संज्ञा ' एवं छाया के नाम से जाना जाता है । इनका कार्य समस्त लोकों में निवास करने वाले प्राणियों के भीतर ज्ञान एवं क्रिया का उद्दीपन करना है । पुराणों में इन्हें ही सूर्य की दो पत्नियों के रूप में वर्णन किया गया है और कहा गया है कि 'संज्ञा ' ज्ञान चेतना के रूप में 'छाया' कर्म एवं क्रियाशीलता के रूप में प्राणि चेतना में कार्यरत रहती हैं । सविता साधना में इन्हीं शक्तियों का अवगाहन अवधारण किया और ओजस्, तेजस् एवं वर्चस् की बहुमूल्य विभूतियों –सम्पदाओं से लाभान्वित हुआ जाता है ।

जरथ्रुस्त्र ने सूर्य को विराट् चेतना का प्रतीक माना और जीवन को उससे उद्भूत अविनाशी अंश बताया है । उनके अनुसार धरती पर पाये जाने वाले या निवास करने वाले जड़–चेतन सभी का उत्पादनकर्ता सूर्य है । उसी की रश्मियों से उन्हें गति और शक्ति मिलती है । भौतिक प्रकाश के अतिरिक्त आभ्यांतरिक प्रकाश भी हमें उसी से मिलता है । सविता की प्रकाश रश्मियाँ ब्रह्माण्डीय चेतना के रूप में मानवी अन्तराल में प्रविष्ट होकर उसे आत्मोत्कर्ष की दिशा में आगे बढ़ने , ऊँचा उठने के लिए प्रेरित करती हैं । सूर्य के प्रकाश में सप्तवर्णी रश्मियों के अतिरिक्त अल्ट्रावायलेट , इन्फ्रारेड , कॉस्मिक आदि शक्तिशाली अदृश्य किरणें भी सम्मिलित रहतीं और धरातल तक पहुँच कर अपने–अपने गुणों एवं विशिष्टताओं के आधार पर वनस्पति जगत एवं प्राणि जगत को प्रभावित करती हैं । ठीक इसी तरह उससे भी अधिक शक्तिशाली सूक्ष्म ऊर्जा तरंगें सूर्य से निस्सृत होकर अपनी कृपा की वर्षा मानव समुदाय पर करती रहती हैं । जरथ्रुस्त्र ने इन्हें 'दिव्य आध्यात्मिक किरणों 'के नाम से सम्बोधित करते हुए कहा है कि अभ्युदय की अभीप्सा रखने वालों के अंतःकरण में यह सीधे प्रवेश करतीं और प्राण चेतना में उच्चस्तरीय उभार उत्पन्न करती हैं । उनके अनुसार विशेष परिवर्तनों के समय जब कभी 'दिव्य आध्यात्मिक रवि रश्मियाँ ' अपनी समग्रता के साथ पृथ्वी पर उतर आती हैं तो सर्वत्र उथल–पुथल मच जाती है । आन्दोलनों, परिवर्तनों एवं महाक्रान्तियों के अम्बार लग जाते हैं । विश्व में हुई विभिन्न महाक्रान्तियाँ इसकी साक्षी हैं । प्रस्तुत समय इसी तरह की सौर सक्रियता से भरापूरा है । अब विज्ञान-वेत्ताओं ने भी इसकी पुष्टि कर दी है । ग्रीक अध्यात्मवेत्ता जूलियन ने सूर्य सम्बन्धी अपनी व्याख्या–विवेचना में उक्त तथ्य की पुष्टि करते हुए सूर्य के तीन रूपों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । प्रथम पार्थिव ईथर के रूप में, दूसरा–लाइटआफ हेवन के रूप में तथा तीसरा विशुद्ध आध्यात्मिक माना है । उनका मत है कि जब कभी धरती पर विध्वंसकारी प्रवृत्तियों का बाहुल्य हो जाता है, सर्वत्र विक्षोभकारी परिस्थितियाँ ही विस्तार ले लेती हैं, तब सूर्य अपने तीसरे रूप में प्रकट होता है और अपने प्रचण्ड शक्ति प्रवाह से ध्वंस को सृजन में बदल देता है । इसकी पुष्टि पाइथागोरस एवं एनाक्सागोरस की रचनाओं में भी की गई है ।

वस्तुतः मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति में सविता देवता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । उनके अनुसार मनुष्य जितना अधिक पार्थिव शक्तियों से प्रभावित होता है, उससे भी कहीं अनेक गुना अधिक उसे सौर शक्तियाँ उत्तेजित , आन्दोलित करती हैं । पार्थिव शक्तियाँ गुरुत्वाकर्षण के नियमानुसार नीचे की ओर खींचने का प्रयास करती दीखती हैं , जबकि सूर्य की शक्तियाँ ऊर्ध्वगामिता की ओर ले जाती हैं । सूर्य ही है जो समस्त ग्रह पिण्डों को अपनी आकर्षण शक्ति से बाँधे हुए है और उन्हें अपनी–अपनी कक्षा में परिभ्रमण के लिए बाधित किये हुए है । उस की शक्तियाँ ही पृथ्वी पर उतरती और मनुष्य समेत समस्त प्राणियों एवं वनस्पतियों में प्राण भरती हैं । संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं , जिनने भी क्रान्तियों का संचालन किया है , मनीषियों ने उन्हें सविता–शक्ति से संचालित बताया है । प्राचीनकाल के ऋषि–मनीषियों के आराध्य देवता सूर्य ही थे । वैदिक ऋचाएँ सूर्यमंत्रों से भरी पड़ी हैं । इस रहस्य को यदि समझा जा सके तो ब्रह्माण्डीय शक्तियों को आकर्षित करने और महानता की ओर अग्रसर होने का अवसर हर किसी के समक्ष प्रस्तुत है ।

दिव्य द्रष्टा मनीषियों का कहना है कि इन दिनों अपने सौर मंडल में कुछ ऐसा ही घटित हो रहा है । एक ओर जहाँ किन्हीं अज्ञात कारणों से सूर्य की गर्मी में वृद्धि के साथ सौर–कलंकों–सूर्य धब्बों की बाढ़ सी आई हुई है और विनाशकारी विभीषिकाओं को आमंत्रित करती दीख रही हैं, वहीं दूसरी ओर अभिनव सृजन शक्ति की परिपूर्ण उज्ज्वल भविष्य का सरंजाम जुटाये सूर्य की आध्यात्मिक शक्तियाँ भी प्रचण्ड प्रवाह के रूप में धरती पर घटाटोप बनकर बरस रही हैं । आवश्यकता मात्र उनकी ओर अभिमुख होने और आत्मसात करने की है । सविता साधना में स्वयं के उत्कर्ष के साथ समूचे संसार का कल्याण सन्निहित है । *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल की धड़कन के साथ चलने वाला विज्ञान

फ्रांस की राजधानी पेरिस के एक सभागार में हजारों लोग जमा थे । सभी उत्सुकता और आश्चर्य से मंच पर टकटकी लगाए हुए थे । इसका कारण था आज प्रदर्शित किया जाता विलक्षण प्रयोग । बात स्वाभाविक है- किसे यह जानकर आश्चर्य न होगा कि जिन पौधों को अभी तक निर्जीव समझते रहे हैं, जड़ता की मान्यता से विभूषित कर रखा है, वे भी चेतन और सजीव हैं ।

इस असम्भव सी लगने वाली बात को अपने वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध किया जाना था । ज्यों–ज्यों समय बीतता जा रहा था–उत्सुकता बढ़ती जा रही थी । इतने में एक भारतीय वैज्ञानिक अपने सहायकों के साथ मंच पर आए । उन्होंने छोटा सा उद्बोधन दिया । मित्रो ! पादप वर्ग भी हमारी ही तरह सचेतन और प्राणवान है । जो विष हमारे प्राण हरण कर निर्जीव बनाता है उसे यदि पौधों में इन्जेक्शन के द्वारा प्रवेश करा दें तो वे भी प्राणहीन और निर्जीव हो जाएँगे । इस कथन के तुरन्त बाद उन्होंने तीव्र विष–पोटेशियम सायनाइट की पुड़िया माँगी । वहीं के सज्जन ने उसे ला कर दिया । इसे बीकर में घोला गया । घोल को इन्जेक्शन में भर कर गमले में लगे एक पौधे को लगाया । पर यह क्या ? एक मिनट दो मिनट पूरे दस मिनट हो गए पौधा ज्यों का त्यों रहा । फिर क्या प्रयोग झूठा है ? पूर्व मान्यताएँ ही सही थीं उपस्थित लोगों के बीच से असन्तोष के स्वर उभरे ।

भारतीय वैज्ञानिक भी चकित था । यकायक उसके चेहरे पर दृढ़ भाव झलके–दृढ़ स्वरों में उसने कहा कि यदि इस जहर से पौधा नहीं मर सकता तो मैं भी नहीं मरूँगा। इस वाक्य के साथ बीकर के शेष घोल को उठाया और गटा–गट पीने लगा । जन समुदाय की नहीं नहीं की आवाजें उसे विरत नहीं कर सकीं । पर अरे ! वह भी तो नहीं मरा । तो क्या पोटेशियम सायनाइट नकली था । जी हाँ उसने आश्चर्य को तोड़ते हुए कहा मुझे विष की जगह शक्कर दी गई थी , घोल भी इसी का था । शर्बत पीने से भला पौधा क्यों मरने लगा । यही कारण है वह मेरी तरह खुश है । ईर्ष्यालु षड्यन्त्रकारियों के चेहरे झुक गए । उनकी सोच थी इस तरह उसे भरी सभा में अपमानित किया जा सकेगा । पर जिसमें लक्ष्य के प्रति दृढ़ता व अपने प्रति विश्वास है उन्हें मार्ग से विरत करने की सामर्थ्य किसी में नहीं होती ।

असली पोटेशियम सायनाइट लाया गया । इसके घोल को चुभोते हुए पौधा कुम्हलाया सूखा और मुरझा गया । उपस्थित लोगों के चेहरे खिल उठे । क्यों न हो आखिर ज्ञान के एक नए अध्याय का शुभारम्भ जो हुआ था । ईर्ष्यालु खिसक गए । भारतीय वैज्ञानिक के चेहरे पर एक आत्मविश्वासी का तेज था ।

यह भारतीय वैज्ञानिक और कोई नहीं श्री जगदीश चन्द्र बसु थे । सत्य को उद्घाटित करने की तीव्र अभीप्सा को हृदय में सँजोने वाले श्री बसु की नीति थी कि विज्ञान मनुष्य के लिए है न कि मनुष्य विज्ञान के लिए । यह तभी तक उपयुक्त है जब तक मानव हृदय में धड़कती संवेदनाओं के साथ तैयार हो ।

वह स्वयं भी अपने को सर्वप्रथम सरस सम्वेदनाओं से युक्त मनुष्य मानते थे । उनके लिए इसकी एक ही कसौटी थी, मनुष्य वही है ,जो मनुष्यता को खुशहाल बनाए रखने के लिए अपनी सर्वाधिक प्रिय चीज को त्यागने के लिए तत्पर हो जाय । उन दिनों बंगाल अकाल–महामारी की चपेट में आ गया । उन्हें भी प्रयोगशाला की दीवारें कैद न रख सकीं । आर्थिक सहायता दी । लोगों को अनेकों तरह से मदद करने के लिए प्रोत्साहित किया । यही नहीं इस अवसर पर उन्होंने कहा यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूरत पड़ी तो प्रयोगशाला बेच देंगे । अरे यह क्या ? मित्र –सहयोगी भौंचक्के रह गए । इतनी कठिनाइयों से स्थापित की गई प्रयोगशाला जिसमें घर का सब कुछ खप गया । जिसने उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का बनाया । शीर्षस्थ स्तर तक पहुँचाया अमूल्य–बहुमूल्य मान–सम्मान पदक उपाधियाँ सभी कुछ दिलाई । उसे बेचने की बात कहना क्या कृतघ्नता नहीं है ?

इस प्रश्न के जवाब में श्री बसु के नेत्रों में आँसू छलछला आए । बड़ी कठिनाई से भरे गले से जवाब दिया । नही मित्रो यह कृतघ्नता नहीं है । यद्यपि प्रयोगशाला मेरा जीवन है प्राण है । पर मानवता के इतिहास में ऐसे क्षण आते हैं जबकि प्राणों का त्याग करना पड़ता है । ऐसे अवसर पर सहर्ष प्राण दान भी विजय का द्योतक होता है । मानवता बिलखती –तड़पती रहे–और मैं बैठा रहूँ प्रयोगशाला तो क्या कोई मुझे खरीदने को तैयार हो तो स्वयं भी बिक जाऊँ । डॉ. बसु के इन भावों ने अनूठी जाग्रति पैदा की । देने वालों की थैलियाँ खुल गईं । सभी ने आश्वासन दिया नहीं प्रयोगशाला नहीं बिकेगी । श्रम, समय, धन देने वालों की ऐसी बाढ़ आयी । अकाल का मुख बन्द हो गया । पर बसु की भावनाएँ उतनी ही उदात्त रहीं । वह जो कुछ कमाते उसका पांचवा भाग अपने ऊपर खर्च करते । इसका कारण कंजूसी नहीं "सादा–जीवन उच्चविचार " की वह नीति थी जिसे उन्होंने घुट्टी के रूप में बचपन में सीखा था । शेष धन पर वह समाज का अधिकार मानते । नोबुल पुरस्कार की राशि भी उनने समाज को अर्पित करदी थी ।

देश में स्त्री शिक्षा की शुरूआत हुई । निवेदिता ने इस कार्य के लिए अपनी आहुति दी । श्रम तो था, पर धन नहीं । डॉ. बसुने कहा–धन के कारण ऐसा पुनीत कार्य नहीं रोका जा सकता । उन्होंने एक लाख रुपया तुरन्त दिया । इसी प्रकार शराब बन्दी के लिए प्रयत्न किए गए । न जाने कितने लोग, व्यक्ति, परिवार मदिरा–राक्षसी की चपेट में आते और नष्ट होते । जनमानस में जाग्रति आए, इसके लिए एक लाख रुपए दिए । जिससे नाटक मंचन, साहित्य प्रचार आदि सार्थक साध[न] के द्वारा जनमानस को झकझोरा जा सके ।

देश आगे बढ़े समाज प्रगतिशील बने इसमें विज्ञा[न] वैज्ञानिकता की भूमिका को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता । यह भूमिका और अधिक प्रभावकारी ब[ने] इस हेतु उन्होंने "बसु विज्ञान मन्दिर " की स्थापना में अपना १५ लाख रुपया लगा दिया । यही उनकी समाज देवता को अर्पित की गई पूर्णाहु[ति] थी ।

अब वह वृद्ध हो चुके थे । सन् १९३७ में ७[९] वर्ष की अवस्था में २३ नवम्बर के दिन कर्मठता लगन और भावनाओं का मूर्तिमान स्वरूप इन गुणों का उपदेश देता हुआ चिरनिद्रा में लीन हो गया । महानतम वैज्ञानिक आइंस्टीन ने क[हा] "डॉ बसु का एक–एक कार्य इतना महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक के लिए विजय सतम्भ स्थापित किया जा[ना] चाहिए । " अच्छा हो यह स्थापना पाष[ाण] शिलाओं की न होकर जाग्रत, जीवन्त, स[च्चे] व्यक्तियों के रूप में हो । हम स्वयं उनकी कर्मठ[ता] भावनाशीलता को अपने में सँजो सकें । स्वयं [को] समाज देवता को सर्वस्व अर्पण करने का साह[स] जुटा सकें । हमारे दिल की धड़कनों में पीड़ितों [की] आवाज उभर सके तो निःसन्देह स्तम्भ के रूप [में] स्थापित हो सकेंगे । ✱

ज्ञातव्य

परम पूज्य गुरुदेव की पावन स्मृति में श्रद्धांजलि स्वरूप आगामी अगस्त-सितम्पर माह का अखण्ड-ज्योति पत्रिका का संयुक्तांक प्रकाशित होगा जो परिजनों को अगस्त अंत तक मिलेगा । यह नियमित पत्रिका से काफी बड़े आकार का व रंगीन होगा । सभी नियमित पाठकों को यह विशेषांक प्राप्त होगा । इसके बाद अगला अंक अक्टूबर माह में निकलेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक्कीसवीं सदी की एक रूपरेखा

आजकल विज्ञान की एक नई शाखा का विकास हुआ है–"*फ्यूचरोलॉजी–भविष्य विज्ञान* " जिसके आधार पर वर्त्तमान की परिस्थितियों का अध्ययन–विश्लेषण कर भविष्य का अनुमान लगाया जाता है । यह सही है कि वर्त्तमान के आधार पर भविष्य का थोड़ा–बहुत अनुमान लगाया जा सकता है । कोई व्यक्ति यदि आज बुरे कार्य में संलग्न है, तो उसे देख कर यह तर्क दिया जा सकता है कि उसका आने वाला समय खराब होगा, पर कई बार अनुमान गलत भी हो जाता है । समय से पूर्व यदि वह अपनी गलतियों को सुधार ले, तो उसका भविष्य ऐसा बनता है, जिस पर प्रसन्नता व्यक्त की जा सके ।

कुछ ऐसे ही विचार आने वाले समय के बारे में प्रकट किये हैं न्यूयॉर्क (अमेरिका) के हडसन इन्स्टीट्यूट के भविष्य विज्ञानियों ने। इन्स्टीट्यूट के निदेशक हरमन कान्ह अपने सहयोगी एन्थोनी विनर के साथ कृषि एवं खाद्य संकट के समाधान के रूप में लिखते हैं कि सन् दो हजार के पहले वाली दशाब्दि में मनुष्य अपनी गलतियों को समझ जायेगा और सुधारने के लिए तेजी से प्रयास करेगा इसके अन्तर्गत लोगों की रुचि औद्योगिक उत्पादन की अपेक्षा खेती करने एवं वृक्षारोपण करने की होगी । वृक्ष को खाद पानी एवं सुरक्षा देकर बड़ा करना लोग अपना व्यक्तिगत दायित्व मानेंगे । इसी को धार्मिक व्यक्ति पुण्य परमार्थ मानेंगे और ऋद्धि सिद्धियों से सम्पन्न होने की यही कसौटी मानी जाएगी कि कौन कितना विश्व वसुधा को संतुलित करने एवं विनाश से बचाने के लिए प्रयासरत रहा । अनेकों संश्लेषित खाद्य पदार्थों एवं पेय पदार्थों का विकास होगा जो मूलतः प्राकृतिक पदार्थ रहेंगे । आज के उद्योगों के विकल्प में मनुष्य ऐसी विधा खोजने में समर्थ हो जायेगा , जिसका कोई भी विनाशकारी परिणाम उत्पन्न न हो ।

वे ऊर्जा संकट के बारे में लिखते हैं कि जीवाश्म ईंधन स्रोत (कोयला, पेट्रोल , डीजल) समाप्त होने के पहले मानव जाति सूर्य एवं भूतापीय शक्ति को ऊर्जा स्रोत के रूप में बदल देने में समर्थ हो जाएगी और यह ऊर्जा प्राप्ति का सरल एवं सीधा माध्यम बनेगा । सच्चे अर्थों में भौतिक क्षेत्र में उपलब्धि का केन्द्र सूर्य ही होगा । अणु परमाणु का उपयोग वैज्ञानिक वर्ग विनाश के लिए नहीं, अपितु विकास कार्यों में करेंगे जिसका केन्द्र बिन्दु होगा न्यूक्लीयर शक्ति का शांतिपूर्वक उपयोग ऊर्जा का उत्पादन ।

मनुष्य शरीर के जैविक विकास के संबंध में उनकी मान्यता है कि मानव समाज धीरे धीरे एक नई प्रजाति की ओर बढ़ रहा है जो सन् २००१ तक अपने चमत्कारी रूप में सामने आयेगा । वंशानुक्रम के परिवर्तन को लोग आश्चर्य की दृष्टि से देखेंगे, जिसकी रुचि भौतिकवाद की ओर न होकर आध्यात्म की ओर होगी । स्वस्थ रहने के नये तरीके वजन घटाने के लिए प्राकृतिक माध्यम स्वप्नों का सदुपयोग, मनुष्य के अंग अवयवों का प्रतिरूप जो संकट में काम आ सके तथा वैचारिक आदान प्रदान का मस्तिष्कीय तरंगों द्वारा प्रयोग , जिससे लोग आध्यात्म की ओर रुचि रखने लगेंगे । जनसंख्या अभिवृद्धि को रोकने के लिए संयम–नियम से जन्म दर को रोकने की नई एवं प्राचीन विधा के प्रति विश्वास उत्पन्न होगा ।

समूचा विश्व एक परिवार के रूप में विकसित होगा तब अपराधियों की संख्या स्वयं ही कम हो जायेगी । भ्रातृभावना जन–जन के मनों को आन्दोलित करेगी और वाध्य करेगी कि वह न अनीति बरते और नहीं इसे समर्थन दे । ब्राह्मणत्व पुनर्जीवित होगा , उसका एक ही आधार रहेगा कि किसने अपनी आवश्यकता को कम किया और कम साधनों में निर्वाह किया ।

सभी राष्ट्र एक होकर जल एवं वायु प्रदूषण के लिए सामूहिक उपचार की बात सोचेंगे, क्योंकि इन दोनों का प्रदूषण किसी –न–किसी रूप में समूचे विश्व को प्रभावित करेगा । इस प्रकार भौगोलिक सीमा बन्धन न रहेगा और सभी राष्ट्र अपनी–अपनी समस्याओं का एक साथ मिल बैठ कर समाधान सोचेंगे , तब एक विश्व एवं उसकी एक व्यवस्था की कल्पना साकार हो जायेगी । यह वही समय होगा, जिसे भविष्य वक्ताओं ने "इक्कीसवीं सदी बनाम् उज्ज्वल भविष्य " का सम्बोधन दिया है । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहचरों की घनिष्टता

सजातियों का एकत्रीकरण सृष्टि का एक सुनिश्चित नियम है । चींटी , दीमक, मक्खी–मच्छर तक एकाकी नहीं रहते । उन्हें झुण्ड बनाकर समूहबद्ध रहने में [illegible]नता भी होती है और सुविधा भी रहती है । वन प्रदेशों में एक जाति के पशु–पक्षी अपने वर्ग के सदस्यों के साथ रहते और मिल–जुलकर समय गुजारने में प्रयत्नशील रहते देखे जाते हैं । एक प्रकार की वनस्पतियाँ पास–पास उगती हैं । निवास के लिए एकाकी झोंपड़ों में रहना पसंद नहीं किया जाता । सुविधा और आकर्षण नितान्त छोटे नगलों की अपेक्षा बड़े गाँवों , कस्बों और नगरों में रहता है । बारातों, प्रीतिभोजों, जुलूसों , मेलों में यह प्रवृत्ति काम करती देखी जाती है । उत्पादन , विक्रय, व्यवसाय के लिए क्षेत्र या मार्केट बनाये जाते हैं । दुर्व्यसनी और अपराधी भी अपने गिरोह बना लेते हैं । सभा, सोसायटियाँ , संगठन , क्लब आदि एक जैसी प्रकृति या मान्यता वालों द्वारा विनिर्मित किये जाते हैं । आकाश में तारों का समूह ही शोभायमान होता है । बगीचे शोभायमान रहते हैं, पर रेगिस्तान की जहाँ–तहाँ उगी खैर–खजूरें कुरूप ही लगती हैं ।

विभिन्न प्रकार की खदानें इसी नियम के आधार पर बनती हैं कि एक जाति के अणु–परमाणु साथ–साथ रहना चाहते हैं, इसलिए वे किसी अदृश्य चुम्बकत्व से प्रेरित होकर उस ओर चल पड़ते हैं जिस ओर सजातियों का बड़ा समुदाय पहले से ही एकत्रित रहता और साथियों के आगमन की प्रतीक्षा करता है । इसी आधार पर विभिन्न वर्ग के कण अपने समूह बनाते और धीरे–धीरे बड़ी खदानों के रूप में परिणत होते जाते हैं ।

विचारों के संबंध में यही सोचा जाता है कि वे अपने निजी उत्पादन होते हैं । मनुष्य इच्छापूर्वक कल्पनाएँ करता और स्वनिर्मित चिन्तन में उलझा रहता है, पर यह आंशिक रूप से ही सही है । सामूहिकता का एकत्रीकरण का नियम उन पर भी लागू होता है । समर्थ विचार दूसरों पर चढ़ दौड़ते हैं और जो अपने से कमजोर हैं उन्हें घसीट कर अपने शिकंजे में कस लेते हैं । समर्थ विचारक यदि मनस्वी हो, सघन श्रद्धा और प्रचण्ड विश्वास के साथ जुड़े हों तो फिर वे भी एकाकी न रहेंगे । अपनी सजातियों की उपस्थिति जहाँ भी देखेंगे , उन्हें घसीट कर अपने साथ चलने के लिए बाधित करेंगे , फिर चाहे वे उत्कृष्ट स्तर के हों या निकृष्ट स्तर के ।

लोक व्यवहार में ऐसा ही घटित होता रहता है । दुर्व्यसनी, अनाचारी, क्रूरकर्मी अपने स्तर के लोगों को सहज तलाश लेते हैं । उन्हें अपना साथी बनाते और कुछ ही समय में एक गिरोह के रूप में संगठित हो जाते हैं । एक दूसरे को प्रोत्साहित करते और सहायता देते हैं । इसी आधार पर अवांछनीयता को संगठित होते देखा गया है । इनके संगठित आक्रमण बहुत हद तक सफल भी होते हैं । गुण्डागर्दी और अपराधी प्रवृत्ति के बढ़ने का एक कारण यह भी है कि उनके गिरोह बन जाते हैं और वे फिर दाद, खाज–खुजली, कैन्सर आदि की तरह गहरी जड़े जमा लेते हैं । इतनी गहरी कि उनको उखाड़ फेंकना कठिन हो जाता है । दैत्य दानवों के समर्थ समूह इसी आधार पर एकत्रित और समर्थ बनते देखे गये हैं । इसलिए विज्ञजन अपने को–अपनों को ऐसे वातावरण से बचाये रहने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं ।

सत्संग की, सज्जनों के समुदाय के साथ घनिष्टता रखने की उपयोगिता को इसीलिए सराहा जाता है कि उस समुदाय में मिलने वाली सत्प्रवृत्तियाँ उन्हें भी श्रेष्ठता प्रदान करती हैं जो उस वातावरण के साथ अपनी घनिष्टता जोड़ती हैं । ऐसे व्यक्ति न मिलने पर उनकी आंशिक आवश्यकता सत्साहित्य से भी पूरी हो जाती है । स्वाध्याय को भी एक प्रकार का सत्संग ही बताया गया है और उसके लाभों की प्रशंसा भी की गई है ।

अनन्त आकाश में भले बुरे विचारों के प्रवाह भी परिभ्रमण करते रहते हैं । उनमें भी अपनी समर्थता के अनुरूप सहचर को खींचने या उनकी ओर खिंच जाने की विशेषता होती है । बुरे विचार यदि भौतिक क्षेत्र में भी उठाये गये हैं तो यह स्वाभाविक है कि उसी स्तर के लोगों के मन में उठने वाले कुविचार अपने स्तर वालों की ओर दौड़ पड़ें । सज्जनता के विचार भी इसी प्रकार अपने साथियों के सार्थक वातावरण की तलाश में रहते हैं । सज्जनों की समीपता से , विचार सादृश्यता से भी लोग इसी आधार पर लाभ उठाते रहते हैं । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलता की जयमाल किसके गले में ?

भौतिक क्षेत्र की कई प्रत्यक्ष दीख पड़ने वाली उपलब्धियाँ हैं । उन्हें योग्यता और तत्परता के आधार पर अर्जित किया जाता है । सम्पदा, बलिष्ठता, बुद्धिमत्ता , प्रतिभा आदि को पुरुषार्थी अपने पराक्रम और कौशल के आधार पर उपार्जित करते हैं । व्यक्ति यदि स्वयं आलसी प्रमादी, अदूरदर्शी हो तो नया कुछ कमाना तो दूर अपितु जो संग्रह किया हुआ था । वह भी जिस तिस मार्ग से पलायन कर जाता है ?

अध्यात्म क्षेत्र की अपनी विभूतियाँ हैं । उन्हें ऋद्धि-सिद्धि नाम से जाना जाता है । महामानव , देवमानव, ऋषि, मनीषी इन्हीं से अलंकृत होते हैं । यह विभूतियाँ भौतिक सम्पदाओं से किसी भी प्रकार कम महत्व की नहीं होतीं । वरन् उनकी गरिमा और अधिक बढ़ी चढ़ी होती है । व्यक्तित्ववानों के पीछे-पीछे सम्पदाएँ लगी पड़ती हैं । पर कोई सुसम्पन्न व्यक्ति यदि महापुरुषों जैसी विलक्षणता, सफलता, यशस्विता, सहयोगी, सद्भावना अर्जित करना चाहे तो उसे निराश ही रहना पड़ेगा। अध्यात्मवादी ही महामानव होते हैं । वे अपनी नाव तो पार लगाते ही हैं साथ ही असंख्यों को उस पर बिठाकर नदी की भयानक चौड़ाई को पार करते हुए उस पार तक पहुँचाते हैं । उनका यश अमर रहता है । न रहने पर भी उनके अनुकरणीय उदाहरणों के प्रकाश में लोग अपना पथ विनिर्मित करते हैं । विश्व-वसुधा उन्हें पाकर ही धन्य होती है । जबकि भौतिक सम्पदाओं के धनी मात्र अपनी ही साधन सुविधा बढ़ाकर विलासियों , अहंकारियों जैसे उपादान हस्तगत कर पाते हैं । साथ ही दुर्व्यसनों , दुर्गुणों और छीना झपटी के विग्रहों का संकट भी साथ-साथ उभरता, संत्रस्त करता रहता है ।

भौतिक सफलताएँ भी अनायास ही किसी के हाथ नहीं लग जातीं । इसके लिए आवश्यक योग्यताएँ एकत्रित करनी पड़ती हैं । साधन-उपकरण जुटाने पड़ते हैं । दूसरों का सहयोग लेना पड़ता है । भले ही वह प्रलोभन या दबाव द्वारा ही हस्तगत क्यों न किया गया हो । जो इतना कर पाते हैं वे भौतिक क्षेत्र में किसी कदर सफल हो जाते हैं । जिनसे यह सब करते नहीं बन पड़ता वे आशा लगाये, कल्पना करते रहते ही दिन गुजारते हैं । उन्हें निराशा के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता ।

आत्मिक प्रगति के बारे में भी यही बात है । वह किसी देवी, देवता, मन्त्र, तंत्र, आशीर्वाद, वरदान, के आधार पर उपलब्ध नहीं होती । यह सब सहायक उपचार हो सकते हैं । आरंभिक यात्रा में उत्साह प्रदान करने और अनुशासन के शिकंजे में कसने के लिए काम आ सकते हैं । पर इन वैसाखियों के सहारे सफलता के उच्च शिखर तक पहुँच सकना संभव नहीं । जो इन उपचार कर्मकाण्डों को ही सब कुछ मान लेते हैं वे मंजिल की दिशा में कुछ कदम बढ़ाने के उपरान्त थक जाते हैं । निराश होकर वापस लौट आते हैं या फिर असफलता का दोष उन पर मढ़ने लगते हैं जिनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाई गई थीं । ऐसे व्यक्ति उस अवस्था को भी खो बैठते हैं जो कदम बढ़ाने से पूर्व किसी कदर मन में जगाई गई थी । असफलताजन्य निराशा की मनःस्थिति में कई लोग ढोंगी-पाखण्डी भी बन बैठते हैं । इससे उतावले लोग अश्रद्धावान भी बन जाते हैं ।

प्रगति के तथ्यों को गहराई तक समझ लेना और अभीष्ट दिशा में चलने से पूर्व उसकी आवश्यकताओं को समझ लेना आवश्यक है । अन्यथा भ्रम जंजाल में फँसकर भटकते रहना ही पड़ेगा । न भौतिकवादी भौतिक-प्रगति का आनंद ले सकेंगे और न अध्यात्मवादियों को ही उन सफलताओं के दर्शन होंगे , जिन्हें शास्त्रकारों , आप्तजनों और अनुभवी साधकों ने सौ टंच खरा कहा है ।

उपरोक्त दोनों ही क्षेत्रों में असाधारण सफलता प्राप्त किये अनेकानेक लोगों के उदाहरण सामने रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं । विपन्न साधनहीन परिस्थितियों में जन्मे , पले लोग किस प्रकार चकाचौंध उत्पन्न करने वाली सफलता प्राप्त कर सके इसके उदाहरण भी कम नहीं हैं । यदि उन उदाहरणों की भरमार न रही होती तो समान मनोबल वालों को कदाचित उस ओर चल पड़ने का साहस भी न हुआ होता और गये गुजरे लोगों की तरह किसी प्रकार जिन्दगी के दिन पूरे करते रहते । उदाहरण ही उत्साह उत्पन्न करते हैं । उत्साह के बल पर ही पुरुषार्थ बन पड़ता है । पुरुषार्थ के सहारे ही सफलता की ऊँची मंजिल तक पहुँचा जा सकता है ।

यही सिद्धान्त अध्यात्म क्षेत्र में भी लागू होता है । इस मार्ग का अवलम्बन भी इसीलिए बन पड़ता है कि अनेक सफल अध्यात्मवादियों के उदाहरण सामने रहते हैं । राजा हरिश्चन्द्र का नाटक गाँधी जी ने बचपन में देखा था ।उससे उन्हें इतनी प्रेरणा मिली कि उसी मार्ग को अपनाने के लिए निश्चय कर लिया । विनोबा प्रभृति अनेकों सर्वोदयी कार्यकर्त्ता वस्तुतः गाँधी जी के ही मानस पुत्र थे । साँचे के बिना वस्तुएँ ढलती नहीं । उदाहरणों के अभाव में सामान्यजनों को दुस्साहसपूर्ण कदम बढ़ा सकना संभव नहीं होता । मनोविनोद तो लोग अपनी मन मर्जी से भी कर लेते हैं । पर पर्वतों की ऊँची चोटी पर चढ़ने के लिए साधनों, जानकारियों और प्रेरक उदाहरणों की तलाश करनी पड़ती है । इसके बिना कोई पर्वतारोही बनने के लिए मन चलाता तो रह सकता है पर वैसा कुछ कर सकने में समर्थ नहीं होता ।

महत्वपूर्ण क्षेत्रों की महत्वपूर्ण प्रगति के लिए प्रत्यक्ष साधनों के अतिरिक्त परोक्ष विशेषताओं को भी कमाना, अपनाना और उन्हें आधार अवलम्बन बनाना पड़ता है । सफल जीवन जीने वाले मनुष्यों में से प्रत्येक की अपनी कुछ मौलिक विशेषताएँ रही हैं । वे सामान्यजनों की तुलना में अधिक मनस्वी रहे हैं । उनके संकल्पों में दृढ़ता रही है । लक्ष्य पर से उनकी दृष्टि कभी हटी नहीं है । वे यह सोचते और करते रहे हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में, वर्तमान साधनों से क्या कुछ किया जा सकता है । जो संभव था उसे कर गुजरने में उन्होंने देरी नहीं की । निराशा को पास नहीं फटकने दिया । कठिनाइयों से जूझते रहे । अवरोध बीच में आते रहने पर उनने न तो प्रयास छोड़ा और न घबरा कर निराश हो बैठने का अवसर आने दिया ऐसे ही लोग हैं जो आत्म विश्वास के आधार पर अवरोधों से जूझते हुए दूने उत्साह के साथ निर्धारित लक्ष्य की ओर गतिशील रहते हैं ।

सफलता की राजकुमारी हर किसी के गले में जयमाल नहीं पहनाती । उसकी प्रतिभा को हजार कसौटियों पर कसती है । जब अपने लिए किसी प्रतिभाशाली को सुयोग्य मान लेती है तभी उसे अपना हाथ थमाती है । मसखरे , बहुरूपिये ऐसा स्वाँग तो बना सकते हैं । मन न मानता हो तो नाटक के स्वयंबर में किसी नट को राजकुमारी बनाकर उसके हाथों तत्काल जयमाला भी पहन सकते हैं । पर बहुमूल्य उपलब्धियों के लिए तो बढ़े-चढ़े प्रयास ही करने पड़ते हैं । अर्जुन को द्रौपदी स्वयंवर जीतने के लिए मत्स्यवेध की दीर्घकालीन साधना मनोयोगपूर्वक करनी पड़ी थी । हर सफलता प्राप्त करने के आकांक्षी को चाहे वह किसी भी क्षेत्र की ही हो, ऐसी ही एकाग्रताभरा मनोयोग जुटाना पड़ता है । ✷

एक सम्पन्न घर की कन्या बड़ी रूपवती गुणवती थी । विवाह योग्य हुई तो उसने घोषणा की कि जो दौड़में मुझसे आगे निकल सकेगा उसी के साथ विवाह करूँगी ।

अनेकों इच्छुक आये और बाजी हार कर वापस लौटते गये ।

एक दिन एक दुर्बल किन्तु चतुर धावक शर्त में सम्मिलित हुआ । दौड़ का मार्ग निर्धारित था । मार्ग के दाहिने भाग में युवती को दौड़ना था । सो युवक ने उस भाग पर जहाँ तहाँ सोने के सिक्के बखेर दिये ।

दौड़ आरम्भ हुई । युवती की नजर सिक्के पर पड़ी । उसका मन ललचाया । दौड़ती रहने के साथ-साथ वह सिक्के भी बीनती चली । दौड़ में रुकावट पड़ती रही और बाजी युवक ने जीत ली ।

अनमने मन से उसने कुरूप युवक से विवाह तो किया पर मन ही मन यही कहती रही कि लालच ने मुझे अभीष्ट से वंचित कर दिया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्लोभता का जादूभरा असर

"मुझे खेद है कि मैं आपका मुकददमा नहीं ले सकता ।" बड़ी शान्ति से वकील साहब ने कहा और सामने मेज पर रखी फाइल को रखने वाले की ओर खिसका दिया ।

"आप एक बार पूरी बात समझ लें ।" अनुनय की गई और साथ ही जेब से नोटों की गड्डी निकाली गई- "आपकी फीस मैं अभी दे दूँगा, सामान्य से कुछ ज्यादा ही । आपकी मैंने बहुत प्रसिद्धि सुनी है, इसलिए मैं सीधा आपके पास आया ।

आपकी बात ठीक है किन्तु मैं इस तरह के केस नहीं लेता । मान लो आप केस जीत भी जायँ तो क्या होगा उस बेचारी बूढ़ी विधवा का ? नहीं भाई यह मेरे से न होगा । अच्छा होगा आप अपनी चाची की सेवा करें, मरने पर न केवल सम्पत्ति मिलेगी बल्कि फलने-फूलने का आशीर्वाद भी ।

क्या करता बेचारा सुनने वाला ! सोचने लगा विचित्र है ये वकील भी । संसार में सभी तरह के मनुष्य हैं । उन्हीं में इसकी भी एक अलग खोपड़ी है । नहीं तो कोई वकील कहीं घर आई फीस लौटाता है । पर किया क्या जाय, उनकी सनक का कि झूठे मुकददमें नहीं लड़ेंगे । कई बार तो चलते केस को बीच में छोड़ दिया, क्योंकि पता लगा कि उन्हें जो कुछ बताया गया, वह ठीक नहीं था । ऐसा नहीं था कि मुवक्किल को उनकी यह सनक मालुम नहीं थी । मालूम होने पर भी उसने सोचा, शायद दूनी फीस का लालच उसे केस की पैरवी करने के लिए विवश कर दे ।

अभी वह कुछ कह पाता- इसी बीच सूट के ऊपर गाउन पहने एक व्यक्ति ने चिक उठाई और अन्दर आ गया । आने वाला पहनावे से वकील लगता था और उसकी बेतकल्लुफी बता रही थी कि वह इन वकील साहब का मित्र है ।

आप न्यायालय रोज आते ही हैं । बिना फीस वाले मामले भी देखते हैं, फिर रुपये क्या काटते हैं आपको ? जो आपको ही मुकदमा देना चाहते, उन्हें क्यों निराश करते हैं जबकि आपके पास समय भी है, आगन्तुक ने बैठते हुए पूछा । मुवक्किल का उतरा हुआ चेहरा देखकर उसने भाँप लिया था कि मामला क्या है ?

न्यायालय तो मैं आता हूँ सीखने ! उन्होंने आगन्तुक के चेहरे को पढ़ते हुए कहा । वकील के लिए यह निहायत जरूरी है कि वह अध्ययन करता रहे तथा जटिल केसों की पैरवी-बहस करता रहे । पेट के लिए तो परिश्रम करना ही पड़ता है, कमाना भी जरूरी है । जो असमर्थ हैं उनकी थोड़ी सहायता अवकाश के क्षणों में कर देना कोई बुराई तो नहीं । किन्तु मैं मानता हूँ, अन्याय का पक्ष लेकर धनोपार्जन सचमुच व्यक्ति को काट लेता है ।

धन काट लेता है ? आगन्तुक गंभीर हो गये । बैठा हुआ मुवक्किल दोनों के चेहरे बारी-बारी से ताक रहा था । इसके पल्ले कुछ नहीं पड़ रहा था । रुपए भी किसी को काटते हैं, आपकी खोपड़ी ही कुछ विचित्र किस्म की है । मित्र ने अपने दोस्ताना अन्दाज में कहा ।

रुपए मनुष्य को चाकू की तरह अथवा कुत्ते की भाँति तो नहीं काटते हैं, किन्तु, वकील साहब ने गंभीर स्वर में कहा- "वे स्वास्थ्य, आचरण, समय, संयम अथवा नम्रता को अवश्य काट लेते हैं और मेरे हिसाब से इनकी क्षति शारीरिक क्षति से अनेकों गुना ज्यादा है ।

अब आप पहेली मत बुझाइए । मित्र ने हँसते हुए कहा । लेकिन बात समझने लायक है, यह उन्हें लगने लगा था । इसलिए अपनी कुर्सी पर वे अधिक स्थिर हो कर बैठ गए ।

उपयोग से अधिक धन होगा तो उपभोग करने की सुझेगी । वकील साहब ने कहा- "विलासिता बढ़ेगी । आलस्य बढ़ेगा । कहीं मन सावधान न रहा तो संयम-सदाचार पर विपत्ति आ पड़ेगी । यह न भी हो तो भी प्रमाद में समय जाएगा और भोग में रोग तो रखे ही रहते हैं । इतने पर भी खैर कहाँ ? एक की विलासिता के उन्माद का मतलब है दूसरी जगह दरिद्रता का करुण विलाप । फिर अन्याय का पक्षपात व्यक्ति और समाज दोनों की जड़ें खोद कर ढहा देगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप अकेले के प्रयास से तो यह रुकेगा नहीं । अच्छा हो कुछ संतान के लिए सग्रह करें और शेष लोकोपकार में लगा दें । दान भी तो धर्म ही है" । मित्र ने साधारण स्वर में कहा, क्योंकि उन्होंने न सोचा होगा, यह आशा कोई कैसे कर सकता है ।

"संताने अपना प्रारब्ध लेकर आती हैं फिर उन्हें पुरुषार्थ करना भी जरूरी है । पैतृक सम्पत्ति पाकर कितने युवक सुपथ पर रह पाते हैं, यह आपसे छिपा नहीं है ।" वकील साहब ने कहा, "समर्थ होने तक मैं संतति का पालन रक्षण, शिक्षण कर्तव्य मानता हूँ, किन्तु उनके लिए धन संचय के लिए न्याय, अन्याय को भुला बैठना मोह के अलावा और कुछ नहीं है ।"

"लोकोपकार-दान ?"मित्र का प्रश्न उभरा । "अधर्म से धर्म नहीं होता और लोभ अधर्म है "। वह कर रहे थे- "जितना उपलब्ध है, उसी की सीमा में धर्म करना तो मनुष्य का कर्तव्य है, किन्तु अधिक संग्रह करके दान- लोकोपकार सिर्फ अभिमान भर है । यशेच्छा अथवा अंहकार की प्रेरणा है । अन्यथा लोकों का जिसने निर्माण किया है, उन विश्वम्भर के रहते मनुष्य के अभिमान की क्या बिसात ?" सुनकर मित्र ने हँसते हुए कुछ खीझे स्वर में कहा- "भाई आपको समझा पाना असम्भव है । उत्तर में उन्होंने भी हँसकर कहा-"इसमें एक शब्द और जोड़ दीजिए "गलत" अर्थात्- मित्र महोदय ने विस्मयपूर्वक उनकी ओर देखा । मेरा तात्पर्य यह है कि समझा पाना असम्भव नहीं है- कहने की जगह कहना चाहिए कि गलत समझा पाना असंम्भव है ।

ओह ! कहकर वह कुछ क्षण रुके फिर पास की कुर्सी पर बैठे मुवक्किल को देखकर कहा- इनका केस आपके न लेने पर भी तो कोई न कोई तो लेगा ही । बात जहाँ की तहाँ । अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ा करता ।

कोई बात नहीं, मत फूटने दीजिए भाड़ को मनुष्य का सहज धर्म, व्यक्तित्व का निर्माण । उसे निभा रहा हूँ कि नहीं । किसी सत्पुरुष का कथन है- "अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा है ।" बस इसी कथन के मुताबिक मेरा आचरण आ... कार के लिए है ।

"इसमें संसार की सेवा कहाँ से बन पड़ी मित्र के स्वर में कुछ व्यंग आ गया था । "ज व्यक्ति अपने आचरण को पूर्णतया आदर्शोन्मुख बनाने का प्रयास करता है । जब वह अप आचरण, व्यवहार से यह प्रमाणित कर देता है कि आज भी लोभ, मोह, लालसाओं, वासनाओं को ठुकराकर, वैभव में लात मारकर सुख चैन की जिन्दगी जीना संभव है तब औरों का भी साहस जगता है, उनके भी कदम इस राह पर मुड़ते और बढ़ते हैं । क्या यह समाज की सेवा नहीं हुई ।" "आपको देखकर आज तक किसी के कदम मुड़े ! कोई कुछ कहे, इसके पहले मुवक्किल बोल पड़ा "मेरे"......। इस एक अक्षर के जादू से अवा होकर आगन्तुक ने उसकी ओर देखा और हकला हुए उसके भी मुख से एक शब्द निकल पड़ .....क.......क......क्या ?

मैं काफी देर से आप दोनों की बातें गौर से सुन रहा था । अपनी स्थिति और वकील साहब की स्थिति पर विचार भी करता रहा । मुझे लगा एक ये हैं, जिनको लोभ छू तक नहीं गया है और एक मैं हूँ, जिसमें शायद लोभ के अलावा कुछ नहीं है । मुझे तो चाची की जायदाद मिलनी ही थी पर लोभी को सब्र कहाँ, ? जिसने मुझे गोद में खिलाया - उसी से मुकदमा लड़ने लगा । किन्तु आज मेरी आँखें खुल गईं । अब दोनों मित्रों ने एक साथ पूछा । साहब कहने वाले बड़बोले तो बहुत देखे - पर आप जैसा आचरण नहीं पाया । अब आपकी बात मान चाची की सेवा करूँगा उनका उत्तराधिकारी तो मैं स्वयमेव हूँ । कहकर उसने झुककर वकील के पैर पकड़ने चाहे पर उन्होंने बीच में ही थाम लिया । आँसू भरी आँखों से उसने सिर झुकाया, नोट और फाइल उठाकर चल पड़ा ।

अकस्मात हुए इस परिवर्तन को देखकर मित्र के मुख से निकल पड़ा - माफ करना भाई - यह तो सचमुच समाज की सेवा हो गई, कहकर वह भी हाथ मिलाकर चल पड़े । अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा है, के आदर्श को मूर्त करने वाले वकील थे - देशबन्धु चितरंजनदास - जिनके आचरण ने अनेकों में जीवन जीने की दिशा सुझाई ।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंकुरित अन्न-ऋषि अन्न

आयुर्वेदिक ग्रंथ-काश्यप संहिता में कहा गया है कि संसार में आहार से बढ़कर अन्य दूसरी औषधि नहीं है । इसको सुधार कर मनुष्य सभी प्रकार के रोगों से छुटकारा पा सकता है । उसके अनुसार आहार महाभैषज है । इसी तरह का प्रतिपादन गीताकार ने किया है और कहा है कि पथ्यकारक अन्न सेवन करने पर रुग्णता नहीं घेरती ।

वस्तुतः अन्न-धान्य अपने मूल रूप में खाये जाने पर ही औषधि का काम करते हैं । इसलिए उसे 'अमृतान्न' भी कहा गया है । उबालने या तलने-भूनने पर इनके बहुत से आवश्यक तत्व नष्ट हो जाते हैं अथवा स्वरूप बदल जाता है । ऐसी स्थिति में कम पोषण ऊर्जा मिलने के कारण उसकी पूर्ति अधिक मात्रा में आहार ग्रहण करके करनी पड़ती है । भोजन की बढ़ी हुई यह मात्रा पूर्णतया पचने और आंतों द्वारा अवशोषित न होने के कारण कब्ज से लेकर अनेकानेक प्रकार की पेट संबन्धी बीमारियों के रूप में समय-समय पर फूटती रहती हैं ।

पोषणविदों के अनुसार कच्चे अन्न सजीव एवं जीवनीशक्ति से भरपूर होते हैं । प्रायः देखा जाता है कि नरम अवस्था में ताजे कच्चे अन्न को लोग चावपूर्वक खाते हैं । सूखे चने, मटर आदि की अपेक्षा हरे चने, मटर कहीं अधिक पसंद किये जाते हैं । इन्हें बिना नमक या मिर्च मसाले के भी हम खा लेते हैं और तृप्ति अनुभव करते हैं । समस्या कच्चे अनाजों की बारहों महीने उपलब्धता की आती है । इसका भी समाधान ढूँढ़ लिया गया है । स्वच्छ पानी में कुछ घंटो तक डुबोकर रखने पर सभी अन्न नरम बन जाते और जीवन्त आहार का काम करने लगते हैं । चने, मूँगफली एवं मूँग को भिगोकर कच्ची अवस्था में ग्रहण करने का आम प्रचलन है । व्यायाम के अभ्यासी, पहलवान आदि का तो भीगा हुआ चना उनके पुष्टिवर्धक खुराक का एक प्रमुख अंग होता है । सामान्य जनों के लिए यह पूर्ण आहार का काम कर सकता है ।

इसी तरह जब चने भिगोकर खाये जा सकते हैं तो गैहूँ, ज्वार, बाजरा जैसे अनाज न खाये जा सकें, इसका कोई कारण नहीं हो सकता । इन बीजों को आवश्यकतानुरूप थोड़े पानी में लगभग १२ घंटे तक रखने के पश्चात् मोटे गीले कपड़े में लपेटकर रख देने भर से ऋतु के अनुसार अंकुर निकल आते हैं । इससे उनकी उपयोगिता और पोषकता में पर्याप्त अभिवृद्धि हो जाती है । अमृतान्न यही है ।

कच्चा गैहूँ खाने में यह आशंका नहीं ही की जानी चाहिए कि वह उबले हुए आहार की तुलना में देरी से पचेगा या कोई परेशानी पैदा करेगा । तथ्य तो यह है कि जब हरा चना, कच्चेफल, सब्जियाँ या सलाद अच्छी तरह पक सकते हैं, तो कोई कारण नहीं कि भीगे हुए या अंकुरित गैहूँ का संतुलित रूप से पाचन न हो सके । गैहूँ तो चने से भी हल्का होता है । कच्चे या अंकुरित खाद्य की सर्वाधिक विशिष्टता यह है कि पके आहार की तुलना में उसकी आधी मात्रा से भी काम चल जाता है । उससे न केवल क्षुधा निवृत्ति और शरीर पोषण की आवश्यकता पूर्ण होती है, वरन् उससे दूने परिमाण में आवश्यक पोषक तत्व भी उपलब्ध हो जाते हैं । इस तरह के जीवंत आहार उनके लिए विशेष रूप से हितकारी हैं जो सदैव कुपोषण का शिकार बने रहते हैं और आये दिन किसी न किसी प्रकार की रुग्णता से घिरे रहते हैं । ध्यान केवल इतना रखना पड़ेगा कि उत्साहवश नया अभ्यास आरंभ करने से पूर्व अपने पाचन तंत्र एवं स्वास्थ्य संबन्धी सभी पक्षों से अवगत हुआ जाय और तब अपनी प्रकृति के अनुरूप उपयुक्त अन्न का चुनाव किया जाय । जीवंत आहार लेने की दिशा में क्रमशः धीरे-धीरे कदम बढ़ाना ही उपयुक्त रहेगा । व्यक्ति की उम्र, ऊँचा, खुराक की चीजों के हल्के-भारीपन और शारीरिक कार्य क्षमता के हिसाब से आहार का निर्धारण किया जाना चाहिए ।

आहार विशेषज्ञों का कहना है कि प्रायः सभी प्रकार के अन्य-धान्यों को उनके प्राकृतिक रूप में अंकुरित करके अथवा उबाल करके खाया जा सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । अंकुरित हो जाने पर वे द्विगुणित पोषक गुणों से भर जाते हैं । विटामिनें, जो बीज अवस्था में पहले प्रसुप्त पड़ी रहती हैं, भींगने और अंकुरित होने पर सक्रिय हो उठती हैं । सूर्य सम्पर्क में आते ही उनमें विद्यमान क्लोरोफिल नये जीवन तत्वों का निर्माण करते और उसे अधिक उपयोगी बना देते हैं । गर्मी के दिनों में अनाजों से अंकुर २४ घण्टों में निकल आते हैं, परन्तु सर्दी के मौसम में अंकुर फूटने में कुछ बिलम्ब हो सकता है । मूँग ही एक ऐसी दलहन है जो १२ घण्टे में अंकुरित हो जाती है । यहाँ इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि जिस पानी में अनाज को भिगोया गया था उसे फेंक नहीं देना चाहिए, वरन् आटा गूँथने, सब्जी पकाने के काम में ले लेना चाहिए क्योंकि उसमें कुछ क्षार और पोषक तत्व घुले रहते हैं ।

मानव शरीर के विकास एवं मांसपेशियों के निर्माण के जिन २८ प्रकार के अमीनों एसिड की आवश्यकता पड़ती है, उनकी पूर्ति सूखी दालों से संभव नहीं हो पाती । स्वास्थ्य विज्ञानियों ने इस अभाव को पूरा करने के लिए गहन अनुसंधान किया और जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया है, उसके अनुसार दालों को अंकुरित कर लेने पर इस कमी की भरपाई पूरी तरह हो जाती है । अंकुरित दालों में न केवल प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है, वरन् विटामिन 'ए' 'बी' तथा 'ई' जैसे जीवनदायी तत्वों की भी बढ़ोतरी हो जाती है । जो दालें पहले पचने और आँतों द्वारा आत्मसात करने में भारी पड़ती थीं, वह इन तत्वों के अभ्युदय के कारण सुपाच्य बन जाती हैं । क्षारीय खनिजों की बढ़ोत्तरी के कारण अंकुरित दालों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है । पौष्टिकता के साथ रोग प्रतिरोधी क्षमता की अभिवृद्धि में इससे पर्याप्त सहायता मिलती है ।

सोयाबीन के अंकुरित दानों को चने की तरह सब्जी या सलाद में प्रयुक्त किया जा सकता है । सुपाच्य होने के साथ यह विभिन्न खनिज तत्वों एवं विटामिनों का भण्डार है । अंकुरित कर लिये जाने पर इनकी मात्रा कई गुनी अधिक बढ़ जाती है । मूँगफली के स्थान पर सोयाबीन का उपयोग सस्ता भी पड़ता है और लाभदायक भी । एक बर्तन में इसके बीजों को दिन में तीन-चार बार पानी बदल कर रखने से दो दिन के अन्दर अंकुर निकल आते हैं । दो इंच लम्बे अंकुरों में विभिन्न खाद्यतत्वों की भरपूर मात्रा उत्पन्न हो जाती है, जिन्हें सब्जी सलाद आदि रूपों में प्रयुक्त किया जा सकता है । चीन में इसका उपयोग बहुलता से सब्जी के रूप में किया जाता है । बर्ष भर बाजारों में इसकी भरमार रहती है । वहाँ का यह एक प्रमुख आहार है । इसका एक कारण यह भी है कि संतुलित आहार की कमियों की पूर्ति इससे सरलतापूर्वक हो जाती है । अंकुरित हो जाने से दाने आसानी से पचने योग्य बन जाते हैं और उनके भीतर जो प्रोटीन, शर्करा तथा बिटामिन 'बी', 'सी' रहते हैं, उनके परिमाण में अभिवृद्धि हो जाती है ।

अंकुरित बीजों को न केवल आहार के रूप में सीधे ग्रहण किया जा सकता है, वरन् अभिरुचि के अनुसार उन्हें पीस कर आटे में मिलाकर रोटी अथवा सब्जी के रूप में उपयोग किया जा सकता है । इससे आहार की पौष्टिकता भी बढ़ती है और पाचन तंत्र भी सशक्त बनता है । इस प्रकार की खाद्य सामग्री सुपाच्य रहती है, कारण उसमें अन्न से कार्बोज, दालों से प्रोटीन, मूँगफली आदि से चिकनाई एवं अंकुरों से क्षार-लवण, विटामिन आदि सभी तत्वों की एक साथ पूर्ति हो जाती है । इसी तरह सामान्य अमृताशन की अपेक्षा अंकुरित अन्न, मूँग, मूँगफली के साथ उसे पकाया जाय तो वह अधिक लाभदायक सिद्ध होगा । पोषकता प्रदान करने के साथ ही यह आँतों की सफाई का भी काम करता है । दलिया में भी गेहूँ के अतिरिक्त पिसी हुई अंकुरित मूँग और मूँगफली मिला देने पर वह स्वादिष्ट, सुपाच्य और पुष्टिकारक बन जाती है ।

> ***हँसेंगे तो सफल समझे जायेंगे और लोगों का सम्मान पायेंगे । रोयेंगे तो साथ देने वाले विरले ही होंगे । सामान्यतया रोने वालों से लोग बचते हैं कि कहीं अपने दुर्भाग्य की चपेट में हमें भी न लपेट ले ।***

इस प्रकार यह सहज खाद्य न केवल सतोगुणी होता है, वरन् सस्ता, पौष्टिक एवं सर्व सुलभ भी । अध्यात्म पथ के पथिकों को तो अपनी साधना हेतु विशिष्टतया इन्हें इसी रूप में प्रयुक्त करना चाहिए । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरिष्ठता की दो कसौटियाँ:- प्रामाणिकता एवं उदारता

विशेषज्ञों की हर जगह माँग रहती है । विशिष्ट क्षमता सम्पन्नों की ही हर कोई खोज करता है । बेकार, बेरोजगार, उपेक्षित फिरने वालों में-से अधिकांश अयोग्य ही होते हैं । महत्वपूर्ण प्रयोजन पूरे कर सकने में दक्ष और विशिष्ट लोग ही सफल होते हैं । अयोग्यों से तो जीवन-निर्वाह करते भी सही रीति से बन नहीं पड़ता । इसलिए प्रत्यक्ष महत्वाकांक्षी को सर्वप्रथम अपनी योग्यताओं, विशेषताओं का अभिवर्धन करने में प्रवृत्त होना पड़ता है, अन्यथा न कोई बड़ा स्वार्थ-साधन करते बन पड़ेगा और न कहने योग्य परमार्थ में सफलता प्राप्त कर सकना संभव होगा ।

परमसत्ता ने इन दिनों युग निर्माण योजना संरजाम जुटाने के साथ-साथ प्रतिभाशालियों को एकत्रित और प्रशिक्षित करने के कार्य को प्राथमिकता देते हुए हाथ में लिया है । इसके लिए विश्वसनायता, वफादारी से भरे-पूरे व्यक्तियों के सहारे ही काम चलेगा । समुद्र पर सेतु बनाने के लिए नल-नील जैसे कुशल इंजीनियरों को बुलाया और जुटाया गया था । स्वेज और पनामा नहरें बनाने का नियोजन उच्चकोटि के प्रतिभावानों के हाथ में सौंपा गया था ।

निर्देशक अयोग्य हो, तो अच्छी कहानियों वाली फिल्में भी हूट हो जाती हैं । अयोग्यों को सौंपे गये अन्य कार्य भी घाटा देते और असफल सिद्ध होते हैं । संसार के हर क्षेत्र में विशिष्टता और योग्यता की ही भारी माँग रहती है । महान परिवर्तनों के लिए नियोजित हुई महाक्रान्तियाँ भी उच्चस्तरीय नेतृत्व में ही सम्पन्न हुई हैं । महा परिवर्तन की इस विषम वेला में विश्व का अभिनव निर्माण करने के लिए श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा के धनी लोगों को आमंत्रित करने की गुहार लग रही हो, तो आश्चर्य ही क्या ? महाकाल ने प्राणवानों को युगधर्म को पहचानने और आड़े समय में काम आने के लिए इसी प्रकार के आमंत्रण-आह्वान दसों दिशाओं से उठाने आरंभ कर दिये हैं । जिनकी भाव-संवेदना और आदर्शवादी साहसिकता जीवन्त है, वे कुछ कर गुजरने के लिए अग्रिम पंक्ति में खड़े होने की तैयारी भी कर रहे हैं ।

जहाँ अध्यात्म 'वर्चस्' उभरता है, वहाँ बौद्धिक 'तेजस्' और पुरुषार्थ के प्राण 'ओजस्' की भी कमी नहीं रहती । पहलवान कसरत करते और पौष्टिक खुराक का सरंजाम जुटाते हैं । विद्वान बनने वाले को उपयुक्त साहित्य और निष्णात् अध्यापकों का आश्रय लेना पड़ता है । रोगियों को पथ्य-पालन और औषधि सेवन को शिरोधार्य करना पड़ता है । आना-कानी करने पर वे असमर्थ रहने की स्थिति से उबर नहीं पाते ।

जिन्हें अपने समय का हनुमान, अर्जुन बनना है, उन्हें अपने को दो कसौटियों पर कसे जाने और खरे उतरने की तैयारी में बिना इधर-उधर झाँके इन्हीं दिनों जुट जाना चाहिए । इनमें से एक है - प्रामाणिकता, दूसरी है - उदारता । इन दोनों विभूतियों से सुसज्जित होने पर उच्चस्तरीय व्यक्तित्व विनिर्मित करने का सुयोग सहज ही बन जाता है । प्रामाणिकता का पर्यायवाची है - आत्म परिष्कार । इसके लिए दुश्चिंतन और अनाचरण से मुक्ति पाना । इसी को तत्वदर्शियों ने लोभ और मोह की हथकड़ी, बेड़ियों से छुटकारा पाना कहा है । उनने बड़प्पन प्रदर्शन की अहंता को भी तीसरी बाधा बताया है । इन तीन से निपट लेने पर, उन भव बन्धनों से, कषाय कल्मषों से छुटकारा मिल जाता है, जो पतन, पराभव के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं ।

प्रतिभा परिष्कार का दूसरा चरण है- उदारता । इसे भी तपश्चर्या एवं पुण्य-पुरुषार्थ संचित करने की सुनिश्चित क्रिया-प्रतिक्रिया समझा जा सकता है । उसी दृष्टिकोण को अपनाने पर 'आत्मवत सर्वभूतेषु' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के दोनों महामंत्रों की क्षमता व्यावहारिक जीवन में प्रवेश पाती और सामान्य को असामान्य बना देने में पूरी तरह सफल होती है । जिनने अपनी विचारणा को कषाय-कल्मषों से लिप्सा-लालसा से ऊपर उठा लिया है, उनके लिए फिर कोई ऐसा बंधन शेष नहीं रह जाता, जिसके आधार पर युगधर्म अपनाने से आनाकानी करने के लिए बहाना ढूँढ़ा जाय ।

प्रामाणिकता का एक ही आधार है—पवित्रतायुक्त निर्दोष जीवन । मानवी गरिमा को महत्व देने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति सहज ही अपने दृष्टिकोण को क्रिया–कलाप को औचित्य के राजमार्ग पर गतिशील रखे रह सकता है और हर किसी की दृष्टि में विश्वस्त ही नहीं , श्रद्धा, सम्मान और सहयोग का भाजन भी बना रह सकता है । ऐसे ही व्यक्ति अपने परामर्श को, कथनी और करनी की एकरूपता के आधार पर इतना सशक्त बना सकता है, कि उन्हें मानने अपनाने के लिए अनेकों को तत्पर पाया जा सके ।

उदारता का प्रतीक परमार्थ है । इसी को दूसरे शब्दों में भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाला पुण्य भी कहते हैं । सत्प्रयोजनों के खेत में अपने समय, श्रम और साधनों को बोने वाला साधारण किसानों की अपेक्षा कहीं अधिक नफे में रहता है । किसान के बोये बीज का वांछित मात्रा में फलित होना कई बार प्रतिकूलताएँ उपस्थित हो जाने पर संदिग्ध भी रहता है , पर उत्कृष्टता के क्षेत्र में बोये गये अपने अनुदानों के फलित होने में किसी को भी घाटा सहन करने की कुण्ठा नहीं भुगतनी पड़ी । इस अध्यात्मवादी कृषि प्रयास में एक दाना बोकर हजार दाने पाने की सुनिश्चितता को कोई भी अनुभव कर सकता है । उदारचेता , आत्मसंयमी महामानवों के इतिहास का हर पृष्ठ यह साक्षी देने के लिए विद्यमान है कि प्रामाणिकता और उदारता की विभूतियाँ सम्पादित करने वाले सदा ऊँचाई की ओर तेजी से बढ़ते रहे हैं और ऐसा वातावरण बनाते रहे हैं, जिसको अनन्त काल तक सराहा और स्मरण किया जाता रहे ।

नव सृजन की भवितव्यता सुनिश्चित है । उस संभावना में भागीदार होकर गोवर्धन उठाने में लाठी का सहारा देने वाले ग्वाल बालों जैसा अवसर हम सब के सामने भी है । इस अवसर से चूका क्यों जाय ? श्रेय के भागीदारों में सम्मिलित होने में झिझकने और संकोच करने की आवश्यकता ही किसी बुद्धिमान को क्यों पड़नी चाहिए ।

तैयारी के लिए इतना भर करना पर्याप्त होगा कि प्रामाणिकता, प्रतिभा और उदारता का इतना संचय किया जाय, जिसका अनुभव अपने को हो सके और परिचय सर्वसाधारण को मिल सके । भावनाएँ , मान्यताएँ और आकांक्षाएँ अन्तराल की गहराई में उठती हैं, पर वे प्रत्यक्ष जीवन में गुण, कर्म, स्वभाव के रूप में अपना परिचय देने लगती हैं । इन प्रवृत्तियों का समुच्चय ही व्यक्तित्व रूप में विकसित होता है । सामर्थ्यवान जिस भी मार्ग पर चल पड़ता है, उसी में असाधारण स्तर की सफलताएँ अर्जित करता चला जाता है ।

परिवर्तन की इस महान वेला में उच्चस्तरीय दायित्व जिन्हें सौंपे जाने हैं, जो उत्साहपूर्वक उन्हें अंगीकार और वहन करने वाले हैं, उनमें असामान्यता के कुछ लक्षण तो जाँचे–परखे ही जायेंगे । सोने की जाँच–पड़ताल कसौटी पर कसने और आग में तपाने से होती है । व्यक्ति की गरिमा भी ऐसे ही दो माध्यमों से जानी जाती है, जिनमें से एक है चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में समाविष्ट उत्कृष्टता । यही वह है, जिसे पवित्रता, प्रामाणिकता, और वरिष्ठता कहा जाता है और उन्हें कुछ भी दायित्व सौंपने पर ठीक तरह सम्पन्न किया जाने का विश्वास किया जाता है । यही है प्रामाणिकता जिसके आधार पर किसी को भी जनसाधारण की आँखों में श्रद्धास्पद बनने का अवसर मिलता है । ईश्वर तक उन्हें अपने प्रतिनिधि–पार्षद का गौरव प्रदान करता है ।

प्रामाणिकता के अतिरिक्त उदारता दूसरा माध्यम है–जिसके आधार पर आदर्शों के प्रति भावभरी निष्ठा को जाँचा–परखा जाता है । प्रामाणिकता शरीर की स्वस्थता, सुन्दरता, के समतुल्य है और उदारता उसकी शोभा–सज्जा । शरीर भले ही कितना ही सुडौल हो, पर वह नग्न स्थिति में होगा , तो उसे अश्लील कहा जायेगा । हीरे का असली होना आवश्यक है, पर उसे चमकाने के लिए खराद पर भी तो चढ़ाया जाता है । वर–वधू विवाह के अवसर पर सुसज्जित परिधान धारण करते हैं । शालीनता , सद्भावना , सदाचरण का होना प्राथमिक आवश्यकता है, पर साथ ही यह भी आवश्यक है कि समर्थता का उपयोग सत्प्रयोजनों में करने की उदारता में भी कोई कृपणता न की जाय । नवयुग के लिए जिन्हें स्रजेताओं की भूमिका निभानी है, उनका चयन प्रामाणिकता और उदारता की प्रवृत्ति अभ्यास में उतरी या नहीं, इसी जाँच–पड़ताल के आधार पर उपयुक्त पाया और चयन किया जायगा । श्रेय लाभ भी उन्हीं के हिस्से में आयेगा । *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञान का कारण अलगाव

"माँ ! हम लोग अलग–अलग सुदूर एकान्त में तप हेतु जाना चाहते हैं ।" समूह में से एक युवासन्यासी ने सकुचाते हुए विनय भरे स्वरों में याचना की । उसके स्वर सभी के दिलों में उमड़ रहे भावों को उड़ेल रहे थे ।

"अलग– अलग । " जैसे उन्होंने इसके अतिरिक्त और कुछ सुना ही नहीं । इधर कई दिनों से जब से वह तीर्थ यात्रा करके लौटीं बड़ी व्यथित सी रहने लगी थीं । मानो तीर्थ भ्रमण करके व्यथा बटोरी हो । उफ ! क्या दशा हो गई है आज देश की । हर कहीं दिखाई दे रही है उसकी बेहाली । एक–एक दाने के लिए तरसते भूखे–नंगे इन्सान । पर्याप्त श्रम करके जिन्होंने अपनी हड्डियों से लहू की बूँदें तो निचोड़ी हैं पर रोटी के लिए मोहताज हैं । स्टेशनों पर जूठे पत्तलों के लिए कुत्तों से होड़ लगाते बच्चे । नारियाँ जिनकी किस्मत के अक्षरों में आजन्म कारावास गुलामी बेबसी , सिसकियाँ, घुटन इसके सिवा कुछ और बचा ही नहीं है ।

क्या यही है वह भारत ? वह अपने कल्पना नेत्रों के सामने उभर रहे वर्तमान भारत की तुलना सुदूर अतीत से करने लगीं । नहीं नहीं कुछ और भी है वर्तमान में वे आलीशान कोठियाँ एक से एक बढ़कर कीमती आलीशान सामानों के ढेर उन्हें तो नाम भी नहीं मालूम । कहाँ से आते हैं ये सब ? क्या कमी है आज के भारत में ? वही धरती है ठीक वही रत्नगर्भा , स्वर्णगर्भा । लहलहाती फसलें , मीठे पानी के स्रोत, गंगा , यमुना घाघरा, नर्वदा सब कुछ पहले जैसे हैं । बूढ़ा हिमालय उसने तो जैसे न बदलने की कसम खा रखी है । अपनी अगाध जल राशि को सर्वहित के लिए समर्पित करता हुआ सागर वह भी वही । सभी एक सूत्र में बँधे रहना चाहते हैं सिवा इन्सान के । कितना बदल गया है इन्सान जिसकी एक ही रट है "अलग–अलग" ।

"क्या सोचने लगी माँ ? " पूछने वाला उन्हें इस तरह चुप्पी साधते देख सहम गया था । कहीं उसकी बात से उन्हें कष्ट तो नहीं पहुँचा । वह इन सभी के अन्तर की गहराइयों में छुपी श्रद्धा का घनीभूत रूप थीं और ये सभी तरुण उच्चशिक्षित,प्रखर मेधा सम्पन्न, दृढ़ शरीर बल के धनी जिनका चरित्र बज्रवत दृढ़ था । सब ने जीवन के उच्चत्तर सोपानों पर आरूढ़ होने के लिए गृह त्याग किया था । अभी कुछ ही वर्षों पहले उनके पथ प्रदर्शक , गुरु आराध्य कुछ भी कहें देह त्याग कर महाकारण में विलीन हो गए थे । अब उन सब की राह का एकमेव दीपक यही गुरु माता थीं, जिन्हें ये सभी प्यार से माँ कह कर पुकारते थे ।"माँ !" इस एक शब्द में कितनी मधुरिमा छुपी है । यों आयु की दृष्टि से वह यही करीब चालीस–बयालिस के आस–पास रही होंगी किन्तु उनके हृदय से निरन्तर वात्सल्य की पयस्विनी प्रवाहित होती थी , जिसका मृदुल स्पर्श अनेकों में नए प्राण भरता था ।

सभी उनकी ओर देख रहे थे उत्तर की प्रतीक्षा में । किन्तु उन्होंने उत्तर देने की जगह प्रश्न के जवाब में प्रश्न किया–" देश की इस गई गुजरी दशा का कारण क्या है "? कहने के साथ उनने एक बारगी सब की ओर देखा ।

सभी मौन थे । किन्तु बाहरी तौर पर भीतर तो सभी के अन्दर सुगबुगाहट चल रही थी । भला माँ को क्या बताएँ ?

उत्तर न पा वह स्वयं बोलीं अरे! बताते क्यों नहीं ? तुम लोग तो बहुत पढ़े लिखे हो । नरेन ! तु ही बता । इशारा एक सत्ताइस अट्ठाइस साल के तरुण की ओर था ।

अज्ञान, शोषण कुरीतियाँ, यही सब न । युवक ने कहा । पर यह सब क्यों है ?

कुरीतियों , मूढ़ मान्यताओं का कारण तो अज्ञान है पर अज्ञान का कारण ? क्या जवाब दें ।

शरत् तू बोल, शशी तू बोल, निरंजन तू बता बेटा , राखाल तू कह, लाटू रे तू तो बहुत सोचता है तू ही कुछ कह तारक तू ....। सब को एक एक बारगी पूछ लिया किन्तु कुछ सुझाई दे तब तो बताएँ । अद्भुत है यह माँ भी अब लो , बताओ अज्ञान का कारण । इसका कारण तो सारी जिन्दगी माथा–पच्ची करने के बाद आचार्य शंकर तक को नहीं मिला । आखिरकार हैरान–परेशान हो उनने अपनी सारी अला–बला 'माया' के सिर थोप कर छुट्टी ली ।

"नहीं ढूँढ़ पाए तो सुनो इन सब का कारण है अलगाव । यही सारी समस्याओं की जड़ है, यहाँ तक कि अज्ञान की भी ।" सीधी साधी पर सूत्रमयी भाषा में उनका समाधान था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके मूल में अलगाव, कुछ समझ में नहीं आ रहा था । सब आपस में एक दूसरे का चेहरा ताकने लगे । खुल कर कोई नहीं कह पा रहा था

उनने सबके मनोभाव भाँप लिये । समझ लिया कि अभी इनके गले में बात नहीं उतरी । समझते हुए कहा "सृजेता ने अपनी सृष्टि में कहीं विभाजन की दरारें नहीं डालीं । यह तो अपने को अकलमन्द कहने वाले मनुष्य के करतब हैं, जिसने दुनिया को देशों में बाँटा । देशों को क्षेत्रों में क्षेत्रों को उप क्षेत्रों में । धरती बाँटी सागर बाँटे, पर्वत, जंगल बाँटे यहाँ तक कि अपने को बाँट डाला।

अपने को .... । उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे एक के बाद दूसरी पहेली में उलझते जा रहे हों । हाँ अपने को ! उनकी वाणी में दर्द था । इन्सान जातियों में बँटा, जातियाँ उपजातियों में इतना ही नहीं धर्म के आधार पर बँटवारा हुआ । हिन्दू मुस्लिम, सिख, ईसाई , पारसी , इनमें से प्रत्येक के अन्दर सहस्रों विभाजन । न जाने कितने प्रकार से मानवता के ऊपर कुलहाड़ियाँ चली हैं । इन्सानियत के जिस्म को किस बेदर्दी के साथ नयी–नयी आरियों से काटा गया है । उनके चेहरे पर सारा दर्द उभर आया । व्यथा आँसू बन कर ढुलक पड़ी ।

पर यह सब तो अज्ञान के कारण हुआ । एक तरुण ने तनिक धीरे से कहा और अज्ञान इसलिए पनपा क्योंकि तुम जैसे ज्ञानियों ने "ब्रह्मसत्य जगत मिथ्या " का नारा लगा कर समाज से छुट्टी ले ली । गुफा–कन्दराओं वनों में भाग जाने में अपना कल्याण समझा । स्वर में रोष झलक रहा था ।

माँ ! माँ ! कहकर सभी ने सिर झुका लिए । इन सबके चेहरों पर उमड़ रही घबराहट ने उनका रोष प्रेम भरे वात्सल्य में बदल दिया । स्नेह विगलित स्वर में बोली बेटा ! यदि ज्ञानियों ने अपने ज्ञान की धरोहर को कंजूस बनियों की तरह न छुपा कर मुक्त हाथों से वितरित किया होता तो क्या जन चेतना इसी तरह मरे मुर्दों से होड़ लगा कर सोती, और उसके जिस्म को ये मानवता घाती कुत्तों, स्यारों, कौओं, गिद्धों की तरह खाने की हिम्मत जुटा पाते ? नहीं कभी नहीं जवाब उनके अन्दर से फूट पड़ा ।

हम सब तो आपके आदेश के प्रार्थी हैं । उग्रतेजा तपोमूर्ति महादेवी के सम्मुख सभी नत थे । आज की दशा में समाज की आत्मा को जाग्र कर उसके शरीर को पुनः बलशाली बनाने का ए ही उपाय है संगठन "। एकता और समन्वय इ की उपज है । काश ! बहुत –बढ़–चढ़ कर बा बनाने वाला मनुष्य चीटियों , मधुमक्खियों , दीमक से ही कुछ सीखता । लाज लगे ऐसी अकल प जो या तो पोथियों के पन्नों या दिमाग व कब्रिस्तान में दफन रहेगी या फिर बने–बना भवन को ढहाएगी ।

हम लोग संघबद्ध रहेगें माँ । उनमें से को उनके दुःख को बढ़ाना नहीं चाहता था ।

हाँ बेटा ! तुम लोग संघबद्ध रहना । ठाकु इसीलिए आए थे । उन्होंने सारे जीवन विभिन्न धर्मों सम्प्रदायों के बीच की खाइयों को पाटा है जातियों की दरारों को अपने प्रेम के लेप से भर है । ब्राह्मण होकर भी रसिक भंगी की सेवा कर से नहीं चूके । उनके शिष्य होकर तुम....। उनके कार्यों के लिए प्राण होम देंगे । अनेक कण्ठ स्व उभरे । धन्य हो तुम सब । ध्यान रखना संगठन का प्रधान तत्व है–आत्मीयता भरा प्रेम । ब संगठन में व्यवस्था की दृष्टि से लोग छोटे–बड़े दिखे भले पर असलियत में सभी समान हैं । भवन को देखते ही लोग समझते हैं कि कँगूरे वाली ईं ज्यादा उत्तम हैं । पर नहीं जो ईंट जितना नीचे है उस पर उतना ही अधिक भार है । एक भी ईंट खिसकी कि इमारत ढही । लाटू उतना ही महत्वपूर्ण है जितना नरेन । क्यों रे लाटू ! कहकर उन्होंने एक युवक की ओर स्नेह भरी आँखों से देखा । फिर बोली "अब कभी अल होने की बात मत कहना ।"

"नहीं माँ, कभी नहीं " अनेकों कण्ठ एक साथ मुखरित हुए वे सब प्रणाम कर चलने के लिए उद्यत ही हुए थे कि माँ ने रोक दिया " नहीं रे ! भोजन करके जाना । माँ के यहाँ से कोई बिना खाए जाता है ।"अपने स्नेह नीड़ में एक महान संघ का पालन–पोषण करने वाली माँ थीं श्री माँ शारदा–श्री रामकृष्ण देव की लीला सहचरी ।

आज महाकाल अपने सहचरों को फिर से बटोर रहा है । उद्देश्य मानव के बहिरंग एवम् अन्तरंग में देवत्व की चिरस्थाई संस्थापना है । आ जुड़ें किन्तु संगठन की मर्यादा हेतु सर्वस्व न्यौछावर करने की शपथ उठाकर । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम पूज्य गुरुदेव का महाप्रयाण

एक युगपुरुष, जिसने लगभग पौन शताब्दी तक करोड़ों व्यक्तियों को ममत्व के सूत्र में बाँधे रख एक परिवार के रूप में संगठित कर दिया, विगत गायत्री जयन्ती (२ जून १९९०) के पावन दिन प्रातः ८ बजे महाप्रयाण कर गया। वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जिन्हें परिजन श्रद्धा से पूज्य गुरुदेव नाम से संबोधित करते रहे हैं, के पार्थिव शरीर को उसी दिन सायंकाल ५.३० पर लगभग पाँच हजार परिजनों की उपस्थिति में सजलश्रद्धा-प्रखरप्रज्ञा नामक उन्हीं के द्वारा विनिर्मित स्मारकों के समक्ष अग्नि को समर्पित कर दिया गया। इस प्रकार स्थूलकाया की अस्सी वर्ष की एक सुनियोजित यात्रा समाप्त हुई।

युग निर्माण योजना, प्रज्ञा अभियान शांतिकुंज, गायत्री परिवार के संस्थापक, संचालक होने के नाते उनके प्रत्यक्षतः हमारे बीच से चले जाने से परिजनों का शोकाकुल होना स्वाभाविक है। पर उनसे जुड़े सभी परिजन यदि उनके जीवन से जुड़े वैविध्यपूर्ण, चमत्कारी घटनाक्रमों, महत्वपूर्ण प्रसंगों पर दृष्टि डालेंगे तो उन्हें अनुभव होगा कि उनके जीवन का हर निर्धारण अपने मार्गदर्शक के संकेतों के अनुसार सुनियोजित क्रम से होता आ रहा है। आज से पाँच वर्ष पूर्व हीरक जयन्ती वर्ष के समापन पर उनने पत्रिकाओं में लिख ही दिया था कि "हमारे मार्ग दर्शक ने हमारी स्थूल काया को पाँच वर्ष का एक्सटेंशन दे दिया है। तत्पश्चात् हमारा सूक्ष्म व कारण शरीर सक्रिय होगा एवं घनीभूत प्राण ऊर्जा के रूप में चारों ओर संव्याप्त होकर वह सब करेगा जो चमड़े की इस काया द्वारा संभव नहीं है।"

इन शब्दों पर संभवतः उस समय विरलों का ध्यान गया होगा पर जिस प्रकार सूक्ष्मीकरण साधना के तुरन्त बाद उनने अपनी गतिविधियों में तीव्रता लाकर भारत भर में राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों तथा दीपयज्ञों का ताना-बाना बुना था, शांतिकुंज परिसर में विस्तार-क्रम आरंभ किया था और फिर क्रमशः अपने सारे उत्तरदायित्व वन्दनीया माताजी को सौंपते हुए इस वर्ष वसंत पंचमी से मिलने-जुलने का क्रम बन्द कर दिया था, उससे भली-भाँति पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। इस वर्ष की जनवरी एवं मार्च की अखण्ड-ज्योति जिनने पढ़ी हो तथा अप्रेल की इक्कीसवीं सदी लेखमाला का अवलोकन किया हो, उन्हें अनुमान हो गया होगा कि वसंत पर्व पर महाकाल के संदेश में दिये गये निर्धारणों का ही उनमें निर्वाह हुआ था। सभी में स्पष्ट संकेत था कि वे अब सूक्ष्म शरीर की सत्ता से ही सक्रिय रह परिजनों के और निकट आ जायेंगे एवं इस वर्ष कभी भी अपनी पार्थिव देह छोड़ सकते हैं।

यह स्पष्ट संकेत उनकी मार्गदर्शक सत्ता द्वारा उन्हें मई मध्य में मिल गया कि गायत्री के सिद्ध साधक होने के नाते उन्हें अपने प्राणों को इसी पावन दिन गायत्रीजयन्ती, गंगादशहरा के दिन महाप्राण में विसर्जित कर देना चाहिए। जीवनभर जिसने स्वयं उच्चस्तरीय गायत्री साधना के शीर्ष तक स्वयं को पहुँचाया, अगणित व्यक्तियों को जाति, वंश, लिंग, वर्ण का भेद किए गायत्री उपासक बना दिया उसके लिए महानिर्वाण के लिए इससे श्रेष्ठ दिन और हो भी क्या सकता था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कल्पना करने में भी रोम उठ खड़े होते हैं, मस्तिष्क वेदना होने लगती है कि अब वे हमारे बीच प्रत्यक्षतः उसी रूप में नहीं हैं जिस रूप में विगत वसंत तक उनके सबने दर्शन किए । अंतरंग से बहिरंग तक स्नेह से सराबोर, निर्मल अंतःकरण वाला वह महापुरुष, हम सबका पिता अब हमें मुसकराता, खिलखिलाता, प्यार लुटाता नहीं दीख पड़ेगा, यह कल्पना भी कर पाना हम सब के लिए अत्यन्त कष्टकर है । फिर कैसे बँधी रहेगी ममत्व की वह डोर जिस ने करोड़ों परिजनों को एक सूत्र में आबद्ध कर दिया था ? इस संबंध में उनका अन्तिम पंद्रह दिनों में दिया गया वह आश्वासन हमें हिम्मत दिलाता है कि अब वे और अधिक सघनता व निकटता से सभी को उपलब्ध होंगे । सभी को उनका स्नेह एवं प्यारभरा मार्गदर्शन, समस्याओं के सुलझाने वाला हल उनका ध्यान करने मात्र से ही उपलब्ध हो जाया करेगा, क्योंकि अब वे कायपिंजर से मुक्त हो विराट से विराटतम् तथा सूक्ष्म रूप में करोड़ों गुने आकार में सारी वसुधा पर संव्याप्त हो गये हैं ।

उनके द्वारा आरंभ किया गया विचारक्रांति का, युगपरिवर्तन का सारा कार्य अब और तीव्रगति से सारे भारतवर्ष व विश्वभर में चल पड़ेगा क्योंकि यह दैवी सत्ता द्वारा संचालित शक्ति का अभियान है । व्यक्ति के न रहने पर तो काम रुक सकता है । पर शक्ति का कभी क्षय नहीं होता, मरण नहीं होता । वह तो सूक्ष्म रूप में और सामर्थ्यवान हो जाती है एवं अन्यान्य मनुष्यों, भावनाशीलों, लोकसेवियों के शरीरों को उपकरण बनाकर उनसे वह सारा काम करा लेती हैं, जिसके लिए उनका अवतरण हुआ था ।

वे अपनी शक्ति वंदनीया माताजी को हस्तान्तरित कर गये हैं तथा उनके माध्यम से सारे परिजनों को वही ममत्व, दैनन्दिन जीवन तथा लोकसेवा के क्षेत्र से, नवनिर्माण से जुड़ा मार्गदर्शन सतत् मिलता रहेगा । निधि के रूप में वे करोड़ों की राशि से विनिर्मित शांतिकुंज, ब्रह्मवर्चस्, गायत्री तपोभूमि तथा २४०० प्रज्ञा संस्थान, पच्चीस लाख सक्रिय भावनाशीलों का परिकर तथा चिंतन चेतना के रूप में प्रचुर परिमाण में साहित्य लिख कर छोड़ गये हैं । धर्म-तंत्र से लोक मानस का परिष्कार, अध्यात्म का विज्ञानसम्मत प्रतिपादन, व्यक्ति, परिवार व समाज का नवनिर्माण करने वाला मार्गदर्शन तथा नवयुग की स्थापना हेतु तैयारी संबंधी जो संजीवनी उनकी लेखनी से प्रकट हुई थी, वह रुकी नहीं है । वह आगे भी उनकी शक्ति से अनुप्राणित हो सतत् चलती रहेगी तथा असंख्यों व्यक्तियों का मार्गदर्शन करती रहेगी । आने वाले दस वर्षों के लिए तो साहित्य वे लिखकर रख ही गये हैं । इस संबंध में किसी को अवसाद नहीं करना चाहिए कि उनकी लेखनी का प्रकाश अब उन तक नहीं पहुँचेगा । वह सबको और प्रखर रूप में पत्रिकाओं एवं पुस्तकों के माध्यम से भारत की सभी भाषाओं में, तदुपरान्त विश्व की सभी भाषाओं में प्रकाशित हो उपलब्ध होता रहेगा ।

समाज के नवनिर्माण तथा सतयुग की वापसी हेतु लोकसेवियों के उत्पादन की, प्रशिक्षण की, परम्परा जो वे स्थापित कर गये थे, वह अपना कार्य बखूबी निभाती रहेगी । ब्रह्मकमल के रूप में विकसित, पल्लवित हो पूज्य गुरुदेव ने जीवन जिया है तो उसका सुगंध एवं उद्भूत ब्रह्म बीजों से कोई क्षेत्र भला अछूता कैसे रह सकता है ? शांतिकुंज आश्रम का अभी दस गुना विस्तार होना है तथा इसको विश्वविद्यालय के रूप में परिणत होना है । सिद्ध साधना आरण्यक तो यह है ही जिसमें सुसंस्कारित बीजों को अंकुरित होने के निमित्त प्रचुर परिमाण में ऊर्जा विद्यमान है । परिजन अगले दिनों बड़ी संख्या में गुरुदेव के कर्त्तृत्व रूपी विराटरूप को देखने यहाँ आयेंगे तथा प्रज्ञा आलोक के विस्तार का संदेश लेकर यहाँ से जायेंगे । निःशुल्क छात्रावास, प्रशिक्षण तथा अतिथि सत्कार का क्रम यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले की तरह ही चलता रहेगा ।

पूज्य गुरुदेव ने अपनी देह परित्याग करने संबंधी पूर्वानुमान को परोक्ष रूप से तो समय -समय पर किंतु प्रत्यक्षतः दिन विशेष की सूचना देते हुए मई मध्य में घोषित कर दिया था । परिजनों को यह लग सकता है कि ऐसा था तो हमें सूचना दे दी जाती, हम भी अंतिम दर्शन कर लेते । किंतु उनका निर्देश था कि ऐसा नहीं किया जाय । क्योंकि इससे तो परिजनों का मोह-काया तक सीमित होकर रह जाता एवं अंत्येष्टि के बाद वे काया को ही सब कुछ मानते हुए उनके कर्तृत्व की उपेक्षा करने लगते । उनने जीवनभर तिल-तिल कर अपना जीवन परहितार्थाय होम किया है । एक परमार्थी ब्रह्मपरायण जीवन जिया है जिसमें अपने पर कड़ा अंकुश लगाया है एवं उदारतापूर्वक अपनी शक्ति,विभूति, सम्पदा को लुटाया गया । यही अपेक्षा उनकी परिजनों से भी रही है । समय का जो उपयोग उनने किया एवं समाज के हित के लिए जैसा उसका सुनियोजन किया, यदि उसका एक अंश भी हम लोग अपने जीवन में उतार सकें तो अपना जीवन धन्य कर लेंगे ।

अस्सी वर्ष की आयु में उनने आठसौ वर्ष की आयु में किये जाने योग्य जीवन जिया है । काया कब तक साथ देती । फिर भी चूँकि संकेत आ चुका था, किसी भी प्रकार की व्याधि न होते हुए भी उनने अपनी चेतना को शरीर के विभिन्न अंगों में सिकोड़ना आरंभ कर दिया था । चूँकि चेतना को मापने का कोई यंत्र अभी तक बना नहीं अतः यह अनुमान लगाना कठिन था कि रक्त आदि सभी का विश्लेषण एक स्वस्थ व्यक्ति जैसा होते हुए भी वे महाप्रयाण की बात क्यों सोच रहे हैं ? स्थूल दृष्टि से सोचने वाले चिकित्सक जो सोच व कर सकते हैं, वह सब करने का उनने प्रयास किया परन्तु वे उस सीमा से परे थे । विजातीय द्रव्य की एक बूँद भी उनने स्वीकार नहीं की तथा एक सप्ताह पहले से क्रमशः कम करते-करते जल व अन्न बिल्कुल बन्द कर दिया । जब अवसान की वेला आई तो गायत्री माँ को प्रणाम कर स्वयं हृदय की धड़कन बन्द कर दी । सब कुछ इतना शीघ्र हुआ कि यह कह पाना कि उन्हें कुछ दिन और जीवित रखा जा सकता था, चेतना की सत्ता का मखौल उड़ाने के समान होगा ।

पूज्य गुरुदेव ने बहुमुखी जीवन जिया है । बाल्यकाल में अपने गुरुदेव से साक्षात्कार से लेकर हिमालय यात्रा तक, स्वतंत्रता संग्राम सैनानी के नाते, यातना भुगतने से जेल यात्रा तक, परिजनों को स्नेह से अभिपूरित कर अपना अंग अवयव बनाने तक, एक विश्वव्यापी समाजसेवी संगठन बनाने से लेकर अगणित भावनाशील लोकसेवियों के निर्माण तक, अपनी चमत्कारी अनुभूतियों द्वारा अगणित व्यक्तियों को मृत संजीवनी देने से लेकर आत्मविकास संबंधी मार्गदर्शन तक तथा लेखनी द्वारा अपनी चिन्तन चेतना को जन-जन तक पहुँचाने जैसे कार्यों से भरा पूरा यह विराट व्यक्तित्व रहा है । उनके जीवन पर एक अविस्मरणीय श्रद्धांजलि अंक अगले माह अगस्त-सितम्बर के संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है । हर परिजन को यह नियमित अंक के रूप में अगस्त अंत तक उपलब्ध हो जायेगा । इसका आकार वर्तमान अखण्ड-ज्योति से लगभग चार गुना होगा तथा पूज्य गुरुदेव के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व संबंधी दुर्लभ चित्र, अनुभूतियाँ एवं लेख उसमें होंगे । परिजन उसकी प्रतीक्षा करें ।

पूज्य गुरुदेव ने कहा है कि "मेरे जाने के बाद शोक न किया जाय क्योंकि मैं शक्ति के रूप में और अधिक विराट परिकर में पहुँच जाऊँगा । सभी को मेरी अनुभूति होती रहेगी ।" उनकी इच्छानुसार ही किसी प्रकार की औपचारिकताएँ यहाँ नहीं की गयीं, रुटीन यथावत् रहा क्योंकि शक्ति का कभी अवसान नहीं होता । निष्कलंक प्रज्ञावतार के रूप में आया एक मसीहा जिनके सम्पर्क में रहा उन सभी को अपने आपको सौभाग्यशाली मानना चाहिए कि वे उनके जीवनकाल में उनसे प्रत्यक्ष वार्ता, नमन आदि का लाभ उठा सके । सच्ची श्रद्धांजलि यही है कि उनके विधाविस्तार के कार्य को और आगे बढ़ाया जाय, अपना इस समय विशेष पर धरती पर आना सार्थक कर लिया जाय ।

—ब्रह्मवर्चस्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रजिस्टर्ड नं० एम.टी.आर. ९८ लाइसेन्स संख्या एम.टी.आर. ८ डाक व्यय की पहले अदायगी
रजि० नं० आर. एन. २१६२/५२ किये बिना डाक में डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सजल श्रद्धा की मूर्त्तिमान आत्मा—मां शारदामणि

सम्पादक - भगवती देवी शर्मा, प्रकाशक व मुद्रक - मृत्युञ्जय शर्मा
अखण्ड- संस्थान द्वारा जन जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित ।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड-ज्योति

53
10

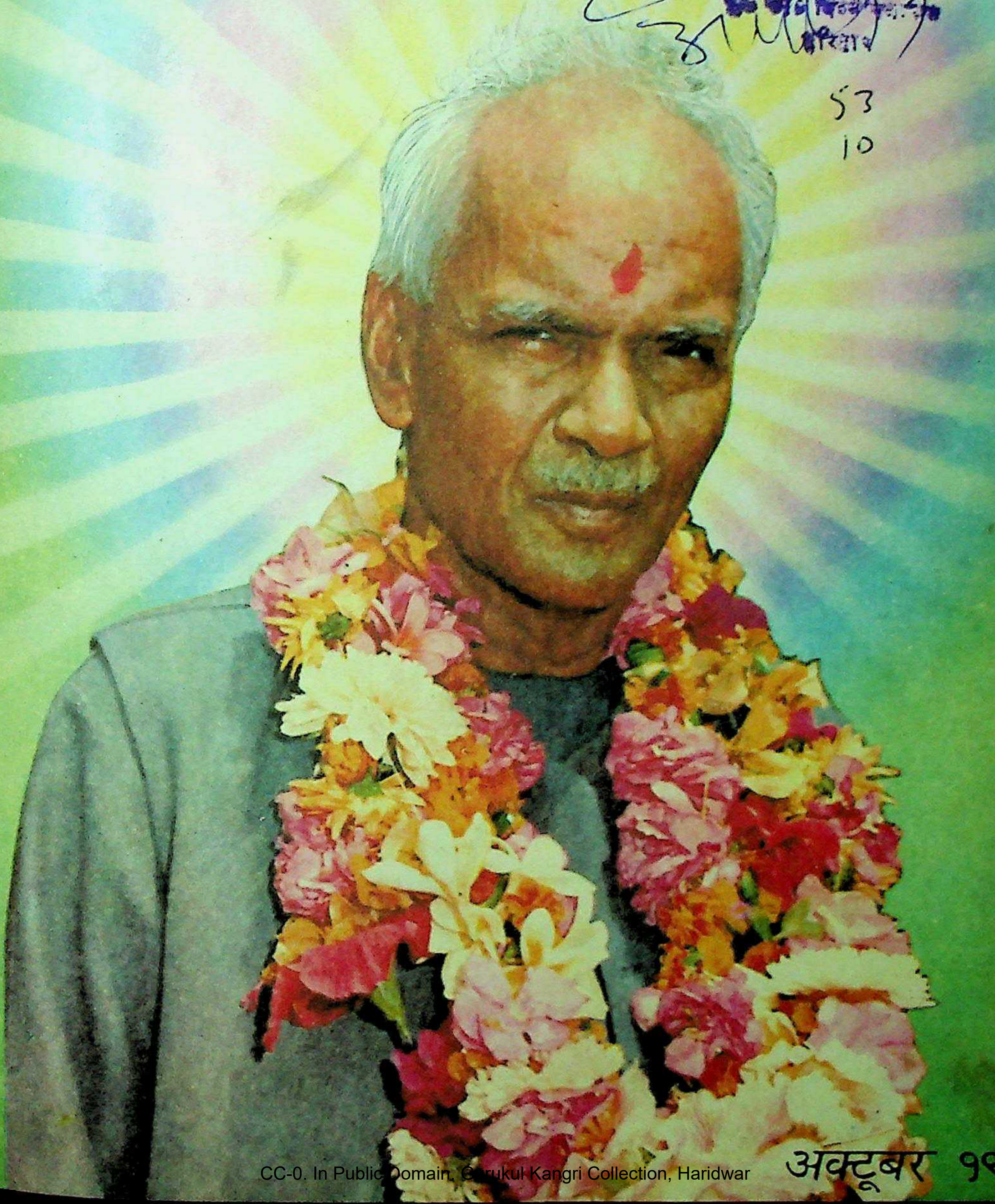

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अक्टूबर १९९०

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय–सूची

१–अन्तःकरण की पुकार अनसुनी न करें	१
२–कर्म कब बन जाता है योग ?	२
३–प्रचण्ड मनोबल की प्रतिभा में परिणति	३
४–न जनता से गाफिल न मालिक से	६
५–यह समय चूकने का है नहीं	७
६–सद्ज्ञान वह जो सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे	९
७–पुरुषार्थ का बीजांकुर	१२
८–संवेदना उभरी तो उलझनें मिट जायेंगी	१३
९–दिव्य प्रकाश अवतरण की ध्यान साधना	१५
१०–शब्द तरंगों में निहित विलक्षण शक्ति	१७
११–उपनिषदों के देश से उठेगा–विचारक्रान्ति का तूफान	१९
१२–क्या ईश्वर पर मुकदमा चलाया जा सकता है ?	२१
१३–भविष्य दर्शन महाकाल के अग्रदूत द्वारा	२३
१४–प्रेम सुधा रस बाँटो रे भाई	२५
१५–भाग्य का बीज है पुरुषार्थ	२७
१६–संवेदना बनाती है लेखनी को प्राणवान	२८
१७–सूक्ष्म सत्ता की सामर्थ्य और भी प्रचण्ड	२९
१८–चाहिए अग्रगामी–बलिदानी	३१
१९–सामूहिक चेतना का विकास अनिवार्य	३२
२०–बहिरंग की भटकन व्यर्थ है	३३
२१–प्राण शक्ति से अनुप्राणित होने की विधा	३५
२२–मत्स्यावतार की पुनरावृत्ति	३७
२३–लोक सेवी की सबसे बड़ी पूँजी	३८
२४–किसलिए मिली है यह सुरदुर्लभ काया ?	३९
२५–क्रान्ति का नया आयाम विचारक्रान्ति	४१
२६–प्रकृति की छत्र छाया में वापसी	४४
२७–इष्ट की ललक	४७
२८–एक मनश्चिकित्सक के रूप में पूज्य आचार्यश्री	४९
२९–पत्रों से झाँकता एक विराट पुरुष का व्यक्तित्व	५२
३०–मैं महाप्राण !	५७

सम्पादक–भगवती देवी शर्मा
शान्तिकुंज
हरिद्वार (उ.प्र.) २४९४११

प्रकाशक–अखण्ड–ज्योति संस्थान, मथुरा–२८१००३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

अखण्ड ज्योति

वर्ष ५३
अंक १०
अक्टूबर १९९०

संस्थापक—श्रीराम शर्मा आचार्य

वार्षिक चन्दा—३०/—
विदेश में—२०/—
आजीवन—३००/—

अन्तःकरण की पुकार अनसुनी न करें

जब मनुष्य नितान्त एकाकी होता है, उसके पास, आस-पास कोई भी नहीं होता तब कोई पाप करने में उसे जो भय लगता है, एक आशंका बनी रहती है, वह किस कारण होती है ? बार-बार ऐसा क्यों लगता है कि कोई अदृश्य आँखें उसके दुष्कर्म को देख रही हैं ? क्यों पूरे उत्साह के साथ उसका मन पापकर्म में नियोजित नहीं हो पाता ? क्या कभी कोई इस पर विचार करता है कि जब कोई उसके पाप को देखने वाला प्रत्यक्ष मौजूद नहीं, तब उसे भय किसका है, वह किस से डर रहा है ? वह कौन है जो उसके मन, प्राण व काया में कम्पन उत्पन्न कर देता है ?

निस्संदेह यह उसका अपना अन्तःकरण ही है, जो उसे पापकर्म से विरत करने के सतत् प्रयासों द्वारा विविध प्रकार की शंकाओं, सन्देहों व भय की कल्पना जैसे अनुभवों से वैसा न करने का संकेत देता रहता है । जो मनुष्य अपने अंदर बैठे चित्रगुप्त के इन संकेतों की उपेक्षा नहीं करता, वह पापकर्म से बच जाता है । जो मनुष्य अवहेलना करता है व ऐसा कर बैठता है, उसका अंतःकरण एक न एक दिन उसकी गवाही देकर उसे दण्ड का भागी बनाता है । यह संभव है कि किसी का दुष्कर्म दुनिया से छिपा रहे किंतु उसके अपने अंतःकरण से कदापि नहीं छिप सकता । ऐसे व्यक्ति की एक-एक क्रिया और विचार उसके अंतःकरण से साक्षी रूप में अभिव्यक्ति देते हैं । यदि किसी कारणवश मनुष्य को अपने पाप का दण्ड नहीं मिल पाता तो समय आने पर अन्तःकरण स्वयं उसे दण्डित करता है । उचित यही है कि हम अन्तःकरण में विद्यमान परमात्मा की पुकार सुनें, उसका अनुसरण करें । ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म कब बन जाता है योग !

दोनों के कदम इस पहाड़ी राह पर साथ-साथ पड़ रहे थे । यों चेहरे-मोहरे से इनमें कोई पहाड़ी नहीं लगता, पर मुख पर छाई उल्लास की रेखाएँ, चाल में मस्ती साफ स्वरों में यह बता रही थी कि धरती का हर कोना उनका अपना है । गाँव, शहर, पहाड़, जंगल, नदी, झरने सभी उनको एक साथ प्यारे हैं, वे भी सभी को प्रिय हैं । चलते-चलते उनमें से एक ने बर्फ की चादर लपेटे सामने खड़ी पहाड़ी की ओर ताका- सूर्यास्त हो रहा था । अस्ताचल की ओर जाते हुए आदित्य की रश्मियों को गले लिपटा कर विदाई दे रहे पहाड़ सुनहले दीख रहे थे । पक्षियों का स्वर इधर-उधर मँडरा रहा था ।

"लगता है लौटने में हम लोगों ने देर कर दी क्यों ?" इशारा साथ चल रहे साथी की ओर था । "नहीं, हम लोग अँधेरा होते-होते अपने स्थान पर पहुँच जाएँगे ।"

चलते-चलते दोनों किसी गाँव के पास आ पहुँचे थे । राह के किनारे ही मन्दिर बन रहा था । शाम होने के बाद भी अभी निर्माण कार्य थमा नहीं था, शायद इसे जल्दी परिपूर्णता देनी हो । न जाने उन्हें क्या स्फुरणा हुई- उन्होंने निर्मित हो रहे मन्दिर के सीमा क्षेत्र में प्रवेश किया । ढेरों मजदूर, कारीगर, मिस्त्री और बढ़ई वहाँ काम कर रहे थे । पता नहीं क्या सोच कर एक ओर बैठे काम कर रहे मजदूर के पास जाकर पूछा-"भाई ! क्या कर रहे हो ?" "देखते नहीं हो । पत्थर तोड़ रहा हूँ"-मजदूर ने कहा । यद्यपि प्रश्न बड़ी विनम्रता से किया गया था, वाणी पर्याप्त माधुर्य से सनी थी । परन्तु इतना तिक्त जवाब पाकर लगा कि काम करने वाला तेज मिजाज है । यही नहीं वह किसी बात को लेकर दुखी है । तभी तो सीधी-साधी बात का इतना कड़वा उत्तर ।

वह कुछ और बढ़े । दूसरे मजदूर के पास पहुँच कर पहले वाला सवाल दुहराया । मजदूर के उत्तर में पहले जैसी तिक्तता तो नहीं थी पर यह जरूर लगता था कि उसे काम में आनन्द नहीं आ रहा है । उसने कहा था, "भैया ! पेट के लिए काम कर रहा हूँ ।"

उसकी वाणी में विवशता की बोझिलता और अनुत्साह का फीकापन था । वह इधर-उधर देखते हुए एक और कार्यकर्मी के पास गए । वह बड़े उत्साह, शक्ति और सुघड़ता से पत्थर तोड़ रहा था । उनने उससे पूछ ही लिया- "भाई यहाँ क्या हो रहा है और तुम क्या कर रहे हो ?" मजदूर ने बिना हाथ हटाए उनकी ओर देखा । उसकी आँखों में आल्हाद की चमक और आनन्द की दीप्ति नाच रही थी । उसी भाव को व्यक्त करते हुए उसने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया- "यहाँ भगवान का मन्दिर बन रहा है और मैं भी इस भगवत् कार्य को पूरा करने के लिए मेहनत कर रहा हूँ ।"

वह फिर अपनी राह पर चल पड़े, साथ मित्र भी । साथी की ओर देखते हुए पूछा- "समझे कर्म का रहस्य ?" "क.....क.......क्या ?" लगता है उसे समझ में नहीं आया था । अब वह खुद समझाते हुए बोले- "देखो ! पहला मजदूर जबरदस्ती लादी गई मजदूरी कर रहा था । दूसरा बेचारा स्वतः की विवशता के कारण जुटा था । दोनों अपने मनोभावों के कारण दुःखी निराश और उद्विग्न थे । जबकि तीसरा वही काम करते हुए आनन्दित था," "जानते हो क्यों ?" हलकी मुसकान के साथ उसे देखा । "तीसरे व्यक्ति में एक गरिमा थी, आनन्द था, प्रवीणता थी और उन सबका कारण थी उस व्यक्ति की समर्पण आध्यात्मिक भावना, जो उसे तीनों विशेषताओं से आप्लावित कर रही थी । यही है कर्म का रहस्य, शुष्कता में सरसता भरने का नुस्खा ।"

गंगा किनारे बनी कुटिया आ गई थी । दोनों ने साथ-साथ प्रवेश किया । वह दीपक जलाते हुए बोले - "काम कोई भी हो लेकिन उसे करते समय कर्ता का दृष्टिकोण कार्य को उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट बनाता है । सामान्य परिणाम और लाभ तो उसे मिलते ही हैं पर उत्कृष्ट भावनाओं के घुल जाने से साधारण कर्म भी योग बन जाता है, चेतना में निखार लाता है ।"

कर्म के रहस्य के यह उद्गाता थे- स्वामी रामतीर्थ और ग्रहीता थे उनके अभिन्न मित्र अध्यापक पूर्णसिंह । यदि हम भी आध्यात्मिक भावों को स्वयं में प्रदीप्त कर पाएँ तो हमारे जीवन में भी वैसी ही ज्योतिर्मय मुसकान छलक सकेगी । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचण्ड मनोबल की प्रतिभा में परिणति

वह पौराणिक गाथा स्मरण रखने योग्य है कि सीता हरण के उपरान्त जब रावण को परास्त करने का प्रश्न सामने आया, तो राम के द्वारा भेजा गया निमंत्रण उन दिनों के राजाओं और संबंधियों तक ने अस्वीकृत कर दिया था, पर सुदृढ़ संकल्पों के अधूरे रहने से तो दिव्य व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगने की स्थिति आती है। वह भी तो अंगीकृत नहीं हो सकती।

'जिन खोजा, तिन पाइयाँ' वाली उक्ति के अनुरूप खोज की गई, तो रीछ-वानरों में से भी ऐसे मनस्वी निकल पड़े, जो आदर्शों के निर्वाह में बड़े से बड़ा जोखिम उठाने के लिए तत्परता दिखाने लगे। उनकी एक अच्छी-खासी मण्डली कार्यक्षेत्र में उतरने के लिए कटिबद्ध होकर आगे आ गयी। बंदरों ने लकड़ी-पत्थर एकत्रित किए, रीछों ने इंजीनियर की भूमिका निभाई और समुद्र पर सेतु बनकर खड़ा हो गया।

ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते हैं। प्रतिकूलताएँ हटतीं और अनुकूलताएँ जुटती चली गयीं। लंका विजय और श्रीराम की अवध-वापसी वाली कथा सर्वविदित है। सीता भी अनेक बन्धनों से छुटकारा पाकर वापस आ गयीं। यहाँ दो निष्कर्ष निकलते हैं-एक यह कि श्रीराम की प्रतिभा पर विश्वास करके वरिष्ठ वानर भी उत्साह और साहस से भर गये थे अथवा राम दल के मूर्धन्यों ने सामान्य स्तर के वानरों को भी प्राण-चेतना से ओत-प्रोत कर दिया हो और समर्थ व्यक्तियों की एक अच्छी-खासी मण्डली बन गयी हो? दूसरी ओर समर्थ शासनाध्यक्ष भी रावण की समर्थता और अपनी दुबर्लता को देखते हुए डर गये हों और झंझट में पड़ने से डर कर कन्नी काट गये हों? निष्कर्ष यही निकलता है कि परिष्कृत प्रतिभा, दुर्बल सहयोगियों की सहायता से भी बड़े-बड़े काम सम्पन्न कर लेती है, जबकि डर कर समर्थ व्यक्ति भी हाथ-पैर फुला बैठते हैं। राणा प्रताप के सैनिकों में अधिकांश आदिवासियों का ही पिछड़ा समझा जाने वाला समुदाय प्रमुख था। लक्ष्मीबाई रानी ने घर के पिंजरे में बंद रहने वाली महिलाओं को भी प्रोत्साहन देकर युद्ध क्षेत्र में वीर सैनिकों की तरह ला खड़ा किया था। रानी लक्ष्मीबाई ने तो अपने समय के दुर्दान्त दस्यु सागर सिंह को लूट-मार करके भागते समय, केवल अपनी सहेली सुन्दरी के सहयोग से बन्दी बनाकर दरबार में खड़ा कर दिया था। उनकी मनस्विता के समक्ष उसका सारा दुस्साहस ढह गया। रानी ने अन्ततः उसे अपना सहयोगी बनाकर उसकी प्रतिभा का उपयोग अपनी सेना की शक्ति बढ़ाने में किया।

साधारण लोगों की प्रतिभा उभारकर साहस के धनी लोगों ने बड़े-बड़े काम करा लिए थे। चन्द्रगुप्त बड़े साम्राज्य का दायित्व सँभालने के योग्य अपने को पा नहीं रहा था, पर चाणक्य ने उसमें प्राण फूँके और अपने आदेशानुसार चलने के लिए विवश कर दिया। अर्जुन भी महाभारत की बागडोर सँभालने में सकपका रहा था, पर कृष्ण ने उसे वैसा ही करने के लिए बाधित कर दिया जैसा कि वे चाहते थे। समर्थ गुरु रामदास की मनस्विता यदि उच्चस्तर की नहीं रही होती, तो शिवाजी की परिस्थितियाँ गजब का पराक्रम करा सकने के लिए उद्यत न होने देतीं। रामकृष्ण परमहंस ही थे, जिन्होंने विवेकानन्द को एक साधारण विद्यार्थी से ऊँचा उठा कर विश्वभर में भारतीय संस्कृति का संदेशवाहक बना दिया। दयानन्द की प्रगतिशीलता के पीछे विरजानन्द के प्रोत्साहन ने कम योगदान नहीं दिया था। साथियों और मार्गदर्शकों की प्रतिभा, जिस किसी पर अपना आवेश हस्तान्तरित कर दे, वही कुछ से कुछ बन जाता है।

रेल का इंजन स्वयं समर्थ होता है और अपने साधनों से गति पकड़ता है। तभी उसके साथ जुड़े हुए पीछे वाले डिब्बे भी गति पकड़ते हैं। इंजन की क्षमता यदि अस्त-व्यस्त हो चले, तो फिर वह रेल लक्ष्य तक पहुँचना तो दूर, अन्यों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवागमन भी रोक कर खड़ी हो जायेगी ।

दूसरों की सहायता मिलती तो है, पर उसे प्राप्त करने के लिए अपनी पात्रता को विकसित करने के लिए असाधारण प्रयत्न करने पड़ते हैं । पात्रता ही प्रकारान्तर से सफलता जैसे पुरस्कार साथ लेकर वापस लौटती है । वर्षा ऋतु कितने ही दिन क्यों न रहे, कितनी ही मूसलाधार वर्षा क्यों न बरसे, अपने पल्ले उतना ही पड़ेगा, जितना कि बर्तन का आकार हो अथवा गड्ढे की गहराई बन सके । उन दिनों सब जगह हरियाली उगती है, पर चट्टानों पर एक तिनका भी नहीं उगता । उर्वरता न हो तो भूमि में कोई बीज उगेगा ही नहीं । छात्रों को अगली कक्षा में चढ़ने या पुरस्कार जीतने, छात्रवृत्ति पाने का अवसर किसी की कृपा से नहीं मिलता । उनकी परिश्रमपूर्वक बढ़ी हुई योग्यता ही काम आती है । प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत होने वाले जिस-तिस का अनुग्रह मिलने की आशा नहीं लगाये रहते, वरन् अपनी दक्षता, समर्थता को विकसित करके बाजी जीतने वाले सफल व्यक्तियों की पंक्ति में जा बैठने की प्रतिष्ठा अर्जित करते हैं । देवताओं तक का अनुग्रह, तपश्चर्या की प्रखरता अपनाने वाले ही उपलब्ध करते हैं । बिना प्रयास के तो थाली में रखा हुआ भोजन तक, मुँह में प्रवेश करने और पेट तक पहुँचने में सफल नहीं होता ।

महान शक्तियों ने जिस पर भी अनुग्रह किया है, उसे सर्वप्रथम उत्कृष्टता अपनाने और प्रबल पुरुषार्थ में जुटने की ही प्रेरणा दी है । इसके बाद ही उनकी सहायता काम आती है । कुपात्रों को यह अपेक्षा करना व्यर्थ है कि उन्हें अनायास ही मानवी या दैवी सहायता उपलब्ध होगी और सफलताओं, सिद्धियों, विभूतियों से अलंकृत करके रख देगी । दुर्बलता धारण किये रहने पर तो प्रकृति भी "दैव भी दुर्बल का घातक होता है"-इस उक्ति को चरितार्थ करती देखी गई है । दुर्बल शरीर पर ही विषाणुओं की अनेक प्रजातियाँ चढ़ दौड़ती हैं । शीत ऋतु का आगमन जहाँ सर्व साधारण के स्वास्थ्य -संवर्धन में सहायक होता है, वहाँ मक्खी-मच्छर जैसे कृमि-कीटकों के समूह को मृत्यु के मुँह में धकेल देता है ।

सड़क पर बसों-मोटरों का ढाँचा दौड़ता दीखता है, पर जानकार जानते हैं कि यह दौड़, भीतर टंकी में भरे ज्वलनशील तेल की करामात है । वह चुक जाय, तो बैठ कर सफर करने वाली सवारियों को उतर कर उस ढाँचे को अपने बाहुबल से धकेल कर आगे खिसकाना पड़ता है । मनुष्य के काय-कलेवर के द्वारा जो अनेक चमत्कारी काम होते दीख पड़ते हैं, वे मात्र हाड़-माँस की उपलब्धि नहीं होते, वरन् उछलती उमंगों के रूप में प्रतिभा ही काम करती है । स्वयंवर में माला उन्हीं के गले में पड़ती है, जो दूसरों की तुलना में अपनी विशिष्टता सिद्ध करते हैं । चुनावों में वे ही जीतते हैं, जिनमें दक्षता प्रदर्शित करने और लोगों को अपने प्रभाव में लाने की योग्यता होती है । मजबूत कलाइयाँ ही हथियार का सफल प्रहार कर सकने में सफल होती हैं । दुर्बल भुजाएँ तो हारने के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त कर सकने में सफल ही नहीं होतीं ।

भीष्म ने मृत्यु को धमकाया था कि जब तक उत्तरायण सूर्य न आवे, तब तक इस ओर पैर न धरना । सावित्री ने यमराज के भैंसे की पूँछ पकड़ कर उसे रोक लिया था और सत्यवान के प्राण वापस करने के लिए बाधित किया था । अर्जुन ने पैना तीर चला कर पाताल-गंगा की धार ऊपर निकाली थी और भीष्म की इच्छानुसार उनकी प्यास बुझायी थी । राणा सांगा के शरीर में अस्सी गहरे घाव लगे थे, फिर भी वे पीड़ा की परवाह न करते हुए अन्तिम साँस रहने तक युद्ध में जूझते ही रहे थे । बड़े काम बड़े व्यक्तित्वों से ही बन पड़ते हैं । भारी वजन उठाने में हाथी जैसे सशक्त ही काम आते हैं । बकरों और गधों से उतना बन नहीं पड़ता, भले ही वे कल्पना करते, मन ललचाते या डींगें हाँकते रहें ।

प्रतिभा जिधर भी मुड़ती है, उधर ही बुलडोजरों की तरह मैदान साफ करती चलती है । सर्वविदित है कि योरोप का विश्वविजयी पहलवान सैन्डो किशोर अवस्था तक अनेक बीमारियों से घिरे, दुर्बल काया लिये फिरते थे । पर जब उनने समर्थ तत्वावधान में स्वास्थ्य का नये सिरे से संचालन और बढ़ाना शुरू किया, तो कुछ ही समय में विश्वविजयी स्तर के पहलवान बन गये । भारत के चंदगीराम पहलवान के बारे में अनेकों ने सुना है कि वह हिन्दकेसरी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे । पहले वह अन्यमनस्क स्थिति में अध्यापकी से रोटी कमाने वाले क्षीणकाय व्यक्ति थे । उनने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोबल से ही नई रीति-नीति अपनायी और खोयी हुई सेहत नये सिरे से न केवल पायी, वरन् इतनी बढ़ायी कि हिन्दकेसरी उपाधि से विभूषित हुए ।

इंग्लैण्ड की एक महिला कैंसर रोग से बुरी तरह आक्रान्त थी । डॉक्टरों ने उसे जवाब दे दिया था कि छः महीने से अधिक जीने की गुंजाइश नहीं है । जिस मशीन से उपचार हो सकता था, वह करोड़ों मूल्य की थी, जिसे अपने यहाँ रखने में कोई डॉक्टर समर्थ नहीं था । रोगी महिला ने नये सिरे से नया विचार किया । जब छः महीने में मरना ही है, तो अन्य अपने जैसे निरीहों के प्राण बचाने की कोशिश क्यों न करें । उसने टेलीविजन पर एक अपील की कि यदि तीन करोड़ रुपये का प्रबंध कोई उदारचेता कर सके, तो उस मशीन के द्वारा उस जैसे निराशों को जीवन-दान मिल सकता है । पैसा बरसा । उससे एक नहीं तीन मशीनें खरीद ली गयीं और इतना ही नहीं कैंसर का एक साधन-सम्पन्न अस्पताल भी बन गया । रोगिणी इन्हीं कार्यों में इतने दत्तचित्त और मस्त रही कि उसे अपने मरने की बात का स्मरण तक न रहा । कार्य पूरा हो जाने पर उसकी जाँच-पड़ताल हुई, तो पाया गया कि कैंसर का एक भी चिन्ह उसके शरीर में बाकी नहीं रहा है ।

अस्पताल की चारपाई पर पड़े-पड़े वाल्टेयर ने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की थी । कालिदास और वरदराज की मस्तिष्कीय क्षमता कितनी उपहासास्पद थी, इसकी जानकारी सभी को है, पर वे जब नया उत्साह समेट कर नये सिरे से विद्या पढ़ने में जुटे, तो मूर्धन्य विद्वानों में गिने जाने लगे । व्यक्ति की अन्तःचेतना, जिसे प्रतिभा भी कहते हैं, इतनी सबल है कि अनेकों अभावों और व्यवधानों को रौंदती हुई, वह उन्नति के उच्च शिखर पर जा पहुँचने में समर्थ होती है । प्रतिभा वस्तुतः वह सम्पदा है, जो व्यक्ति की मनस्विता, ओजस्विता, तेजस्विता के रूप में बहिरंग में प्रकट होती है । यदि प्रसुप्त को उभारा जा सके, स्वयं को खराद पर चढ़ाया जा सके, तो व्यक्ति असंभव को भी संभव बना सकता है । यह अध्यात्म विज्ञान का एक सुनिश्चित सिद्धांत एवं अटल सत्य है । ❋

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात भ्रमण करते हुए एक शहर में पहुँचे । वहाँ उनकी वृद्ध व्यक्ति से भेंट हुई । दोनों काफी घुल-मिल गये । सुकरात ने उनके व्यक्तिगत जीवन में काफी रुचि ली । उन्होंने काफी खुलकर बात की ।

सुकरात ने संतोष व्यक्त करते हुए कहा- "आपका विगत जीवन तो बड़े शानदार ढंग से बीता है, पर इस वृद्धावस्था में आपको कौन-कौन से पापड़ बेलने पड़ रहे हैं, यह तो बताइये ।"

वृद्ध किंचित मुसकराया- "मैं अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व अपने समर्थ पुत्रों को देकर निश्चिन्त हूँ । वह जो कहते हैं कर देता हूँ, जो खिलाते हैं खा लेता हूँ और अपने पौत्र, पौत्रियों के साथ हँसता-खेलता रहता हूँ । बच्चे कुछ भूल करते हैं तभी मैं चुप रहता हूँ । मैं उनके किसी कार्य में बाधक नहीं बनता, पर जब कभी वे परामर्श लेने आते हैं, मैं अपने जीवन के सारे अनुभवों को उनके सामने रख, की गई भूल उत्पन्न दुष्परिणामों की ओर से सचेत कर देता हूँ । वह मेरी सलाह पर कितना चलते हैं यह देखना और अपना मस्तिष्क खराब करना मेरा काम नहीं है । वह मेरे निर्देशों पर चलें ही यह आग्रह नहीं । परामर्श देने के बाद भी यदि वह भूल करते हैं तो मैं चिंतित नहीं होता उस पर भी यदि वे पुनः मेरे पास आते हैं, तो उनके लिए सदैव मेरा दरवाजा खुला रहता है । मैं पुनः नेक सलाह देकर उन्हें विदा करता हूँ । वृद्ध की बात सुनकर सुकरात बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने कहा- "इस आयु में जीवन कैसे जिया जाय यह आपने बखूबी समझ लिया है ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न जनता से गाफिल, न मालिक से

छत्रपति को अपने राज्य के लोगों की सुख-सुविधाओं का बड़ा ध्यान रहता था। हर समय वे कष्ट पीड़ितों और समस्याग्रस्तों की सेवा-सहायता के लिए तत्पर रहते। समूचे शासन क्षेत्र में उन्होंने घोषणा करादी थी कि कोई भी दुःखी व्यक्ति उनके पास पहुँच कर अपनी तकलीफें कह सकता था। वे उसकी परेशानियों को हल करने में कोई कोर-कसर न उठा रखेंगे।

स्वयं के साथ अपने राज कर्मचारियों को भी ऐसी ही हिदायतें दे रखी थीं कि वे प्रतिपल लोगों की कष्ट-कठिनाइयाँ सुनने के लिए तत्पर रहें। राज्य के सभी किलेदारों से उन्होंने कह रखा था कि ऐसी कोई शिकायत न आए जिसमें कि प्रजाजन की तकलीफ न दूर की गई हो। जन सेवा से मुख मोड़ने वालों को सख्त से सख्त सजा देने की व्यवस्था भी की गई थी और अब तक किसी भी कर्मचारी को दण्डित करने का अवसर नहीं मिला था।

एक दिन की बात है- बृहस्पतिवार की रात को कोई व्यक्ति पुरन्दर के किलेदार के पास रात को बारह बजे पहुँचा। वह किसी काम से आया था। सम्भवतः उसे कोई ऐसा काम रहा होगा, जिसके कारण उसे वहाँ गये रात आना पड़ा। किलेदार के पास संबन्धित कर्मचारी आगन्तुक की सूचना लेकर पहुँचा तो उसने कहला दिया कि -"यदि बहुत ही आवश्यक काम हो तो वे बाहर आएँ, नहीं तो वे सुबह आकर शिकायत सुन लेंगे।"

सुनकर आगन्तुक को किलेदार पर गुस्सा आया कि उसके रात को चलकर आने को कोई महत्व ही नहीं दिया गया। उसने घर जाने के बजाय क्षत्रपति के पास जाकर उक्त किलेदार की शिकायत करने का निश्चय किया।

सुबह जब वह क्षत्रपति के पास पहुँचा और अपनी शिकायत दोहराई तथा किलेदार की घटना भी कह दी। सुनकर उन्हें आश्चर्य तथा आक्रोश दोनों की एक साथ अनुभूति हुई। आश्चर्य इसलिए कि उक्त किलेदार बड़ा ही कर्तव्यनिष्ठ तथा ईमानदार था। उसी के द्वारा यह गल्ती होने के कारण दुःख हुआ और क्रोध भी आया। उन्होंने फौरन उस किलेदार को बुलाया और जवाब-तलब किया कि- "आप कहीं लोगों का काम करने से मना तो नहीं कर देते?"

ईश्वर साक्षी है- किलेदार ने कहा- "मैंने कभी किसी को काम के लिए मना नहीं किया।"

"पर गुरुवार की रात तो तुमने इस आदमी को मना किया था।" क्षत्रपति ने फरियादी की ओर इशारा कर कहा- तथा पूछा- क्या यह झूठ बोलता है?

"नहीं महाराज! यह सच कहता है? पर उस गुरुवार की रात मैं किसी अन्य काम में व्यस्त था, फिर भी पुछवा लिया था कि यदि अत्यावश्यक हो तो मैं बाहर आऊँ। फिर ये सीधे आपके पास चले आये। शिवाजी ने पूछा- "आप कहाँ व्यस्त थे? ऐसी क्या मजबूरी थी?"

"महाराज! उसे न पूछिए मेरा राज खुल जायेगा।" क्षत्रपति ने फरमाया- "गुप्त वे बातें रखी जाती हैं, जो अनुचित होती हैं। गुप्त रखना भय का द्योतक है और भयभीत होना मनुष्य के अपराधी होने का द्योतक है। फिर जन-सेवक को तो कोई बात गुप्त नहीं रखनी चाहिए। आप अपनी उस दिन की व्यस्तता का कारण बताइए।"

किलेदार ने बड़े संकोच के साथ उत्तर दिया। "मैं सप्ताह भर कर्तव्य पालन करने में लगा रहता हूँ। मात्र गुरुवार के दिन मुझे रात्रि में फुरसत मिलती है। उस दिन मैं वस्त्रों की सफाई करता हूँ। अपने एक मात्र वस्त्रों के जोड़े को गुरुवार की रात धोकर सुखाता हूँ तथा सुबह पहनता हूँ। इस बात को मैं लोगों से छिपाता हूँ ताकि कोई अपने एक मात्र हिन्दू राज्य का मजाक न उड़ाए और मैं सप्ताह भर नियमित उपासना भी नहीं कर पाता सो गुरुवार को उपवास और रात्रि में ध्यान करता हूँ। यही वह कारण है।" किलेदार ने जमीन में आँखें गड़ाए हुए अपनी बात पूरी की।

यह सुनकर क्षत्रपति की आँखों से आँसू झड़ पड़े। वह भावुक हो बोले- "धन्य हो तुम जो न जनता से गाफिल हो और न उस मालिकों के मालिक से। वेतन भी इससे अधिक नहीं लेते कि कपड़ों का दूसरा जोड़ा बन सके।" उन्होंने सिंहासन से उठकर किलेदार को छाती से लगा लिया। आगे से सभी को सप्ताह में एक दिन अवकाश की व्यवस्था बनादी। अपने कर्तृत्व से अनेकों में प्रेरणा भरने वाले यह किलेदार थे मुरार जी बाजी प्रभु। जिनका शौर्य भरा सादगीयुक्त प्रेरक जीवन मराठा इतिहास में सोने के अक्षरों में टँका है। ✳

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह समय चूकने का है नहीं ।

आमतौर से भक्तजन भगवान को पुकारते और उनकी सहायता के लिए विनयपूर्वक गिड़-गिड़ाते रहते हैं । पर कभी-कभी ऐसे समय भी आते हैं, जब भगवान उन भक्तजनों से आवश्यक याचना करते हैं और बदले में उन्हें इतना महत्व देना पड़ता है, जो उनकी अपनी महत्ता से भी बढ़-चढ़ कर होता है ।

हनुमान की वरिष्ठता के संबंध में जानकारी प्राप्त करने पर राम-लक्ष्मण उन्हें खोजने ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे और येन-केन प्रकारेण उन्हें सीता की खोज में सहायता करने के लिए सहमत किया था । गंगाघाट पार करने के लिए केवट की सहायता आवश्यक हो गई थी । इसलिए केवट को उन्होंने आग्रहपूर्वक सहायता करने के लिए किसी प्रकार मनाया । आड़े समय में काम आने वाले जटायु को छाती से लगाकर कृतज्ञता व्यक्त की, उसकी अनुभूति हर सुनने वाले को भाव-विभोर कर देती है । समुद्र पर पुल बाँधने में जिन निहत्थे रीछ वानरों ने सहायता की, उनकी उदार चेतना को हजारों लाखों वर्ष बीत जाने पर भी कथाकारों ने भुलाया नहीं है ।

महाभारत अभीष्ट था । उसकी बागडोर सँभालने के लिए अर्जुन जैसे मनस्वी की आवश्यकता थी । अर्जुन से पूछा गया तो वह अचकचाने लगा । कभी भीख माँग कर खा लेने, कभी कुटुम्बियों पर हथियार न उठाने का सिद्धान्तवाद तर्क रूप में प्रस्तुत करने लगा । भगवान ने उसके मन की कमजोरी पढ़ी और भर्त्सनापूर्वक कटु शब्दों में दबाव डाला कि उसे उस कठोर कार्य में उद्यत होना ही चाहिए । यों भगवान सर्व शक्तिमान होने से महाभारत को अकेले भी जीत सकते थे, पर अर्जुन को श्रेय देना था जो सच्ची मित्रता का तकाजा था । उसे यशस्वी भी तो बनाना था । इसलिए संग्राम के मध्य खड़े होकर अर्जुन को सुविस्तृत दर्शनशास्त्र समझाते हुए अपने प्रयोजन में भागीदार बनने के लिए सहमत करना ही पड़ा । अर्जुन घाटे में नहीं, नफे में ही रहा ।

सुदामा बगल में दबी चावल की पोटली देना नहीं चाहते थे, सकुचा रहे थे, पर उनने उस दुराव को बलपूर्वक छीना और चावल देने की उदारता परखने के बाद ही द्वारिकापुरी को सुदामा पुरी में रूपान्तरित किया । भक्त और भगवान के मध्यवर्ती इतिहास की परम्परा यही रही है । पात्रता जाँचने के उपरान्त ही किसी को कुछ महत्वपूर्ण मिला है । जो आँखें मटकाते आँसू बहाते, रामधुन की ताली बजाकर बड़े-बड़े उपहार पाना चाहते हैं, उनकी अनुदारता खाली हाथ ही लौटती है । भगवान को ठगा नहीं जा सकता है । वे गोपियों तक से छाछ प्राप्त किये बिना अपने अनुग्रह का परिचय नहीं देते थे । जो गोवर्धन उठाने में सहायता करने की हिम्मत जुटा सके, वही कृष्ण के सच्चे सखाओं में गिने जा सके ।

यह समय युग परिवर्तन जैसे महत्वपूर्ण कार्य का है । आदर्शवादी कठोर सैनिकों के लिए परीक्षा की घड़ी कहा जाय, तो इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं समझी जानी चाहिए । पुराना कचरा हटता है और उसके स्थान पर नवीनता के उत्साह भरे सरंजाम जुटते हैं । यह महान परिवर्तन की, महा-क्रांति की वेला है । इसमें कायर, लोभी, डरपोक और भाँड़ आदि जहाँ-तहाँ छिपे हों, तो उनकी ओर घृणा, तिरस्कार की दृष्टि डालते हुए उन्हें अनदेखा भी किया जा सकता है । यहाँ तो प्रसंग हथियारों से सुसज्जित सेना का चल रहा है । वे ही यदि समय की महत्ता आवश्यकता को, न समझते हुए, जहाँ-तहाँ मटरगस्ती करते फिरें और समय पर हथियार न पाने के कारण समूची सेना को परास्त होना पड़े, तो ऐसे व्यक्तियों पर तो हर किसी का रोष ही बरसेगा, जिनने आपात स्थिति में भी प्रमाद बरता और अपना तथा अपने देश के गौरव का मटियामेट करके रख दिया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन्तों, जाग्रतों और प्राणवानों में से प्रत्येक को अनुभव करना चाहिए कि यह ऐसा विशेष समय है जैसा कि हजारों-लाखों वर्षों बाद कभी एक बार आता है। गाँधी के सत्याग्रही और बुद्ध के परिव्राजक बनने का श्रेय, समय निकल जाने पर अब कोई किसी भी मूल्य पर नहीं पा सकता। हनुमान और अर्जुन की भूमिका हेतु फिर से लालायित होने वाला कोई व्यक्ति चाहे कितने ही प्रयत्न करे, अब दुबारा वैसा अवसर हस्तगत नहीं कर सकता। समय की प्रतीक्षा तो की जा सकती है, पर समय किसी की भी प्रतीक्षा नहीं करता। भगीरथ, दधीचि और हरिश्चन्द्र जैसा सौभाग्य अब उनसे भी अधिक त्याग करने पर भी पाया नहीं जा सकता।

समय बदल रहा है। प्रभातकाल का ब्रह्म मुहूर्त अभी है। अरुणोदय के दर्शन अभी हो सकते हैं। कुछ घण्टे ऐसे हैं उन्हें यदि प्रमाद में गँवा दिये जायें, तो अब वह गया समय लौटकर फिर किस प्रकार आ सकेगा? युग परिवर्तन की बेला ऐतिहासिक, असाधारण अवधि है। इसमें जिनका जितना पुरुषार्थ होगा, वह उतना ही उच्चकोटि का शौर्य पदक पा सकेगा। समय निकल जाने पर, साँप निकल जाने पर लकीर को लाठियों से पीटना भर ही शेष रह जाता है।

इन दिनों मनुष्य का भाग्य और भविष्य नये सिरे से लिखा और गढ़ा जा रहा है। ऐसा विलक्षण समय कभी हजारों-लाखों वर्षों बाद आता है। इसे चूक जाने वाले सदा पछताते ही रहते हैं और जो उसका सदुपयोग कर लेते हैं, वे अपने आपको सदा सर्वदा के लिए अजर-अमर बना लेते हैं। गोवर्धन एक बार ही उठाया गया था। समुद्र पर सेतु भी एक ही बार बना था। कोई यह सोचता रहे कि ऐसे समय तो बार-बार आते ही रहेंगे और हमारा जब भी मन करेगा, तभी उसका लाभ उठा लेंगे, तो ऐसा समझने वाले भूल ही कर रहे होंगे। इस भूल का परिमार्जन फिर कभी कदाचित ही हो सके।

लोग अपने पुरुषार्थ से तो अपने अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करते ही रहते हैं, पर भगवान के उपायों का श्रेय मनुष्य को अनायास ही मिल जाय, ऐसा कदाचित ही कभी होता है। अर्जुन का रथ एक बार ही कृष्ण ने चलाया था। वे उसके केवल, मात्र सारथी नहीं थे कि जब हुकुम चलाया, तभी उनसे वह काम करा लिया। भगवान राम और लक्ष्मण को कंधों पर उठाये फिरने का श्रेय हनुमान को एक ही बार मिला था। वे जब चाहते तभी हनुमान हठी बनकर उन्हें कंधों पर बिठाते और सैर कराते, ऐसे अवसर चाहे कभी भी मिल जाते रहेंगे, ऐसी आशा सदा सर्वदा किसी को भी नहीं करनी चाहिए।

ब्रह्मा ने सृष्टि एक बार ही रची थी। उसके बाद तो वह ढर्रा ज्यों-त्यों करके अपने ढंग से चलता ही आ रहा है। नए युग का सृजन इन्हीं दिनों हो रहा है। समुद्र मंथन एक बार ही हुआ और १४ रत्न एक बार ही निकले थे। वैसी घटनाएँ जब मन आये तभी घटित कर दी जायेंगी, यह आशा नहीं ही करनी चाहिए।

अवांछनीयता के पलायन का, औचित्य की संस्थापना का ब्रह्म मुहूर्त, यह एक बार ही आया है। फिर कभी हम लोग इसी मनुष्य जन्म में ऐसा देख सकेंगे, इसकी आशा करना एक प्रकार से अवांछनीय ही होगा। अच्छा यही हो कि ऐसी पुण्य वेला का लाभ उठाने में आज के विचारशील तो चूक करें ही नहीं। ✱

> *इब्रीस शाह एक बार बस्ती में भ्रमण पर निकले। संध्या का समय था। रास्ते में उन्हें एक बच्चा मिला जो अपने हाथ में दिया उठाये था। इब्रीस शाह ने बच्चे से पूछा- "यह कहाँ से लाए हो?"*
>
> *बच्चे ने दिया बुझा दिया फिर बोला- "यह रोशनी में वहीं से लाया था जहाँ अब वह चली गई है।"*
>
> *बच्चे के मुँह से यह उत्तर सुन इब्रीस अवाक् रह गये। उन्होंने बच्चे को मन ही मन प्रणाम किया व वे सोचने लगे, "यह बच्चा जन्म-मरण के सिद्धान्त को कितना सरल तरीके से समझाता है।"*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्ज्ञान वह जो सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे

चित्र विचित्र जानकारियाँ अधिकाधिक मात्रा में उपलब्ध करते रहना मनुष्य का स्वभाव अथवा व्यसन है ।जिस प्रकार पेट कुछ पाना पचाना चाहता है उसी प्रकार मस्तिष्क की माँग रहती है कि जिस प्रकार लोभवश अधिक संग्रह की ललक रहती है उसी प्रकार वह जानकारियाँ जुटाने का रसास्वादन अनुभव करता रहे । बच्चे इसी हेतु अभिभावकों, अध्यापकों से चित्र विचित्र प्रश्न पूछते रहते हैं । नानी से कहानियाँ सुनने के लिए मचलते हैं । साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने समझने की मनःस्थिति नहीं होती तो चित्र कथाओं से मन बहलाते हैं । जहाँ भी नजर जाती है वहीं से कुछ जानने समझने का प्रयत्न करते हैं । इसी आधार पर उनके कौतूहल का समाधान होता रहता है ।

आयु बढ़ने के साथ यह उत्सुकता और भी अधिक बढ़ती जाती है । अखबार पढ़ने , फिल्म, टी.वी. देखने, रेडियो सुनने, पर्यटन करने, मेले समारोहों में सम्मिलित होने का उत्साह भी इसी निमित्त बढ़ा चढ़ा रहता है । तृप्ति कभी भी नहीं होती । एक के बाद दूसरी प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त करने की उत्सुकता उभरती है । जिस प्रकार पेट भरने, वैभव बटोरने के लिए अनवरत प्रयत्न चलते रहते हैं उसी प्रकार जानकारियों के संचय से मिलने वाले रसास्वादन हेतु भी कुछ न कुछ किया ही जाता रहता है । यह क्रम आजीवन चलता ही रहता है । यदि किसी की यह प्रकृति उभरे ही नहीं या कम उभरे तो समझना चाहिए कि उसकी मानसिकता अविकसित, अपंगस्तर की है ।

जिस प्रकार आहार में तरह तरह के स्वादों की अपेक्षा रहती है, जिस प्रकार आँखों को नये दृश्य देखने और कानों को नये शब्द सुनने की उत्सुकता रहती है, उसी प्रकार मन को भी अपने व्यसन की पूर्ति करने के लिए कुछ न कुछ उधेड़ बुन जारी रखनी पड़ती है । उसे नवीनता चाहिए । इस कौतूहल के लिए ही नित नई पुस्तकें–पत्रिकाऐं पढ़नी पड़ती हैं । चर्चा में कई प्रकार की जानकारियों के आदान–प्रदान का सिलसिला चलता रहता है । अनेक व्यंजन चखने के लिए लोग होटलों के चक्कर काटते हैं । कामाचार के नूतन प्रसंग देखने के लिए व्यभिचार की ओर मुड़ते हैं । कुदृष्टि का तात्पर्य भी इसी प्रकार का मनोरंजन करना होता है ।

यह व्यसन या स्वभाव, सम्पन्न लोगों में दृश्य, श्रव्य या स्वाद प्रदान रहता है । उनका मनोरथ इतने भर से पूरा हो जाता है पर शिक्षितों की जिज्ञासा इससे एक कदम बढ़ी चढ़ी होती है उन्हें अध्ययन या श्रवण प्रवचन के अवसर तलाशते रहने पड़ते हैं । अत्यधिक पतन भी इसी का एक रूप है । कइयों को तथाकथित सत्संगों, कथा-प्रवचनों में भी इसी स्तर का रस आता है । संगीत, नृत्य, अभिनय को भी इसी प्रसंग का एक पक्ष समझा जा सकता है । कथाएँ पढ़ना या सुनना इसी रुझान का एक पक्ष है । संसार भर में आधा साहित्य कथा कहानियों का छपता है । शेष आधे को अन्यान्य सभी विषय मिलकर पूरा करते हैं । इसे लोक रुचि के रुझान का एक प्रमाण माना जा सकता है । लोक रुचि अपने आप में एक बड़ी शक्ति एवं आवश्यकता है । उसी की पूर्ति के लिए अनेकानेक क्रिया–कलाप चलते और सरंजाम जुटते रहते हैं । इन्हें सार्थक या निरर्थक कुछ भी समझा जाय । इस प्रवाह को वस्तुस्थिति के साथ जुड़ा हुआ समझा जा सकता है । लोग इसी कौतूहल–कौतुक की पूर्ति में अपना जीवन खपा देते हैं । इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनके पल्ले ऐसा कुछ पड़ता है या नहीं, जिसे महत्वपूर्ण कहा जा सके ।

जानकारी संग्रह करते हुए मनोरंजन का सरंजाम जुटाते रहना एक बात है और ऐसा ज्ञान सम्पादित करना दूसरी , जो मनुष्य को ऊँचा उठा सके, आगे बढ़ा सके । किसी अभिनन्दनीय और अनुकरणीय भूमिका को निभाने के लिए महामानवों के स्तर तक पहुँच सके, हो सकता है कि इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशा में चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रख्यात होने का अवसर न मिले पर इतना निश्चित है कि सद्ज्ञान के आधार पर सत्कर्म बन पड़ना सुनिश्चित है और वे ही निमित्त कारण हैं, किसी के सफल जीवन एवं अग्रगामी समुन्नत बनने के । इस स्थिति में और कुछ मिले या न मिले, पर इतना निश्चित है कि आत्म संतोष और अपने दिशा निर्धारण पर गर्व तो अनुभव होता ही रहता है । यह भी किसी के लिए जीवन साधना में सिद्धि प्राप्त कर लेने जैसी उपलब्धि है ।

जानकारियाँ वे संग्रह की जानी चाहिए जो जीवन को सन्मार्ग पर अग्रगामी बनाने में प्रत्यक्ष और प्रमुख भूमिका निभाने में कारगर सिद्ध हो सकें । इसके अतिरिक्त जो कुछ पढ़ा सुना जाता है उसे कौतुक कौतूहल या मनोरंजन की पूर्ति भर समझना चाहिए । इसमें समयक्षेप तो हो सकता है पर समझना चाहिए कि उससे पल्ले कुछ भी पड़ने वाला नहीं है ।

ज्ञान की उपयोगिता, आवश्यकता और महत्ता कम करके नहीं समझी जानी चाहिए । उसे योजनाबद्ध और दिशाबद्ध रहना चाहिए । जिस प्रकार भोजन करते समय आहार के संबंध में यह जाना परखा जाता है कि उसमें उपयोगी, पौष्टिक तत्व है या नहीं । उसी प्रकार ज्ञान सम्पादन करते समय यह कसौटी लगी रहनी चाहिए कि उसमें ऐसे तत्व हैं या नहीं , जो व्यक्तित्व और कर्तव्य को उर्ध्वगामी बना सकने की क्षमता रखते हैं । अन्दर से जो ऐसा हो उसी को अपनाया जाय । राजहंस प्रवृत्ति से अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित किया जाय । नीर क्षीर विवेक का मानस बने । मोती चुगने और कीड़े छोड़ देने की प्रवृत्ति को अपनाने का प्रयास अनवरत रूप से चलता रहे । मनोरंजन के लिए जो पढ़ा, सुना देखा जाना है उसमें कटौती करके इस स्तर का ज्ञान सम्पादन करते रहा जाय जो व्यक्ति के अन्तराल में समाहित प्रसुप्त महानताओं का जागरण कर सके । गुण, कर्म , स्वभाव में मानवी गरिमा के अनुरूप सत्प्रवृत्तियों को उभारने, बढ़ाने, परिपक्व एवं सुविस्तृत , सुदृढ़ बनाने में समर्थ हो सके ।

जीवन सम्पदा ईश्वर की महानतम विभूति है । उसे पाकर मनुष्य को कृत-कृत्य और धन्य बन जाना चाहिए किन्तु देखा यह जाता है कि निरर्थक भटकाव में वह अनुपम वैभव कौड़ी मोल बिक जाता है । दुश्चिन्तन और अनाचरण के फलस्वरूप ऐसा बोझ ही शिर पर लद जाता है जिससे वर्तमान विपन्नताओं से भरा रहता और भविष्य के अन्धकारमय बनने का आधार खड़ा होता जाता है । यदि यह पहचान सकने का विवेक जगे और समय रहते सुधार निर्धारण बन पड़े तो समझना चाहिए कि एक महती सफलता उपलब्ध हुई ।

ठीक इसी के समानान्तर तथ्य यह है कि गुण, कर्म, स्वभाव को परिष्कृत करने वाली विचारधारा का परिपोषण प्राप्त करने का सुयोग बना या नहीं । कहा जा चुका है कि ज्ञान एक प्रचण्ड शक्ति है । उसका महत्व समझा जा सके, उपयोगी स्तर अपनाया जा सके और यह ध्यान रखा जा सके कि औषधि स्तर का, रसायन स्तर का ज्ञान सम्पादन किया जा रहा है या नहीं ? तो समझना चाहिए कि उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने वाले भविष्य का राजमार्ग उपलब्ध हो गया । इस दृष्टि से व्यावहारिक जीवन में प्रगतिशीलता का तत्वों का समावेश कर सकने वाला सत्साहित्य ही उपयोगिता की कसौटी पर खरा उतरता है । इसके अतिरिक्त जो बचा रहता है उसे कूड़ा करकट नहीं तो अधिक से अधिक फुलझड़ी जलाने या पतंग उड़ाने जैसा पठन मनोरंजन कहना चाहिए , जिससे समय क्षेप करने वाले विनोद के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगता नहीं है ।

> *अफ्रीका में बन्दरों को जीवित पकड़ने वाले शिकारियों ने एक नया तरीका निकाला था । वे छोटे मुँह वाले घड़े में चने भरकर रख देते थे । बन्दर उसमें हाथ डालता और चने मुट्ठी में भर लेता । ऊपर खींचता तो बंधी मुट्ठी हाथ को बाहर न निकलने देती । बन्दर सोचता हाथ को चनों ने पकड़ लिया । वह चीखता चिल्लाता पर मुट्ठी खोलने की बात न सोच पाता । अन्ततः पकड़ा जाता और मौत के घर पहुँचता । लोग इसी प्रकार प्रलोभनों में फँसते और उन्हें न छोड़ पाने के कारण आपत्ति में फँसते हैं ।*

सरसरी निगाह से तो रेल में बैठे मुसाफि[र] आसपास के दृश्यों को भी देखते चलते हैं पर उससे दृष्टिरंजन के अतिरिक्त ऐसा कुछ भी उपलब्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होता जिससे प्रगति या समृद्धि के सन्दर्भ में कुछ कारगर उपलब्धि हो सके । ठीक इसी प्रकार सरसरी निगाह से पढ़ते या सुनते रहने पर भी कुछ महत्वपूर्ण हस्तगत नहीं होता । सत्साहित्य का चयन करना ही पर्याप्त नहीं वरन् होना यह भी चाहिए कि उसे पूरी तरह समझते हुए ध्यान देकर पढ़ा जा सके । न केवल ध्यान दिया जाय वरन् यह भी देखा जाय कि अपनी वर्तमान जीवनचर्या में उपयोगी , प्रेरणाओं का समावेश किस हद तक किस प्रकार संभव हो सकता है । इस आधार पर थोड़ा पढ़ना भी इतना उपयोगी हो सकता है जितना कि उथले दृष्टि से पढ़े गये विशाल कलेवर वाले शास्त्र, पुराण या शोध प्रबंध भी नहीं हो सकते । पठन की सार्थकता तभी है जब उसके उपयोगी अंशों को जीवन में उतारने–कार्य रूप में परिणत करने की योजना भी बनती रहे ।

युधिष्ठिर ने पाठशाला में प्रथम पाठ पढ़ा–"सत्यंवद" । दूसरे सभी साथी उसे दूसरे दिन ही याद करके ले आये । पर युधिष्ठिर उसे समझ पाने में असमर्थता ही प्रकट करते रहे । कई दिन बीत जाने पर भी पाठ न सुनाया जा सका तो गुरु ने तमक कर पूछा कि ऐसा क्यों ? युधिष्ठिर ने कहा "मैं यह योजना बना रहा हूँ कि पाठ में सन्निहित सत्य निष्ठ जीवन कैसे जिया जाय ? उस मार्ग में आने वाली कठिनाइयों से किस प्रकार निपटा जाय ?"

हुआ यही । अन्य विद्यार्थियों ने अनेकों पाठ याद कर लिये । कितनी ही पुस्तकें पढ़ डालीं, पर युधिष्ठिर उस आरंभिक पाठ को ही जीवन का अविच्छिन्न अंग बनाने की योजना में निरत रहे । उनने वैसा ही कर भी दिखाया । उस एक ही पाठ के प्रभाव से वे धर्मराज युधिष्ठिर के नाम से प्रख्यात हुए । उनका इतिहास अमर हो गया । एक ही राजमार्ग अपनाकर लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ हुए ।

सर्व साधारण की मनोवृत्ति और प्रवृति ज्ञानार्जन के सम्बन्ध में ऐसी ही होनी चाहिए । विषैला, दूषित भोजन कोई नहीं खाता । पशु प्रवृत्तियों को भड़काने वाला साहित्य किसी को भी नहीं पढ़ना चाहिए । भले ही उस घटिया मनोरंजन की अपेक्षा प्रकृति सान्निध्य में पेड़ पौधों से पशु पक्षियों से, कीट–पतंगों से मानसिक वार्तालाप करना पड़े ।

इसी प्रकार कुसंग से मिलने वाले श्रवण, परामर्श से भी बचना चाहिए । भले ही वह तथाकथित सत्संग, प्रवचन कीर्तन आदि के साथ ही क्यों न मिला हो । धार्मिक क्षेत्र में कथा श्रवण आदि के नाम पर प्रायः ऐसी ही अफीम खिलाई जाती रहती है जो अन्ध विश्वास उपजाती और दिशा भ्रम में धकेल कर उस मार्ग पर घसीट ले जाती है जिस पर कदम बढ़ाने वाला हर दृष्टि से घाटा ही घाटा उठाता है । जहाँ ऐसा माहौल हो वहाँ तथ्यों की कसौटी पर कस कर विवेक का आश्रय लेकर उपयोगिता –अनुपयोगिता का निर्णय करना चाहिए । सत्संग , प्रवचन, परामर्श के नाम पर कहीं भटकाव तो गले नहीं उतरा जा रहा है इस यथार्थता को भली भाँति जान लेना चाहिए । इसके बाद ही उस कथोपकथन के सम्पर्क में आना चाहिए । अन्यथा विचारों के आदान–प्रदान में दिग्भ्रान्त तत्वों के साथ सम्पर्क स्थापित करने की अपेक्षा प्रकृति के सौन्दर्य भरे घटकों के साथ अन्तः संवेदनाओं के आधार पर मौन वार्तालाप करते रहना चाहिए । वहाँ नीरवता रहने पर भी धुआँधार कथोपकथन की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर सामग्री हस्तगत हो सकती है ।

"प्राचीन की शक्ति" शीर्षक से अमेरिका की पत्रिका "जर्नल आफ द अमेरिकन मेडिकल रिसर्च" के जनवरी १९५८ के अंक में एक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ था लन्दन में जान जेहू नामक डाकिया सड़क पर बस से कुचला गया । अस्पताल में परीक्षण होने पर विदित हुआ कि उसके कपाल में कई घाव आये हैं और दिमाग का दाहिना भाग बुरी तरह क्षत हुआ है । डाक्टरी राय यह थी कि वह कभी चल नहीं सकेगा और उसके शरीर का एक अंग लकवे का सदा शिकार रहेगा । आपरेशन करने वाला सर्जन प्रार्थनाशील था । उसने अपने अधीनस्थ सभी कर्मचारियों और अस्पताल के बीमारों से निवेदन किया कि आओ हम सब जेहू के कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें और उसको आराम होने तक सदा करते रहें । सामूहिक प्रार्थना का प्रभाव देखकर सभी विस्मय विमुग्ध हो गए । रोगी पैरों से चलने लगा और उसमें बोलने की शक्ति आ गयी । सर्जन ने सबसे कहा प्रार्थना का तात्पर्य है ईश्वरीय शक्ति का आवहान साथ ही साथ अपने को इस शक्ति के प्रति खोल देना उद्घाटित करना । ऐसा कर पाना तभी सम्भव बन पड़ता है जबकि संकीर्ण स्वार्थपरता से ऊपर उठ कर सब के हित की प्रार्थना की जाय । इंग्लैण्ड में राष्ट्रीय स्वास्थ्य समिति द्वारा ३००० अस्पताल चलाये जाते हैं । इन सबमें बीमारों के इलाज के साथ प्रार्थना को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषार्थ का बीजांकुर

डाँट सुनकर वह सहम गया । फटी-फटी आँखों से कुछ देर उसकी ओर देखता रहा, जिसकी उँगुलियों में थमी कलम उसका भाग्य लिख रही थी । तो क्या इन्सान का भाग्य किसी की मुट्ठी में कैद रहता है ? पर वह तो दिन भर हड्डी तोड़ परिश्रम करता है, तब कहीं एक दो नहीं पूरे तीस दिन के बाद उसे मजदूरी मिलती है । तब उसके भाग्य की सृजेता उसकी मजबूत बाहें हैं, उसकी श्रम शक्ति है अथवा कोई और ? जवाब विचारों के जाल में उलझ कर रह गया । हाथ में आया बरखास्तगी का हुक्मनामा , जिसे लेकर वह चल पड़ा जिन्दगी की अनजानी राहों की ओर ।

रह-रह कर उसके मनमें सवाल उभरता *''भाग्य बड़ा है या पुरुषार्थ ''*? कभी -कभी ऐसा भी होता है कि अपने ही अन्दर से सवाल फूटते हैं फिर अपने ही मन के अनेकों कोनों से जवाब झाँकने लगते हैं निकलते हैं एक दूसरे पर झपटते हैं । बड़ी गहमा गहमी के बाद किसी को जीत मिलती है । उसकी भी हालत कुछ ऐसी ही थी । उधेड़-बुन में पड़ा वह सोच रहा था क्या किया जाय ? कहाँ जाना चाहिए ?

खैर जैसे तैसे एक नाटक कम्पनी में काम करने लगा वह । दो-तीन ड्रामों में सफल भी हुआ । कम्पनी के डाइरेक्टर ने उसे प्रमुख एक्टर की भूमिका सौंपी । उस दिन काफी खुश हुआ सोचा चलो इस बार पुरुषार्थ जीता । किन्तु कुछ ही दिनों के बाद किसी बात पर नाटक कम्पनी वाले ने भी निकाल दिया । यह घटना उसे अन्दर तक हिला गई । सोचने पर विवश हुआ अरे नहीं भाग्य ही सब कुछ है. पुरुषार्थ की कहाँ चल पाती है ? पर वह जो पुरुषार्थ का पुजारी रहा है अपने इष्ट की पूजा करना छोड़ दे ।

'नहीं' इस दृढ़ निश्चय के साथ वह फिर चल पड़ा । इस बार उसने मल्लाह का काम हाथ में सँभाला । नया -नया था, नाव चलाना भली प्रकार कैसे जानता ? कई बार डूबते-डूबते बचा । कहीं यात्रियों को ले डूबता तो आदालत और जेल की हवा खानी पड़ती , इसलिए पहले ही समझदारी का काम किया । नाव छूट गई । नाव बेचकर चौकीदारी कर ली । मित्र मिलते और उपहास करते हुए इस चौकीदार से हँसकर पूछते -कहो भाई यह चौकीदारी कितने दिन चलेगी । युवक उनसे कहता जब तक कोई पदोन्नति न हो । पर बेचारे की पदोन्नति तो तब होती जब कोई करता ! और हाँ ! एक दिन जाँच करने वाले सिपाही ने उसे अयोग्य ठहराकर चौकीदारी से भी निकाल दिया । अभाव उसकी सम्पत्ति थी विपत्ति उसकी सहचरी । इस सबके बाद पुरुषार्थ के प्रति उसकी निष्ठा बरकरार थी । मित्र परिचितों के ताने-उलाहने के साथ यह और मजबूत हो जाती । निरन्तर की असफलताओं के बाद उसने एक ही ध्येय बनाया था पुरुषार्थ जीवन के सौभाग्य की सृष्टि करता है इसे स्वयं जीवन व्यापी प्रयोग से सिद्ध करना है ।

इस बार काफी भटकना पड़ा । आखिर में एक छोटे स्कूल में सामान्य शिक्षक की जगह मिल गई । पढ़ाता भी था पढ़ता भी था अपने समय के प्रत्येक अंश को सदुपयोग करने की अनूठी कला भी सीखता । अपने मित्रों में बैठ कर पुरुषार्थ से सौभाग्यों की सृष्टि वाली बात कहता तो सभी हँस पड़ते । हरेक कहता यहाँ से निकाले न जाओ यही बहुत ।

इस बार वह निकाला नहीं गया स्वयं निकला, सेना में नौकरी करने के लिए विद्यालय से जाँच रिपोर्ट माँगी गई तो वहाँ के हेड मास्टर ने लिख भेजा नेक परिश्रमशील परिस्थितियों से न घबराने वाला युवक । सेना में कप्तान बना । वहां से उसने अपने मित्र को पत्र लिखा ''पुरुषार्थ तो बरगद का बीज है । दिखने में छोटा लगता है तनिक गहरे पड़ता है, और देर से अंकुरित होता है । मेरे पुरुषार्थ ने अंकुर देने आरम्भ कर दिये हैं, विकसित होने पर तो पूरे अमेरिका को छाया देगा ।''

सचमुच यह पुरुषार्थ का अंकुरण था । सेना से वह लोक सेवा के क्षेत्र में उतरा । राजनीतिक अभिरुचियों, जन सम्पर्क, व्यवहार कौशल सभी ने एक मत होकर उसे अमेरिका का प्रेसीडेण्ट बनाया । मजदूर से राष्ट्राध्यक्ष तक की यात्रा करने वाला यह व्यक्ति था गारफील्ड । यदि पुरुषार्थ का बीज जनजन के जीवन में अंकुरित हो सके तो सब न केवल सौभाग्यों की सृष्टि कर सकेंगे, बल्कि अनेकों को छाया देकर कृतार्थ भी । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवेदना उभरी तो उलझनें मिट जाएँगी

सृजन और विनाश की, उत्थान और पतन की शक्तियाँ इस संसार में निरन्तर अपने-अपने काम कराती रहती हैं। इन्हीं को देव और दानव के नाम से जाना और उनकी प्रतिक्रियाओं को स्वर्ग-नरक भी कहा जाता है। मनुष्य को यह छूट है कि दोनों में से किसी का भी वरण अपनी समझदारी के आधार पर कर ले और तदनुरूप उत्पन्न होने वाली सुख-शान्ति अथवा पतन पराभव की प्रतिक्रिया सहन करे। उठने या गिरने का निश्चय कर लेने पर तदनुरूप सहायता-सुविधा भी इसी संसार में यत्र-तत्र बिखरी मिल जाती है, इच्छानुसार उन्हें बीना-बटोरा अथवा धकेला-भगाया भी जा सकता है। इसी विभूति के कारण मनुष्य को अपने भाग्य का निर्माता एवं भविष्य का अधिष्ठाता भी कहा जाता है। अपने या अपने समुदाय, संसार के लिए विपन्नता अथवा सम्पन्नता अर्जित कर लेना उसकी अपनी इच्छा आकांक्षा पर निर्भर है।

आम आदत पायी जाती है कि मनुष्य सफलताओं का श्रेय स्वयं ले, किन्तु हानि या अपयश का दोषारोपण किन्हीं दूसरों पर मढ़ दे। इतने पर भी यथार्थता अपनी जगह पर अटल ही रहती है। यह आत्म-प्रवंचना भर कहला सकती है पर सुधार-परिवर्तन कर सकने जैसी क्षमता उसमें है नहीं।

प्रसंग इन दिनों की परिस्थितियों के संदर्भ में उनका कारण जानना और समाधान निकालने का है। गहरी खोज-बीन इसी निष्कर्ष पर पहुँचाती है कि जनमानस ही है, जो अपने लिए इच्छित स्तर की परिस्थितियाँ न्यौत बुलाता है। कोई क्या कर सकता है, यदि हानि को लाभ और लाभ को हानि समझ बैठने की मान्यता बना ली जाय? कुरूप चेहरा दर्शाने के लिए दर्पण को आक्रोश का भाजन बनाया जा सकता है, पर इससे चेहरे पर छायी कुरूपता या कालिख को भगाया नहीं जा सकता। अच्छा हो, हम कठिनाइयों के कारण समाधान अपने ही भीतर ढूँढें और यदि उत्कर्ष अभीष्ट हो, तो इसकी तैयारी के रूप में आत्मसत्ता को तदनुरूप बनाने के लिए अपना पुरुषार्थ नियोजित करें।

क्रियाएँ शरीर के माध्यम से बन पड़ती हैं। उनके सम्बन्ध में सोचने की खिचड़ी मस्तिष्क में पकती है, किन्तु इन दोनों को आवश्यक प्रेरणा देने, ऊर्जा प्रदान करने की प्रक्रिया अन्तराल की गहराई से आरंभ होती है। ज्वालामुखी फूटने, धरती हिलने जैसी घटनाओं का उद्‌गम स्रोत वस्तुतः भूगर्भ की गहराई में ही कहीं होता है। बादल बरसते तो अपने खेत या आँगन में ही हैं, पर वस्तुतः उनका उद्‌गम समुद्र से उठने वाली भाप है।

भली-बुरी परिस्थितियों के संबंध में भी ऐसा ही सोचा जा सकता है। क्रिया करने और योजना बनाने में शरीर एवं मस्तिष्क को बहुत कुछ करते देखा जा सकता है, पर यह सारा तंत्र कहाँ से खड़ा हुआ, यह जानने की उत्कंठा हो तो अन्तःचेतना में अवस्थित आकांक्षाओं को ही सूत्रधार मानना पड़ेगा।

विज्ञान ने प्रदूषण उगलने वाले विशालतम कारखाने बनाये सो ठीक है, पर उसके द्वारा उत्पन्न होने वाली विषाक्तता और बेरोजगारी के संबंध में भी तो विचार किया जाना चाहिए था। यह प्रश्न उभरा न हो, सो बात नहीं, पर उस योजना को कार्यान्वित करने वालों के अन्तराल में अधिक कमाने की ललक ही प्रधान रही होगी। हानिकारक प्रतिक्रिया के विचार उठने पर उन्हें यह कह कर दुत्कार दिया गया होगा कि सर्वसाधारण से हमें क्या लेना देना? अपने लाभ को ही सब कुछ मान लेने में ही भलाई है।

जिन्होंने साहित्य सृजा और फिल्में बनाईं, उनको अपना लाभ प्रधान दिखा होगा, अन्यथा प्रचार साधनों में अवांछनीयता का समावेश करते समय हजार बार विचार करना पड़ता कि निजी लाभ कमाने के अत्युत्साह से लोकमानस को विकृत करने का खतरा उत्पन्न नहीं किया जाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धोन्माद का वातावरण बनाने और सरंजाम जुटाने में किसी वर्ग विशेष को लाभ ही लाभ सूझा होगा, अन्यथा उस आक्रमण-प्रत्याक्रमण के माहौल से असंख्यों मनुष्यों की परिवारों की भयंकर बरबादी सूझ ही न पड़ती , ऐसी बात नहीं है । अपने को सर्व-समर्थ सर्वसम्पन्न बनाने के लिए उभरे उन्माद ने शोषण से लेकर आक्रमण तक के अनेकों कुचक्र रचे हैं । इतना दुस्साहस तभी बन पड़ा, जब उसने अपनी चेतना को इतना निष्ठुर बना लिया । अन्यान्यों को इस त्रास से भारी कष्ट सहना पड़ सकता है, इसको दर गुजर करने के उपरान्त ही अपराधी, आक्रामक एवं आतंकवादी बना जा सकता है ।

नशों का उत्पादक एवं व्यवसायी-तस्कर आदि यदि अनुमान लगा सके होते कि उनका व्यक्तिगत लाभ किस प्रकार असंख्य अनजानों का विनाश करेगा , यदि ऐसी संवेदना उनके अन्तराल में उमँगी होती, तो निश्चय ही वे इस अनर्थ से हाथ खींच लेते और गुजारे के लिए हजार साधन ढूँढ़ लेते ।

पशु-पक्षियों को उदरस्थ करते रहने वालों के मन में यदि ऐसा कुछ सूझ पड़ा होता कि उन निरीहों की तरह हम इतनी भयंकर पीड़ा सहते हुए जान गँवाने के लिए बाधित किये गये होते, तो कैसी बीतती ? उस छटपटाहट को निजी अनुभूति से जोड़ सकने वाला कदाचित् ही छुरी का निर्दय प्रयोग कर पाता ।

नारी पर प्रजनन का असाधारण भार लादने वाले तथाकथित पति महोदय, यदि अपनी सहचरी के प्रति किये जा रहे उत्पीड़न को भी ध्यान में रख सके होते, तो उन्हें अपने इस स्वेच्छाचार पर अंकुश लगाना ही पड़ता । निजी मस्ती उतारने से पूर्व उसका भावी परिणाम क्या होगा, यह भी विचारना पड़ता । अपनी आर्थिक बरबादी और बच्चों की अनगढ़ जिन्दगी के लिए भी अपने को उत्तरदायी ठहराते हुए स्वेच्छाचार पर अंकुश लगाने के लिए सहमत होते ।

दोष घटनाओं को ही देकर निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिए । सोचना यह भी चाहिए कि यह अवांछनीयताओं का प्रवाह प्रचलन, जिस भावना क्षेत्र की विकृति के कारण उत्पन्न होता है, उस पर रोक-थाम के लिए भी कुछ कारगर प्रयत्न किया जाय ।

संवेदनाओं में करुणा का समावेश होने पर दूसरे भी अपने जैसे ही दीखने लगते हैं । कोई समझदारी के रहते, अपनों पर आक्रमण नहीं करता, अपनी हानि सहन नहीं करता । इसी प्रकार यदि वह आत्मभाव समूचे समाज तक विस्तृत हो सके, तो किसी को भी हानि पहुँचाने, सताने की बात सोचते ही हाथ पैर काँपने लगेंगे । अपने आपे को दैत्य स्तर का निष्ठुर बनाने के लिए ऐसा कोई व्यक्ति तैयार न होगा, जिसकी छाती में हृदय नाम की कोई चीज है । जिसने अपनी क्रिया को, विचारणा को मात्र मशीन नहीं बनाया होता, वरन् उनके साथ उस आत्म-सत्ता का भी समावेश किया होता, तो आत्मीयता करुणा , सहकारिता और सेवा-साधना के लिए निरन्तर आकुल-व्याकुल रहती ।

> *बाबर ने अपने पुत्र हुमायूँ के नाम वसीयत नामा छोड़ा "हिन्दुस्तान में कई मजहब के लोग बसते हैं । खुदा का शुक्र अदा करो कि उन्होंने तुम्हें इस मुल्क का शाहंशाह बनाया है तुम ताअस्सुब से काम न लेना, गैर जानिबदार रहते इंसाफ करना, सब मजहबों की भावनाओं का ख्याल रखना और किसी तबके की पूजा के स्थान को जाया (नष्ट) न करना (मेजा चार्ल्स स्टुअर्ट के संकलन से) वसीयत नामे का हुमायूँ ने पूर्णतया पालन भी किया । ईरान जाते समय जब रास्ते में उसे भूख लगी तो उन्होंने नौकरों को भेजकर कामरान शहर से साग सब्जी मंगवाई किन्तु गौमांस के अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं मिला । उस दिन हुमायूँ भूखे ही सो गये और बोले इससे तो हिन्दुस्तान की धरती पाक साफ है । वहाँ तो हमारे पिता की कब्र को झाड़ने बुहारने वाले तक गौमांस नहीं खाते ।*

समस्याओं का तात्कालिक समाधान तो नशा पीकर बेसुध हो जाने पर भी हो सकता है । जब होश-हवास ही दुरुस्त नहीं, तो समस्या क्या ? और उसका समाधान ढूँढ़ने का क्या मतलब ? पर जब मानवी गरिमा की गहराई तक उतरने की स्थिति बन पड़े, तो फिर माता जैसा वात्सल्य हर आत्मा में उभर सकता है और हित-साधना के अतिरिक्त और कुछ सोचते बन ही नहीं पड़ता । तब उन उलझनों में से एक भी बच नहीं सकेगी, जो आज किसी को उद्विग्न-आतंकित किये हुए है । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य प्रकाश—अवतरण की ध्यान—साधना

अध्यात्म विज्ञान में प्रकाश साधना का विशेष महत्व है । अध्यात्मशास्त्रों में स्थान—स्थान पर इसकी चर्चा की गई है । यह प्रकाश सूर्य, चन्द्र आदि से निकलने वाला भौतिक प्रकाश नहीं, वरन् वह परम् ज्योति है जो इस विश्व चेतना का आलोक बन कर जगमगा रही है । गायत्री का उपास्य सविता देवता इसी परम ज्योति को कहते हैं । इसका अस्तित्व ऋतंभरा प्रज्ञा के रूप में प्रत्यक्ष और कण—कण में संव्याप्त जीवन ज्योति के रूप में प्रत्येक व्यक्ति अपने में भी देख सकता है । गायत्री उपासना में इसी दिव्य प्रकाश को परम ज्योति को अपने अन्तः भूमिका में अवतरण करने और उससे समूचे व्यक्तित्व को प्रकाशित करने के लिए साधक सविता देवता का ध्यान करता है । इसकी जितनी मात्रा जिसके भीतर विद्यमान हो, समझना चाहिए कि उसमें उतना ही अधिक ईश्वरीय अंश आलोकित हो रहा है ।

प्रकाश—साधना वस्तुतः एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें साधक अपने भीतर के काले मटमैले और पापाचरण को प्रोत्साहन देने वाले प्रकाश अणुओं को दिव्य, तेजस्वी, सदाचरण, शान्ति और प्रसन्नता देने वाले प्रकाश अणुओं में परिवर्तित करता है । विकास की इस प्रक्रिया में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि करते हुए वहाँ तक जा पहुँचना होता है जहाँ व्यष्टिगत आत्मचेतना को ब्रह्माण्डव्यापी समष्टिगत परमात्म चेतना का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है और अंततः वह उसी में तिरोहित हो जाती है । सविता साधना से इसी उद्देश्य की पूर्ति होती है । गायत्री के देवता सविता की आराधना भीतर के दूषित प्रकाश अणुओं पाप—तापों एवं कषाय—कल्मषों को धो देती है और उनके स्थान पर दिव्य प्रकाश भर देती है जिससे समूचा जीवन ही ज्योतिर्मय हो उठता है । इस उपक्रम को अपनाकर हर कोई अपनी जीवन ज्योति को प्रकाशित—प्रज्ज्वलित कर सकता है । ज्योति साधना का उद्देश्य भी यही है ।

शास्त्रों में उल्लेख है कि सूर्य ही अग्नि है, अदिति भी उसी का नाम है । सविता के रूप में गायत्री का अधिष्ठाता वही है जो सृष्टि में नवीन प्राण चेतना स्फुरित करने की क्षमता से सम्पन्न है । वही सर्वगुण सम्पन्न सविता प्रकाश और ताप के रूप में शक्ति एवं ऊर्जा के रूप में सर्वत्र विद्यमान है । प्राणों की रक्षा करने वाला होने से उसका सीधा सम्बन्ध मानव जीवन से है । सूर्य की ३६ हजार प्रकाश—रश्मियाँ हैं जो प्राण चेतना के रूप में मानव मस्तिष्क के मध्य में स्थित ब्रह्मरंध्र के द्वारा प्रतिदिन एक के क्रम से अन्दर प्रविष्ट करती रहती हैं और इस तरह जीवन निर्वाह के लिए सविता का एक प्राण मनुष्य को प्रतिदिन उपलब्ध होता रहता है । आधुनिक वैज्ञानिक मनीषी भी इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि हम सभी सूर्य के आन्तरिक भाग में निवास करते हुए उससे संचालित हैं । हमारे प्रत्येक अंग—अवयव उसीसे अदृश्य रूप से उत्तेजना ग्रहण करते और प्राण ऊर्जा से लाभान्वित होते हैं ।

अध्यात्मवेत्ता वैज्ञानिक मनीषियों के अनुसार प्रकाश साधना के समय सविता के ध्यान से हमारे मस्तिष्क का चुम्बकत्व सूर्य के प्रकाश कणों के चुम्बकत्व को आकर्षित करता और ग्रहण करता हुआ हमारी प्राणचेतना में दिव्यता का अभिवर्धन करता रहता है । प्रकाश ऊर्जा या प्राण शक्ति का आकर्षण मस्तिष्क के मध्यभाग से करने का विधान है, जिसे 'ब्रह्मरंध्र' कहा जाता है । यही वह शक्ति केन्द्र है जहाँ से मस्तिष्क शरीर का नियंत्रण करता और विश्व में जो कुछ भी मानवकृत विलक्षण विज्ञान दिखाई देता है, उनका सम्पादन करता है । इसी मध्यभाग से प्रकाशकणों का एक फब्बारा सा फूटता रहता है । उसकी उछलती हुई तरगें एकवृत्त बनाती हैं और फिर अपने मूल उद्गम में लौट जाती हैं । यह प्रक्रिया रेडियो प्रसारण और संग्रहण जैसी है । ब्रह्मरन्ध्र से निस्सृत प्रकाश ऊर्जा अपने भीतर छिपी हुई भाव स्थिति को विश्व ब्रह्माण्ड में ईथर कंपनों द्वारा प्रवाहित करती रहती है और इस प्रकार मनुष्य अपनी चेतना का प्रभाव समस्त संसार में फेंकता रहता है । प्रकाश किरणों की लौटती हुई धाराएँ अपने साथ विश्वव्यापी असीम ज्ञान चेतना की नवीनतम् घटनात्मक तथा भावनात्मक जानकारियाँ लेकर लौटती हैं । यदि उन्हें ठीक तरह समझा, आकर्षित किया और अवधारित किया जा सके तो कोई भी व्यक्ति भूत, भविष्य और वर्तमान काल की अत्यन्त सुविस्तृत और महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त कर सकता है । मनुष्य में सूक्ष्म आदान—प्रदान की, प्रवाह ग्रहण करने और प्रसारित करने की जो क्षमता है, उसका माध्यम यह ब्रह्मरन्ध्र स्थित ध्रुव संस्थान ही है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुविख्यात वैज्ञानिक मनीषी डॉ. जे.सी. ट्रस्ट का कहना है कि मनुष्य शरीर की प्रेत्यक कोशिका प्रकाश चेतना से भरी होती है । सूक्ष्मदर्शी यंत्र उपकरणों के माध्यम से किये गये विशेष परीक्षणों में देखा गया है कि प्रत्येक कोशिका अपने आप में प्रकाश पुंज है और उसमें से टिमटिमाता हुआ प्रकाश निकलता रहता है । यह प्रकाश अणु ही मनुष्य के यथार्थ शरीर का निर्माण करते हैं और पंच महाभूतों से विनिर्मित काया को स्थिरता प्रदान करते हैं । प्रकाश की ध्यानधारणा इन्हें परिपुष्टता और दिव्यता प्रदान करती है । उनके अनुसार स्वभाव, संस्कार, इच्छाएँ क्रिया शक्ति यह सब इन्हीं प्रकाश अणुओं का खेल है । मनुष्य का जो कुछ भी स्वभाव आज दिखाई देता है, वह इन्ही प्रकाश किरणों की उपस्थिति के कारण है । इतना ही नहीं जन्म–जन्मान्तरों तक खराब प्रकाश अणुओं की यह उपस्थिति मनुष्य से बलात् दुष्कर्म कराती रहती है और इस तरह वह पतन के खड्ड में बार–बार गिरता और अपनी आत्मा को दुखी बनाता रहता है । जब तक दूषित प्रकाश कणों को निष्क्रिय नहीं बना दिया जाता अथवा उन्हें मिटाकर शुभ और दिव्य प्रकाश से अपने आपको परिपूरित नहीं बना लिया जाता , तब तक परिस्थितियों में कोई कहने लायक विशेष परिवर्तन नहीं हो पाता । प्राचीन ऋषि मनीषियों ने दिव्य ज्योति की निराकार ध्यान साधना का निर्धारण इसी निमित्त किया था । सविता की दिव्य प्रकाश ऊर्जा को जो मनुष्य जितनी अधिक मात्रा में आकर्षित कर लेता है, वह उतना ही श्रेष्ठ, सद्गुणी एवं ओजस् तेजस् वाला बन जाता है । यदि इस विज्ञान को समझा जा सके और श्रद्धा भावनापूर्वक ध्यान उपक्रम को अपनाया जा सके, तो न केवल अपना जीवन शुद्ध, सात्विक दिव्य एवं सफल बनाया जा सकता है, वरन् औरों को भी लाभान्वित किया जा सकता है । परलोक और सद्गति का आधार यह दिव्य प्रकाश चेतना ही है ।

आत्मचेतना जिन अणुओं से अपने को अभिव्यक्त करती है, वह प्रकाश अणु ही है, जबकि आत्मा स्वयं उससे भिन्न है । प्रकाश अणुओं को प्राण ऊर्जा विधायशक्ति, अग्नि, तेजस् आदि कहना चाहिए । वह जितने शुद्ध, दिव्य एवं तेजस्वी होंगे, साधक उतना ही महान ओजस्वी, तेजस्वी, यशस्वी, एवं वर्चस् वाला होगा । महापुरुषों, तपस्वी, ऋषि–मनीषियों में से प्रत्येक को अपने दूषित प्रकाश अणुओं को हटाने और दिव्य अणुओं से आप्लावित करने की साधना करनी पड़ी है । "तमसो मा ज्योतिर्गमय " की प्रार्थना में इसी दिव्य प्रकाश की याचना का भाव सन्निहित है । इसकी विधि अत्यंत सरल, किन्तु महान प्रतिफल प्रदान करने वाली है ।

दिव्य प्रकाश की निराकार ध्यान साधना अरुणोदय काल में सम्पन्न की जाती है, जब पूर्व दिशा की ओर अरुणिमा युक्त स्वर्णिम आभा के साथ भगवान सविता अपने समस्त वरेण्य, दिव्य भर्ग, ऐश्वर्य के साथ उदय होते हैं । यों तो सामान्य जप के साथ सूर्य मंडल मध्यस्थ भगवती गायत्री का ध्यान करने का विधान है, किन्तु इस साधना में गायत्री माता की छवि का स्थान सविता का दिव्य तेजोवलय ले लेता है । ध्यान मुद्रा में बैठकर भावना करनी पड़ती है कि हमारी प्राणचेतना अन्तरिक्ष की यह विशाल दूरी पार करने के लिए निकल पड़ी है । भावना की प्रगाढ़ता के लिए पृथ्वी और आकाश के विविध काल्पनिक दृष्यों को मानस पटल पर उभारना पड़ता है । धीरे–धीरे प्राणों को सविता के प्रकाश में डुबो देते हैं । मन हठात् भागना चाहे तो अनन्त सितारों की जगमग के मनोहारी दृश्य दिखा कर उसे फिर उसी सूर्य के प्रकाश में उतारा जाता है और दृढ़ भावना की जाती है कि अपनी प्रकाश चेतना में सम्मिलित कालिमायुक्त दूषित अणु, पाप–ताप और अहंताएँ नष्ट होती जा रही हैं । अपने और सविता के प्रकाश में कोई अन्तर नहीं रहा । समस्त सौर मण्डल में अपनी ही प्रकाश चेतना–प्राण चेतना प्रतिभासित हो रही है । उसी प्रकाश स्फुल्लिंग से वृक्ष–वनस्पति बने हुए हैं । उसी से ब्रह्माण्ड गतिमान हो रहा है । साक्षी और द्रष्टा रूप में अपनी ही आत्मचेतना सर्वत्र संचरण कर रही है । समस्त प्राणि जगत में अपना ही प्राण समाया है और सबको परिचालित कर रहा है ।

इस तरह दिव्य प्रकाश की ध्यान धारणा में सूर्य का तेजोमंडल मात्र भौतिक प्रकाश न रह कर ब्राह्मी चेतना की दिव्य ज्योति बनकर अनुभूति में उतरती चली जाती है । श्रद्धा–विश्वास की अभिवृद्धि के साथ ही ध्यान की प्रगाढ़ता जितनी अधिक बढ़ती जाती है, दिव्य दृष्टि का उतना ही अधिक विकास होता है । तन्मयता एकाग्रता जितनी बढ़ेगी, पुलकन और दिव्यता का अंश भी बढ़ता चलता चला जायेगा । ब्रह्मतेज से अनुप्राणित होने और ओजस्वी , तेजस्वी , मनस्वी बनने में सविता की प्रकाश साधना अतीव लाभकारी सिद्ध होती है । यह एक सुनिश्चित तथ्य है । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द तरंगों में निहित विलक्षण शक्ति

मंत्र-शक्ति की सामर्थ्य सर्वविदित है। रामायण एवं महाभारत काल में आग्नेयास्त्र, पाशुपतास्त्र, वायवास्त्र, वरुणास्त्र, ब्रह्मास्त्र जैसे कितने ही दिव्य अस्त्रों के प्रयोगों का वर्णन शास्त्रों में मिलता है। यह सभी मंत्रशक्ति एवं मनः संस्थान की संकल्पित ऊर्जा से परिचालित होते थे। आधुनिक परमाणु आयुधों एवं लेसर अस्त्रों की तुलना में वे कहीं अधिक सटीक निशाने पर गिरते और निर्धारित लक्ष्यवेधन में सफल रहते थे। मंत्रशक्ति द्वारा उद्भूत यह मनुष्य की प्राणशक्ति का, पराशक्ति का चमत्कार है।

अब विज्ञानवेत्ताओं का ध्यान भी मानव में अन्तर्निहित 'पराशक्ति' की ओर आकृष्ट हुआ है। वे शत्रुपक्ष के गोपनीय क्रिया-कलापों की जानकारी प्राप्त करने से लेकर 'माइण्डवार'- 'पराशक्ति-युद्ध' तक में इसे प्रयुक्त करने की योजनाएँ बना रहे हैं। संभावना व्यक्त की जा रही है कि मनुष्य मंत्रशक्ति से उद्भूत अपनी संकेन्द्रित ऊर्जा द्वारा गुप्तचरी कर सकता है। समुद्र के गर्भ में छिपी लड़ाकू पनडुब्बियों, प्रक्षेपास्त्रों को अपने प्रचण्ड प्राणशक्ति से उन्हें नष्ट कर सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि शत्रु पक्ष के लिए प्रहार प्रयोजन के लिए उस शक्ति को काम में लाया जाय। आग्नेयास्त्र स्तर का विकास करके प्रचण्ड शक्ति से किसी को जीवित जलाया जा सकता है, या अग्निकांड जैसी दुर्घटना खड़ी की जा सकती है।

तंत्रशास्त्र ऐसे ही विधानों से भरा पड़ा है। उसमें मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तंभन आदि के कितने ही प्रयोगों का विस्तृत उल्लेख है, साथ ही उनका प्रयोग करने की हिदायत भी है। कारण कोई अनाड़ी बंदूक चलाए तो उसका धक्का चलाने वाले की छाती को भी तोड़ सकता है। तांत्रिक प्रयोगों में जिन विशिष्ट मंत्रों का उपयोग किया जाता है, उनका प्रभाव परिणाम भी अप्रिय होता है। उससे उपलब्ध शक्ति का उपयोग दूसरों को प्रताड़ित करने और हानि पहुँचाने में किया जाता है। यद्यपि उसे जाग्रत करने वाले विशेषज्ञ इस शक्ति का श्रेष्ठ सत्कार्यों में भी प्रयोग कर सकते हैं।

परन्तु मंत्रशास्त्र में ऐसी बात नहीं है। इस विधा से उद्भूत शक्तियाँ सत्प्रयोजनों में ही प्रयुक्त होती हैं। उसमें मंत्रों का उच्चारण जिस विशेष लय, ध्वनि और सुर के साथ किया जाता है, उसकी परिणति सुखद सात्विक शक्तियों के उद्भव के रूप में सामने आती है। एक निश्चित क्रम, लय और सीमा में बँधे मंत्रों के जप एवं उनके अर्थों के ध्यान का प्रभाव अवश्य होता है। अध्यात्मशास्त्रों में उल्लेख है कि प्रत्येक मंत्र का अपना विशिष्ट अर्थ, प्रयोजन और मूल्य होता है। उसमें सन्निहित शक्ति का प्रस्फोट उसके शुद्ध उच्चारण पर तो निर्भर करता ही है, साथ ही लय, ध्वनि एवं प्रयोक्ता की भावना, आस्था की भी प्रमुख भूमिका होती है। इन्हीं के सम्मेलन से प्रभावकारी शक्ति उद्भूत होती और तरह-तरह के प्रतिफल प्रस्तुत करती है। इस आधार पर मुँह से उच्चारित प्रत्येक शब्द मंत्रमय और सामर्थ्यवान बनता है। मंत्रवेत्ता आचार्यों का कहना है कि क्रमबद्ध एवं लयबद्ध शुद्ध मंत्रोच्चार से उत्पन्न ध्वनि पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाती है। उसके परावर्तन से चारों ओर तथा [illegible] क्षेत्र तक शक्तिशाली प्रकम्पनों का जाल सा बिछ जाता है। उसकी जितनी सघनता होगी, उतनी ही अधिक चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करेगी। मंत्रित ध्वनि तरंगों से उच्चारण कर्ता के मन-मस्तिष्क और प्राण में नवीन शक्ति प्रवाहित होने लगती है और वह क्रमशः शक्तिपुंज बनता चलता जाता है।

मंत्र विद्या पर अनुसंधानरत वैज्ञानिकों का कहना है कि मंत्रों में इन्फ्रासोनिक एवं कम आवृत्ति वाली आल्ट्रासोनिक स्तर की ध्वनियों का समावेश होता है। उनने इन्फ्रासोनिक ध्वनि तरंगों को शांत, सात्विक प्रकृति का माना है और कहा है कि इसमें नवजीवन प्रदान करने वाली प्रचण्ड ऊर्जा का भण्डार सन्निहित है। उच्च आवृत्ति वाली आल्ट्रासोनिक ध्वनियों की प्रकृति विनाशकारी होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । तंत्रविज्ञान में इसी का प्रयोग होता है । इनसे प्राणी और पदार्थ को उसी तरह तबाह किया जा सकता है जैसे- शक्तिशाली शस्त्रास्त्रों से । सर्वविदित है कि परा ध्वनियों के माध्यम से धातु खण्डों को काटा या गलाया तथा इमारतों को क्षणमात्र में ध्वस्त किया जा सकता है । सोवियत संघ के सुप्रद्धि वैज्ञानिक बी. कुद्रयावत्सेव ने इस बात की गवेषणा कर ली है कि अश्रव्य ध्वनियाँ मंत्रशक्ति का आधार हैं । पाया गया है कि सामूहिक मंत्रोच्चारण से निकली ध्वनि तरंगे पृथ्वी के अयन मण्डल को घेरे विशाल भू चुम्बकीय प्रवाह से टकराती और परावर्तित होकर सम्पूर्ण वायुमंडल में छा जाती हैं । इसका प्रभाव न केवल प्रयोक्ता पर होता है, वरन् जड़-चेतन सभी उससे प्रभावित और लाभान्वित होते हैं ।

ध्वनि की इस प्रचण्ड सामर्थ्य से प्राचीन काल के ऋषि-मनीषी अच्छी तरह परिचित थे । उनने कुछ ऐसे शब्द या शब्द समूहों का आविष्कार किया, जिन का प्रभाव असामान्य स्तर का होता है । इन्हें ही 'मंत्र' के नाम से पुकारा गया । मंत्र विद्या के इन ज्ञाताओं ने अपने अनुसंधानों और अनुभवों के आधार पर यह पहले ही सुनिश्चित कर दिया था कि किस मंत्र का कितना अथवा किस प्रकार जप करने से कौन सी शक्ति उत्पन्न होगी और उसका मन पर या शरीर के किस अंग अथवा चक्र-उपत्यिका पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ेगा । मंत्राक्षरों के गुंथन और उनमें सन्निहित ध्वनियों का महत्व मंत्रार्थ की तुलना में अनेकों गुना महत्व रखता है ।

वर्जीनिया के प्रख्यात चिकित्सा मनोविज्ञानी एवं एसोसियेशन फार रिसर्च एण्ड इनलाइटेनमेण्ट के निदेशक डॉ हर्बर्ट बी. पेरियर का कहना है कि पवित्र मंत्रों में मानव मन एवं अन्तराल को मथ डालने की आश्चर्यजनक क्षमता है । उन्होंने इसे अन्तर्निहित, प्रसुप्त पड़ी पराशक्तियों के जागरण एवं उन्नयन का शक्तिशाली माध्यम बताया है । मंत्र शक्ति का सही उपयोग किया जा सके तो प्रयोक्ता का संबंध, परमात्म सत्ता एवं उसकी सहायक शक्तियों से हो जाता है । मंत्र की सत्यता उसमें सन्निहित शक्तियों के प्रकटीकरण में सन्निहित है और यह प्रयोक्ता की निर्मलता सुदृढ़ आस्था एवं लक्ष्य की उत्कृष्टता पर निर्भर करता है ।

मंत्र जप वस्तुतः एक विशिष्ट अभ्यर्थना है, जो अपनी परिपूर्णता या चरम सीमा पर पहुँचने पर इष्ट को शक्तिशाली चुम्बक की तरह अपने पास खींच बुलाने में ऊर्जा के उच्चस्तरीय रूपान्तरण का यह एक सर्वोत्तम साधन है । मंत्र जप के साथ, मंत्रार्थ का, उसमें सन्निहित दिव्य भावों-प्रेरणाओं का ध्यान चमत्कारी सत्परिणाम प्रस्तुत करता है । मंत्रों में गायत्री मंत्र को बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । इसमें शब्दों का गुंथन कुछ इस प्रकार हुआ है कि यह शरीर की चक्र-उपत्यिकाओं को आंदोलित-उद्वेलित करके रख देता है । इससे प्रसुप्त क्षमताएँ उभरती-विकसित होती देखी जाती हैं । ब्रह्मवर्चस् की सिद्धि गायत्री मंत्र से ही प्राप्त होती है । यदि भावार्थ से जोड़ते हुए मंत्र शक्ति का सुनियोजन किया जा सके तो वे सभी लाभ उठा पाना संभव है, जिनकी महिमा सामगान में, वेद-उपनिषदों में गाई गई है । *

एक दुर्बल व्यक्ति किसी चिकित्सा निष्णात् के पास गया और बोला-"मुझे परिपुष्ट कर देने वाला कोई रसायन प्रदान कीजिये । मैं बलवान बनना चाहता हूँ और उसका कितना ही मूल्य चुकाने को तैयार हूँ ।"

चिकित्सक ने उसे जुलाब की दवा देदी । पतले दस्त चलने लगे और उसके पेट में जमा विषैली, काली गाँठें निकलने लगीं ।

कई दिन बाद रोगी अच्छी दवा के विपरीत परेशानियों की शिकायत करने लगा । दस्त आरंभ हो गये, कमजोरी आने लगी

चिकित्सक ने उसे धैर्य दिलाया और कहा-"जब तक शरीर में संचित विषों का निष्कासन नहीं हो जाता । तब तक बलवर्धन की कोई दवा कारगर सिद्ध नहीं हो सकती ।"

रोगी संतुष्ट होकर चला गया । चिकित्सक का परिशोध का प्राथमिकता देने वाला उपचार चलता रहा उसके बाद ही उसकी बलवद्धि की आकांक्षा अच्छे रहन-सहन भर से ही पूरी हो गई उसके लिए किसी मूल्यवान औषधि खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ी ।

आत्मबल की वृद्धि द्वारा चमत्कारी सिद्धियाँ प्राप्त करने से पूर्व भी संयम साधना द्वारा आत्म परिष्कार की विधि व्यवस्था को कार्यान्वित करना पड़ता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषदों के देश से उठेगा—विचार क्रान्ति का तूफान

नीले-भूरे रंग की कुर्सी पर पीठ टिकाए वह गहरे सोच में डूबा था । इसका कारण न तो पारिवारिक जीवन की उलझनें थीं और न व्यक्तिगत जिन्दगी की उधेड़-बुन । क्योंकि उसने स्वयं को पारिवारिक बाड़े और वैयक्तिक महत्वाकांक्षाओं के आकर्षणों से पर्याप्त ऊपर उठा रखा था । फिर भला ऐसी स्थिति में तनाव और परेशानियाँ उसे क्यों कर सताते । चिन्ताओं से दूर चिन्तन में खोए रहने वाले इस व्यक्ति की जीवन संरचना में व्यापक फेर-बदल करने का श्रेय उस पुस्तक को था जो इस समय भी उसके दाएँ हाथ में थमी थी । शायद इसी में सन्निहित किसी सूत्र के भावों ने उसे आत्मचेतना की गहराइयों में उतार दिया हो । आकेतिल दुपेरों द्वारा अनुदित इस किताब को पा उसे ऐसा लगा था जैसे जीवन निधि मिल गई ।

तब से आज तक उसने क्षण-क्षण पल-पल का उपयोग इन्हीं विचारों के अनुरूप स्वयं को गढ़ने में किया । सचमुच विचार जब तक बौद्धिक विवेचना का विषय रहते हैं तब तक उनकी प्रभाविकता प्रखरता का ठीक-ठीक अन्दाज नहीं मिलता । किन्तु जैसे ही ये भावों की गहराइयों में उतरे, प्रयत्नों से इनका सामंजस्य बैठा तो एक क्रान्ति घटित होती है उस दायरे में, जहाँ पर ऐसा हो रहा है । उसके जीवन में कुछ ऐसा ही हुआ था हो रहा था । तभी तो उसने निज अनुभूतियों के आधार पर एक पुस्तक ही लिख डाली "विश्व-विचार और प्रयत्न के रूप में "।

उसने हल्के से पैर फैलाए, धीरे से आखें खोलीं, हाथ की अँगुलियों को माथे पर इस तरह फिराया जैसे वह विचारों का कोई नया स्वर निकालना चाहता हो । धीरे-धीरे उसका मन अन्तः अनुभूतियों के सागर से उबरने लगा था । एक दृष्टि कमरे में घुमाई और हाथ में थमी किताब को धीरे से मेज में रखा । कुर्सी से उठकर कमरे का एक चक्कर लगाया । फिर उसने कैलेण्डर की ओर देखा आज छुट्टी थी । इसका मतलब उसे विश्व विद्यालय नहीं जाना । तब .... । वे दोनों शायद यहीं आएँ । वह होंठों ही होंठों में बुदबुदाया ।

दृष्टि खिड़की की ओर गई । चौखटे से प्रवेश पाकर सूर्य की रश्मियाँ पूरे कमरे को सुनहले रंग में रंग रही थीं । बाहर पीछे वाली सड़क के दोनों ओर चीड़ के वृक्ष लगे थे, जिनके मध्य से गुजरती हुई सड़क थोड़ी ही दूर पर गुम होती प्रतीत होती थी । देखते देखते वह विचारों में डूब गया ।

द्वार पर कुत्ते की उभरती आवाज ने उसकी सोच को बीच में ही विराम दिया । कौन ? इस प्रश्न के साथ उसने चिटकनी खोली । द्वार खुलते ही प्रश्न का उत्तर उसके ठीक सामने था । वे और कोई नहीं उसी के विद्यार्थी थे अल्बर्ट और फेड्रिक पढ़ने लिखने में मेधावी और अपने प्राध्यापक के व्यक्तित्व के प्रशंसक । किन्तु आज दोनों के चेहरे उखड़े-उखड़े थे । लग रहा था कि वे दोनों किसी विशेष मुद्दे को लेकर परेशान हैं । यों दुनिया में यदि कुछ सबसे अधिक सहज है तो वह है परेशानी । हर कहीं हर किसी को परेशान होता देखा जा सकता है । इतने पर भी परेशान होने वालों के दो वर्ग हैं । पहले में वे लोग आते हैं जिन्हें अपने जीवन की छोटी से छोटी तकलीफ परेशान कर डालती है, दूसरों की बड़ी से बड़ी आपदा से उन्हें तनिक भी लेना देना नहीं रहता । जबकि दूसरे में वे लोग आते हैं जिन्हें औरों की तनिक तकलीफ परेशान कर देती है जबकि अपने पर पड़ने वाली भारी भरकम विपत्ति के समय भी हँसते मुसकराते रहते हैं । इन दोनों का सम्बन्ध दूसरे वर्ग से था । उन्हें यह सूत्र पूर्णतया हृदयंगम हो गया था कि जो औरों की विपत्ति में हिस्सेदार होते हैं उनकी मुसकराहट स्वयं की विपत्ति पर साथ नहीं छोड़ती ।

क्या हो गया है तुम्हें ? उन्होंने उन दोनों के बैठते ही पूछा । इशारा चेहरे पर छा रहे विषाद और आक्रोश के प्रति था । 'इन दिनों फैल रहे समाचारों ने हम लोगों के मन में एक बवण्डर खड़ा कर दिया है । दूसरे देशों की तरह-तरह की धमकियाँ, अपने देश की आन्तरिक स्थिति पता नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या होगा ? कहकर उसने गहरी उसांस भरी । देखने में उसकी आयु अभी २३-२४ साल होगी । अभी वह अध्ययनरत छात्र था । किन्तु जागरूक मानसिकता उसे विकल किए हुए थी ।

ठीक से बताओ फेड्रिक । उन्होंने पूरी दिलचस्पी के साथ पूरी बात जाननी चाही ।

सर ! देश की कहें या बाहर की । चलो देश की बात पहले लें । यहाँ की राजनीतिक अस्थिरता आप से छुपी नहीं । परस्पर अविश्वास का माहौल इतना घना होता जा रहा है कि पूछो ही मत । इस पर अन्तर्राष्ट्रीय चौधरियों के घड़ियाली दाँव-पेंच । इशारा नैपोलियन की ओर था और सामाजिक जीवन विच्छ्रृंखलता बिघटन । कुप्रथाओं स्वार्थों की महामारी से सब कुछ टूट-टूट कर बिखर रहा है । व्यक्ति के रूप में मनुष्य उसका न तो अपने ऊपर विश्वास है और न भविष्य के प्रति कोई आशा । अतीत का गौरव उसे पूरी तरह विस्मृत हो चुका है । ऐसी दशा में .... वह आगे कुछ कह न सका । भविष्य की कुकल्पनाओं से होंठ काँप कर रह गए ।

समग्रक्रान्ति के बिना कुछ होने का नहीं । अल्बर्ट ने स्थिर भाव से अपनी बात कही ।

क्रान्ति ! तुम लोग कुछ वैसी क्रान्तियों की बात तो नहीं कर रहे जैसी पिछले समय में कई हो चुकी हैं । यदि कुछ वैसी सोच है तो जान लो इस तरह की क्रान्तियाँ मानव की समस्याओं का चिरस्थाई समाधान नहीं कर सकतीं ।

कैसे ? दोनों उनके चेहरे की ओर ताकने लगे । उन्हें अपने इस प्राध्यापक से बहुत कुछ आशाएँ थीं ।

"क्योंकि इस तरह की क्रान्तियों का उद्देश्य होता है व्यवस्था को बदलना । अधिक से अधिक सामाजिक प्रणाली में परिवर्तन कर इनकी इतिश्री हो जाती है । कहने के साथ उन्होंने सिर के बालों पर हाथ फिराया । तेज होती जारही धूप के कारण खिड़की का एक सिरा हल्के से बन्द कर दिया ।

"तो बदली व्यवस्था परिवर्तित सामाजिक प्रणाली समस्या का निदान नहीं है "। फेड्रिक ने अटकते हुए पूछा । उसे आश्चर्य हो रहा था ।

नहीं ! इससे थोड़ी देर के लिए आराम तो मिलता है । पर रोग का निदान नहीं होता । तुम जानते हो-उन्होंने गहरी दृष्टि से दोनों की ओर देखा अब तक सब कुछ न जाने कितनी बार बदला गया इस पर भी परिणाम वही ढाक के तीन पात । क्यों....? सिर्फ इसलिए कि मनुष्य नहीं बदला गया उसे बदलने की सोची भी नहीं गई ।

पर ..पर मनुष्य तो ।

समय के अनुसार उसके बदलते हुए रूप सामने आए हैं, यही कहना चाहते हो न । तो सुन लो यह बदलता स्वरूप ऊपर से की गई लीपा-पोती है । अन्दर से वह जैसा का तैसा बना रहा । परिस्थितियों की रगड़ से जब-जब यह रंग-रोगन उतरा है उसने पाषाण युगीन करतब ही दिखाए हैं । अब तक के इतिहास ने उसकी बर्बरता, क्रूरता, और सच कहा जाय तो पाशविकता की कहानियाँ ही लिखी हैं । क्रान्तियों के नाम पर नया रंग-रोगन चढ़ाना, क्या यही चाहते हो तुम ?

तब फिर । वे सोच नहीं पा रहे थे ।

उपाय एक ही है विचारों के द्वारा क्रान्ति । मनुष्य का सर्वांगपूर्ण बदलाव । उसके जीवन के केन्द्र में उथल-पुथल हो । सारी संरचना फिर से गढ़ी जाय ।

कैसे ?

उन्होंने कमरे में टँगे दो चित्रों की ओर इशारा किया एक काण्ट का था, दूसरा महात्मा बुद्ध का । देख रहे हो न इन दोनों महामानवों को एक बुद्धि का प्रतिनिधि है दूसरा भावों का जिस दिन ये दोनों एक साथ मिले जो दोनों को एक साथ मिला सके । उसी के द्वारा यह महान कार्य होगा ।

"आप के विचार से यह कहाँ से होने की सम्भावना है "?

"सम्भावना नहीं सुनिश्चित तथ्य ! " उनके अन्दर का ऋषित्व मुखर हो उठा । " उपनिषदों के देश से उठेगा विचार क्रान्ति का परिवर्तनकारी तूफान ।" उनकी आवाज चेतना की अतल गहराइयों से उभर रही थी "जब भी यह तूफान उठ खड़ा हो तो समझना मनुष्य देवता बनने वाला है और धरती स्वर्ग ।"

"आह ! कब होगा यह सब ? " आगन्तुक भी सुखद कल्पना में खोने लगे ।

धैर्य रक्खो बच्चो इस सहस्राब्दी के अन्त तक । तब तक सामयिक दायित्व का निर्वाह करो । उनके भविष्य कथन को उद्धृत करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने १६ जनवरी १८७० के अपने व्याख्यान में कहा था कि "यह भविष्यवाणी जर्मनी के ऋषि शॉपनहावर कर गए हैं शीघ्र ही विश्व विचार जगत में सर्वाधिक शक्तिशाली और दिगन्तव्यापी क्रान्ति का साक्षी होने वाला है ।

आज वही क्षण है, यह वही वेला है जब शॉपनहावर की वाणी युगान्तरीय प्रयासों के रूप में मूर्त हो रही है । साक्षी हैं हम सब ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या ईश्वर पर मुकदमा चलाया जा सकता है ?

कभी –कभी असमंजस होता है परमेश्वर की रीति–नीति को देखकर कि उसने कोटि–कोटि प्राणियों से भरी हुई इस विश्व वसुन्धरा में मात्र मनुष्य को ही विशेष प्रकार की, समुन्नत स्तर की विभूतियाँ क्यों प्रदान कीं ? जब कि सृष्टि के अन्याय प्राणी उन सुविधाओं से वंचित ही बने रहते हैं । ऐसा लचकदार, हाथ पैरों की असाधारण संरचना वाला, सर्वांग सुन्दर , खड़े होकर चलने वाला और अगणित प्रकार के, असाधारण स्तर के कलाकौशल को सम्पन्न करने वाला शरीर और किसका है इसकी खोजबीन करने पर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य के अतिरिक्त और कोई जीवधारी इस स्तर का सृजा नहीं गया ।

काय कलेवर की परत उधेड़ कर कुछ गहराई तक उतरने पर प्रतीत होता है कि मात्र शरीर ही विलक्षण नहीं , वरन् उसकी भीतरी परत में एक विलक्षण स्तर का मनःसंस्थान भी है । खोपड़ी की कड़ी चहारदीवारी के भीतर उसका निवास होने से आँखों द्वारा उसे प्रत्यक्ष तो नहीं देखा जा सकता । पर उसकी चिन्तन परक क्षमताओं को देखते हुए प्रतीत होता है कि यह जादुई पिटारे से कम आश्चर्यजनक किसी भी प्रकार है नहीं । कल्पना, विचारणा, निर्धारणा, भाव संवेदना, मान्यता, आस्था जैसी अगणित परतें इस पिटारी के भीतर विद्यमान हैं । यदि वे प्रसुप्त मूर्छित स्थिति में पड़ी रहें तो बात दूसरी है, अन्यथा यदि उन्हें तनिक भी समुन्नत स्तर तक उठने का अवसर मिल जाय, तो मनुष्य अगणित सफलताएँ अर्जित कर सकने वाला सिद्ध पुरुष बन सकता है । यदि कुछ और उभार आ सके, तो उसे ओजस्वी , तेजस्वी, मनस्वी होने में देर न लगे । ज्ञान और विज्ञान से संबंधित उसकी अनेकों विशेषताएँ उभर पड़ें तो मनीषियों दिव्यदर्शियों जैसी उच्चस्तरीय भूमिका निभाते उसे देखा जा सकता है । इंजीनियर , डॉक्टर , आर्किटेक्ट , योजनाकार, कलाकार स्तर के अनेकों विशेषताओं से सम्पन्न लोग तो मस्तिष्क को तनिक सा विकसित कर लेने भर से बनते देखे जा सकते हैं ।

प्रश्न यह है कि ऐसे ही सुविधा सम्पन्न शरीर और मस्तिष्क अन्यान्य प्राणियों को क्यों नहीं मिले ? यदि स्रष्टा को समदर्शी और न्यायनिष्ठ कहा जाता है तो उसने ऐसी अनीति क्यों बरती कि एक ही प्राणी को सृष्टि का मुकुटमणि बन सकने जैसी सुविधा प्रदान कर दी और अन्य सभी को अनगढ़ स्थिति में समय गुजारने जैसे तुच्छ स्तर के कलेवर देकर बहका कर भगा दिया गया ।

मोटी दृष्टि से विचार करने वाले नास्तिक विचारधारा के लोगों का कहना है कि ऐसे अनेकों प्रश्न उठ खड़े होते हैं, जिनके कारण स्रष्टा में इतनी भर न्याय निष्ठा नहीं दीख पड़ती जितनी कि सामान्य लोगों में अपनी संतानों के बीच एक बड़ी सीमा तक निष्पक्षता के रूप में देखी जाती है । नैतिकता–नीति निष्ठा गँवा बैठने पर तो कोई सत्ता ऐसी नहीं रह जाती , जिसके प्रति निष्ठा उपजे, जिसकी भक्ति करने के लिए विचार बने जिसकी पूजा अभ्यर्थना करने के लिए अन्तःकरण हुलसित हो । वे कहते हैं कि समर्थता ही तो सब कुछ नहीं है अतीव शक्तिसम्पन्न महादैत्यों तक के नमन–वंदन के लिए जब उनका प्रचण्ड दमन सामने रहने पर भी मनुष्यता ने सिर नहीं झुकाया तो फिर ईश्वर का सर्वशक्तिमान होना भी वह निमित्त कारण नहीं बन सकता , जिसके लिए उसे उपास्य या आराध्य ठहराया जा सके । मनुष्य का अपना भी तो विवेक है । उसने स्वयं भले ही अनीति बरती हो, पर समर्थों का अन्याय तो उसने कठिन , प्रबल विरोध किए बिना छोड़ा नहीं है । फिर ईश्वर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्कों के इस आक्रोश से क्यों कर बच सकेगा ?

बात यहीं तक सीमित नहीं है । जीवधारियों का पक्ष लेने वाले तथा मनुष्य को मिले अधिकारों को चुनौती देने वाले तो यह कहते हैं कि जो मनुष्य अतिरिक्त रूप से उत्पन्न हुई विभूतियों का पग–पग पर दुरुपयोग करने के लिए उतारू रहता है छल, प्रपंच, अनाचार , शोषण उत्पीड़न जैसे कुकर्मों का ताना–बाना बुनता रहता है , उसी को भगवान ने यह छूट कैसे दे दी कि जिस प्रकार अन्यान्यों को बहका फुसला कर अपना उल्लू सीधा करता रहता है, वही कुचक्र पूजा पाठ का रूप बनाकर ईश्वर को भी वशवर्ती बना सकता है और उससे वैसे ही लाभ वरदान रूप में पा सकता है जैसे कि पालतू पशुओं को बन्धनों से जकड़ कर मन चाहा लाभ उठाया जाता है । ईश्वर इतना भोला कैसे बन गया ? उपासना कराने की ऐसी क्या ललक उस पर चढ़ दौड़ी कि वह चाटुकारों की मनुहार के पीछे छद्म को नहीं समझ सका ।

यों ये आक्षेप कम वजनदार नहीं हैं । यदि धर्मराज की अदालत में ईश्वर पर दो मुकदमें चलाये जा सकें तो व्यवस्था का दावेदार बनने वाले ईश्वर पर उपरोक्त दोनों ही अभियोगों द्वारा तर्क और तथ्य को आधार बनाने वाला वकील इस प्रकार इलजाम सिद्ध कर सकता है कि अभियोग की यथार्थता सिद्ध हो सके और भगवान को अभियुक्तों के कटघरे में खड़ा होना पड़े । इस पूरे प्रकरण का किसी नास्तिक की बकवास कहकर टाला भी तो नहीं जा सकता ।

इन आरोपों का जवाब देना ईश्वर का नहीं, इसकी सत्ता का प्रतिपादन करने वालों का कर्तव्य है । ईश्वर की सच्ची परिभाषा जिसने समझी होगी, वह इसका वकील सही अर्थों में बनकर यह मुकदमा लड़ सकता है । ईश्वर सत्प्रवृत्तियों के समुच्चय, उत्कृष्टता की, श्रेष्ठता की प्रतिमूर्त्ति का नाम है । ईश्वर अनुशासन का, विधि–व्यवस्था का–नीतिमत्ता का , सुव्यवस्था का नाम है । वह निराकार रूप में कहीं है तो इसी रूप में विद्यमान है । मनुष्य को उसने बुद्धि तो दी पर नर पशु का नर पामर का अथवा देवमानव का , ऋषि का जीवन जीने की स्थिति का चयन करने की स्वतंत्रता भी दे दी । यह मनुष्य की विवेक बुद्धि पर निर्भर है कि वह किस मार्ग का अवलम्बन करता है ।

अन्यान्य प्राणियों में चेतना है, अतीन्द्रिय क्षमता है, इस्टींक्ट्स हैं , साथ ही भावनाएँ भी । यदि उन्हें मनुष्य की तरह बुद्धि मिलती तो वे भी कुटिलता के षड़यंत्रों के शिकार हो कर एक दूसरे के लिए दुरभिसन्धियाँ रच रहे होते । इस प्रकार प्राणियों में भी मानवी सद्गुण हैं एवं मानव में भी पाशविकता के सभी लक्षण । जो भी उस सृजेता द्वारा प्रदत्त विभूतियों का सुनियोजन करता है, वह आत्मिक प्रगति का पथ प्रशस्त करता चला जाता है एवं जो दुरुपयोग करता है वह पतन के गर्त में चला जाता है ।

> *एक अवसर पर प्लेटो से उनके शिष्यों ने कहा, "आलोचक आपके खिलाफ बहुत बुरी–बुरी बातें कर रहे हैं । किसी तरह उनका मुँह बन्द करना चाहिए ।" प्लेटो ने उत्तर दिया –" नहीं उनका मुँह बन्द करने की आवश्यकता नहीं है । उन्हें बोलने दीजिए , लेकिन मैं ऐसा जीवन जीऊँगा कि कोई भी उन आलोचकों की बातों पर विश्वास ही नहीं करेगा ।"*

निष्ठुरता–सहृदयता , दुर्बुद्धि–सद्बुद्धि–सद्विवेक , दुष्कर्म सभी अपने चयन पर निर्भर हैं । इस तरह दोषी ईश्वर नहीं उसकी वह कृति है जो मनचाहा दुरुपयोग करने की उच्छृंखलता बरतने लगती है । पात्रता का ध्यान किये बिना उपासना का ढोंग रचकर उपहासास्पद विडम्बना रचती है । मुकदमा ईश्वर पर नहीं मनुष्य पर चलाया जाना चाहिए जिसने अपने हाथों इस विश्व उद्यान को सुरम्य बनाने के स्थान पर भग्नावशेषों में बदल डाला है । जिस दिन यह मर्म समझ में आजाएगा व्यक्ति मनःस्थिति बदलकर सही अध्यात्म पर चलने का मार्ग सीख जाएगा । फिर वह परिस्थितियों पर दोष न मढ़कर अपने चिन्तन को बदलने की कला को जीवन में स्थान देगा । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्य दर्शन महाकाल के अग्रदूत द्वारा

"यह है अपना भग्न भारत ।" उनमें से एक ने अपने बीच खड़े व्यक्ति से खण्डहरों की ओर इशारा करते हुए सम्मानजनक किन्तु क्षुब्ध स्वर में कहा । इन सभी नवयुवकों पर उनकेव्यक्तित्व ने गहरा असर डाला था । अभी थोड़े ही दिन पहले इनका मद्रास आना हुआ । पता नहीं कैसे इन सब को उनका पता चल गया । फिर क्या ! जैसे–तैसे करके उन्हें राजी कर लिया अपनी "त्रिपलीकेन साहित्य सभा" में उद्‌बोधन देने मार्गदर्शन करने हेतु । उनके द्वारा दिए गए उद्‌बोधन का प्रत्येक शब्द सुनने वालों के दिलों में गहरे उतरता चला गया । सभी हतप्रभ थे नवयुवक ही नहीं मद्रास के गण्यमान्य नागरिक भी जिसने सुना वही । कारण कि सामाजिक , सांस्कृतिक, नैतिक आध्यात्मिक विषयों की इतनी सारगर्भित सरल और हृदयस्पर्शी विवेचनाएँ और कहाँ सुनने को मिलतीं । संस्कृत अँग्रेजी की मिली–जुली काव्यात्मक भाषा सुनकर सभी अकल्पनीय मनोदशा में तैरने लगे ।

उस दिन से आज तक ये सभी उनके साथ थे । सभी के दिलों में एक गहरी टीस थी, दर्द की अनुभूति थी देश जाति के प्रति । सब के मनों की साध थी–खोया सौन्दर्य वापस लाने की । पर कैसे ? इन सब की दशा महासागर में डोल रही नाव में बैठे उन यात्रियों की भाँति थी जो जाना तो चाहते थे गन्तव्य का भी पता था पर मार्ग और केवट के अभावों की बेचैनी इनके अन्तर को मथ रही थी । इन्हें पाकर सभी यह महसूस कर रहे थे यही वह खिवैया है जिसकी चिरअतीत से तलाश थी । उन्हें लेकर आज ये सब महाबलीपुरम आए थे । एक ओर थे चोल और पाण्ड्य नरेशों द्वारा विनिर्मित वास्तुकला के अनोखे नमूने । जो सागर के थपेड़े, इतिहास के झटके खाकर जराजीर्ण हो रहे थे । दूसरी ओर था महासागर जिसके गर्भ से सूर्य उदय हो रहा था ठीक मानव जाति के सौभाग्य सूर्य जैसा । रश्मियों से जल राशि स्वर्णिम हो उठी थी । अपने इन स्वर्णिम जलकणों को सागर लहरों की अंजलि बना इन देव पुरुषों के चरणों में अर्पित कर कृतार्थ हो रहा था ।

वह निर्निमिष दृष्टि से उस ओर ताक रहे थे जिसकी ओर उसने इंगित किया था । एक क्षण के पश्चात् पलकें नीचे झुकाई एवम् उसके कंधे पर हाथ रखते हुए बोले–"आलसिंगा निराश मत हो एक दिन इसी भग्नता के अन्दर से वह सौन्दर्य प्रकट होगा कि जिससे विश्व की आँखे चौंधियाँ जाएँगी । वर्तमान दशा के कारण देश की सांस्कृतिक विरासत पर कटाक्ष और व्यंग करने वाला जनसमूह भविष्य के रुपहले –सुनहले रूप को देख दाँतों तले अँगुली दबा लेगा । " सिर पर पगड़ी बाँधे माथे पर वैष्णव तिलक लगाए , अपने कलेवर को धोती–कुर्ते में समेटे वह उनकी ओर आखें फाड़े आश्चर्य से देखने लगा । प्रायः सभी की यही दशा थी और वह गठा हुआ सुदृढ़ गौर शरीर, मुसकान को सर्वदा सँजोए रखने वाला मुख मण्डल अधखुली स्वप्निल दीर्घ आखें, जो बाहर की अपेक्षा अन्दर की ओर देखती हुई प्रतीत होती थीं गैरिक वसनों में ऐसे लग रहे थे जैसे अग्नि शिखाओं का परिधान पहने भारत का गौरव स्वयं आखड़ा हुआ हो ।

एक इशारे से उन्होंने सभी को और नजदीक बुलाया और सबके साथ पास पड़ी पाषण शिला पर बैठ गए ।"स्वामी जी ! एक अन्य नवयुवक प्रस्तर खण्ड पर बैठते हुए कह रहा था–मैं आपकी बातों पर अविश्वास तो नहीं करता आप भला निराधार बात कहेंगे भी क्यों ? फिर भी मेरे मन में सन्देह है ?

"निःसंकोच कहो बंधु " । उन्होंने इस साँवले तरुण की आखों में देखते हुए कहा ।

कौन करेगा यह सब ? कैसे होगा यह ? उस दिन की बात याद है न आपको जब आपने "हिन्दू " में प्रकाशित समाचारको पढ़ते हुए ...।

"वही समाचार न जिसमें कि बताया गया था कि कलकत्ता में भाषण देते समय एक मिशनरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिला ने हजारों शिक्षित युवकों के सामने हिन्दूधर्म को ठोस अनैतिकता और पागलपन बतलाया था । सुनकर सभी ने सिर तो झुका लिया पर किसी के मुख से चूँ तक न निकली ।

हाँ हाँ वही !

और मैंने इन्हें चूहा कहा था जो दूसरों की घुड़की पर बिल में दुबके रहते हैं । जबकि अपनों की जीवन सम्पदा को कुतरने नष्ट करने में इन्हें मजा आता है । यही कहना चाहते थे न । तो क्या अब यही चूहे ...। अविश्वास की मुद्रा में उसने देखा ।

"शान्त हो सुनो !" इन शब्दों ने जादू का सा असर डाला । सब मौन हो उनकी वाणी की प्रतीक्षा करने लगे । उन्होंने अपनी अधखुली आँखों को पसार कर एक गहरी दृष्टि सब पर डाली । आखों से निकलती नीली लहरें सभी को एक अनजाने प्रदेश की ओर ले जाने लगीं । "आज मैं तुम सबके सामने एक रहस्य ! उद्घाटित करता हूँ । वह रहस्य जिसे मेरे गुरु ने मुझे दिया था । वह रहस्य !! जो कठोर साधनाओं के द्वारा मेरे अन्तराल में उतरा है । वह रहस्य !!! जिसे हिमालय की ऋषि सत्ताओं ने मेरे सामने उद्घाटित किया है । "

सभी के मन एकाकार हो रहे थे । हृदयों में जिज्ञासा की दीपशिखा प्रकाशित हो चुकी थी । एक शांति थी, अचंचल नीरवता महासागर भी इसका सहभागी बनने लगा था । शायद वह भी इस रहस्य को आत्मसात् करने का इच्छुक हो उठा था । रहस्य ! प्रकृति के गूढ़ गर्भ का अनमोल रत्न ! सूक्ष्म चेतना की हलचलों का प्रकटीकरण !

"वर्तमान युग समाप्त होने को है । इसके स्थान पर सत्य युग पुनः प्रतिष्ठित होगा । विश्व की प्राण शक्ति अकुला कर जाग रही है । विश्व कुण्डलिनी के इस जागरण का केन्द्र बनेगा भारत । ऋषियों की चिर पुरातन गौरव भूमि पुनः जगत गुरु का मुकुट पहनेगी ।" आवाज किन्हीं अतल गहराइयों से उभर रही थी । वह वैश्व चेतना से एक हो बोल रहे थे । निस्तब्धता स्वरों को धारण कर रही थी ।

वह कह रहे थे "नवयुग का निर्माण व्यक्ति जाति प्रशासन, जनसमूह की नहीं स्वयं ईश्वर की योजना है । उसी सृजेता का संकल्प है यह जिसके संकेत मात्र से नीहारकाओं की सृष्टि होती , सैकड़ों लाखों, करोड़ों ब्रहमाण्डों का उदय अस्त होता है । अनेकानेक सृष्टि संरचनाएँ अभ्युदय और विस्तार पाती हैं । उसकी योजना के प्रायः अन्तिम चरण में उपयुक्त समय पर एक शक्तिपुंज महामानव सामने आएगा और तब सभी चूहे साहसी बन जाएँगे ।"

शब्द सभी की रगों में लहू के साथ दौड़ने लगे थे । रोमांच का अनुभव होने लगा । सबको उनकी वाणी गतिशील थी "जब कभी कोई महापुरुष आता है, तो परिस्थितियाँ पहले से उसके पैरों के नीचे तैयार रहती हैं । वह ऊँट की पीठ को तोड़ देने वाले बोझ का अन्तिम तृण साबित होगा । हम उसके लिए भूमि तैयार कर रहे हैं । "

"नवयुग का निर्माण ईश्वर की योजना " है हमें उसके लिए भूमि तैयार करना है मेरे बच्चो ! " सभी जैसे सोते से जगे । चेतना के अतल सागर से सभी के मन एक–एक करके उबरने लगे । थोड़े क्षण सभी मूक हो गए ।

भूमि की तैयारी ?, पर किस तरह ? कई कण्ठों से आतुर वाणी निकली ।

"यह एक दिन का काम नहीं, एक शताब्दी में यह होगा । रास्ता भी कंटकों से आकीर्ण है । परन्तु पार्थ सारथी हमारे भी सारथी होने के लिए तैयार हैं । उनका नाम लेकर और उन पर अनन्त विश्वास रखकर भारत के युगों से संचित पर्वतकाय अनन्त दुःख राशि में आग लगा दो । हम लोग साधनहीन भले दिखें तो भी हम अमृत पुत्र और ईश्वर की सन्तान हैं । विश्वास सहानुभूति दृढ़ विश्वास और ज्वलंत सहानुभूति चाहिए । जीवन तुच्छ है, मरण भी तुच्छ है । आगे कूच करो– प्रभु ही हमारे सेना नायक हैं । उनकी योजना वे ही पूरा करेंगे । किन्तु हमें निमित्त मात्र बनने में कोई कोर कसर नहीं उठा रखनी है ।"

युवकों के चहेरे पर उल्लास और विश्वास की रेखाएँ उभर उठीं । सभी की अन्तरचेतना भविष्य की उज्ज्वल झलक पा पुलकित हो उठी थी । ईश्वरीय योजना की इस पृष्ठभूमि के निर्माता गैरिक वसन से आवेष्टित महाकाल के अग्रदूत थे विवेकानन्द ।

उनके द्वारा निर्देशित पल अब इस संधि वेला में आ पहुँचे हैं । योजना का अन्तिम चरण कारण और सूक्ष्म की गहराइयों से उबर कर प्रत्यक्ष हो रहा है । साथ ही हर ओर से एक ही ध्वनि गुँजित हो रही है–"निमित्त मात्र भव्य सव्यसाचिन "। जाग्रत सुसंस्कारित इसे सुनकर भग्न देश को सँवारेंगे नया जमाना लायेंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम सुधा रस बाँटो रे भाई

भावनाओं में सर्वोपरि गणना प्रेम भाव की होती है । इसी के इर्दगिर्द दिव्य सम्वेदनाओं का सारा परिकर जुड़ा होता है । यह मानवी अन्तरात्मा का रस है, जिसे भक्तियोग की साधना प्रक्रिया द्वारा विकसित किया और दया, करुणा , मैत्री , उदारता, सेवा , सज्जनता, सहृदयता, आदि अन्तःकरण की दिव्य विशेषताओं के साथ विस्तृत एवं परिपुष्ट किया जाता है । यह जहाँ से उद्भूत होता है, वहाँ ऐसी उल्लासभरी आनन्दानुभूति होती है , जिसकी तुलना सांसारिक किसी पदार्थ से नहीं की जा सकती । प्रेम को अलौकिक रस के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है । इस निर्झर का जल जो भी पीता है, असीम तृप्ति अनुभव करता है । प्रेमी अन्तःकरण अपने से सम्बद्ध व्यक्तियों को अतिशय बल प्रदान करता है । वातावरण को परिष्कृत कर सकना भी इस भक्ति भावना के विकास विस्तार से संभव हो जाता है ।

अन्न शरीर का आहार है, ज्ञान मस्तिष्क का । अन्तरात्मा की भूख प्रेम से बुझती है । अन्तराल को पोषण उसी सघन आत्मीयता से मिलता है जिसे सामान्य व्यवहार में प्रेम और अध्यात्म की भाषा में ‘भक्ति ’ कहते हैं । भक्ति के सम्वर्धन का अभ्यास ईश्वर उपासना के माध्यम से किया जाता है , पर वह इतने तक ही सीमित नहीं रहता । व्यायामशाला में शरीर को परिपुष्ट बनाया जाता है , पर उस पुष्ट शरीर का उपयोग व्यायामशाला तक सीमित न रहकर विभिन्न प्रयोजनों के लिए होता है । जिस तालाब में तैरना सीखते हैं, उसी में आजीवन तैरा जाय, अन्य कहीं उस कला का उपयोग न हो, ऐसा कहाँ होता है ? ईश्वर भक्ति की साधना से परिष्कृत अन्तःचेतना को अपनी सघन आत्मीयता एवं सहृदयता का परिचय पग-पग पर देना होता है । इससे प्रेमी तो धन्य होता ही है, प्रेम पात्र को भी अति महत्वपूर्ण लाभ मिलता है । गंगा तो स्वयं पवित्र होती है उसमें स्नान करने वाले भी पवित्र बनने लगते हैं ।

प्रेम मानवी अन्तरात्मा की भूख है । इसका नियमित अभ्यास करने के लिए ही मित्र, प्रियजनों का परिवार बसाया, बढ़ाया जाता है । प्रेम का आदान-प्रदान दोनों ही पक्षों के कारण शरीर को बल प्रदान करता है । जहाँ प्रेम का आदान-प्रदान न हो सका, वहाँ भौतिक सुख साधनों का बाहुल्य होते हुए भी किसी को तृप्ति न मिल सकेगी । इस अभाव के कारण अंतस्तल तृषित और मूर्छित ही बना रहता है ।

संसार में कई छोटे बच्चे ऐसे मिल जायँगे, जिनमें बाल्यकाल से ही विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों का विकास आयु के अनुपात से कई गुना अधिक देखने को मिल जायगा । पिछले दिनों न्यूयार्क के मूर्धन्य चिकित्सा विज्ञानी डॉ. रेनीस्पिट्ज ने इस संदर्भ में गहन अनुसंधान किया और ऐसे बच्चों की पारिवारिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त की । पाया गया कि उनमें से ९९ प्रतिशत ऐसे थे, जिन्हें अपने जन्मदाताओं का विशेषकर माता का स्नेह-दुलार नहीं मिला था या तो उनकी माँ का देहावसान हो चुका था या सामाजिक परिस्थितियों ने उन्हें अपनी माँ से अलग कर दिया था ।

इस आरंभिक अन्वेषण ने डॉ. रेनीस्पिट्ज में प्रेम भावना के वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रेरणा भर दी । उन्होंने दो भिन्न सुविधाओं वाले संस्थानों की स्थापना की । एक में उन बच्चों को रखा गया , जिनमें उन्हें माँ का भरपूर वात्सल्य और दुलार प्राप्त होता था । वे जब भी चाहें, जब भी माँ को पुकारें, उन्हें अविलम्ब वह स्नेह सुलभ किया जाता था । दूसरी में उन बच्चों को रखा गया था, जिनके लिए बढ़िया से बढ़िया भोजन , वस्त्र, आवास, चिकित्सा, क्रीड़ा के बहुमूल्य साधन उपस्थित किये गये थे, पर मातृप्रेम का अभाव था । माताओं के स्थान पर उन्हें संरक्षिका भर मिली थी, जो अकेले ही बारह बच्चों का नियंत्रण करती थी । प्रेम और दुलार और वह भी कृत्रिम वह अकेली नर्स इतने सारे बच्चों को कहाँ से दे पाती ? हाँ कभी-कभी झिड़कियाँ उन बच्चों को अवश्य पिला देती । उन बच्चों का यही था जीवनक्रम ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक वर्ष बाद दोनों संस्थानों के बच्चों का परीक्षण किया गया। उनकी कल्पना शक्ति की मनोवैज्ञानिक जाँच, शारीरिक विकास की माप,सामाजिकता के संस्कार , बुद्धि चातुर्य और स्मरण शक्ति का परीक्षण किया गया।

जिस प्रकार दोनों संस्थानों की परिस्थितियों में पूर्ण विपरीतता थी, परिणाम भी एक दूसरे से ठीक उलटे थे। जिन बच्चों को साधारण आहार दिया गया था, जिनके लिए खेलकूद , रहन–सहन के साधन भी उतने अच्छे नहीं दिये गये थे , किन्तु जन्मदात्रियों का प्रेम प्रचुर मात्रा में मिला था , पाया गया कि उन बच्चों की कल्पना शक्ति , स्मृति, सामाजिक संबंधों के संस्कार शारीरिक और बौद्धिक क्षमता का विकास १०१.५ से बढ़कर एक वर्ष में १०५ विकास दर बढ़ गया था। दूसरे संस्थान के बच्चों की, जिन्हें भौतिक सुख–सुविधाओं की तो भरमार थी, पर प्यार के स्थान पर गहन शून्यता मिली थी, उनकी विकास दर १२४ से घट कर ६२ रह गई थी। इन बच्चों को उसी अवस्था में एक वर्ष तक और रखा गया तो पाया गया कि वह औसत ६२ से भी घटकर बहुत ही आश्चर्यजनक बिन्दु ४२ तक उतर आया है।

पहली संस्था के बच्चों के शारीरिक विकास के साथ दीर्घ जीवन में भी वृद्धि हुई , क्योंकि देखा गया कि उस संस्थान में जो २३६ बच्चे रखे गये थे , उनमें से इन दो वर्षों की अवधि में एक भी शिशु की मृत्यु नहीं हुई, जबकि प्यार–विहीन बच्चों वाले संस्थान के ३६ प्रतिशत शिशु असमय ही काल के मुख में समा गये।

क्वींस यूनिवर्सिटी , आन्टोरियो –कनाडा के वैज्ञानिकों ने प्रेम का प्राणियों पर पड़ने वाले भौतिक प्रभाव नामक विषय पर गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया है। इस विश्वविद्यालय के फार्माकोलॉजी के विभागाध्यक्ष डॉ. एल्डन वायड के अनुसार उक्त अनुसंधान का कार्य एक महिला कर्मचारी को सौंपा गया, जिसे स्वयं जीवधारियों से, विशेषतया चूहों से बहुत प्यार था। वह उन्हें दुलार भरी दृष्टि से देखती , उनकी सुविधाओं का ख्याल रखती और यथा संभव अपने व्यवहार में प्रेम प्रदर्शन भी करती। इसका प्रभाव चूहों पर आश्चर्यजनक हुआ। वह उसके साथ घनिष्टता से जुड़ गये। जैसे ही महिला पिंजड़े के पास जाती , चूहे उसके पास इकट्ठा हो जाते और उसे एकटक देखते रहते। जो भी वह खिलाती , खुशी –खुशी खा लेते , यद्यपि उनमें तरह–तरह की औषधि मिली रहने से वह भोजन उनकी रुचि और प्रकृति के प्रतिकूल पड़ता था। कई बार जानबूझ कर कष्टकर औषधियाँ भी उन्हें खिलाई गईं जिन्हें जानते अनुभव करते हुए भी चूहे उस महिला द्वारा खिलाये जाने पर इस प्रयोग के लिए खुशी–खुशी उसका सहयोग करते।

इसी तरह उन पर कई बार विषैली दवाओं का भी प्रयोग किया गया। देखा गया कि एक ही प्रकार की दवा का प्रभाव दो महिलाओं द्वारा चूहों के दो अलग–अलग ग्रुपों पर करने पर भिन्न–भिन्न परिणाम सामने आये। उक्त प्रेम भावनायुक्त महिला के हाथ से दवा खाने पर २० प्रतिशत चूहे मरे जबकि उसी दवा को उतनी ही मात्रा में दूसरी महिला ने खिलाया तो ८० प्रतिशत चूहे मर गये। प्रेम सर्वाधिक प्रभावी अमृत संजीवनी रस है, जिसको पीकर अशक्तों एवं मृत्यु की कगार पर पहुँचे हुओं को भी स्वस्थ, सबल और प्राणवान बनते देखा गया है। डॉ. फ्रीट्स टालबोट ने अपने जर्मनी प्रवास के समय वहाँ कार्यरत एक वृद्ध नर्स को देखा। उसका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि यद्यपि देखने में वह वृद्धा कोई आकर्षक भी नहीं थी फिर भी जितनी बार उसकी ओर देखा उसकी मुखाकृति में एक विलक्षण शांतिप्रद सौम्यता और मुस्कान दिखी। हर समय उसकी बगल में कोई न कोई बच्चा दबा हुआ होता। टालबोट के मन में उस स्त्री को देखकर उसे जानने की अनायास जिज्ञासा उत्पन्न हो गई उन्होंने अस्पताल के डायरेक्टर से उसका परिचय पूछा तो डायरेक्टर ने बताया कि यह तो अन्ना है, डाक्टरों की भी डाक्टर। एक ही औषधि है उसके पास , जिसका नाम है 'प्रेम '। जिन बच्चों को हम असाध्य रोगी घोषित कर देते हैं, अन्ना उन्हें भी प्रेम रस पिलाकर अच्छा कर देती है।

निश्चय ही प्रेम वह निर्झर स्रोत है, जिसकी सृजनात्मक धारा ऊसर , बंजर एवं मरुभूमि को आप्लावित करके उसे भी उर्वर बना कर हरीतिमा से लहलहा देती है। इस अमृत रस को पीकर सूखे, सूने एवं भग्न हृदय में भी जीवन संचार हो उठता है। मानव समुदाय को आज इसी निश्चल प्रेमभाव को विकसित एवं वितरित करने की आवश्यकता है। अपनत्व का, प्रेम भाव का विस्तार ही सच्चा अध्यात्म है। ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग्य का बीज है पुरुषार्थ

पता नहीं कब से दोनों हाथों से सिर थामे वह उकुड़ूँ बैठा था । चेहरे पर विवशता की रेखाएँ विपन्नता का दैन्य, अन्तर की हताशा–निराशा के भाव एक साथ उभर उठे थे । करे भी क्या ? मन ही मन बड़बड़ा उठा । वही चाक है, वही सांचे, मिट्टी भी वही, हाथ भी पुराने फिर क्या हो गया ? पता नहीं क्या ? बुदबुदाते हुए उसने एक वितृष्णा भरी दृष्टि चाक, अधसनी मिट्टी , मटमैले हो रहे साचों , अधबने, अधरँगे खिलौनों पर डाली । दृष्टि निक्षेप के साथ मानों ये सभी भी विवश हो उसकी ओर निहारने लगे ।

इसी बीच आया गोशालक । न जाने क्या उलटी, सीधी पट्टी पढ़ाई उसने सब कुछ चौपट हो गया । अब काम धाम में मन ही नहीं लगता । सब भाग्य का खेल है नहीं तो क्या इस तरह सब बिगड़ जाता । घाटे पर घाटा एक के बाद एक नुकसान हद होती है । जब किस्मत ही खराब है तो हो भी क्या सकता है ।सोचते–सोचते उसने कपाल ठोक लिया ।

अरे ! आज सुबह ही सुबह बड़े परेशान लग रहे हो । क्या सोचने लगे सकडाल भाई । अपने घर से बाहर निकल रहे पड़ोसी ने उसकी दीन–दशा का कारण जानना चाहा ।

कुछ नहीं भाई किस्मत के फेर हैं । निराशा भरे स्वर फूटे । अपने नगर के बड़े वाले प्रांगण में एक सन्त आने वाले हैं चलोगे, "क्या होगा चल कर , सन्त हो चाहे कोई किस्मत बदलने से तो रही ।" "बस वही किस्मत भाग्य एक ही रटन ।" "चलो भी ! तनिक मन ही बहल जाएगा ।"

"तुम्हारी स्थिति अच्छी है तभी न ऐसी बातें करते हो, खराब होती तब पता चलता । खैर सब समय का चक्कर है । उसके स्वर में वेदना छलछला रही थी । पड़ोसी ने सहानुभूति के स्वरों में कहा- परेशान न हो सकडाल, सन्त के पास चलकर देखो वे किस्मत भी बदल सकते है । कम से कम चलने से तो न इनकार करो ।"

आग्रह और अनुरोध को वह ठुकरा न सका । कन्धे पर अंगोछा डाल कर चलने को तैयार ही हुआ था, तभी उसने देखा सड़क पर दूर से आता श्वेत-वस्त्र धारियों का जुलूस ।धीरे–धीरे जुलूस को समीप आते देख पड़ोसी बोल उठा लगता वही हैं । "वही " तब तो लगता है मेरा भाग्य चेत गया । वह उनके तेजोदीप्त चेहरे की ओर देखता हुआ अपने मानसिक द्वन्द्व में झूल रहा था । एक मन तो हो रहा था कि उनके चरण पकड़ ले, दूसरा कह रहा था क्या होगा इससे ? सब कुछ भाग्य के ही आधीन है ।

क्या करूँ क्या न करूँ के द्वन्द्व में नाचते हुए उसे आश्चर्य तो तब हुआ जब वह उसके समीप रुक गए । रुके ही नहीं पूछ भी बैठे इतने सुन्दर खिलौने इतने बढ़िया बर्तन कौन बनाता है इन्हें ? इशारा पड़ोसी की ओर था ।

पड़ोसी ने उसकी ओर देखते हुए कहा "ये सभी सकडाल भाई की कलाकृतियाँ हैं । प्रभु !"

अच्छा ! उन्होंने तनिक आश्चर्य से उसकी ओर देखा ।

इसमें क्या–सब संयोग–वश होता है महाराज ! जब संयोग मिल जाते हैं तब ऐसा हो जाता है ।

उनने फिर पूछा अगर तुम्हारे इन खिलौने और बर्तनों को कोई फोड़ दे तो ? "

अब की बार वह तमक गया–फोड़ेगा कैसे , इससे मेरा नुकसान जो होता है और फोड़ने वाला मेरा नुकसान करने वाला होता है ?" अच्छा ठीक है और जो कोई अत्याचारी तुम्हारी पत्नी का शीलभंग करे तो . . . ... ? " उनने पूछा ।

"कौन माई का लाल है जो मेरे रहते मेरी पत्नी की ओर आँख उठा कर भी देखे " अब की बार सकडाल उबल पड़ा । "पर उसका क्या दोष ? जो होता है वह तो सब नियति के वश ही होता है ।" उनका इतना कहना था कि सकडाल की आखें फटी की फटी रह गई । उसे भान हुआ वह कैसी गलत मान्यता अब तक बनाए हुए था । तब उनने कहा "पुत्र ! भाग्य का बीज पुरुषार्थ है ठीक इस आम की गुठली की तरह । गुठली जब अपने को गलाती है 'कष्ट' मिट्टी का दबाव सभी कुछ सहती तब वृक्ष जन्म लेता है जो समय पाकर फूलों फलों से लद जाता है " इशारा पास खड़े आम के फलदार पेड़ की ओर था । भाग्य और कुछ नहीं परिपक्व पुरुषार्थ है । मैं जानता हूँ तुम भाग्य द्वारा छले गए हो पर पुरुषार्थ से पुनः नए भाग्य का सृजन करो ।" कहकर जैनधर्म के आदि प्रवर्तक भगवान महावीर वहाँ से चल दिये । एक थके हारे निराश व्यक्ति को जीवन का कायाकल्प का संदेश सुनाकर । यही तो संतो की अवतारों की कार्यशैली रही है । *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवेदना बनाती है लेखनी को प्राणवान

"ऐसा कौन सा जादू आपके पास है, जिसके बल पर प्रत्येक रचना जीवन्त सृष्टि हो जाती है। पात्र मुखर हो समाज का दर्द बयान करते हैं और पाठक एक स्थाई कसक अनुभव किये बिना नहीं रहता। " शब्दों के माध्यम से कहने वाले की स्वानुभूति टपक रही थी। वह अपनी पत्नी राधारानी के साथ उनके बगल में चल रहा था। रात्रि के ग्यारह बज जाने के कारण सड़क सूनी हो गई थी। कभी-कभार उन्हीं जैसा कोई इक्का दुक्का दिखाई पड़ जाता। बातों के कारण रास्ते की बोरियत दूर भाग रही थी। तीनों नपे तुले कदमों से अपने गन्तव्य की ओर बढ़ रहे थे।

"यह ठीक कह रहे हैं भाई साहब। पत्नी ने पति के कथन का समर्थन करते हुए अपनी दृष्टि ऊपर उठाई। कृष्ण पक्ष की द्वादशी होने के कारण चन्द्रमा अभी नहीं उगा था। आसमान की काली चादर में असंख्यों सितारे टंक चुके थे। "देवदास का देवा हो या पाथेर दावी के डॉ. साहब और भारती अथवा शुभदा-परिणीता के पात्र हों संसार में मनुष्य के कर्तव्य को समझाए बिना नहीं रहते। इन भावों की गहरी अनुभूतियाँ मस्तिष्क के विचारों द्वारा किया गया जीवन का विश्लेषण हम जैसे अल्प शिक्षितों को जीवन की राह पर अँगुली पकड़ कर चलाए बिना नहीं रहता।"

बातें करते-करते वे लोग मण्डतिया रोड के एक मोड़ पर आ पहुँचे थे। पहुँच कर उन्होंने देखा तीन-चार लोग एक वृक्ष के नीचे जोर-जोर से बातें कर रहे हैं। उन व्यक्तियों की बातें इन लोगों के कानों तक भी पहुँची सुनकर ये ठिठके। साथी भी रुक गये। तभी वृक्ष के नीचे खड़े व्यक्तियों में से किसी एक ने कहा महोदय! जरा सुनिए तो।

तीनों उधर चल दिए। जाकर देखा लाल कपड़े में लिपटा एक नवजात शिशु पड़ा है। कहना न होगा पथभ्रष्ट यौनाचार के ही परिणाम स्वरूप कोई युवती अपने मातृत्व का गला घोंट कर यह दुष्कृत्य कर गई थी। उनने सद्योजात उस शिशु को देखा तो उसके शरीर पर चीटियाँ रेंग रहीं थीं और उनके काटने से उसकी देह में स्थान-स्थान पर लाल रंग चढ़ गया था। ऐसी स्थिति में वह घर कैसे जाते। उपस्थित अन्य लोग कोई झंझट उठाने को तैयार न थे। किन्तु उनका विचार बना कि बालक को अस्पताल भिजवा दिया जाय ताकि संसार में हाल ही आया यह अतिथि योंही न विदा हो जाए।

कुछ सोचते हुए अपने मित्र की ओर मुखातिब होते हुए बोले नरेन्द्र! पास के किसी मकान में जाकर अस्पताल वालों को फोन कर दो। खुद बच्चे को गोद में उठा कर उस के लिए आहार की व्यवस्था जुटाने लगे। दूध तो बच्चे ने नहीं पिया, शहद अवश्य उसके गले के नीचे उतरा। फिर वे नरेन्द्र के पास पहुँच गए जो पास ही की एक दुकान पर से अस्पताल वालों को फोन कर रहा था।

अस्पताल वालों ने इस प्रकार मिले अवांछित बालक को लेने से इनकार कर दिया। नियमानुसार पहले इसकी सूचना पुलिस को देनी पड़ती। अतः पुलिस को फोन किया गया। पुलिस स्टेशन से तत्काल कोई आने को तैयार न हुआ। नरेन्द्र ने जब उनका हवाला दिया तो वहाँ से आदमी भेजने की व्यवस्था की गई।

कुछ देर बाद दो सिपाही घटना स्थल पर आए। वह और उनके साथी तब तक वहीं खड़े रहे। बच्चे को पुलिस के सुपुर्द करने तथा उसकी व्यवस्था करने में रात के दो बज गए पर उनके चेहरे पर न विषाद आया न सुस्ती। वे उसी प्रकार बच्चे की उपयुक्त व्यवस्था में लगे रहे। कलकत्ता जैसे शहर में इस प्रकार की घटनाएँ उस समय भी कोई खास महत्व नहीं रखती थीं-पर उनके समक्ष कहीं कोई तड़प-तड़प कर प्राण छोड़ जाए उनसे सहन कैसे होता?

सारे काम से निवृत्त हो जाने के बाद अंगड़ाई लेकर एक गहरी साँस ली। मित्र और उसकी पत्नी की ओर देखते हुए कहा-"अब पता चला किस जादू के बल पर मेरी रचनाएँ जीवन और प्राण प्राप्त करती हैं। " मित्र और उनकी पत्नी मौन थे। वह उन्हें समझाते हुए बोले-"किसी भी रचनाकार की कृतियाँ उसकी कलम से नहीं, हृदय से ही अनुप्राणित होती हैं। रचनाएँ ही क्यों जीवन के प्रत्येक कार्य में कारुणिक संवेदनशीलता का जादू प्राण फूँक देता है। कर्ता, कार्य और परिवेश अभिभूत हुए बिना नहीं रहते।" एक नजर घड़ी पर डालते हुए कहा "आओ चलें।" तीनों एक साथ चल पड़े। कारुणिक संवेदनशीलता के यह जादूगर थे शरत चन्द्र चटर्जी। ✻

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ष्म सत्ता की सामर्थ्य और भी प्रचण्ड

महामानवों की प्रकृति परमार्थपरायण होती है। वे सदा दूसरों को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने की ही बात सोचते हैं, पर इनके प्रति लोकमानस में सदा एक भ्रान्ति बनी रहती है कि जब तक शरीर है, तब तक तो उनका प्रत्यक्ष मार्गदर्शन, सहयोग और सहकार मिलते रहेंगे, इसमें दो मत नहीं है, किन्तु उनके मृत्यूपरान्त ? उसके बाद यह क्रम किस प्रकार अक्षुण्ण बना रह सकेगा ? ऐसी शंका–कुशंका करने वालों को यह नहीं भूलना चाहिए कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं। सामान्य लोगों के लिए यह परिधान–परिवर्तन जैसी घटना हो सकती है, जिसमें पुराने वस्त्र को त्यागने और नया वस्त्र धारण करने की तरह शरीर को परिवर्तित कर लिया जाता है, किन्तु महामानव स्तर के लोग मृत्यूपरान्त भी लम्बे काल तक बिना शरीर धारण किये सूक्ष्म अवस्था में बने रह सकते हैं, ताकि लोगों की वे और अधिक सेवा–सहायता कर सकें, स्थूल जगत में भौतिक शरीर के बन्धन के कारण जो कुछ नहीं बन पड़ा, उसे सूक्ष्म और कारण जैसे अति सामर्थ्यवान शरीरों में रहते हुए पूरा कर सकें। आये दिन ऐसी घटनाएँ देखने को मिलती ही रहती हैं, जिससे यह मान्यता और भी दृढ़ हो जाती है, एवं लोगों को बाधित होकर इस पर विश्वास करना पड़ता है कि महामानवों की सेवा–सहायता वाली प्रवृत्ति सदा वैसी ही बनी रहती है, जैसी जीवनकाल के दौरान थी। उसमें राई–रत्ती भर भी कमी नहीं आती, वरन् बढ़ोत्तरी ही होती है।

घटना अमेरिका की है। कैलिफोर्निया के क्रिटीवर्थ कस्बे की महिला रोजमेरी ब्राउन अपनी आत्मकथा "इन्टू वी रियली डाई" में लिखती हैं कि तब वह सात वर्ष की थीं। एक सुबह कमरे में अकेली पढ़ रही थीं कि यकायक बिजली कौंधने जैसा प्रकाश हुआ। वह चौंक गई। तभी सामने एक अपरिचित व्यक्ति प्रकट हुआ। उसने अपना परिचय विश्व प्रसिद्ध संगीतकार फ्रेंजलिज्ज के रूप में दिया। संयोग से ब्राउन को इतना मालूम था कि फ्रेंजलिज्ज अब इस संसार में नहीं हैं। सो, उसने उस व्यक्ति से इस आशय की सहज की जिज्ञासा प्रकट की। फ्रेंजलिज्ज नामधारी व्यक्ति ने उत्तर दिया "हाँ, तुम सही कहती हो, यह मेरा सूक्ष्म शरीर है। मैं तुम्हारी संगीत के प्रति रुचि देख कर ही यहाँ आया हूँ, पर अभी तुम्हारी वह आयु नहीं कि तुम कठिन संगीत सीख सको। समय आने पर मैं फिर उपस्थित होऊँगा।" इतना कह कर वह आत्मा अन्तर्ध्यान हो गई।

श्रीमती ब्राउन लिखती हैं कि वही आत्मा १९६४ में २० वर्ष बाद पुनः प्रकट हुई, पर उस बार वह अकेली नहीं थी। विश्व प्रसिद्ध संगीतकार आत्माओं को भी साथ में लायी थी, जिनमें चोपीन, स्क्यूबर्ट स्कूमैन, बीथोवेन, बैच, मोजार्ट, ग्रीज, बर्लियोज, स्ट्रेविनस्की, रैकमेनिआफ आदि प्रमुख थे। रोजमेरी लिखती हैं कि पहले तो वह उन्हें देख कर डर गईं पर संभवतः मेरे विचार को पढ़ कर उन सभी ने आश्वासन दिया —"डरो मत। हमें तुम्हारे माध्यम से अपनी इच्छा पूरी करनी है, सो अपनी संगीत की योग्यता बढ़ाती जाओ, उसमें हम सभी तुम्हारी मदद करेंगे।"

श्रीमती ब्राउन तब दो बच्चों की माँ थी और विधवा जीवन बिता रही थी। सन् १९६४ के एक अन्य अवसर का वर्णन करते हुए लिखती हैं कि एक दोपहर को वह अपने कमरे में बैठी कुछ पढ़ रही थीं कि एक घने बालों वाले वृद्ध व्यक्ति की आकृति कमरे में प्रकट हुई एवं कमरे में रखे पियानों की ओर संकेत करने लगी। जब वह पियानों बजाने बैठी, तो अतिविशिष्ट धुनें थोड़े से प्रयास से ही निकलने लगीं। बीच–बीच में उस आकृति का मार्गदर्शन मिलता रहा। बाद में उसने अपना परिचय 'लिज्ज' नाम से दिया और कहा कि इन्हें लिपिबद्ध भी करती जाना, ताकि भूलने की गुँजायश समाप्त हो जाय।

वह आगे कहती हैं कि इसके बाद प्रायः प्रतिदिन कोई न कोई संगीतकार आ जाते और संगीत का मर्म सिखा कर चले जाते। हर संगीतज्ञ अपने प्रिय वाद्य की ही शिक्षा देते। इसकी अनुभूति का वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती हुई ब्राउन कहती हैं कि जब चोपीन संगीत शिक्षा के लिए आते, तो बड़े सज-धज कर आते। उनका स्वभाव विनोदी था और बीच-बीच में हँसी-मजाक भी किया करते। एक बार तो वे वाद्ययंत्र सहित अदृश्य हो गये, पर उसकी धुन स्पष्ट सुनाई पड़ती रही। कुछ क्षण बाद वे पुनः प्रकट हुए और वही तर्ज सिखाने लगे।

स्क्यूबर्ट के बारे में ब्राउन लिखती हैं कि वे मधुर प्रकृति के थे। सब कुछ बड़े भोलेपन से सिखाते। कभी कोई तर्ज समझ में नहीं आती, तो वे उसे बार-बार बजा कर सुनाते। लिस्टउट का स्वभाव इनसे भिन्न था। जब उन्हें ऐसा लगता कि उनका उचित सम्मान नहीं किया जा रहा है, तो वे तत्काल तिरोहित हो जाते और फिर उस दिन दुबारा लौट कर नहीं आते। रिचमेनिआफ पास बैठने की अपेक्षा खड़ा रहना अधिक पसंद करते। डेबूसे दाढ़ी रहित रूखे स्वभाव के थे। कम बोलना उनके स्वभाव का अंग था। बीथोबेन नम्र प्रकृति के परिश्रमशील व्यक्ति थे। घंटों वे साज का अभ्यास करवाते रहते।

ब्राउन लिखती हैं कि यह क्रम लगभग १५ वर्षों तक चलता रहा और जब वह संगीत के विभिन्न वाद्ययंत्रों में निष्णात् हो गईं, तो सभी ने यह कह कर बिदाई ली कि "अब तुम इस क्षेत्र में समर्थ हो गई हो। अब और किसी प्रकार के मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं है, फिर भी यदि कभी इसकी जरूरत महसूस हुई तो हम मार्गदर्शन के लिए प्रस्तुत होते रहेंगे, पर एक बात का ध्यान रखना, तुम इस क्षेत्र में कृपण कभी न बनना। जिज्ञासुओं को इसकी शिक्षा उसी प्रकार देती रहना, जैसी कि हम लोगों ने तुम्हें परिश्रमपूर्वक दी है।" इतना कह कर सभी आत्माएँ गायब हो गईं। तभी से रोजमेरी ब्राउन अनेकों को संगीत-शिक्षा देने में लगी हुई हैं।

सन् १९७१ में सर डोनाल्ड टोवे की एक संगीत कृति प्रकाशित होनी थी। इसका जिम्मा श्रीमती ब्राउन को सौंपा गया। महीनों की मेहनत से जब पाण्डुलिपि बन कर प्रेस में जाने के लिए तैयार हुई, तो एक दिन दिवंगत टोवे स्वयं प्रकट होकर ब्राउन को पाण्डुलिपि की एक गलती की ओर इशारा करने लगे। बाद में सुधार के पश्चात् ही पुस्तक छापी गई।

१७ अक्टूबर १९६८ को बी.बी. सी. ने ब्राउन के संगीत पर आधारित एक वृत्तचित्र प्रसारित किया। विश्व के तत्कालीन संगीत विशारदों ने उसे देखने-सुनने के बाद एक ही निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि यह सब ब्राउन की ही रचनाएँ हैं, इसमें शक की गुँजायश नहीं है, तथापि यह निस्संदेह एक अविश्वसनीय घटना है। 'न्यूयॉर्क मैगजिन' के संपादक एलनस्पिटज लिखते हैं कि श्रीमती ब्राउन की रचनाएँ सचमुच विश्व प्रसिद्ध संगीतकारों द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त कृतियाँ हैं, क्योंकि इनमें से एक में भी उनकी मौलिकता नजर नहीं आती। 'सटर्डे रिव्यू' पत्रिका में इरविंग कोटडिंग कहते हैं कि एक व्यक्ति द्वारा विश्व के अनेक संगीतज्ञों की शैली में गूढ़ रचनाएँ प्रस्तुत करना निश्चय ही पितर स्तर की आत्माओं द्वारा प्रशिक्षण का उत्कृष्ट नमूना है।

इसी से मिलती-जुलती घटना सेण्टलुइस की एक महिला श्रीमती करेन से संबंधित है। १९१३ में जब वह मात्र ६ वर्ष की थी, तभी उसे एक महान साहित्यकार की आत्मा का सहयोग प्राप्त हुआ था। इसी के कारण वह इस अल्पवय में भी सात उपन्यास, अनेक कहानियाँ एवं निबन्ध संग्रह लिखने में सफल हुई। तीन लाख शब्दों वाला उपन्यास "दि सारी टाल"को पढ़ कर उस समय के सभी साहित्यकार विस्मित हो गये थे कि इस अत्यल्प वय में इतना परिपक्व और शोधपूर्ण विचारों वाला ग्रन्थ कैसे संभव हो सका?

इस संबंध में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि महामानव कभी मरते नहीं और न सेवा सहायता के क्षेत्र में कृपणता का ही कलंक अपने ऊपर लगने देते हैं। पंचभौतिक शरीर का त्यागना जनसामान्य को मृत्यु जैसा प्रतीत हो सकता है, पर वास्तविकता यह है कि इस सूक्ष्म स्थिति में वे और समर्थ व सशक्त बन जाते हैं और उनकी सेवाएँ जो भौतिक शरीर के बन्धन के कारण सीमित परिधि में सीमाबद्ध थीं, वह और असीमित-अपरिमित बन जाती हैं। शान्तिकुँज की सूत्र संचालक सत्ता के बारे में भी किसी को यह असमंजस नहीं करना चाहिए कि जो कुछ अभी प्रत्यक्ष मार्गदर्शन के सहारे सहज संभव बन पड़ रहा था वह उनकी अनुपस्थिति में कैसे गतिमान रह सकेगा? ऐसा सोचने वालों को उनका वह कथन विस्मृत नहीं करना चाहिए, जिसमें उनने बुद्ध की उक्ति दुहराते हुए कहा है कि जब तक इस धरित्री के एक-एक व्यक्ति की मुक्ति नहीं हो जाती, तब तक वे स्वयं भी मुक्त होना पसंद नहीं करेंगे और अगली एक शताब्दी तक निर्बाध रूप में सूक्ष्म व कारण शरीर के रूप में चौगुने-सौगुने वेग से सक्रिय बने रहेंगे। ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए ! अग्रगामी, बलिदानी

" बलि ! महाबलि !! भारत माता बलिदान चाहती है–मस्तिष्क वाले युवकों की, पशुओं की नहीं ।" सन्नाटे को चीरकर उनकी वाणी उपस्थित शिष्य समुदाय के दिलों को बेधती हुई वायुमण्डल में गूँज उठी । वह कह रहे थे क्या तुम्हें इस देश की धरती से प्यार है ? सदियों के अत्याचार के फलस्वरूप पीड़ा, दुःख, हीनता, दारिद्र्य की जो आहें भारत गगन में गूँज रही हैं क्या इनसे तुम्हारा अन्तःकरण विकल हुआ है ? यदि हाँ तो आओ अपने समस्त जीवन की बलि दो –उन दीन हीनों उत्पीड़ितों के लिए जिनके लिए भगवान स्वयं युग–युग में दौड़े चले आते हैं । आओ ! आगे बढ़ो आज के इस महायज्ञ को पूरा करने । पीछे मुड़कर मत देखो । मत परवाह करो यदि सब कुछ छूट रहा है ।

सुनकर जैसे सभी को साँप सूँघ गया । सारी खुसुर–पुसुर शान्त हो उठी । श्मशान का सन्नाटा छा गया । कौन बोले ? क्या बोले ? बोलने का काम भी क्या रहा ? आज तो करने की वेला है, करने की, कौन आगे आए ?

आज प्रातः से ही वे अपने गुरु के आव्हान पर इकट्ठे हुए थे । उनमें से प्रत्येक जानता था कि उन्हें कुछ करना है देश के लिए समाज के लिए । गुरु के प्रति प्रत्येक की श्रद्धा थी, उनकी वाणी सभी के विश्वासों का प्रतीक थी । किन्तु इस क्षण श्रद्धा चरमरा उठी विश्वास डांवाडोल हो उठा । बात ही कुछ ऐसी थी-प्राणों का मोह आ पड़ा था । उठा नहीं जाता । हाथ और पाँव जैसे हथकड़ी बेड़ियों से जकड़ गए हों । कण्ठ सूख रहा था, जीभ तालु से चिपक गई ।

गुरु वीर वेश में थे मानो साक्षात महारुद्र मानव का जामा पहन कर आ खड़े हुए हों । उनकी धधकती आँखें ज्वालाएँ फेंक रही थीं । एक तेज दृष्टि सभी पर घूमी । यही हैं वे जो शास्त्रों के मर्म को जानने का दावा करते हैं । न जाने इन्होंने कितनी बार जीवन की अनित्यता संसार की नश्वरता पर प्रवचन दिए होंगे । लच्छेदार बातें वक्ता होने का अभिमान प्रवचन ! प्रवचन !! प्रवचन !!! धिक्कार है ऐसे प्रवचनों पर । वह फिर मुखरित हो उठे । हाथ में थमी शमशीर हिल उठी "धिक्कार, सौ बार धिक्कार है तुम पर । तुमने सारा जीवन सिर्फ बेकार की बातें करना सीखा है । व्यर्थ बकवाद करने वालो तुम लोग क्या हो ? संघर्ष की घड़ी में पलायनवादी बने खड़े हो ।" उनकी वाणी में दर्द छलछला उठा ।"तो क्या कोई भी नहीं ? कोई भी नहीं जो भारत की मिट्टी माथे पर लगा कर कहने का साहस जुटा सके–मेरा सर्वस्व माँ ! तुझ पर न्योछावर है । " नजरें एक बार फिर घूमीं । अबकी बार एक तरुण भीड़ में से कदम बढ़ाता हुआ निकला । उनके सामने आ मस्तक झुकाकर बोला "शीश हाजिर है गुरुदेव ।"

"ठीक से सोच ले फिर दुःखी मत होना ।" "दुःखी ! दुःख तो इस बात पर है कि इतनी देर सोचता रहा । ऐसी विषम घड़ी में भी सोच विचार करना आगा पीछा ताकना धिक्कार है मुझ पर ।" उसकी बड़ी–बड़ी आखों में आँसू तैर रहे थे । "ठीक है ।" वाणी में कठोरता थी पर दिल बलिदान के लिए तत्पर युवक के प्रति प्यार से उमग रहा था । उसकी कलाई पकड़ वह पास में बनी झोंपड़ी में आगए । अगले ही पल सबने उन्हें वापस लौटते देखा । हाथो में रक्त रंजित कृपाण थी । वाणी फिर गूँजी कोई और ....।

एक ! दो !! तीन !!! चार !!!! नवयुवक एक क्षण में सन्न खड़ी उस भीड़ में से निकल कर उनके सामने आ खड़े हुए । प्रत्येक के साथ वह झोंपड़ी में गए एवं रक्त से भीगी कृपाण लेकर लौटे ।

कुछ ही क्षणों बाद आश्चर्य ! महाआश्चर्य !! यह क्या ? गुरुदेव तो साक्षात उन पाँचों के साथ आ रहे हैं । तो क्या यह मरे नहीं थे ? तब क्या वह मरण नहीं था । फिर ? अब तो सभी कह उठे "हम भी हाजिर हैं ? हमें भी बलिदान करना है ।"

एक हँसी गूँज उठी । वह मुसकराते हुए कह रहे थे " अवसर चूकने पर पछताना ही शेष रह जाता है । " अवसर पहचानने वाले ये दयाराम, धर्मदास मोहकमचन्द हिम्मत राय, तथा साहबचन्द मेरे प्यारे हैं इतिहास इन्हें पंच प्यारों के नाम से जानेगा । गुरु के प्यारे कह इनकी चरण रज को लोक श्रद्धा से माथे पर धारण करेगा । यदि सीख सको तो सीखो । अपनी आलसी, कर्महीन , कटुभाषी , ईर्ष्यापरायण, डरपोक तथा विवादप्रिय प्रकृति को छोड़कर निष्ठा परायण बनो । गुरु के वचनों का यथावत् पालन करना सीखो मेरे बच्चे । सिक्खों के दशम गुरु गोबिन्द सिंह की वाणी करुणा और वात्सल्य से विगलित हो उठी । अब अवसर को खोना मत । कह कर वह मौन हो गए ।

अवसर पुनः आ खड़ा हुआ है । पंच प्यारों की तलाश जारी है । नरमेघ यज्ञ होना है । देखना यह है कि कौन आगे आता है ? ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामूहिक चेतना का विकास अनिवार्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज में सुख-शान्ति का वातावरण होने पर ही वैयक्तिक सुखशान्ति अक्षुण्ण रह सकती है अपने को अपने तक सीमित रखने की प्रवृत्ति जहाँ भी, जिस भी समाज में पनप रही होगी, वहाँ व्यक्ति पारस्परिक स्नेह, सद्भाव की सहानुभूति को खो रहा होगा और उसके कारण उन सभी लाभों से वंचित रहेगा , जो सामाजिक जीवन में पारस्परिक सहयोग सहकार पर टिके हुए हैं । एक दूसरे की संकट में सहायता करना, अन्याय के विरुद्ध लड़ना, लोकहित के कामों में हिस्सा बँटाना, उदारता भरा संयमी जीवन जीना आदि यों तत्काल तो घाटे का सौदा प्रतीत हो सकते हैं, पर बदले में अनेकों की श्रद्धा, मित्रता एवं सहायता के जो हाथ बढ़ते हैं, उसे देखते हुए यही कहा जा सकता है कि जो गँवाया जाता है, उससे अनेक गुना वापस लौटता है । महामानवों को प्रगति के उच्चशिखर तक पहुँचने का अवसर इसी आधार पर मिलता है । स्वार्थियों के लिए यह द्वार सदा बन्द ही रहते हैं ।

सुप्रसिद्ध समाज शास्त्री आर. डेवी ने अपनी कृति "डेवलपमेण्ट ऑफ ह्यूमन बिहेवियर " में कहा है कि जब व्यक्ति सामाजिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगता है और अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करता है, तब उसकी सामाजिक अभिरुचियों का समुचित विकास होता है । उसमें सामाजिक भावना पैदा होती है, वह अपने साथियों के प्रति सहानुभूति रखता है और उसकी परमार्थ चेतना जाग्रत हो जाती है । व्यक्ति में सामाजिक अभिरुचि जन्मजात होती है । जिस प्रकार व्यक्ति श्रेष्ठता एवं पूर्णता प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है, उसी प्रकार वह अपनी जीवन शैली को विकसित करने के लिए अपनी प्रसुप्त अभिरुचियाँ जाग्रत करता है । सामाजिक अभिरुचियों को जाग्रत एवं सक्रिय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति सामाजिक जीवन में भाग ले और यथाशक्ति उन कार्यों में लगा रहे, जिनसे लोकहित सधता हो । इस तरह के गुणों के बीज वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में प्रसुप्त रूप में सन्निहित होते हैं और प्रयास करने पर अथवा अनुकूल वातावरण पाकर वे प्रस्फुटित हो उठते हैं ।

डेवी ने सामाजिक चेतना के विकास को ही आत्म विस्तार कहा है । उनके अनुसार 'सुपर व्यक्तित्व'के प्रेरणा केन्द्र सामूहिक चेतना के पूर्ण विकसित स्वरूप को ही 'सोशल सेन्स' अर्थात् सामाजिक वृत्ति कहते हैं । जिस भी समाज में यह वृत्ति जितनी अधिक विकसित होगी, वहाँ के व्यक्ति उतने ही श्रेष्ठ एवं महानता से युक्त होंगे । अनेकानेक मानवी समस्याओं को सुलझाने एवं मनुष्य को देवोपम बनाने के लिए इस 'सोशल सेन्स' का होना परमावश्यक है । उत्कृष्ट व्यक्तित्व उसे ही कहा जाता है, जिसमें सम्पूर्ण निहित शक्तियों का सर्वांगीण विकास हो चुका हो । स्पष्ट है कि इन शक्तियों के विकास में मानव की शक्ति, लालसा एवं सामूहिक चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति आवश्यक है । दोनों के सामंजस्य से बना हुआ व्यक्तित्व ही श्रेष्ठ कहा जाता है ।

सामूहिक चेतना के विकास का एक अर्थ विस्तार भी है । नैतिक क्षेत्र में यही व्याख्या अधिक उपयुक्त पड़ती है । सीमित 'स्व' ही वस्तुतः तुच्छ है और विकसित वर्ग में हेय समझा जाता है । बौने अपनी बिरादरी में भले ही बढ़ चढ़ कर बातें करें पर लम्बे तगड़े पहलवानों के आगे उनकी घिघ्घी बँधने लगती और उपहास के भाजन बनते हैं । जीवनक्रम में क्षुद्रता वह है, जिसमें व्यक्ति अपने निजी लाभ की ही बात सोचता है और स्वार्थपरता की दुनिया में ही खोया रहता है । विकसित व्यक्तित्वों का 'स्व' अन्य जनों को भी अपनी परिधि में लपेट लेता है और अपने सुख-दुःख की तरह दूसरों की प्रगति अवगति में भी प्रसन्नता-खिन्नता की अनुभूति करने लगता है । ऐसा व्यक्ति समूह को समाज को अपना ही अंग अवयव मानकर उनका पिछड़ापन दूर करने के लिए भी वैसा ही प्रयास करता है, जैसा कि अपनी दरिद्रता , रुग्णता अथवा कठिनाई के निवारण में किया जाता है ।

यह सामूहिक चेतना ही आगे बढ़ते-बढ़ते विश्व परिवार के रूप में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में विकसित होती है और सबको अपना-अपने को सब का मानने लगती है । जहाँ भी यह प्रवृत्ति पनप रही होगी, वहाँ सहज ही ऐसे सद्गुणों , ऐसे सत्प्रयोजनों-सत्प्रयासों का बाहुल्य पाया जायगा, जो मनुष्य को सच्चे अर्थों में विकासवान प्रगतिवान बनाते हैं । आज मानव समुदाय को इसी सामूहिक चेतना की अनिवार्य आवश्यकता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहिरंग की भटकन व्यर्थ है

वे प्रातः कालीन भ्रमण के लिए निकले थे। पूर्व दिशा में प्रकाश की पहली रश्मि अपना स्वर्णांचल फैलाए प्रातः कालीन पवन से अठखेलियाँ कर रही थी। तारे पीले पड़कर एक के बाद एक अपना अस्तित्व मिटाते जा रहे थे। इनमें से एक अमेरिका का ही मूल निवासी था, दूसरा भारतीय। एक के लिए ईश्वर का अस्तित्व उपहास की वस्तु था, दूसरा उसे जीवन की धुरी मानता था। पहला प्रकृति को सर्वांगपूर्ण मानता था, दूसरा उसकी पूर्णता ईश्वर में देखता था।

"स्वामी जी प्रकृति के इस सुन्दर रूप को तो देखो। यहाँ कितना उल्लास है, कितनी शान्ति है, कितना सौन्दर्य है। इसका उपभोग न करके परमसत्ता की खोज के फेर में पड़ना, तप-त्याग में समय गँवाना दिमागी फितूर ही कहा जायगा।" वाणी में तनिक व्यंग था।

वह मुसकराते हुए उसके बगल में खड़े हो गए। उन्होंने एक बार अपने चारों ओर देखा- "मित्र! मुझे तो प्रकृति में कोई सुन्दरता नहीं दिखलाई देती।"

"प्रकृति में आपको कोई सुन्दरता नहीं दिखाई देती।" उसने आश्चर्यचकित नेत्रों से उनकी ओर देखा- "आप सत्य कह रहे हैं या हँसी कर रहे हैं।

"हँसी नहीं कह रहा हूँ भाई! मैं सत्य कह रहा हूँ।" "आप कह रहे हैं कि प्रकृति सौन्दर्य का स्रोत है, जबकि मुझे उल्लास, शान्ति स्वयं के अन्तराल से निकलते अनुभव होते हैं। यदि ऐसा न हो तो यह सर्वथा कुरूप दिखाई देगी।"

उसका मन इसे मानने को तैयार न हुआ- "आप देखें, इस हरी दूब को कितनी सुन्दर है। मेरी तो इच्छा होती है कि मैं यहीं पर रहूँ, यहीं पर बैठूँ और यहीं विश्राम करूँ।"

वह हल्के से हँस पड़े- "नहीं यह न करना। यहाँ पास में कोई चिकित्सक भी नहीं, जिससे उपचार कराया जा सके। आप कहते हैं कि दूब कोमल है, सुन्दर है, केवल इसलिए कि आपने खुले में जीवन नहीं व्यतीत किया। इसमें कितने कीड़े-मकोड़े हैं, इस पर भी कभी ध्यान दिया है? और इसकी नमी, इस पर अधिक देर विश्राम करने से निश्चय ही शीत हो जाएगा। प्रकृति अपूर्ण है, यह तो ईश्वर प्रदत्त विवेक का करतब है जिसके बल पर मनुष्य ने इसे उपयोगी बनाया है।"

उसने नयी बात सुनी, पर बात बड़े आश्चर्यजनक ढंग से कही गई थी। तर्क सुन्दर थे। उसे अपनी मान्यता का भवन खण्डहर होता लगा। वह कह उठा- प्रकृति अपूर्ण है, पर........।

"हाँ प्रकृति अपूर्ण है। इसकी पूर्णता ईश्वर से ब्राह्मीचेतना से मिलकर होती है। यह तो सिर्फ दर्पण है, व्यक्ति की मानसिक दशा का। बदलते मन के अनुसार इसके रूप भी बदलते हैं। जाड़े के दिनों में इन सुन्दर स्थानों की कुरूपता तो देखो, जहाँ कुहरा छाया रहता है, जब इतनी शीतल वायु चलती है कि शरीर काँपने लगता है। गरमी के दिनों में दोपहर के समय इतनी कड़ी लू चलती है कि शरीर झुलस जाता है। यह तो प्रतिभा के रूप में मिले ईश्वरीय अनुदान के बल पर ही मनुष्य ने इसे अपने लिए नियोजित कर लिया। अपनी रक्षा हेतु आवास आच्छादन जुटा लिए।"

आज उसे अपना प्रकृतिवाद का सिद्धांत अधूरा लगने लगा। वह एक क्षण के लिए मौन होकर सोचने लगा- तो क्या सचमुच सौन्दर्य का स्रोत अन्दर है। पर सामने खिले पुष्प, उठ रही मादक गन्ध, पक्षियों का कलरव गायन, तो क्या यह सब.....नहीं। वह बोल पड़ा- इन पुष्पों और पक्षियों के बारे में आप क्या कहते हैं?

"ये पुष्प कोमल हैं? ठीक हैं, पर इनमें काँटे भी हैं। न जाने कितने छोटे-छोटे भुनगे इन फूलों के अन्दर घुसे हुए हैं। रही इनकी कोमलता तथा इनकी सुगन्ध, ये क्षणिक हैं। फिर इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुगन्ध किस काम की ? एकान्त में ये अपना सौरभ व्यर्थ गँवा देते हैं और इस कलरव गायन में माधुर्य हो सकता है, केवल स्वरों का । यह कलरव गायन, भाषा के संयत न होने के कारण, उस भावहीन संगीत की भाँति है, जिसमें स्वरों का उतार-चढ़ाव नही है ।"

"तब फिर.....तब.......फिर ।" उसे समझ में नहीं आया कि वह क्या कहे, जैसे इस हिन्दू सन्यासी के सामने उसकी तर्क शक्ति कुण्ठित हो गई ।

यही कि प्रकृति अपूर्ण है मात्र प्रत्यक्ष है । इसमें पूर्णता की खोज बालू में तेल निकालने की तरह है । यही क्यों इन्द्रिय जनित भोग सिर्फ अतृप्ति की एक अबुझ आग भड़काते हैं और दूर ले जाते हैं उस लक्ष्य से जो मनुष्य का गन्तव्य है ।

अतृप्ति की न बुझने वाली आग, मनुष्य का गन्तव्य, आस्तिकता ये शब्द उसके मन में विद्युत रेखाओं की भाँति कौंधने लगे । उसने अभी तक न जाने कितने व्याख्यान दिए थे । सुन्दर शब्दों के मोहक जाल में अब तक न जाने कितनों को बाँधा था । रंगीन सपनों की यह दुनिया सच है, यह प्रत्यक्षवाद ही सब कुछ है, जो भी कुछ दृश्यमान है, उपभोग हेतु है । यह सच है अथवा वह, जिसका इशारा सन्यासी कर रहा है । यह और वह की ऊहापोह से अपने विचारों की नींव हिलती नजर आने लगी ।

"क्या सोचने लगे मि. रॉबर्ट..?" "यही अतृप्ति की इस न बुझने वाली आग को बुझाने का क्या उपाय है ?"

साधनों को साध्य के रूप में प्रयुक्त करना न कि साधनों को ही साध्य समझ बैठना । "साध्य आप किसे कहते हैं ।" "अन्तर शक्तियों का विकास, सभी से आत्मीयता भरे एकत्व का अनुभव और आस्तिकता ।" "विवेकयुक्त जीवन शैली अपना कर चेतना के उच्चतर सोपानों की ओर गति, पाशविकता को त्याग कर देवत्व की ओर अग्रगमन ।"

वह सुन रहे थे, सोच रहे थे, अन्दर ही अन्दर विश्लेषण की प्रक्रिया जारी थी । तीन प्रश्नों के जवाब में समूचा अध्यात्म सिमट आया था । भोग मनुष्य को क्षणिक सुख देकर एक स्थाई अतृप्ति की ज्वाला भड़का कर चले जाते हैं और प्रकृति-निरन्तर बदलते उसके रूप, रंग द्वारा मात्र इन्द्रिय तृप्ति भर दे पाती है,क्षणिक सुख का आभास मात्र । अविवेकी मनुष्य संभवतः इनके बीच अपने अस्तित्व को भी नहीं बचा पाता । चिन्तन गहरा चल रहा था । उसके सिमट कर विन्दु रूप हो जाने से माथे की नसें उभर उठीं । पूछ ही बैठे- "तो स्वामी जी ! लोग सुख-आनन्द की तलाश में बाहर क्यों भटकते हैं । पर्यटन के नाम पर, परिवर्तन के नाम पर व्यक्ति प्रकृति की गोद में जाता है तो क्या मात्र क्षणिक मनोरंजन, इन्द्रिय तृप्ति भर ही करके रह जाता है । यदि ऐसा है तो सौन्दर्य, उल्लास का स्थायी स्रोत क्या है ?

"सौन्दर्य, उल्लास, सृजन शक्ति का भण्डार बन्धु भीतर भरा पड़ा है । उसी तरह जिस तरह कस्तूरी मृग की नाभि में विराजमान सुगंधि । बाह्य साधनों से तो मात्र उसकी सुव्यवस्था, सुसज्जा ही संभव है । आनन्द का निर्झर तो आत्मचेतना की गहराइयों से ही फूटता है और इसके लिए मनुष्य को चाहिए कि वह अन्तर्मुखी बने, विवेकयुक्त जीवन शैली का अभ्यास करे ।

> *बायजिद स्वाध्याय में दत्तचित्त थे कि किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी, वहीं से उन्होंने पूछा "अरे भाई ! किसे खोज रहे हो ?"*
>
> *आगन्तुक ने विनम्र वाणी में उत्तर दिया ,बायजिद को मिलना चाहता हूँ ।"*
>
> *"बायजिद ने द्वार खोलते हुए कहा- हाँ भाई मैं भी तो पिछले पच्चीस वर्षों से बायजिद को ही तलाश रहा हूँ पर वह अभी तक मिला नहीं ।"*
>
> *आगन्तुक ने अनुभव किया, "आत्मा को पा लेना ही सर्वोपरि खोज है।"*

"यही न ।" सुनने वाला तुरन्त बोल उठा ।

स्वामी जी- "हाँ यही," कहकर मुसकरा उठे । समाधान जो मिल चुका था । किसी एक के लिए नहीं अखिल मानव जाति के लिए एक नया सूत्र जो मंथन से प्राप्त हुआ था । समाधान देने वाले सज्जन थे- रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी अभेदानन्द, जिनने वेदान्त को नये आयाम दिये तथा सुनने वाले सज्जन थे- राबर्ट इंगरसोल ।

स्वामी जी की ये स्वानुभूत व्याख्याएँ हमारे निज के जीवन में साकार हो उठें तो व्यर्थ का भटकाव बन्द हो तथा अंतस् सदैव आनन्द ही आनन्द से भरा दीख पड़े । *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणशक्ति से अनुप्राणित होने की विधा

साधारण श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया से उत्पन्न ऊर्जा से मनुष्य की सामान्य जीवनचर्या चलती रहती है। शारीरिक अंग-अवयवों के अपने-अपने प्रयोजन सम्पन्न होते रहते हैं, किन्तु अधिक सशक्तता प्राप्त करने के लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। बड़ा कारखाना चलाने के लिए बड़ी मशीनें बना सकने वाली बड़ी मोटर फिट करनी पड़ती हैं। छोटी मोटरें तो छोटी मशीन ही चला पाती हैं।

महत्वपूर्ण शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक कार्य करने के लिए जिस उच्चस्तरीय ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है, वह खाने-पीने या आग तपाने जैसे प्रयत्नों से नहीं, वरन् वहाँ से प्राप्त करनी होती है जहाँ चेतना और पदार्थ दोनों को प्रभावित करने वाली क्षमता का उद्गम है। यह उद्गम ब्रह्माण्डव्यापी 'प्राण' है। प्राण ही वह तत्व है जो अन्तरिक्ष में जीवन और पदार्थ दोनों की संयुक्त शक्ति के रूप में प्रवाहित रहता है। प्राणायाम प्रक्रिया द्वारा उसी महाप्राण के लहलहाते महासमुद्र में से अभीष्ट परिमाण में प्राणतत्व को आकर्षित करने और अपने में धारण कर महत्चेतना से परिपूर्ण बनने की प्रक्रिया अपनाई जाती है।

विविध प्रयोजनों के लिए प्राण प्रक्रिया के अनेकों भेद-उपभेद किये गये हैं। सम्बद्ध अनेकों प्रकार के प्राणायामों का वर्णन योग ग्रन्थों में आता है। विविध प्रयोगों के लिए विभिन्न प्रकार के प्राणायामों का अवलम्बन लिया जाता है, किन्तु ध्यान मिश्रित प्राणयोग दिव्य प्राण चेतना के सम्वर्धन की एक ऐसी सरल किन्तु बहुआयामी सशक्त विधा है जो जोखिम रहित भी है और सर्व साधारण के लिए उपयोगी भी। इस प्राणाकर्षण प्राणायाम के नियमित अभ्यास से आन्तरिक प्राण सम्पदा क्रमशः बढ़ती जाती है और उससे भौतिक सफलताओं एवं आत्मिक विभूतियों का अवरुद्ध मार्ग खुलता है। जीवात्मा का क्षुद्र प्राण ब्रह्म चेतना के महाप्राण से जुड़कर उसी के समतुल्य बन जाता है।

इस प्राणायाम को चित्त लेटकर शिथिलीकरण मुद्रा में आरंभ करना होता है। शिथिलीकरण मुद्रा का तात्पर्य है- शरीर के प्रत्येक अवयव को इतना ढीला कर देना जितना वह नींद आ जाने पर होता है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि किसी अंग पर तनाव न आने पाये। सभी अवयव इस स्थिति में हों मानो इनमें से जान निकल गई हो। मन को भी अर्ध निद्रित स्थिति में ले जाना चाहिए। गहरी नींद तो अपने समय पर ही आती है, किन्तु खुमारी जैसी स्थिति प्रयत्नपूर्वक भी क्या आ सकती है, इस स्थिति को योगनिद्रा कहते हैं। विचारों की भागदौड़ एकदम समाप्त कर दी जाती है। नशे की गहरी खुमारी जैसा अनुभव करना पड़ता है। शरीर और मन को पूरी तरह शिथिल करने में प्रायः पाँच मिनट का समय लग जाता है। इसमें स्व सम्मोहन जैसा प्रयोग करना होता है। अपने ही संकल्प बल से अपने को तंद्रा स्थिति तक पहुँचाया जा सकता है। यह समाधि का आरंभिक अभ्यास है। मनोबल अधिक सुदृढ़ होने पर इसी आधार पर गहरी और लम्बी समाधि भी लग सकती है।

यह कहने को तो प्राणाकर्षण प्राणायाम है, पर वस्तुतः इसे "ध्यान योग" कहना चाहिए। इसमें एक नथुना बंद करने दूसरा खोलने जैसा झंझट नहीं है और न श्वास को उलट-पुलट, रेचक, कुंभक, पूरक की क्रिया करनी पड़ती है।

इस प्रक्रिया में शरीर को शिथिल करते ही यह ध्यान करना पड़ता है कि अपने चारों ओर प्राण तत्व का सागर लहलहा रहा है। अपना शरीर उसके बीच इसी प्रकार रह रहा है, जैसे जलाशय में मछली रहती है। प्राण मात्र हवा नहीं है। उसमें मिला हुआ ऑक्सीजन भी नहीं, वरन् एक चेतन तत्व है, जिसमें, जीवट, साहस, पौरुष, पराक्रम, प्रतिभा, प्रखरता, संकल्प आदि चेतन पक्ष को प्रभावित एवं उत्तेजित करने वाले गुण प्रचुर परिमाण में भरे हुए हैं। सर्वव्यापी उस प्राण चेतना में प्रकाश की चमक और ऊर्जा भी घुली हुई है। यह प्राण ही जीवन है। उसी के कारण जीवन को सुसंचालित रख सकने वाली प्राण ऊर्जा मिलती है।

शिथिलता के उपरान्त अपने सब ओर वायु की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह प्राण भरा होने की भावना प्रगाढ़ करनी पड़ती है। तत्पश्चात् प्रयोग आरंभ होता है। दोनों नथुनों से धीरे-धीरे सांस खींची जाती है और भावना की जाती है कि उसमें वायु के साथ प्राण भी बड़ी मात्रा में शरीर एवं मस्तिष्क के भीतर भर रहा है। श्वास धीमी गति से लेनी चाहिए। जब फेंफड़े और पेट हवा से पूरी तरह भर जाएँ तो इस प्रथम चरण को रोक देना चाहिए। सांस खींचते समय यह धारणा बलवती होनी चाहिए कि शरीर में प्राण ने प्रवेश किया और उसके कण-कण को जीवट से भर दिया।

सांस रोकने की - भीतर ही भरे रहने की क्रिया इस उपक्रम का दूसरा चरण है। इसे साधारणतया कुंभक कहा जाता है। थोड़ी देर इस स्थिति में रह कर भावना करनी चाहिए कि शरीर का प्रत्येक कण उस ऊर्जा को सोख रहा है। जिस प्रकार मिट्टी के ढेले पर पानी डालते हैं तो मिट्टी पानी को सोख लेती है, ठीक उसी स्तर का अनुभव करना चाहिए कि जो ग्रहण किया गया था उसे अवशोषित भी कर लिया गया और काया में अभिनव चेतना का संचार हो चला।

इसके उपरान्त सांस को धीरे-धीरे दोनों नासिका छिद्रों से बाहर निकालना चाहिए और भावना यह करनी चाहिए कि प्राण के प्रवेश से पूर्व शरीर में जो दुर्बलता, रुग्णता थी, मन में जो कुछ कुविचार, कुसंस्कार भरे हुए थे, उन्हें निष्कासित होना पड़ रहा है। उदाहरणार्थ - किसी गिलास में पानी भरा हो और उसमें मिट्टी भरनी शुरु कर दी जाय, तो स्वभावतः पहले का भरा पानी बाहर निकल कर फैलने लगेगा। यही स्थिति अपनी भी अनुभव करनी चाहिए कि शरीर में जो प्राण तत्व भरा गया है, उसने पूर्व संचित रोग, शोक, एवं कषाय कल्मषों को निकाल बाहर कर दिया है।

इस प्रकार पूरी सांस धीरे-धीरे बाहर निकाल देनी चाहिए और अशुभ के निष्कासन की ध्यान धारणा परिपक्व प्रखर करनी चाहिए। इसके बाद कुछ देर बिना हवा के रहना चाहिए। सांस रोक लेनी चाहिए और भावना करनी चाहिए कि निष्कासित दोष-दुर्गुणों को वापस न लौटने देने के लिए कपाट बन्द कर दिये गये हैं। इस अवधि में धारणा यही रहनी चाहिए कि अन्तराल का हर कोना न केवल निर्दोष कलुष रहित हो गया है, वरन् उसमें सर्वत्र दिव्य चेतना का संचार हो रहा है।

ध्यानयोग परक यह एक प्राणाकर्षण प्राणायाम हुआ। इसकी आरंभ में पाँच बार पुनरावृत्ति करनी चाहिए और फिर एक सप्ताह बाद एक की संख्या बढ़ाते चलना चाहिए। दस पर जाकर रुक जाना चाहिए और देखना चाहिए कि आकर्षित किये हुए प्राण की और अधिक मात्रा ग्रहण करने की गुंजाइश है या नहीं।

प्राण धारणा से शरीर में ऊष्मा एवं उत्तेजना बढ़ने लगती है। आलस्य-प्रमाद छूटता है और आनन्द-उत्साह की अनुभूति होने लगती है। दर्पण में मुँह देखने पर चेहरा चमकता हुआ प्रतीत होता है। आँखों में आनन्द और होंठों पर प्रसन्नता दौड़ती है। साथ ही मस्तिष्क पर छाई हुई उदासी दूर होती है और काम करने का उत्साह उभरता है। तनाव से छुटकारा पाने में इससे बढ़िया और कोई दूसरा उपाय नहीं।

अति सर्वत्र वर्जित है। अधिक मात्रा में खाया हुआ पौष्टिक भोजन भी अपच उत्पन्न करता है। अति की ठण्ड और अति की गर्मी भी बुरा असर डालती है। ठीक इसी प्रकार प्राण की अधिक मात्रा भी उपरोक्त प्राणाकर्षण प्राणायाम के माध्यम से उतनी ही मात्रा में ग्रहण और धारण करनी चाहिए जो अनावश्यक ऊष्मा या उत्तेजना न पैदा करने लगे।

सर्दी के दिनों में यह प्राणाकर्षण प्राणायाम धूप में अरुणोदय काल में किया जा सकता है, किन्तु कपड़े भारी और मोटे किसी भी ऋतु में नहीं पहनने चाहिए, क्योंकि प्राण का प्रवेश मात्र नासिका द्वारा ही नहीं रोम-कूपों तथा अन्यान्य छिद्रों द्वारा भी होता है। उसी मार्ग से दूषित तत्व भी निकलते हैं। इसलिए मोटे कपड़े पहनने या बन्द घर में क्रिया करने की अपेक्षा खुले वातावरण में इसे करना और लज्जा ढकने लायक हलके वस्त्र ही शरीर पर रहने देना चाहिए। गर्मी के दिनों में इसके लिए सर्वोत्तम समय प्रातःकाल का ब्रह्ममुहूर्त है। उस समय अन्तरिक्ष में प्राण तत्व का प्रवाह अत्यन्त तीव्र होता है तथा विशिष्ट प्रकार की चैतन्य धाराएँ सूक्ष्म केन्द्र से समूचे ब्रह्माण्ड में प्रवाहित होती हैं। अतः प्राण योग के लिए सबसे श्रेष्ठ समय यही है।

इच्छा, भावना एवं संकल्प का पुट जुड़ने से ही क्रियाएँ प्राणवान बनती तथा अभीष्ट परिणाम प्रस्तुत करती हैं। ध्यान प्राण योग की - प्राणाकर्षण प्राणायाम की सफलता भी इन्हीं की दृढ़ता के ऊपर निर्भर करती है। इस विशिष्ट साधना प्रक्रिया को अपनाकर हर कोई ओजस्, तेजस्, वर्चस् सम्पन्न बन सकता है। ✵

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत्स्यावतार की पुनरावृत्ति

अरे ! यह क्या ? वह हतप्रभ हो देख रहे थे । प्रत्येक पल के साथ उनका आश्चर्य द्विगुणित होता जा रहा था । न उसका विस्तार थम रहा था और न गुणित अनुपात में होने वाली उनके आश्चर्य की बढ़ोत्तरी । यों चेतना का लक्षण ही है विस्तार, सामान्य क्रम में इसे आश्चर्यजनक कैसे कहा जाय ? पर जिस क्षण यह विस्तार समय के बाड़े को तोड़ दे, जब देश और काल दोनों मिलकर उसकी सीमा रेखा खींच पाने में खुद को असमर्थ पाने लगें...तब......।

वह आज प्रातः नित्य नियम के अनुसार सरिता के तट पर गए थे । उस समय पक्षियों का कलरव गूँजने लगा था जैसे भगवान आदित्य के साथ जाग कर वे भी उनका साहचर्य निभाने लगे हों । आश्रम में अन्तेवासी अपनी दिनचर्या आरम्भ कर रहे थे और वह ध्यान से निवृत हो सन्ध्योपासना के लिए बैठे थे ।

आवश्यक उपचार पूरे कर उन्होंने गायत्री जप आरंभ किया । प्रातः काल के उदित रवि की भाँति अपनी अन्तरात्मा में विम्बात्मा की जलती ज्योति का ध्यान किया और उस ज्योति में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के समस्त कषाय-कल्मषों को जलते हुए देखा । गायत्री जप पूरा होते ही वह उठ खड़े हुए थे- सूर्य भगवान को अर्घ्य देने के लिए ।

कटि प्रदेश तक स्पर्श कर सके, इतने गहरे पानी में प्रवेश किया और दोनों हाथों की अंजलि में पानी भर कर पूर्व दिशा में उसे छोड़ा- मंत्र पाठ करते हुए ।

एक बार.....दो बार.....तीन बार इसी क्रिया को दोहराया । पर अन्तिम बार उन्होंने अपनी हथेली पर कोई जन्तु रेंगता हुआ अनुभव किया ।

उनने शान्त चित्त से अर्घ्य दान की क्रिया सम्पन्न की । इसके पश्चात् अंजलि को ध्यान से देखा । यह नन्हा, दुबला मीन-शिशु था, कुछ तपे सोने जैसे रंग का । अंजलि के पानी में उसकी चंचल गति सूर्य रश्मियों के साथ मिलकर उसे सौन्दर्य पुंज बना रही थी । बेचारा...उन्हें दया आयी । इन भावों के साथ उसे अपने कमण्डलु में स्थान दे दिया ।

इसी के साथ शुरू हुआ उसके विस्तार का अद्भुत क्रम- कमण्डलु से कुण्ड, कुण्ड से सरोवर और अब तो उसे सागर में छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ रहा था । प्रारंभ से वर्तमान क्षण तक की सारी घटनाएँ एक-एक करके मन के चित्र-पट पर उभर रही थीं । वह एकटक देख रहे थे । मन सोचने में अक्षम हो रहा था । मीन शिशु से मत्स्य, मत्स्य से महामत्स्य ...नहीं....नहीं...यह मत्स्य नहीं हो सकता, फिर है कौन यह ? जो संसार भर का क्षेत्र घेरता जा रहा है ।

वह इसी ऊहापोह से गुजर रहे थे कि एक वाणी गूँजी, जिसने बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, परा के अनेक रूप धारण कर उनके समूचे अन्तःकरण को सराबोर कर दिया, जीवन क्रम में हलचल मचा दी । वाणी अभी भी स्पष्ट थी- "मैं जीवधारी दीखता भर हूँ, वस्तुतः युगान्तरीय चेतना हूँ । इस अनगढ़ संसार को जब भी सुव्यवस्थित करना होता है, तो उस सुविस्तृत कार्य को सम्पन्न करने के लिए अपनी सत्ता को नियोजित करता हूँ । आज वही समय है, ठीक वही । कार्य की सम्पूर्णता के लिए मुझे मानव सहचर चाहिए, तुम आगे आ सकोगे ?

"सहायता नहीं साहचर्य चाहिए ।" उसी वाणी ने शंका का शमन किया । "युगान्तर कारी कार्य तो विराट चेतना करेगी पर उसकी अभिव्यक्ति के लिए मानव यंत्र चाहिए । आदर्शों, नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठापना के श्रेयधारक न केवल वे स्वयं बनेंगे, बल्कि अनेकों का पथ प्रशस्त कर सकेंगे । मनुष्य की भावी सन्तति युगों तक उनका यशोगान करेगी ।"

अब कहीं कुछ कहना बाकी रह गया । वह सोचने लगे, धन्य होती हैं वह घड़ियाँ, अद्भुत होते हैं वे पल जब प्रभु स्वयं देहधारी बन प्राणियों के बीच विचरण करते हैं । मानवों को पुकारते हैं- "ऐ जाग्रत अग्रदूतो ! आगे आओ । देखो ! कब से मैं तुम्हें पुकार रहा हूँ । पर हाय रे, अभागे मनुष्य ! तूने कब उस महाप्राण की पुकार सुननी चाही है । वह तो तुझे सीने से चिपटाने के लिए आतुर है, तू ही तो उसे बराबर ठुकरा रहा है । सभी जो करते हैं सो करें, पर वह स्वयं.....।" "मैं सर्वथा तत्पर हूँ प्रभु ।" दिल के उद्‌गार वाणी से बह निकले ।

युग का अवसान हुआ । महाविनाश-महासृजन में बदलता दिखाई देने लगा । भगवान मत्स्य एकमेव पथप्रदर्शक थे और उन्हें इस महागुरु के निर्देशन में नूतन सृजन के विश्वकर्मा बनने का सौभाग्य मिला । वह धन्य हो उठे । युग ने उन्हें आदिपुरुष स्वीकारा । मनुष्य स्वयं को उनकी सन्तान कहने में कृतकृत्यता अनुभव करने लगा । कहना न होगा ये युगशिल्पी वैवस्वत मनु थे । जिनका कर्तृत्व हमारा मार्गदर्शक है ।

नवयुग को धारण, पोषण-पालन करने वाली परा चेतना हम सबके बीच मीन शिशु की भाँति लघुतम रूप में प्रादुर्भूत हुई थी । आज उसके लघु से महान, तुच्छ से विशाल होने में हमें अचम्भे जैसा व्यतिक्रम भले मालूम पड़े । पर जिस प्रयोजन के लिए दिव्य सत्ता की योजना काम कर रही है, उसका द्रुतगामी विस्तार उपरोक्त मत्स्यावतार की भाँति स्पष्ट है । उसकी पुकार को सुन नवयुग के मनु की भूमिका निबाहने आगे आना ही होगा । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकसेवी की सबसे बड़ी पूँजी

हाथों में थमी लेखनी कुशल शिल्पी के यंत्र की भाँति 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक को अन्तिम रूप दे रही थी । शिल्पी निमग्न था, अपनी रचना में । द्वार खटका - निमग्नता में बाधा पड़ी । कौन ? इतनी रात में । रुक-रुक कर मन में ये शब्द उभरे । अभी दो ही दिन पूर्व तो वह अपने साहित्यिक गुरु आचार्य सप्रे जी के साथ इस स्थान पर आया है । किसी से कुछ खास परिचय भी नहीं ।

"कौन ?" इस छोटे से प्रश्न के उत्तर में खट्-खट्-खट् का दीर्घ नाद । भला यह भी कोई मिलने का समय है । मुख से निकलते अस्फुट स्वरों में झल्लाहट का पुट था । उठ कर द्वार खोला । कपाट खुलते ही उनकी परेशानी अनन्त गुना बढ़ गई । उनके ठीक सामने एक सुन्दर युवती खड़ी थी । वह सोचने लगे क्या परेशानी आ पड़ी है इस पर, जिसके कारण इतनी रात्रि को द्वार खटखटाना पड़ा । यदि यह परेशान है तब इतने अधिक श्रृंगार की आवश्यकता क्यों कर हुई ? यदि नहीं....तब ? वह निश्चय नहीं कर पा रहे थे, क्या कहें ? फिर भी जैसे-तैसे वह बोले "देवि ! मैं इस समय अपने काम में व्यस्त हूँ । यदि तुम्हारी कोई समस्या है तो सुबह मैं तुमसे बात कर लूँगा ।"

दिन में जमींदार के यहाँ भोजन करते समय चतुर्वेदी जी ने इस युवती को भोजन परोसते हुए देखा था । "पर बात ही ऐसी है कि इसी वक्त की जा सकती है ।" युवती ने कहा ।

ऐसी क्या बात है । उन्होंने पूछा और फिर तनिक तीखे स्वर में बोले- "खैर जैसी भी बात हो, मैं सुबह ही करूँगा ।" "क्यों क्या भला आपका पुरुष इस समय बात करने में घबराता है । आप इतने कच्चे आदमी हैं ।"

युवती ने जैसे उनकी सच्चरित्रता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया । सुन कर उन्होंने दरवाजा छोड़ दिया और युवती ने अन्दर प्रवेश किया । फिर स्वयं ही बोले- "तुम चाहे जो समझो पर मैं यहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के काम से आया हूँ । उसी काम में व्यस्त हूँ । किसी अन्य काम के लिए मेरे पास क्षण भर का भी समय नहीं है ।"

"फिर आपने दुखियों की सेवा करने का ढोंग क्यों रच रखा है ?" सामने खड़ी स्त्री की वाणी में व्यंग्य का पुट था । "ओह तो तुम दुःखी हो । बोलो मैं तुम्हारी इस वक्त क्या सेवा कर सकता हूँ ।" उनके स्वरों से कोमलता टपक रही थी ।

"दरअसल बात यह है कि मैंने इण्टर पास किया है । मेरे पति विलायत से आई. सी. एस. पास करके आए थे । लगभग डेढ़ साल पहले उनका स्वर्गवास हो चुका है । मैं विधवा हूँ, मेरे पास दस हजार रुपया है । मैं आश्रय चाहती हूँ । क्या आप मुझसे शादी करेंगे ।"

परन्तु मैं तो छठी पास हूँ और विवाह की बात तुम्हारे माता-पिता क्यों नहीं करते ? और तुम भी करती हो तो इस वक्त- क्या तुक है ?"

"बात यह है कि मैं आपको पसंद करने लगी हूँ ।" कहकर उसने निर्लज्ज मुसकान बिखेरी ।

वह बोल पड़े- 'अच्छा हो तुम यह विचार त्याग कर अपना धन किसी सेवा कार्य में लगाओ । विवाह करना कोई बड़ा अर्थपूर्ण कार्य नहीं है और मुझसे तो विवाह कर तुम वैसे भी पछताओगी । दस हजार रुपए दस साल भी चल गए तो उससे क्या होगा ? तुम मेरे साथ बड़ी दुःखी रहोगी ।

उनने उस युवती को कई तरह से समझाया और अन्ततः उसके मस्तिष्क में सेवावृत्ति जाग्रत करने में सफल रहे । समझा-बुझा कर उसे वापस भेजा । जब वह युवती वापस लौट गई तो वे ऊपर आए । उन्होंने विवाह की बात छोड़कर शेष सब कुछ बता दिया । परन्तु सप्रेजी तो पहले से ही सब कुछ जानते थे । युवती के आने की आहट पाकर वे भी दबे पाँव ऊपर आ गए थे और बाहर से सब कुछ सुन रहे थे । उन्होंने उनकी पीठ थपथपाते हुए कहा- "माखन लाल ! चारित्रिक दृढ़ता ही जीवन का प्राण है । यही वह पूँजी है जिसका प्रयोग करके मनुष्य हरेक दिशा में सफलता के चरम शिखर पर पहुँच सकता है । विशेष रूप से मनीषा को तो दृढ़ चरित्र का होना ही चाहिए" और हुआ भी यही कालान्तर में माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी साहित्याकाश में सूर्य की तरह उद्भासित हुए । काश ! श्रृंगार की, अश्लीलता की रचनाएँ लिखने वाले आज के साहित्यकार इस कालजयी से कुछ सीख ले पाते । *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसलए मिली है, यह सुरदुर्लभ काया ?

प्रातः सूर्य के उदय होते ही जिन्दगी का एक नया दिन शुरू होता है और सूर्यास्त होते तक दिन समाप्त हो जाता है। इस तरह रोज एक दिन उम्र से घट जाता है। जन्म लेने के बाद से ही आयु-क्षय का यह कार्यक्रम शुरू हो जाता है किन्तु अनेक प्रकार के कार्यभार से बढ़े हुए विभिन्न क्रिया व्यापारों में लगे रहने के कारण इस प्रकार नष्ट हुए समय का पता नहीं चलता। ऐसे अवसर प्रायः प्रतिदिन आते हैं जब, हम जीवों के जन्म, वृद्धावस्था, विपत्ति, रोग और मृत्यु के कारुणिक, विचार-प्रेरक दृश्य देखते हैं, किन्तु कितना मदांध कामनाग्रस्त और अविवेकी है इस धरती का मनुष्य कि वह सब कुछ देखते हुए भी स्थूल नेत्रों से विवेक और विचार की आँखों से अन्धा ही बना हुआ है। मोह और सांसारिक प्रमाद में लिप्त मनुष्य घड़ी भर एकान्त में बैठ कर इतना भी नहीं सोचता कि इस कौतूहलपूर्ण नर-तनु में जन्म लेने का उद्देश्य क्या है, हम कौन हैं, कहाँ से आये और कहाँ जा रहे हैं ?

प्रकृति-प्रवाह की अबूझ परम्परा में प्रवाहित मनुष्य संसार के सुखों को, इन्द्रियों के भोगों को, पदार्थों के स्वामित्व को, धन, पुत्र तथा विविध कामनाओं को ही जीवन का लक्ष्य बनाकर इस बहुमूल्य अवसर को खो देता है। अन्ततः काल की घड़ी जब सामने आती है और बिदा होते समय सिर पर पापों, दुष्कर्मों का भयंकर बोझ चढ़ा दिखाई देता है तो भारी पश्चाताप, घोर-संताप और आंतरिक अशांति होती है। सौदा बिक गया फिर कीमत लगाई भी तो क्या....विशाल वैभव, अपार धन-धान्य राशि, पुत्र कोई भी तो साथ नहीं देता। यह सारा संसार, यहाँ की परिस्थितियाँ सब ज्यों की त्यों दिखाई देती हैं किंतु वह सब उस समय उपयोग के बाहर होती हैं। अपना शरीर भी साथ नहीं देता। केवल अच्छे-बुरे संस्कारों का बोझ लादे हुए जीव परवश यहाँ से उठ जाता है कितनी अस्थिरता होती होगी उस समय यह कोई भुक्त-भोगी ही समझता होगा।

मनुष्य के जीवन में यह जो विस्मृति है वह सब असत् के संग से है। ज्ञान का आदर करने से हमारे भीतर से प्रश्न उठेंगे। हम कौन हैं ? हम क्या हैं ? हमें क्या नहीं करना चाहिए ? इसका ज्ञान हमारे अंदर मौजूद है पर अपने जीवन का कोई सही दृष्टिकोण न बना सकने के कारण वह सारी ज्ञानशक्ति विश्रृंखलित और बेकाम पड़ी हुई है। मनुष्य का पहला पुरुषार्थ है- जीवन लक्ष्य में प्रमाद न होने देना। यह तभी संभव है जब कर्तव्यों का उचित और सम्यक ज्ञान हो। कर्तव्यों की विस्मृति मनुष्य ने अपने आप ही की है। जब वह कुछ करना चाहता है तो उसे औरों की आवश्यकता का ध्यान नहीं होता वरन् वह यह जानना चाहता है कि इसमें मेरा लाभ क्या है। अपने लाभ की अपेक्षा औरों के लाभ की बात सोचें तो कर्तव्य की विस्मृति न हो। इस कर्तव्य और अकर्तव्य के ज्ञान पर ही मनुष्य का उत्थान और पतन अवलम्बित है।

व्यावहारिक जीवन में कोई नीचे नहीं गिरना चाहता। सभी ऊँचे, बहुत ऊँचे उठने की आकांक्षा लिये हुए हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने आपको ऊँचा सिद्ध करना चाहता है। इसके लिए अपनी-अपनी तरह के पुष्टि और प्रमाण भी एकत्रित करता है और समय पड़ने पर उन्हें व्यक्त भी करता है। ऊँचा उठना मनुष्य का स्वाभाविक धर्म भी है पर यदि किसी से यह पूछा जाय कि क्या उसने इस गंभीर प्रश्न पर गहराई से विचार किया है..क्या कभी उसने यह भी सोचा है कि इस आकांक्षा की पूर्ति के लिये उसने क्या योजना बनाई है..तो अधिकाँश व्यक्ति इस गूढ़ प्रश्न की गहराई का भेदन भी न कर सकेंगे। बात सीधी-सी है। महानता मनुष्य के अंदर छिपी हुई है और व्यक्त होने का रास्ता ढूँढ़ती है पर सांसारिक कामनाओं से ग्रस्त मनुष्य उस आत्म-प्रेरणा को भुला देना चाहता है, ठुकराये रखना चाहता है। अपमानित आत्मा चुपचाप शरीर के भीतर सुप्त पड़ी रहती है और मनुष्य केवल विडम्बनाओं के प्रपंच में ही पड़ा रह जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारीरिक दृष्टि से मनुष्य कितना ही बली हो जाय, बौद्धिक दृष्टि से वह कितना ही तर्कशील क्यों न हो, धन के जखीरे भले ही लगे हों, पर आत्म-संपदा के अभाव में वह मणि-विहीन सर्प की तरह अर्द्धविकसित कहा जायेगा। आत्मबल की उपलब्धि का एक सुख, संसार के करोड़ों सुखों से भी बढ़कर होता है। आत्मिक संपदाओं वाले नेतृत्व करते हैं, लोक मानस का मार्ग दर्शन करते हैं। निर्धन, फकीर होने पर भी बड़े-बड़े महलों वाले उनके पैरों में गिरकर दया की भीख माँगते हैं इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य की महानता बाह्य नहीं आंतरिक है। उसकी शक्ति, गुण-विकास पर छिपी है। आंतरिक श्रेष्ठता के आधार पर ही उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित होती है। भौतिक संपदायें तुच्छ हैं, थोड़े समय बड़प्पन जताकर नष्ट हो जाती हैं।

मनुष्य-शरीर जैसा अलभ्य अवसर पाकर भी यदि उसका उद्देश्य नहीं जाना गया तो क्या मनुष्य का शरीर, क्या पशु का शरीर ? आत्म-कल्याण की साधना जो इस जीवन में नहीं कर लेता उसके लिए इस सुर-दुर्लभ अवसर का कुछ भी उपयोग नहीं। श्रीमद्भागवत ११-६-७४ में कहा गया है-

"मोक्ष के खुले द्वार रूपी मनुष्य शरीर को पाकर भी जो पक्षियों की तरह अज्ञान के घेरे में कैद है उसे लक्ष्य से निरस्त ही समझना चाहिए।"

थोड़ा बाहर आकर देखिये, यह संसार कितना विस्तृत है, कितना विशाल है रात्रि के खुले आसमान के नीचे खड़े होकर थोड़ा चारों ओर दृष्टि तो दौड़ाइये, कितने ग्रह-नक्षत्र बिखरे पड़े हैं। कितना बड़ा फैलाव है इस संसार का। पर इन सब बातों पर विचार करने का समय तभी मिलेगा जब भोगोन्मुख वृत्ति से चित्त हटाकर इन चेतनाप्रधान विषयों की ओर भी थोड़ी दृष्टि जमायेंगे। कामनायें ही हैं, जो हमारी राह रोके खड़ी हैं। स्वार्थ ही है- जो आत्मविकास के मार्ग पर आड़े खड़ा है। ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, भय, लोभों वाले निविड़ में भटक गये हैं। इसलिये हम इस महानता के लक्ष्य की ओर अग्रसर नहीं हो पा रहे।

हम उदार बनें, साहस पैदा करें और आध्यात्मिक जीवन की कठिनाइयों को झेलने के लिये उठकर खड़े हो जायँ फिर देखें कि जिस महानता की उपलब्धि के लिए हम निरन्तर लालायित रहते हैं वह सच्चे स्वरूप में मिलती है या नहीं। सत्य हमारे अंदर छुपा है उसे अध्यात्म-पथ पर चल कर जाग्रत करें, शक्ति भीतर सोई पड़ी है उसे साधना से जगाएँ। जीवन की सार्थकता का यही एक मात्र मार्ग है। ✳

फेडरिक महान शासक होने के साथ-साथ कुछ नाटक लिखने का भी शौक रखता था। वह अपने लिखे नाटक अपने दरबारियों को सुनाया करता था। दरबारी नाटक अच्छा न होने पर भी उसकी तारीफ के पुल बाँध दिया करते थे। इससे फेडरिक को अपने बहुत बड़े नाटककार होने का भ्रम हो गया।

उसी के समय में "व्हाल्टेयर" नाम का एक बहुत ही जाना-माना प्रसिद्ध नाटककार भी था। फेडरिक -द-ग्रेट ने एक बार उक्त नाटककार को आमंत्रित कर बड़े गर्व से अपना नाटक सुनाया। उसे आशा थी "व्हाल्टेयर" भी अन्य दरबारियों की तरह राज-रचना होने के कारण प्रभावित होकर प्रशंसा करेगा।

किन्तु उस नाटक मर्मज्ञ व्हाल्टेयर ने उसका नाटक सुनकर बड़ी ही स्पष्टता से असफल और रद्दी कह दिया। इस पर फेडरिक को बहुत बुरा लगा और उसने व्हाल्टेयर को जेल भिजवा दिया।

कुछ समय बाद फेडरिक ने एक और नाटक लिखा, और उसने व्हाल्टेयर को बन्दीगृह से बुलवाकर अपना नया नाटक सुनाया। उसे विश्वास था कि व्हाल्टेयर का दिमाग जेल की यातनाओं से बदल गया होगा, और अब वह अवश्य नाटक की तारीफ करेगा।

किन्तु व्हाल्टेयर नाटक सुनते-सुनते बीच में ही उठ कर चल दिया। फेडरिक ने पूछा-"कहाँ जा रहे हो ?" इस पर उस नाटककार ने उत्तर दिया कि-"आपका यह नाटक सुनने से तो जेल की यातना अच्छी है।"

उसकी इस प्रकार निर्भीक स्पष्टोक्ति से फेडरिक महान बहुत प्रभावित हुआ और व्हाल्टेयर को जेल से मुक्त करके उसे अपना साहित्यिक गुरु मान लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रान्ति का नया आयाम–विचार क्रान्ति

इन दिनों विचार क्रान्ति के तूफानी झकोरों से अधजगे, उनीदे, आखें मलते मानव समाज की अकुलाहटें साफ नजर आ रही हैं। साथ ही ध्वनित होते हैं ये सवाल क्या जरूरत आ पड़ी इस क्रान्ति की ? विगत इतिहास में हो चुकी अनेकों क्रान्तियों की अपेक्षा इसमें क्या खासियत है ? सवालों की जटिलता के बावजूद इनकी सामयिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। मानव जीवन के इतिहास की पोथी क्रान्ति के अक्षरों से रँगी पड़ी है। मानवीयता के महा उदधि में क्रान्ति के अनेकों ज्वार उठे और लय हुए। इतने पर भी वर्तमान क्रान्ति जो स्वर्ण युग की संदेशवाहक है की अपनी मौलिकता है। इसे अतीत के पृष्ठों में झाँके वर्तमान से सम्बन्ध सूत्र जोड़े बिना नहीं परखा जा सकता। समुज्ज्वल भवितव्यता की चिरस्थाई संस्थापना पर विश्वास जमाने का और आधार भी क्या है ?

क्रान्तियों के इतिहास के अन्दर हम दो सिद्धान्तों को काम करते देखते हैं। एक तो सातत्य का सिद्धान्त है, दूसरा परिवर्तन का। ये दोनों सिद्धान्त परस्पर विरोधी लगते हैं परन्तु ये विरोधी हैं नहीं। सातत्य के भीतर परिवर्तन की झलक है। इसी प्रकार परिवर्तन भी अपने अन्दर सातत्य का कुछ अंश छिपाए रखता है। असल में हमारा ध्यान उन्हीं परिवर्तनों की ओर जाता है जो क्रान्ति के रूप में अचानक फट पड़ते हैं। फिर भी प्रत्येक भूगर्भ शास्त्री जानता है कि धरती की सतह पर जो बड़े–बड़े परिवर्तन होते हैं, उनकी चाल बहुत धीमी होती है। इसी तरह क्रान्तियाँ भी धीरे–धीरे होने वाले परिवर्तन और रूपान्तरण की एक बहुत लम्बी प्रक्रिया का बाहरी प्रमाण भर होती हैं। इस तथ्य के मुताबिक पिछली क्रान्तियों को इन दिनों सम्पन्न हो रही महाक्रान्ति की तैयारी के रूप में समझा जा सकता है।

पहली क्रान्ति उस समय घटी जब क्रान्तिधर्मी मानव अपने आरम्भिक काल में छोटे–छोटे समूह बनाकर रहता था। सर्वथा अव्यवस्थित किन्तु उसके पास वे सारे उपकरण थे जिनसे जीवन में क्रान्ति घटे। हुआ भी ऐसा ही। राधाकुमुद मुखर्जी की "एन्शिएण्ट इण्डिया" के अनुसार समूहों की व्यवस्था के सविधि संचालन के लिए राज्य का उदय हुआ। राजतन्त्र पनपा। परस्पर के सम्बन्ध उदारतापूर्वक निभ सकें इस हेतु समाज नीति निर्धारित हुई। विनिमय व्यवस्था ने अर्थनीति को जन्म दिया और मनुष्य के अन्तरंग उन्नयन की प्रणाली ने आध्यात्म का रूप धारण किया। यह मानव जीवन की पहली क्रान्ति थी जिसका तथ्यपूर्ण विवेचन डॉ. रांगेय–राघव ने अपनी रचना "आदि से इन्द्र तक" में सफलतापूर्वक किया है। उस समय के राजा और राज्य, व्यक्ति और समाज की कल्पना वैदिक साहित्य का अवगाहन किए बिना अशक्य है।

न केवल भारत में बल्कि, यूनान, मिश्र, रोम जहाँ भी मानव ने निवास किया समष्टि मन का यही चमत्कार घटा। प्रथम क्रान्ति से जीवन तीन अंगों में व्यवस्थित हुआ राज्य, अर्थ, बुद्धि। राज्य का नियंत्रक राजा, अथवा प्रशासक, अर्थ के नियंत्रक व्यापारी और बुद्धि का नियामक मनीषी। मनीषियों का धन्धा, कर्तव्य, मनोरंजन कुछ भी नाम दें एक ही था → जीवन की समस्याओं का हल। इसी वर्ग ने हर कहीं मैजिनी, वाल्टेयर, शीक्यू, लेनिन, गाँधी की भूमिका निभाई। अन्य दो में से प्रथम तो जड़ता से ग्रसित होकर क्रान्ति का विरोधी ही साबित हुआ, दूसरे ने तटस्थता बरतने अथवा अवसरवाद अपनाने में अपनी सार्थकता मानी।

मानव की प्रबल अभीप्सा रही है उन्नयन। जब यह अन्तर में घटित हुआ है तब वह चेतना के गंभीरतर शिखरों पर बैठा है। जब बाहर हुआ है तब आत्म विस्तार पनपा है। इस विस्तार का रूप देश काल के अनुरूप कुछ भी हो। धीरे–धीरे राज्य बढ़े समाज विशाल हुआ जीवन जटिल। संकीर्णताओं की जकड़न और विवशता की बेबस सिसकियाँ गूँजी। ऋषि–मनीषी क्रांतिदर्शी थे और सामान्य जन क्रान्तिधर्मी। इन दोनों में जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो अपना पथ भूला तब–तब मानवता विकल हुई । जन विकलता की तड़प ही तो क्रान्ति की तड़ित है । यह तथ्य देशव्यापी, क्षेत्रव्यापी , जाति व्यापी न होकर जीवन व्यापी है ।

आदमी की तकलीफ के दो कारण हैं पहला–साधनों का अभाव दूसरा व्यवस्था का वह स्वरूप जो अपने लौह पाश के द्वारा स्वाभाविक विकास को रोकना चाहता है । ये चाहे शासन के शोषक हों अथवा रूढ़ियों कुरीतियों के पृष्ठपोषक दोनों एक ही थैली के चट्टे–बट्टे हैं । इन दोनों कारणों के पीछे वह अज्ञान है जो व्यक्ति और समाज के बीच असन्तुलन की सृष्टि करता है । राजतन्त्र के चरमराते ढाँचे ने जब व्यक्तिवाद का रूप लिया, शोषणवाद को प्रश्रय दिया वहीं से विश्व इतिहास में क्रान्ति की श्रृखंला चल निकली । फलतः न केवल भारत बल्कि फ्रांस, रूस इटली, अमेरिका, जापान, सहित लगभग समूचे विश्व ने कसम खाली कि राजतन्त्र को उखाड़ फेंकना है, व्यक्तिवाद को बिस्मार करना है । हुआ भी यही जहाँ कहीं भी क्रान्तियाँ हुईं उनका पहला प्रकोप राजतन्त्र पर हुआ । चूँकि राजसत्ता ने अपनी पूरी प्रभाविकता में अर्थ और समाज पर अपनी पकड़ जमा रखी थी , इसलिए उसके प्रभाव अर्थ व समाज पर पड़े बिना न रहे ।

"ऐन इलस्ट्रेटेड आउट लाइन, हिस्ट्री ऑव मैनकाइंड " के सम्पादक के-कूपर कोल के संकेतानुसार ये सभी क्रान्तियाँ संख्या की दृष्टि से भले अनेक हों पर स्वरूप और सिद्धान्त की दृष्टि से एकसी हैं । राजतन्त्र के विकल्प के रूप में लोकतन्त्र व साम्यवाद प्रकाश में आए ।लोकतन्त्र की शुरूआत वैशाली के गणतन्त्र से हुई जिसकी श्रंखला अभी तक प्रवाहमान है । व्यवस्था परिवर्तन के अलावा पुनर्जागरण काल में वैज्ञानिक क्रान्ति सम्पन्न हुई जिसने आगे चलकर औद्योगिक क्रान्ति से अपना सहचरत्व निभाया । जीवन मूल्यों के परिपेक्ष्य में वैज्ञानिकता का सीधा आघात धर्म पर हुआ और जीवनशैली के क्षेत्र में औद्योगिक क्रान्ति ने उथल–पुथल मचा कर रख दी ।

इन सब के बावजूद क्या मानव की विकलता थमी, वेदना कम हुई ? यदि नहीं तो अवश्य इन परिवर्तनों में कुछ मूलभूत कमियाँ रहीं होंगी । यदि ऐसा न होता तो व्यक्तिवाद की समाप्ति का दावा करने वाली लोकतान्त्रिक व्यवस्था में वे न होते जिन्हें अपनी रोटी दूसरों के साथ खाना मंजूर नहीं । जिन्हें पूरी रोटी सिर्फ अपने लिए चाहिए, बल्कि बस चले तो वे औरों की भी रोटियाँ छीन कर बेच डालें और मिले धन से घूँट भर शराब पीने में चैन महसूस करें । साम्यवाद व्यक्ति की मौलिकता पर कुठाराघात करने वाला सिद्ध न होता । विनिमय और अर्जन की प्रणाली इतनी दुर्बल कैसे होती ?

वास्तविकता कुछ ऐसी ही है । क्रान्ति की सरंचना और प्रक्रिया पर गौर करने पर स्पष्ट होता है कि इसका आरम्भ हमेशा कुछ विचारशील, साहसी , परम्पराओं की तुलना में विवेक को महत्व देने वाले व्यक्तियों के द्वारा होता है । आर्थिक ढाँचा या तो तटस्थ रहता है अथवा किन्हीं अंशों में सहयोगी अथवा विरोधी । राजसत्ता हमेशा विरोधी पाले में खड़ी मिलती है । क्रान्तिकारी सर्वहित में सर्वस्व दे डालने की मौलिक विशेषता के कारण व्यक्तित्ववान होते हैं । अपने इस गुण व अदम्य साहस से वह व्यवस्था बदल डालते हैं । प्रकाश में आती है क्रान्तिकारी सरकार । क्रान्तियाँ क्षेत्रीय हैं या राष्ट्रीय, भारत, फ्रांस का उदाहरण लें अथवा मिजोरम–आसाम का । नैपाल इटली अमेरिका कोई भी क्यों न हो । हर कहीं अपने समय में क्रान्तिकारी सरकारें आयी हैं । बस यहीं से क्रान्ति रुकी और गड़बड़ियाँ पनपीं । रशियन विचारक प्रिंस क्रोपाट्किन ने "रिवोल्यूशनरी गवर्नमेण्ट " नामक निबन्ध में इसका सुन्दर विवेचन किया है । उनके अनुसार ऐसी स्थिति में क्रान्तिधर्मी–क्रान्ति विरोधी का चोला ओढ़ लेते हैं । सामयिक निदान हो जाने के कारण कुछ दिन अमन चैन लगता है । जाग्रतजन फिर गाढ़ी नींद के खर्राटों में डूब जाता है । पर थोड़े ही दिन बाद पोल खुल जाती है । जर्जर व्यवस्था के ढाँचे , आर्थिक रूढ़ियाँ आपस का विद्वेष, कड़वी सामाजिकता, अनगढ़ जनसमुदाय सब मिलकर ऐसा भोंड़ा प्रदर्शन करने लगते हैं कि विश्वास नहीं होता कि यहाँ कभी क्रान्ति हुई थी ।

इसका एकमेव कारण है व्यक्ति और समाज की संरचना और अन्तर्सम्बन्धों को बिसार देना । जीवन का विकास मनोसामाजिक होता है । क्रान्ति क्यों नहीं ऐसी होनी चाहिए ? व्यक्ति ढले नहीं समाज सुधरा नहीं ऐसी दशा में उलट फेर कितने दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम देगी । स्थाई समाधान एक ही है व्यक्ति बदले समाज सुधरे । आवश्यकता मनोसामाजिक क्रान्ति की है । होता यह कि व्यवस्था को बदलने वाले क्रान्ति दल के दो भाग होते हैं । एक नयी व्यवस्था में प्राण भरता, दूसरा व्यक्ति गढ़ता है । समाज की प्रथा, परम्पराएँ, कुरीतियाँ सुधारता है । मात्र सामाजिक क्रान्ति से काम चलने वाला नहीं । जमाने को भारी तादाद में विवेकानन्द, गाँधी मैजिनी चाहिए जब तक इस व्यक्ति निर्माण की फैक्ट्री में ताला लगा हुआ है तब तक क्रान्ति की पूर्णता सम्भव नहीं । व्यक्ति अच्छे होंगे हर बिगड़े ढाँचे को बना देंगे । यदि ये स्वार्थ लोलुप हुए तो बने ढाँचे को भी जर्जर हो चकनाचूर होना पड़ेगा ।

आज की दशा में जर्जरित ढाँचों में पिस रहे मानवी जीवन को देखने पर यही लगता है कि घूम फिर कर आदमी वहीं बल्कि उससे भी बदतर हालत में आ पहुँचा है जहाँ से उसने अपनी यात्रा शुरू की थी । अब उसे पुनः आवश्यकता पड़ गई है कि नयी व्यवस्था का सृजन हो । परस्पर के सम्बन्ध नए सिरे से विकसित हों अर्थात समाज नीति की नयी स्मृति बने । विनिमय प्रणाली ऐसी हो जो हर किसी की सामान्य जरूरतें पूरी कर सके । मानवी चेतना के अवरोहण, बहिरंग जीवन को परिष्कृत करने वाली ऐसी प्रक्रिया विकसित हो अन्धविश्वास जिसके निकट न फटके ।

इस आ पड़ी जरूरत को कौन पूरा करेगा ? कहाँ हैं ये सब विशेषताएँ ? इसके लिए क्रान्ति के उस नए आयाम को ढूँढ़ना पड़ेगा जो विगत की भूलों से मुक्त हो जिसमें व्यक्ति के मनोसामाजिक नवसृजन की अपूर्व क्षमता हो । क्रान्ति का वही नया आयाम विचार क्रान्ति है । इस नए आयाम द्वारा सम्पन्न हो रही महाक्रान्ति ने अपना केन्द्र बनाया है, व्यक्ति को, उसकी परिधि है समाज । व्यक्ति की अन्तरशक्तियों को उजागर करे, समाज की प्रत्येक प्रणाली को नया रूप देने के लिए कटिबद्ध हो यह । विश्व के समस्त मानव समुदाय के क्षितिज पर क्रियाशील प्रथम अहिंसक महाक्रान्ति होगी हिंसा, विद्वेष मानवीय दुर्बलताओं को जो उखाड़ फेंकने के लिए तत्पर हो उस प्रक्रिया में इनका स्थान कहाँ ?

इतने पर भी इसकी शक्ति ने समूचे विश्व को चकित कर रखा है । विचारों का जबर्दस्त तूफान क्या कुछ नहीं कर रहा इन दिनों । १९१७ की बोल्शेविक क्रान्ति गायब, हिटलर का उत्थान और पतन दोनों समाप्त । हेनरी ट्रूमैन से रोनाल्ड रीगन तक चलने वाला शीत युद्ध पिघल कर बह गया । अटलांटिक सन्धि का रक्षातन्त्र रद्द, जर्मनी का बँटवारा समाप्त । धर्म और विज्ञान के कदम एक दूसरे से मिलने के लिए बढ़े । तनिक गहरे उतरें तो पता चलेगा कि विचार क्रान्ति की वीणा ने सद्भाव सहनशीलता, सदाशयता की नयी रागिनियाँ बजाई हैं । हो भी क्यों न ? तलवार से हम मनुष्य को पराजित कर सकते हैं, जीत नहीं सकते । मनुष्य को जीतना, उसके हृदय पर अधिकार पाना है और हृदय की राह समर भूमि की लाल कीच नहीं, सहिष्णुता का शीतल प्रदेश है, उदारता का उज्ज्वल क्षीर समुद्र है ।

विचारों की क्रान्ति यही राह प्रशस्त कर रही है, टूटे दिलों को जोड़ रही है और पुराने घावों को सहला कर उन्हें भरती जा रही है । वारसा सन्धि संगठन उत्तर अटलांटिक संगठन जिन्होंने दो दुनिया ही बसा रखी थीं इस तरह एक दूसरे को छाती से चिपटाने के लिए आतुर हो उठेंगे, किसने सोचा था ? पश्चिम एशिया के घोर शत्रु ईरान और इराक का भी निकट आने के लिए सोचने लगना , बर्लिन की दीवार का धराशायी होना यही नहीं इनकी मुद्राओं ओस्तमार्क डूशमार्क का एक हो जाना सिर्फ विचारों की शक्ति का चमत्कार है इसी ने रूस को वह बल दिया जिससे "पेरेस्त्रोइका" यानी पुनर्निर्माण और "ग्लासनोस्त" यानी खुलेपन रूपी दो सबल भुजदण्ड उठे और लौह परदे को एक ओर समेट दिया ।

ये तो विचारों की महाक्रान्ति के कुछ बबूले हैं अभी तो ज्वार आना शेष है । जिसके लिए श्री अरविन्द ने अपने ग्रन्थ "ह्यूमन साइकल" में कहा है मनुष्य के जीवन सम्बन्धी विचार प्रयत्न और भावनाओं की ऐसी प्रवृत्ति जो सामुदायिक मन को वशीभूत कर ले तो उसका परिणाम निश्चित ही मानव जीवन के समस्त क्षेत्र में एक गम्भीर क्रान्ति होगा । वह उसे प्रारम्भ से ही एक नया रंग और वातावरण, एक उच्चतर भावना एक महत्तर उद्देश्य प्रदान करेगी इस प्रारम्भ की परिणति होगी नया युग जो व्यवस्थाओं प्रणालियों नीतियों की दृष्टि से अद्भुत होने के साथ व्यक्तित्व संरचना की दृष्टि से भी अभूतपूर्व होगा । मनुष्य को देवत्व की अनुभूति कराए और स्वर्ग के नन्दन कानन को धरती पर उतारे बिना न रहेगा । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति की छत्रछाया में वापसी

गाय का बच्चा जब तक धीमी गति से नियम कायदे के अनुरूप दूध पीता रहता है, तब तक गाय उसे पेट भर पीने देती है और दुलार से चाटती रहती है। पर जब वह उद्दंडता पर उतरता है और थन काटकर उन्हें लहूलुहान करने लगता है तो माता के तेवर बदलते हैं और वह करारी लात जमाकर दूर धकेल देती है। एक पक्ष का व्यवहार बदलते ही दूसरा पक्ष अपने तौर तरीके देखते देखते बदल लेता है।

प्रकृति हमारी माता है। उसी के अजस्र अनुदानों के कारण शरीर के ढाँचे से लेकर मानसिक विकास तक की जीवन को समुन्नत बनाने वाली अनेकानेक उपलब्धियाँ हस्तगत हुई हैं। निर्वाह से लेकर लोक सुविधा के साधनों का भण्डार उसी की खदान से हाथ लगा है। जिस पर गर्व किया और अहंकार जताया जाता है, वह समस्त साधन सामग्री प्रकृति का अनुदान भर है। इसे सीमित मात्रा में लिया और भले मानस की तरह सदुपयोग में लाया जाय तो सामान्यक्रम ठीक तरह चलता रहता है। मनुष्य को भी कुछ कमी नहीं रहती और प्रकृति संतुलन भी बिगड़ता नहीं। अदृश्य जगत में विक्षोभ भी उत्पन्न नहीं होता। पर जब अतिवादी उद्दंडता अपनाई जाती है और एक सोने का अंडा रोज देने वाली मुर्गी का पेट चीर कर देखते-देखते स्वर्ण भंडार हथिया लेने की ललक उठती है तो उसका पेट चीरा जाता है और वह भी गँवा बैठा जाता है, जो सहज सरलतापूर्वक मिलता चला आता था। यही अनौचित्य इन दिनों प्रकृति के साथ मनुष्य द्वारा अपनाया जा रहा है।

द्रुतगामी वाहनों और कारखानों के लिए तेल, कोयला जैसी खनिज ऊर्जा का दोहन असाधारण गति से हो रहा है। फलतः वायुमंडल में प्रदूषण तो भरता ही है, साथ ही वह संचित भंडार भी चुकता चला जाता है जो भूगर्भ में चिर संचय के रूप में जमा था। इस व्यतिक्रम से भूकम्पों एवं अन्यान्य प्रकृति प्रकोपों का सिलसिला बढ़ा है और वह स्थिति समीप आती जा रही है कि इस शताब्दी के भीतर वह संचय समाप्त हो जायगा और कारखानों, द्रुतवाहनों के समक्ष ऊर्जा के अभाव में कबाड़खाने मात्र बन जाने की विभीषिका सामने आ खड़ी होगी।

मदिराजन्य उन्माद प्रसिद्ध है। उसकी अति मात्रा लेने पर मनुष्य नालियों में मुँह रगड़ता, अनर्गल वचन बोलता और बावलों जैसी हरकतें करता है। दूसरा नशा सफलताजन्य अहंकार का है। जो उसे पचा नहीं पाते वे उद्दंडता का अनाचार अपनाते हैं। शरीर में बलिष्ठता आने पर गुण्डागर्दी सूझती है। पैसा बढ़ने पर दुर्व्यसनों की भीड़ दौड़ पड़ती है। अहं बढ़ने पर लोग दबाने ठगने की बात सोचते हैं। प्रकृति की परतों को असाधारण रूप से उधेड़ने में यत्किंचित सफलता मिल जाने पर भी यही हो रहा है। विज्ञान को अणुबम, रासायनिक बम बनाने की सूझी। विश्व विजय के सपने देखने वालों की पूरी चाण्डाल चौकड़ी जम गई। सर्वसाधारण भी अनुकरण में पीछे कैसे रहता। उसने अपना रहन-सहन, आहार विहार ऐसा अपनाया जिसे एक प्रकार से मुँह चिढ़ाना ही कहा जा सकता है।

एयर कंडीशन्ड कमरों में रहने वाले तात्कालिक मौज तो उठाते हैं पर शरीर की प्रतिरोधक शक्ति बुरी तरह गँवा बैठते हैं, और आये दिन जुकाम जैसी बीमारियों के शिकार बने रहते हैं। पक्वान्न, मिष्ठान्न, माँस व्यंजन जैसे स्वादों से स्वादिष्टता तो मिली पर पेट का कचूमर निकल गया और तज्जनित रक्त विकारों से अनेकानेक बीमारियों की झड़ी लग गई। यह चटोरेपन की प्रतिक्रिया है। धन-लिप्सा ने कमाई के ऐसे तरीके ढूँढ़ निकाले जिनसे ढेरों सम्पदा कुछ ही समय में जमा कर लेने की ललक ने ऐसा अनाचारों का ढेर लगा दिया जिसमें प्रयोक्ता को तो मनमाना लाभ हुआ पर अन्य असंख्यों को उस कुचक्र में पिसकर कंकाल भर रह जाना पड़ा। विनोद, मनोरंजन के नाम पर कामुकता, छद्म, आक्रमण और शोषण के दृश्य देखने को मिले। फलतः आँखों को रस जरूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया पर चिन्तन और चरित्र में निकृष्टता का दौर बढ़ता चला गया । सोचा गया कि नियन्ता की प्रकृति की कोई व्यवस्था तो है नहीं , फिर संकीर्ण स्वार्थ की पूर्ति के लिए कुछ भी कर गुजरने में क्या हर्ज है । इसी ढीठता के अन्तर्गत पेड़ बुरी तरह कटे और प्राणियों को घासपात की तरह उदरस्थ कर जाने की प्रथा पड़ी । कृत्रिम खाद, कीटनाशक, कृत्रिम प्रजनन आदि से किसी को तात्कालिक लाभ भले ही मिले, पर इनके दूरगामी परिणाम हानिकारक ही हो सकते हैं । होते हुए देखे भी जा रहे हैं ।

प्रकृति के साथ बलात्कार अभी तथाकथित वैज्ञानिकों मूर्धन्यों को अपने कौशल की ध्वजा फहराने का निमित्त कारण भले ही प्रतीत होता है, पर तत्वदृष्टि से देखने पर यही प्रतीत होगा कि स्वल्प–सफलता के आधार पर उद्धत हुआ मनुष्य नशेबाजों की तरह ऐसा कुछ कर रहा है जो उसके लिए ही नहीं समूचे समुदाय के लिए घातक सिद्ध होगा ?

आकाश में उपग्रहों का कबाड़ जमता जा रहा है । वायु में प्रदूषण भर गया है । जल शुद्धता गँवा रहे हैं । भूमि रेगिस्तान बनती जा रही है । दूसरों के साथ अनाचार बरतने का अभ्यासी अपनों के साथ भी वह दुष्टता बरतने में कोई अन्तर कर नहीं पा रहा है । फलतः शालीनता को भारी क्षति पहुँच रही है । इस प्रकार के अनेकों कारण मिलते जाने पर समस्याओं और कठिनाईयों के अम्बार लगते जा रहे हैं ।

यह अतिवादी उद्दंडता प्रकृति एक सीमा तक ही सहन कर सकती है । अतिवादी व्यवहार किसी को भी क्षुभित कर सकता है, प्रकृति को भी । समझदारी यदि वापस न लौटे तो फिर कान उमेठने और चपत जड़ने का काम दयालु माता को ही करना पड़ता है ।

यह अनुभव कराने वाले अनेकों घटनाक्रम सामने आ रहे है जो बताते हैं कि कहीं कोई बड़ी भूल हो रही है । अवांछनीयता की प्रतिक्रिया ही कई बार इतनी कठोर हो जाती है कि राह बदलने के लिए बाधित करती है । डायबिटीज, ब्लडप्रेशर आदि के रोगी अपनी खुराक पर नियंत्रण करने के लिए मन मार कर बाधित होते हैं । असंयमी साधारण स्थिति में तो किसी के रोके नहीं रुकते, पर जब उसकी प्रतिक्रिया प्राणघातक रोग खड़े कर देती है तो आपरेशन का कष्ट सहने से लेकर पैसा पानी की तरह बहाने के लिए बाधित होना पड़ता है । इसे मजबूरी भी कह सकते हैं, प्रकृति की प्रताड़ना भी और नियन्ता की कठोरतापूर्वक शिक्षा देने की पद्धति भी ।

मनुष्य में इतनी समझदारी अभी बाकी है कि वह एक सीमा तक ही उच्छृंखलता बरतता है । जब उसे संकट की भयंकरता सामने प्रत्यक्ष दीख पड़ती है, तब वह सम्हलता और चाल बदलते भी देखा जाता है । इसे समझदारी भी कह सकते हैं और विवशता भी । मस्ती में दौड़ने वालों के मार्ग में जब कोई बड़ा खड्ड आ जाता है तब वे बचने की बात सोचते हैं । सर्प–सिंह का आभास मिलते ही अतिउत्साही भी वापस लौट पड़ते है । समय आ गया कि पिछली शताब्दी में प्रकृति के साथ जो अतिवादी अनाचार बरता गया है, उसके परिणामों को समझा जाय और नवयुग की प्रभात किरणें आते–आते उस रवैये को बदल दिया जाय जो नींद की मीठी खुमारी में उचित और मनभावन भी लगता था ।

सदाशयता–दूरदर्शिता अपनाने की अन्तःप्रेरणा ही ईश्वरीय अनुशासन है । उसी को प्रकृति का नियंत्रण और सन्तुलन भी कहा जा सकता है । अब इसी सुधार परिष्कार का दौर चलेगा । शालीनता की रीति–नीति अपनाये जाने का परिवर्तन एकाकी देखने वालों द्वारा महान परिवर्तन जैसा कहा जायगा और अध्यात्म की भाषा में उसे *"सतयुग की वापसी"* नाम दिया जायगा । इसकी उपयुक्त बेला अब आ पहुँची ही देखी जा रही है ।

अगले ही दिनों बछड़ा लात खाने के बाद सही रीति से थन चूसने का प्रयत्न करेगा । आहार में शाकाहार की ही प्रधानता होगी । लोग भूमि का भी सदुपयोग सीखेंगे । हरीतिमा उगायेंगे । शाकाहार पर निर्भर रहने में ही भलाई अनुभव करेंगे । बच्चों से लदे घरों में घुसे और कृत्रिम प्रकाश के बीच जीने के अभ्यासी नये निर्णय करेंगे कि गाँव के वातावरण में सूर्य और पवन का आश्रय लेकर स्वस्थ जीवन क्यों न जिया जाय ? अगली शताब्दी शहरों से गाँवों की ओर वापस लौटने की है । अधिकांश का मानस यही चाहेगा और ऐसी ही योजनाएँ बनायेगा । गाँव बढ़कर कस्बे हो चुके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंगे। उपजाऊ भूमि नये सिरे से खोज निकालने पर इतनी गुंजाइश निकल आयेगी कि मनुष्य, पशु और पेड़ साथ-साथ सही अनुपात में जीवित रह कर एक दूसरे को संतुलित पोषण प्रदान करते रहें।

शहरों का विकास अभी तो सुरसा के मुँह की तरह फैलता जा रहा है। पर वह विस्तार अगली सदी में इस रूप में रहेगा नहीं। वे खंडहर होते जायेंगे। जिस प्रकार गाँवों का विकास नये ढंग से नये स्तर पर होने जा रहा है, उसी प्रकार शहर भी जन निवास के लिए किन्हीं उपयोगी प्रवृत्तियों के लिए सीमित प्रयोगशालाएँ, अनुसंधान-शोध संस्थान बनकर रह जायेंगे। विश्व विद्यालय-कालेजों के संस्थान बड़ी इमारतों को उलट-पुलट कर बनाये जायेंगे। पर लोग निवास के लिए ग्रामीण क्षेत्रों का ही चयन करेंगे। आखिर लौटना तो प्रकृति की समीपता की दिशा में ही है।

ठाली समय में दिमाग पर चढ़ने वाली खुराफात ही कामुकता है। उसे उत्तेजन अश्लील साहित्य, संगीत कला से ही मिलता है। जब नर-नारी मिल कर सृजन प्रयोजनों में लगेंगे सगे भाइयों की तरह रहेंगे और मनोरंजन के लिए उच्च आधार उपलब्ध होने लगेंगे तो कामुकता एक हेय और उपेक्षणीय प्रवृत्ति भर रह जायेगी। ऐसी दशा में नर नारियों का स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा। समय भी पर्याप्त होगा। बच्चे सीमित होंगे और उन्हें समर्थ सुसंस्कारी बनाने के लिए आधार भी बड़ी मात्रा में उपलब्ध रहेंगे। प्रकृति प्रेरणा का अवगाहन करने की प्रवृत्ति जैसे ही बढ़ेगी, वैसे ही जनसंख्या का विस्फोट जो आज एक अति भयानक संकट बनकर सामने खड़ा है, सहज, सरल और सीमित होता चला जायगा।

प्रतिभाएँ धनोपार्जन और दर्प प्रदर्शन की निस्सारता समझेंगी भी और वे उन प्रयासों में लगेंगी जिनके माध्यम से लोक मानस के परिष्कार की अनेकानेक विधाओं का उत्पादन और अभिवर्धन होता रहेगा। प्रबुद्ध लोग मनीषी बनने में अपनी उच्चस्तरीय उन्नति हुई अनुभव करेंगे। नये युग के मनुष्य को नये ढाँचे में ढालने के लिए जिस प्रकार के साहित्य की आवश्यकता है, आज उसका अभाव भले ही दीखता हो पर वह अगले दिनों पर्याप्त मात्रा में मिलने लगेगा और उसका स्तर क्रमशः अधिकाधिक दार्शनिकता और यथार्थवादिता का पुट लिये हुए होगा। मनोरंजन के भी ऐसे साधन निकल आयेंगे जो लोकरंजन और लोक मंगल की उभयपक्षीय आवश्यकता पूरी करते चलें।

प्रकृति की शरण में वापस लौटने का उद्घोष जब जन-जन के मन मन में प्रवेश करेगा तो प्रकृति पर आधिपत्य जमाने की वर्तमान उद्दंडता को पलायन करते ही बन पड़ेगा। संतों सज्जनों जैसा सादगी एवं शालीनता का जीवन कैसे जिया जाय, इसकी शिक्षा और प्रेरणा महाकाल जन जन के मन मन में ठूसता चला जायेगा।

*

कार्ल मार्क्स लन्दन में निर्वासित जीवन जीरहे थे। फ्रान्स और जर्मनी की सरकारों ने उन्हें क्रान्तिकारी घोषित कर देश निकाला दे दिया था। यहीं पर रहकर उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "दास कैपीटल" की रचना की थी। लन्दन प्रवास के दौरान मार्क्स को घोर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस बीच उन्हें गरीबी और भूख के कारण दो बच्चों से भी हाथ धोना पड़ा था।

समय पर किराया न चुकाने के कारण कई बार मकान मालिकों ने घरों से भी निकाल दिया था। रोटी के लिए बिस्तर भी बेचने पड़े किन्तु श्रमिकों के उद्धार का संकल्प उन्होंने उठाया था। उसे भूखों रहकर आजीवन निभाया। उसमें राई रत्ती भर शिथिलता नहीं आने दी।

उन्हीं दिनों जर्मनी में बिस्मार्क का प्रभुत्व था। वे जर्मनी के प्रधान मंत्री भी थे। पूँजीवादी राष्ट्रों में जर्मनी अग्रणी था। बिस्मार्क को डर था कि यदि मार्क्स के विचार समाज में फैल गये तो मजदूरों को काबू में रख पाना सम्भव न होगा। पूँजीवाद की नींव जर्मनी से सदा के लिए उखड़ जायगी। बिस्मार्क को एक उक्ति सूझी। क्यों न मार्क्स को प्रलोभन देकर खरीद लिया जाय और उसके बढ़ते प्रभाव को समाप्त कर दिया जाय। मार्क्स के पुराने साथी बूचर को लालच देकर अपने पक्ष में कर लिया। उसके ने गुप्त पत्र भिजवाया। जिसमें कार्ल मार्क्स को सरकारी समाचार पत्र का सम्पादक बनाने की बात कही थी। इस पत्र में पारश्रमिक की मोटी रकम अदा करने की बात कही गई थी तथा सुरक्षा का पूरा आश्वासन भी दिया गया था। पत्र के अन्त में कहा गया था कि सरकार के समर्थन से राष्ट्र की सेवा और अच्छी तरह हो सकती है।

किन्तु मार्क्स खरीदे नहीं जा सके। बिस्मार्क अपने कुटिल इरादों में असफल रहा। मार्क्स श्रेष्ठ सिद्धान्त और पवित्र लक्ष्य तथा जन कल्याण की भावना लेकर कार्य के प्रति समर्पित थे। इसलिए अभाव भरे जीवन से भी उन्हें कोई शिकायत नहीं थी। कार्ल न झुके न बिके। यह प्रलोभनों पर आदर्शों की महान विजय थी, जो मार्क्स् को सदा के लिए महान बना गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इष्ट की ललक

'मनुष्य जीवन मिला ही भगवान को पाने के लिए है । संसार के भोग पदार्थ तो दूसरी योनियों में मिल सकते हैं । मनुष्य में भोगों को भोगने की उतनी शक्ति भी नहीं, जितनी दूसरे प्राणियों में है' । वक्ता की वाणी में शक्ति थी । उनकी बातें शास्त्र-संगत थीं, तर्क संगत थी और सबसे बड़ी बात यह थी कि उनका व्यक्तित्व ऐसा था जो उनके प्रत्येक शब्द को सजीव बनाए दे रहा था । भगवान को पाना है इसी जीवन में पाना है । भगवत्प्राप्ति हो गई तो जीवन सफल हुआ और न हुई तो महान हानि हुई ।

प्रवचन समाप्त हुआ । लोगों ने हाथ जोड़े सिर झुकाया और एक-एक करके जाने लगे । सबको अपने-अपने काम हैं और वे आवश्यक हैं । यही क्या कम है जो इतनी देर हुई चर्चा में आकर बैठ गए । बैठने वालों में एक यह भी था पर औरों से नितान्त भिन्न । यह भिन्नता शकल सूरत की दृष्टि से नहीं अन्तर्मन की संरचना में थी । अलगाव वेश विन्यास का नहीं विचार विन्यास का था । उसे पता नहीं था कि कथा प्रवचन पल्ला झाड़ कर भी सुने जाते हैं ।

संरजाम सिमटने लगा पर विचारों के वितान फैलने लगे । 'मुझे भगवत्प्राप्ति करनी है मन में यही घुमड़न चल रही थी । यों वह पढ़ा लिखा था अभी हाल में ही एम.एस.सी. प्राणिशास्त्र में किया था । विज्ञान का विद्यार्थी होने के कारण उसमें बुद्धि कौशल तो था पर साथ में श्रद्धा भी पर्याप्त थी । विज्ञान-आखिर सत्य की शोध ही तो है और कोई आवश्यक तो नहीं कि यह शोध प्रचलित दायरे में पूरी हो । वह सोचने लगा, प्रत्येक नयी शोध पुराना दायरा लांघती है नया आयाम खोलती है तो यह शोध भी . . । चिन्तन की हवा में अतीत के पन्ने फड़फड़ा उठे । उसे याद आया कि विद्यालय में बिताया गया जीवन मानस पटल पर साकार हो उठा । प्रयोगशाला का वह कक्ष जहाँ वह जन्तुओं की चीर फाड़ करते कहीं किन्हीं गहराइयों में खो जाया करता । साथी टोकते क्या सोचने लगे माधव ! जीवन का सार खोज रहा हूँ डूबते मन से बुलबुलों की तरह जवाब फूट पड़ता । साथी खिलखिला पड़ते शिक्षक मुस्करा देते । साथियों की दृष्टि में वह बुद्धिमान, जुझारू पर सनकी था । शिक्षक उसे दार्शनिक वैज्ञानिक कहते थे । किसने उसे ठीक से समझा कुछ पता नहीं पर कुछ भी हो यह महाराष्ट्र वासी युवक अपने विगत में सभी से सम्मानित रहा । उसने अपनी अन्तहीन यात्रा लक्ष्य की दिशा में आरंभ कर दी ।

चलते हुए उसे लगभग तीन महीने बीत गए । इन चौरासी दिनों में जैसे चौरासी लाख योनियों का अनुभव हो गया है । षटरस और नव रस में सिर्फ एक मृदु को छोड़ अन्य सभी का स्वाद वह चख चुका । भगवत्प्राप्ति तो नहीं हुई हाँ जीवन जरूर श्मशाम जैसा भयावना लगने लगा । अध्यात्म साधु-मन्दिर मठ इनके बारे में सोच कर एक विरक्तिजनक मुस्कान ही उभरती । पर नहीं सब एक जैसे यह भी तो एक साधु ही है । मात्र वेश नहीं गैरिक वस्त्रों की अग्नि मंजूषा में गुणों की अपार सम्पदा सिमटी है ।

'तुम पहले स्नान भोजन करो ।' गैरिक वसन से आवेष्टित परिव्राजक ने युवक की पीठ पर हाथ फेरा जो भगवान को पाना चाहता है , भगवान उसे स्वयं पाना चाहते हैं । वह तो उन्हें पायेगा ही ।

युवक ने स्नान किया और थोड़ा सा प्रसाद शीघ्रतापूर्वक मुख में डाल कर जल पी लिया। उसे भोजन स्नान की नहीं पड़ी थी । उसकी अभीप्सा तीव्र थी लगन में प्राण थे । वह कुछ मिनटों में ही महात्मा जी के पद प्रान्त में बैठ गया ।

पहले तुम यह बताओ कि *''तुमने अब तक किया क्या''* ? साधु ने तनिक स्मित के साथ पूछा ।

'बड़ा लम्बा पुराण है ' ! उसने अपनी बात प्रारम्भ की । बताने लगा इधर वह बहुत भटका है । उसे एक योगी ने नेती-धौती-न्यौली ब्रह्मदांतौन तथा अन्य अनेक योग की क्रियाएँ सिखाई । उन क्रियाओं के मध्य ही उसके मस्तक में भयंकर दर्द रहने लगा । बड़ी कठिनाई से एक वृद्ध सज्जन की कृपा से दूर हुआ । उन्होंने ये सभी क्रियाएँ छुड़वा दीं ।

'ये मूर्ख साधु !' कुछ रुष्ट हुए-ये योग की कुछ क्रियाएँ सीख कर अपने अधूरे ज्ञान से युवकों का स्वास्थ्य चौपट करते फिरते हैं । आज कहाँ हैं अष्टांग योग के ज्ञाता । यम-नियम की प्रतिष्ठा नहीं हुई जीवन में और चल पड़े आसन तथा मुद्राएँ कराने । असाध्य रोग के अतिरिक्त और क्या मिलता है इस दूषित प्रयत्न में ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एक ने मुझे कान बन्द करके शब्द सुनने का उपदेश दिया ' एक अन्य योगी मिले जिन्होंने ऐन्द्रजालिक जैसी तमाम क्रियाएँ दिखाईं ।

'योगी'। इस शब्द के साथ ही साधु हँस पड़े बाजीगरी योग नहीं है । अधिकारी के अधिकार को बिना जाने चाहे जिस साधन में जोत दिया जाय वह पशु तो नहीं है । साधु कह रहे थे धारणा-ध्यान समाधि चाहे शब्द योग से हो चाहे लययोग से किन्तु जीवन में चांचल्य बना रहेगा । समाधि कुछ क्रिया मात्र से मिल जायगी, ऐसी दुराशा करने वालों को क्या कहा जाय ।

उसने आगे फिर कहा *"मैं सम्मान्य धार्मिक अग्रणियों के समीप भी रहा और विशाल मठों में भी । कुछ प्रख्यात पुरुषों ने मुझ पर कृपा करनी चाही । उसके स्वर में व्यंग नहीं, केवल खिन्नता थी जो अपने आश्रय धर्म का निर्वाह नहीं कर पाते , जहाँ सोने चाँदी का सेवन और सत्कार है, जो अनेक युक्तियाँ देकर शिष्यों का धन और शिष्याओं का धर्म अपहरण करने की कोशिश में लगे रहते हैं, वहाँ परमार्थ और अध्यात्म भी है इसे मेरी बुद्धि ने स्वीकार नहीं किया ।"*

"ओह !" इन अनुभवों ने साधु को खिन्न कर दिया । वह बोल पड़े "जहाँ संग्रह है विलासिता है, वहाँ साधुता कहाँ है । जहाँ सदाचार नहीं, इन्द्रिय तृप्ति है, वहाँ से भगवान बहुत दूर हैं । सच तो यह है कि हमें कुछ न करना पड़े कोई आशीर्वाद देकर सब कुछ कर दे, इस लोभ से जो चलेगा वह ठगा तो जाएगा ही । आज धन और नारी का धर्म जिनके लिए प्रयोजन है ऐसे वेशधारियों का बाहुल्य इसी कारण है । पर भगवान जहाँ हैं जहाँ से उनकी पुकार उठ रही है उस ओर तो तुमने आखें उठाकर भी नहीं देखा । तुम सिर्फ भटकते रहे और इस भटकन से उपलब्धि का क्या वास्ता ?"

"कहाँ है भगवान ? कहाँ से उठती है उनकी पुकार" ? लगभग चौंकते उसने ये सवाल पूछे । उसे लगा विषाद और आल्हाद की लगभग एक साथ अनुभूति है । विषाद समय गँवाने का और आल्हाद सही दिशा की ओर उन्मुख होने का ।

'मानवता की भूमि पर बने सेवा के मन्दिर में प्रेम की भाव मय मूर्ति बन कर प्रतिष्ठित है वह । उन निराकार की प्राप्ति संवेदना के रूप में होती है । जन मेदिनी के मध्य से उठ रहा कारुणिक रव उनकी पुकार है, उन्होंने अपना अनुभव कह सुनाया । मुझे भगवत्प्राप्ति इसी रूप में हुई है ।

सन्त की वाणी ने युवक के अन्तर्तम को झकझोर दिया । श्री रामकृष्ण परमहंस के इन शिष्य की बात सुनकर उन्हें लगा जैसे अनुभव साकार हो बोल रहा हो । मुर्शिदाबाद में अकाल पीड़ितों की सेवा और अपने कष्ट सहिष्णु जीवन के कारण वे प्रायः देश भर में विख्यात हो चुके थे । यहाँ सारगाछी में भी नंग धड़ंग अनाथ बालकों को लेकर आश्रम में रहते । इनका व्यक्तित्व निर्माण ही उनकी उपासना थी । एक दिन तो सभी आश्चर्य में डूब गए जब उन्होंने एक काले-कलूटे नंग धड़ंग बालक को पुरुष सूक्त के मंत्र से स्नान कराया वस्त्र आदि दिए भोजन आदि की व्यवस्था कर अपनी पाठशाला में भरती कर लिया । इस विचित्र किन्तु सत्य के इस अद्भुत संस्करण ने युवक के चिन्तन की चूलें हिला दीं ।

"मुझे भगवत्प्राप्ति के लिए क्या करना है यह ठीक मार्ग आप बताने की कृपा करें " वह उनकी ओर ताकते हुए बोल पड़ा ।

भगवत्प्राप्ति के लिए करना होगा पुरुषार्थ ऐसा पुरुषार्थ जो ललकार कर कह सके कोई भी व्यक्ति दुष्कृत्य से मेरे सहयोग पर निर्भर नहीं रह सकता कोई भी व्यक्ति मेरी उपस्थिति में निर्लज्जभाव से अनिष्ट चर्चा नहीं कर सकता । ऐसा पुरुषार्थ जब संवेदनामय हो उठेगा अथवा कारुणिक संवेदना जिस क्षण पुरुषार्थ मय हो उठेगी समझो उसी क्षण भगवत्प्राप्ति हो गई ।

साधु के ये शब्द उसे अग्नि मंत्र लगे । इसी अग्निमंत्र से वह दीक्षित हुआ । ऐसी हो भगवत्प्राप्ति करूँगा युवक की वाणी में संकल्प के प्राण थे ।

युवक की संकल्पित वाणी से अभिभूत होकर उन्होंने उसके मस्तक पर अपना आशीर्हस्त रखा *"बेटा ! इस काम के लिए बड़ी घोर तपस्या की आवश्यकता है । जीवन विधाता जिसे अपना कठोर कृपाण देते हैं उसमें उसे ग्रहण करने की शक्ति है या नहीं इसकी कठिन परीक्षा वे लेते हैं । अविचलित रहो, महान संकल्प ही बड़ी वस्तु है ।"* इस बड़ी वस्तु को आजीवन धारण करने वाले युवक माधवराय सदाशिवराव गोलवलकर को भारत ने गुरुजी के रूप में जाना । डॉ. हेडगेवार को उनमें अपना उत्तराधिकारी मिला । उनको मिली भगवत्प्राप्ति जिसकी उन्हें चिर अभीप्सा थी । ठीक उनके गुरु-स्वामी अखण्डानन्द की तरह जनक्रन्दन में उन्हें नियन्ता की पुकार सुनाई पड़ी । पुकार के वे स्वर युग सन्धि की वेला से सतत् उठ रहे हैं । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक मनश्चिकित्सक के रूप में पूज्य आचार्यश्री

महायोगी का बहुआयामी व्यक्तित्व सागर में डूबी बर्फ शिला की भाँति होता है । सर्वसाधारण उसे देख और समझ ही कितना सकता है ? कभी–कभी तो उसे यह भ्रम होने लगता है कि यह भारी भरकम जहाज को चकना चूर करने की क्षमता वाली विशालकाय चट्टान न होकर बर्फ का एक छोटा सा टुकड़ा भर है । किन्तु दोष भ्रमित का भी नहीं, वह अपनी सीमित दृष्टि के बूते जाने भी कितना ? कुछ भी हो इनका शीतल स्पर्श अनेकों संतप्त जीवनों में नव प्राण तो भरता ही है । व्यथा उद्वेग, विक्षोभ, चिन्ता तनाव आदि न जाने कितने मनोविकारों से ग्रसित व्यक्ति उसके पास आकर मनःसन्तापों से छुटकारा पा स्वस्थ सन्तुष्ट जीवन की ताजगी पहले से भी अधिक महसूस करते हैं ।

उपनिषद प्रसंग, वेद मीमांसा ग्रन्थों के रचनाकार मनीषी अनिर्वाण ने कहा था कि योगी मानव जाति का चिकित्सक होकर जीता है । चिकित्सक वही होगा न जो मनुष्य प्रकृति का पूर्ण जानकार हो, उसकी संरचना व क्रियापद्धति में निष्णात् हो । जिसे विकृति की क्रिया और उसके स्थान की भली प्रकार जानकारी हो । इस सबके बिना तो 'नीम हकीम खतरे जान' वाली उक्ति ही चरितार्थ होगी । शरीर शास्त्री सिर्फ शारीरिक गतिविधियों की जानकारी भर रखते हैं । फिर उनने यह भी भ्रम पाल रखा है कि मन भी शरीर का ही कोई टुकड़ा है । रही मनोचिकित्सकों की बात तो उनके अध्यवसाय से इन्कार नहीं किया जा सकता । पर अपने अधूरेपन को वह स्वयं स्वीकारने लगा है । मन तो मानव चेतना का एक छोटा सा हिस्सा भर है । समग्र की जानकारी प्रवीणता हासिल किए बगैर क्या उसके एक अंग को सुधारा जा सकता है ?

"मेण्टल हेल्थ एण्ड हिन्दू साइकोलाजी" के लेखक स्वामी अखिलानन्द ने स्पष्ट किया है कि एक योगी ही सफलतम मनोचिकित्सक हो सकता है । क्योंकि वह मानव प्रकृति की सूक्ष्मताओं और विचित्रताओं से भिज्ञ होता है । लूबॉस्की ने एक सफल मनोचिकित्सक के व्यक्तित्व के गुणों की सन् १९५२ में अमेरिकन एसोशियेशन की एक मीटिंग में चर्चा करते हुए कहा "मात्र मनोविज्ञान की विधियों तथा तकनीकों में प्रशिक्षण पाने वाले व्यक्ति मनोचिकित्सक नहीं हैं । अधिकतम उसे मनोवैज्ञानिक तकनीशियन भर कहा जा सकता है । अच्छे मनोचिकित्सक अधिक सम्वेदनशील तथा चिन्तन एवम् निर्णय लेने में स्वतन्त्र होते हैं । वे व्यक्तियों से अधिक सम्मान पाते हैं व्यक्ति उन्हें पसन्द करते हैं" . .। परम पूज्य गुरुदेव ऐसे ही मनोचिकित्सक थे । उनके इस रूप का परिचय, अनुभव यों दो–चार, दस, सौ, हजार नहीं बल्कि लाखों को हुआ है । पर शायद वे उन्हें इस तरह न पहचान सके हों ।

उन्होंने स्वयं इसे स्वीकारते हुए "हमारी वसीयत और विरासत" में एक स्थान पर लिखा है "हमारे पास कितने ही रोते हुए उद्विग्न विक्षिप्त आए हैं और हँसते हुए गए हैं । " यद्यपि उनके बहुमुखी जीवन को मनश्चिकित्सक के छोटे से दायरे में तो किसी भी तरह नहीं समेटा जा सकता , किन्तु फिर भी उनके व्यक्तित्व का वह आयाम जिसने मार्गदर्शन दिया जो लोगों से मिला मिलने वालों की अन्तराल की गहराइयों में घुस कर उसे सँवारा, निश्चित रूप से 'मनश्चिकित्सा ' वाला पक्ष उजागर करता है ।

वैज्ञानिक मनोविज्ञान की कसौटी पर उनके इस काम को परखें तो परिणाम को देखकर एक सुखद आश्चर्य की अनुभूति हुए बिना न रहेगी । एरिकफ्राम ने आज के युग को मनःसन्ताप के युग के रूप में स्वीकारा है । आज के व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन की दशाओं को देखने पर उसकी यह बात सौ टंच खरी दिखाई देती है । मनोरोग कितने होते हैं इसकी पूरी गणना के बारे में विशेषज्ञ अभी एक मत नहीं हो पाए । हाँ शैफर और लॉजरस जैसों ने इन सबको तीन हिस्सों में बाँट दिया है मनोस्नायु विकृतियाँ, मनोविकृतियाँ और व्यक्तित्व विकार । पहले में चिन्ता, तनाव, अति संवेदनशीलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भय , आदि आते हैं, दूसरे में हिस्टीरिया , भय, उद्विग्नता आदि की गणना होती है । इसे सरल ढंग से समझाते हुए पूज्य गुरुदेव ने लिखा है कि मनोरोगी अपनी दब्बू या आक्रामक प्रकृति के अनुसार घुटन या उन्माद में जीता है । इन्हीं दोनों की अन्तर्क्रिया व्यक्तित्व की अनेकानेक गड़बड़ियों के रूप में सामने आती हैं ।

मनोरोग होते क्यों हैं ? इसका कारण मनोवैज्ञानिक कितना स्पष्ट कर पाए यह तो विवाद का विषय है । पर आचार्यश्री स्वयं एक स्थान पर अवश्य लिखते हैं कि मनोरोग और कुछ नहीं कुचली, मसली , रौंदी गई भावनाएँ हैं । इनकी यह दशा हमारे अपने अथवा परिवेश के दूषित चिन्तन के कारण होती है । 'सतयुग की वापसी' पुस्तक में वह कहते हैं ''*विकृतियाँ दिखती भर ऊपर हैं । इनकी जड़ें गहराई में कुसंस्कारिता के रूप में छिपी हैं । भावनाओं की यह टूट-फूट कब और कैसे हुई ? इसके भेद के अनुसार* मनोरोगों के *अनेकों भेद हो जाते हैं ' ।'*

जहाँ तक इनके ठीक करने का सवाल है, संसार भर के क्लीनिकल साइकोलाजिस्ट चार विधियाँ सुझाते हैं । रेचन, सुझाव, प्रत्यायन और पुनर्शिक्षा । बाकी प्रणालियाँ किसी न किसी तरह इनकी सहायता की हैं । इनमें से कोई एक विधि का प्रयोग करता है कोई दूसरी । उन्होंने इनमें से सभी विधियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया । रेचन-अर्थात् किसी के अन्दर दमित भावों को उगलवाना कोई सरल काम नहीं । मनोचिकित्सकों को इस हेतु सम्मोहन जैसी कितनी ही विधियों का प्रयोग करना पड़ता है । पर उनके सम्मोहक व्यक्तित्व के सामने आकर उनके विश्वास से अनुप्राणित होकर वह सारा हाल कह देते थे जिसे उन्होंने अभी तक अपनी पत्नी-पति पिता जैसे घनिष्टतम सम्बंधियों से छुपाए रखा ।

इसके बाद वह आने वालों के जीवन के लिए हितकारी सुझाव देते । अब इस स्थिति में क्या करना है ? न केवल इसका ब्योरा बताते बल्कि आगे सहायता करने का वचन देते । उनके सुझाव में सिर्फ मनोरोग का शमन ही नहीं अपितु उच्चतर जीवन के लिए पर्याप्त मार्गदर्शन भी होता । यों उनके सामने आकर हर कोई अपने दिल का हाल खुशी-खुशी बखान देता । फिर भी ऐसे नए लोग भी होते , जिन्हें पहली बार आने के कारण झिझक होना स्वाभाविक था । उनके रेचन के लिए उन्हें वह विधि प्रयोग करनी पड़ती जिसके लिए श्री माँ ने मातृवाणी में कहा है कि ''मैं सामने खड़े व्यक्ति की आँखों से उतर कर उसकी समग्र सत्ता की सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातें पकड़ लेती हूँ । '' इस सक्षम विधि से वे सारी बातों को जान हँसते-हँसते ऐसी बातें सुना देतीं जो न केवल चिकित्सा रूप होतीं बल्कि व्यक्ति उनको अपना मान बैठता ।

मनोवेत्ताओं ने मनश्चिकित्सा को दो वर्गों में बाँटा है । पहली वैयक्तिक दूसरी सामूहिक । वैयक्तिक में रोग की तीव्रता होती है । ये सब विकट उन्माद या घुटन में जकड़े होते हैं । सामूहिक चिकित्सा में उन लोगों की गणना की जा सकती है जिन्हें चिन्ता , अनिद्रा, स्नायविक दौर्बल्य जैसी व्याधियाँ होती हैं । आध्यात्मिक सैनीटोरियम के रूप में विकसित शांतिकुंज में प्रारम्भ के दिनों से अब तक के शिविरों का विश्लेषण इस सन्दर्भ में किया जाय तो उपलब्धियाँ चमत्कृत कर देने वाली होंगी । प्राण प्रत्यावर्तन, अनुदान , जीवनसाधना कल्प साधना जैसे शिविरों में अपनी बीती बातों को उन्हें लिखकर देना, साधनात्मक उपचार, औषधि कल्प जैसी विधाओं से व्यक्तियों के जीवन में अकल्पनीय परिवर्तन घटित हुआ ।

उनके द्वारा आरंभ की गयी सामूहिक मनोचिकित्सा का एक और सशक्त पक्ष है ''गायत्री मंत्र '' । ''ऑकल्ट साइकोलाजी ऑफ हिन्दूज'' में एन. शुभनारायनन ने वैयक्तिक एवम् सामूहिक मनोचिकित्सा की उत्तम विधा के रूप में इसे स्वीकारा है । संक्षेप में इसे व्यक्तित्व समायोजन की उन्नत विधि के रूप में माना गया है । इसका जप अपने आप में पूर्ण प्रयोग है । जिसका यथाविधि पालन करने पर शब्द शक्ति का शरीर पर पड़ने वाला प्रभाव , जप की लय के द्वारा प्राण का परिमार्जन और एकाग्रतापूर्ण चिन्तन के द्वारा अचेतन का रूपान्तरण घटित होता है । इतना ही नहीं इन तीनों का समायोजन सत्ता के उस मूलभूत केन्द्र के आस पास होता है जिसे कार्लगुस्ताव जुंग ने अपनी भाषा में 'सेन्टर' कह कर सम्बोधित किया है । इसमें प्रयोगकर्ता साधक का चेतन मन एकाग्र और हलचल रहित होने से सम्प्रेषित किए जा रहे मंत्र के दिव्य भाव उस स्तर का पुनर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगते हैं, जिसे मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य में बालकः बर्बर, दमित वासनाओं का पिटारा कहा है । यह अपने आपमें मनश्चिकित्सा क्षेत्र की अभूतपूर्व उपलब्धि है ।

पू. गुरुदेव की भूमिका महज एक मनोचिकित्सक भर की नहीं रही । बल्कि उन्होंने सैद्धान्तिक व प्रायोगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी अदभुत काम किया है । इस सम्बन्ध में यदि उन्हें भारतीय मनोविज्ञान का पुनर्जीवन करने वाला कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी । यद्यपि डॉ. यदुनाथ सिन्हा की "इण्डियन साइकोलाजी " स्वामी अखिलानन्द की "हिन्दू साइकोलाजी " आदि गिने-चुने ग्रन्थों में भारतीय ऋषि चिन्तन में यत्र-तत्र बिखरे मनोवैज्ञानिक तत्वों का सुन्दर संकलन किया गया है । इन मनीषियों का कार्य प्रशंसनीय होते हुए भी प्रायोगिक कसौटी पर न कसे जाने के कारण अधूरा ही कहा जाएगा ।

सिद्धान्तों को प्रयोग की कसौटी पर सिद्ध करने के लिए उन्होंने ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान की संस्थापना की । ताकि शांतिकुंज के आध्यात्मिक सैनीटोरियम में व्यक्तित्व की अनगढ़ता को उचित मार्गदर्शन में सँवार रहे व्यक्तियों का आधुनिक विधियों से सूक्ष्म व व्यापक परीक्षण किया जा सके । वैज्ञानिक कसौटी पर कसी जा रही इस पद्धति को उन्होंने दो विधाओं का एकीकरण कर पूर्णता दी ।साइकियाट्रिस्ट सामान्यतया कुछ गिनी चुनी औषधियों पर निर्भर रहते हैं और साइकोलाजिस्ट कुछ तकनीकों पर । इन औषधियों का स्नायु संस्थान पर कितना खराब असर पड़ता है इसे कोई भी डेविड जान इंग्लेबी द्वारा संपादित कृति "क्रिटीकल साइकियाट्री " पढ़ कर जान सकता है और मनोवैज्ञानिक भी अपनी तकनीकों का अधूरापन उस समय अनुभव करने लगते हैं जब रोग तीव्र होता है । पूज्य गुरुदेव ऋषि प्रणीत आयुर्वेद की प्रभावकारी औषधियों एवम् उपनिषद, योग आदि शास्त्रों में वर्णित विभिन्न तकनीकों का एकीकरण कर मनश्चिकित्सा की ऐसी समग्र पद्धति तैयार कर गए , जो भावी मनश्चिकित्सकों के लिए आधार भूमि प्रस्तुत करेगी ।

सैद्धान्तिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में उनकी गवेषणाओं का विस्तार कर पाना तो यहाँ सम्भव नहीं । फिर भी मानव की मूल प्रवृत्ति के रूप में व्यक्तित्व के सन्दर्भ में उनकी अवधारणा का स्पष्टीकरण करने से काफी कुछ झलक मिल जाती है । उन्होंने फ्रायडवादियों की कामुकता के स्थान पर महानता, उल्लास और सहकारिता को मूल प्रवृत्तियों को प्रमाणित कर एक नया सोपान रचा । इसी प्रकार व्यक्तित्व के केन्द्रों की जगह तीन वर्ग किए-सामान्य, असमान्य और अतिसामान्य । पहले में औसत व्यक्ति दूसरे में मनोरोगी , तीसरे में महामानवों को रखा । इसके पहले मनोरोगियों एवम् महामानवों दोनों को असामान्य करार करने की प्रथा थी । साथ ही व्यक्तित्व को पर्सोना अर्थात् मुखौटा के स्थान पर गुणों के समुच्चय के रूप में मान्यता दी ।

महात्मा उधर से निकले, तो युवती ने रोक कर पूछा-" महाराज ! क्रोध न आवे, घर में कलह न हो, इसका कोई उपाय बतलाते जाइए, बड़ा उपकार होगा । आप तो शास्त्रों के ज्ञाता हैं, बड़े तपस्वी हैं ।"

महात्मा ने बिना देर किये उत्तर दिया "बेटी ! क्रोध के उपचार यों तो शास्त्रों में अनेक दिये हैं, किन्तु तू उन झंझटों में मत पड़ । एक सरल उपाय है कि जब भी तुझे क्रोध आवे और कलह का प्रसंग आता दिखाई दे, तू अपने मुँह में पानी का घूँट भर कर पाँच मिनट तक बिना निगले बैठी रहा कर । न तुझसे बोलना बन सकेगा, न तकरार आगे बढ़ेगी ।"

युवती का समाधान हो गया ।

इसी तरह उनकी अनेकों मौलिक गवेषणाएँ हैं जो मनोवैज्ञानिक चिन्तन को एक नई दिशा सुझाने वाली हैं । इनका निकट भविष्य में उसी तरह प्रकटीकरण होगा जैसे मनश्चिकित्सक ए. एस. दलाल ने "लिविंग विद इन" व मनोवैज्ञानिक डॉ. इन्द्रसेन ने "इन्टीग्रल साइकोलाजी" में श्री अरविन्द के चिन्तन में व्याप्त मनश्चिकित्सा व सैद्धान्तिक मनोविज्ञान के तत्वों को भली प्रकार स्पष्ट किया । इनसे भी कहीं अधिक व्यापक और शोधपरक संकलन अगले दिनों जिज्ञासुओं के समक्ष आएगा । जो अपनी उपादेयता मनोविज्ञान के नूतन आयाम के रूप में प्रस्तुत करने के साथ पूज्य गुरुदेव का परिचय मनोविज्ञान के दिशादर्शक के रूप में देने में समर्थ होगा । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रों से झाँकता एक विराट पुरुष का व्यक्तित्व

आज के युग में चारों ओर दृष्टि डालते हैं तो छलावा, दुरभि सन्धियाँ, आपसी व्यवहार में कर्कशता ही दिखाई पड़ती है। दैनन्दिन जीवन की कठिनाइयों, प्रतिकूलताओं से परेशान मन शान्ति चाहता है दिलासा चाहता है, उसका मन करता है कि कोई अपना स्नेह भरा हाथ उसकी पीठ पर भी फिराए। किन्तु उद्विग्न करने वाले, जीवन का निषेधात्मक पहलू दिखाने वाले अधिक एवं जीवन को ऊँचा उठाने की प्रेरणा देने वाले कम ही देखे जाते हैं। साहित्य यह सेवा कर सकता था व व्यक्ति के मनोबल को ऊँचा उठाकर उसे सृजनात्मक दिशा दे सकता था। किन्तु वहाँ से भी हताशा ही हाथ लगती है। उसमें समाज में फैली विपन्नताओं, कष्ट कठिनाइयों का अच्छा खासा चित्रण रहता है जो व्यक्ति को सोचने की, जीने की सही दिशा देने के स्थान पर उसमें निराशा का संचार करता रहता है। ऐसी परिस्थितियों में विश्वास नहीं होता कि मात्र अपनी लेखनी के जादू से कुछ पंक्तियों द्वारा ममत्त्व भरा परामर्श देकर एक सामान्य से दीखने वाले सद्गृहस्थ ने न केवल अनगिनत व्यक्तियों में नूतन प्रेरणा का अभिसंचार किया वरन् प्रगति की दिशा दिखा कर उन्हें महामानव बनने नवसृजन का निमित्त बन जाने तक का श्रेय प्रदान किया,

जिस युग पुरुष ने यह अपौरुषेय पुरुषार्थ संपन्न किया, हमारे बीच जो विगत पाँच दशक से हमारा अपना ही एक अभिन्न अंग बनकर हमारे हृदय पर राज्य करता रहा, उसके इस पहलू को इस तथ्य से जाना जा सकता है कि लगभग पचास हजार परिजन पूरे भारत में ऐसे हैं जिनके पास पूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के हाथ से लिखे, मूर्च्छितों में भी प्राण फूँकने वाली संजीवनी से ओतप्रोत पत्र अभी भी सुरक्षित हैं। यही पत्र इन साधकों के जीवन की अमूल्य निधि हैं व वे उन्हें स्मरण करते रहने के लिए स[दा] उन्हें छाती से लगाए रखेंगे। अब स्थूल रूप से तो हमारे बीच नहीं हैं किन्तु उनका बहुमू[ल्य] परामर्श जो दैनन्दिन जीवन संबंधी था, साधना [से] जुड़ा हुआ था तथा अन्तरंग की गहन पर्तों [को] उघाड़ कर अंतःकरण की चिकित्सा करता च[लता] था, इन पंक्तियों के रूप में हमारे पास अभी [भी] है। पत्र लेखन की यह शैली संभवतः आने [वाले] वर्षों में अनगिनत छात्रों के लिए शोध का वि[षय] बने। फिर भी जो इस पक्ष से अभी त[क] अनभिज्ञ हैं, संभवतः उन दिनों नहीं बाद में [ही] महामानव व ऋषि युग्म के तंत्र से जुड़े हों उनको लाभान्वित करने के लिए ऐसे कुछ पत्रों [के] महत्वपूर्ण अंश यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

२१-६-१९५१ को लिखे गए अपने एक पत्र [में] पूज्य गुरुदेव अपने एक परिजन को लिखते [हैं] –"आप हमारी आत्मा के टुकड़े हैं। इस मा[नव] शरीर से परम निस्वार्थ एवं सात्विक प्रेम जित[ना] कोई किसी से कर सकता है, उतना ही हम आ[प] से करते हैं। यह आप से कहने की नहीं [वरन्] मनमें रखने की बात है। आप विश्वास रखें जब तक हम जीवित हैं, आपको सदा ही अवि[रल] पितृप्रेम प्राप्त होता रहेगा।" इसी प्रकार दिसम्बर १९५० को एक आत्मीय शिष्य को [एक] पत्र में वे लिखते हैं –"आप अपनी आत्मा के [एक] भाग हैं। आप जैसे स्वजनों को भूल जाने [का] अर्थ है अपने आपको भूल जाना। यह [कि]सी प्रकार भी संभव नहीं है। आपके आत्मिक वि[कास] का हमें पूरा पूरा ध्यान है।"

मनोदशा सब की यदाकदा गड़बड़ाती रहती है। ऐसी स्थिति में सही मार्गदर्शन मिले तो कहाँ [से]? हर व्यक्ति हर समय तो चलकर किसी के [पास] जाकर अपनी मन की बात कहता नहीं रह सक[ता]। ऐसी स्थिति में अगणित परिजन अपने मनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्य गुरुदेव को लिख भेजते व हल्के हो जाते क्योंकि वे निश्चिन्त थे कि उनके मन पर छाया घटाटोप इसके साथ ही मिट जाएगा । समाधान भी ऐसा मर्मस्पर्शी आता कि व्यक्ति अंदर से हिल जाता था । एक सज्जन को ऐसी ही परिस्थितियों में लिखे गए एक पत्र का जवाब इस प्रकार मिला "हमारे आत्मस्वरूप ,

आपका पत्र मिला । धूप-छाँह की तरह मनुष्य के जीवन में तीनों गुणों के उभार आते रहते हैं । समुद्र में ज्वार भाटे की तरह मन भी कई बार उतार चढ़ाव के झोंके लेता रहता है । महाभारत के बाद पाण्डवों ने श्री कृष्ण जी से युद्ध के समय कही हुई गीता पुनः सुनाने की प्रार्थना की तो श्री कृष्ण जी ने उत्तर दिया कि उस समय मेरी जो आत्मिक स्थिति थी, वह अब नहीं है, इसलिए वह गीता तो नहीं सुना सकता पर दूसरा उपयोगी ज्ञान "अनुगीता " के नाम से सुनाता हूँ । इस प्रसंग से यह विदित होता है कि बड़े-बड़ों की मनोदशा में भी उभार आते रहते हैं । आपको भी वैसा हुआ हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । बदली हटते ही सूर्य का प्रकाश प्रकट हो जाएगा । आपका आधार बहुत मजबूत है । उसे पकड़े रहने वाले व्यक्ति की कभी दुर्गति नहीं होती ।" यह पत्र २१ नवंबर १९५२ को लिखा गया था । कितना सशक्त मनश्चिकित्सक के स्तर का प्रतिपादन है एवं प्रमाणित करता है कि यदि व्यक्ति की अंतरंग परतों को स्पर्श कर मनःस्थिति ठीक बनाये रखने का परामर्श दिया जाय तो उन्हें ऊँचा उठने हेतु समर्थ आधार दिया जा सकता है । पूज्य गुरुदेव ने आजीवन यही सेवा की ।

१२-११-५३ को एक अखण्ड-ज्योति पाठक को लिखे एक पत्र में पूज्य आचार्य श्री लिखते हैं "आप हमें हमारी आत्मा के समान प्रिय हैं । हम सदा आपके समीप हैं । जिस क्षण भी आप आवश्यकता समझें , आपके घर पहुँचने को अविलम्ब तत्पर हैं । " यही नहीं वे पत्रों में ममत्व भरे मार्गदर्शन के साथ रचनात्मक दिशा निर्देश भी दिया करते थे । इसी पत्र में वे लिखते हैं-"आपका समय अमूल्य है । इसे आत्मवत् ही महत्त्वपूर्ण कार्यों में लगाना है । आपके आसपास का मण्डल आपके द्वारा आत्मिक ज्ञान के प्रकाश से आलोकित होगा । इस दिशा में आपको विश्वामित्र और भगीरथ जैसा प्रयत्न करना है । राजनीतिक झंझटों से आपकी शक्ति बचा कर उसी क्षेत्र में लगायी जानी है । आप इस के लिए तैयारी करते रहने में संलग्न रहें । "

यही मार्गदर्शन व्यक्ति की प्रसुप्त क्षमताओं को उभार कर कहाँ से कहाँ पहुँचा देता था । जो आज राजनीति के शीर्ष पर हैं , समाज सेवा के क्षेत्र में काफी ऊँचे सोपानों को पार कर चुके हैं उन्हें समय समय पर मिला बहुमूल्य मार्गदर्शन ही मूल प्रेरणा का स्रोत बना ।

अपनी तप साधना से औरों को लाभान्वित करना ही सदैव पूज्य गुरुदेव का लक्ष्य रहा । वे २१ जनवरी १९५९ को लिखे गए एक पत्र में एक घनिष्ट आत्मीय को लिखते हैं-"हम अधिक शक्ति प्राप्त करने जा रहे हैं और उसका परिपूर्ण लाभ आपको मिलने वाला है । आपके साथ हमारी आत्मा अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है और वह तब तक जुड़ी रहेगी जबतक हम दोनों पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर लेते ।"

परिजन विभिन्न साधनाओं की जटिलताओं में उलझकर उनसे मार्गदर्शन लेते थे । कोई कुण्डलिनी, चक्रवेधन तथा कोई हठयोग अथवा विरक्ति प्रधान साधना का विधान जानने व मार्गदर्शन प्राप्त करने का हठ करता तो उनका उत्तर यों होता था- "शबरी, निषाद, रैदास, आदि अनेक साधारण स्थिति के साधक बिना विशिष्ट योग साधनाओं के ही उच्च लक्ष्य को प्राप्त कर सके थे । आप भी वैसा ही कर सकेंगे । गृहस्थ त्यागने की, नौकरी छोड़ने की आपको आवश्यकता न पड़ेगी । कोई चमत्कारिक अनुभव आपको भले ही न हो पर आप गृहस्थ योग की भूमिका का ठीक प्रकार पालन करते हुए योगी और यतियों की गति प्राप्त कर लेंगे । आप इस संबंध में पूर्ण निश्चिन्त रहें और सब सोचना विचारना हमारे ऊपर छोड़ दें । " यह पत्र २१ फरवरी १९५४ को एक जिज्ञासु आत्मीय परिजन को लिखा गया था । इससे प्रतिपादित होता है कि वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक के भटकने की सारी संभावनाओं की जानकारी रखते हुए मनःस्थिति के अनुरूप एक चिकित्सक के स्तर का ऐसा परामर्श देते थे जिससे कोई आकस्मिक कदम न उठाकर व्यक्ति सहज जीवन साधना के पथ पर सुगमतापूर्वक चलता रह सके ।

आध्यात्मिक यात्रा ठीक चल रही है या नहीं इस संबंध में अपने सारगर्भित पत्र में वे लिखते–"सांसारिक झंझट तो आपके साथ इसलिए चलते रहेंगे कि जिसका जितना आपको देना–लेना है , उसको चुकाने की व्यवस्था करनी है ताकि आगे के लिए कोई हिसाब किताब ऐसा न रह जाय जो बन्धन कारक हो । आपका वर्त्तमान कालीन कोई कर्म बंधन कारक न बनने दिया जायेगा । उसका तो हम स्वयं परिमार्जन करते रहते हैं । उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करनी है । चिन्ता तो केवल पूर्व संचय की है जिसका लम्बा हिसाब–किताब इसी जीवन में बेबाक करना आवश्यक है । " कितना आश्वासन देता था यह कथन उस व्यक्ति को जो कर्म , बंधन, मोक्ष की उहापोह में फँसा इधर–उधर भटकता रहा था ।

अपनी समस्या पत्र पाते ही सुलझती देख सहज ही भावनाशील परिजन कभी कभी कुछ राशि "अखण्ड–ज्योति संस्थान " के नाम भेज देते , तब उनका जवाब होता था–"आपका भेजा हुआ २।।) का मनीआर्डर मिला । आपके पैसे इतनी उच्च कोटिकी श्रद्धा से भरे होते हैं कि उनको व्यक्तिगत उपयोग में लाते हुए हमारा अन्तःस्तल काँप जाता है । इन्हें पचाने के लिए उच्चकोटि का ऋषित्व अपने अन्दर होना आवश्यक है । इसलिए आमतौर से आपके पैसों को परमार्थ में लगा देते हैं । यदि इस राशि का अन्न का एक कण भी हमारे उपयोग में आएगा तो उतने दिन की हमारी तपश्चर्या एवं सेवा साधना आपकी होगी व पुण्य आपको हस्तान्तरित होगा ।"

क्या यह पंक्तियाँ पढ़ते हुए पाठकों को नहीं लगता कि इस युग पुरुष ने अपने वर्तमान विशाल परिकर को बनाने , संगठित करने के लिए कितने प्रचण्ड स्तर की तपश्चर्या की है ? जिसने धनाध्यक्षों के धन को ठुकरा दिया, स्वेच्छा से भे[जे] गए परिजनों की राशि को सत्प्रयोजनों में लगा दि[या] वह निश्चित ही नरसी मेहता के, बापा जलाराम [के] स्तर का उच्चकोटि का साधक रहा होगा जि[से] पुण्य के बीजों को बोने के बदले में अनगिनत गु[नी] वाली फसल काटने को मिली । लाखों की श्र[द्धा] सद्भावना निस्पृहता, निर्लोभिता की कड़ी परीक्षा [से] गुजर कर ही अर्जित की जा सकती है, इस त[थ्य] का साक्षी रहा है पूज्यवर का जीवन । जो बाबा बिना तपे आशीर्वचनों की मृगमरीचिका में, अ[पने] शारीरिक गठन एवं आकर्षक व्यक्तित्व के माध्यम [से] शिष्यगणों को उलझाते व ठगते रहते हैं, उन[के] लिए यह एक सिखावन है कि पहले देना सी[खो] तुम्हें मिलता स्वतः जाएगा । समाजरूपी खेत [में] बोए दानों की फसल ढेरों सोना उगल सकती [है]

> *ईसा अपनी शिष्य मंडली समेत प्रचार प्रवास पर जा रहे थे । सन्ध्या को उन्हें एक स्थान पर विराम लेना पड़ा । भोजन की आवश्यकता सामने आई । प्रबन्ध कुछ था नहीं ।*
>
> *ईसा ने कहा"तुम लोगों के पास जो कुछ है उसे इकट्ठा कर लो और मिल बाँट कर खाओ"। ऐसा ही किया गया । सब के सामग्री इकट्ठी करने पर मात्र पाँच रोटी इकट्ठी हुईं । मंडली बड़ी थी । पर भोजन सामग्री को एक जगह जमा कर के जब मिल जुलकर खाया गया तो सभी का पेट भर गया ।*
>
> ***इसे कहते हैं सम्मिलित शक्ति का चमत्कार ।***

यदि निस्पृह भाव से समाज देवता की आराधना [की] गयी हो ?

उपयुक्त मार्गदर्शन पाकर साधक स्तर [के] अंतःकरण वाले सहज ही उन्हें पत्र लिखकर अ[पना] गुरु बनाने को लिखते व पूछते कि इस के [लिए] उन्हें क्या करना चाहिए ? २४ जनवरी १९४५ [को] लिखे एक पत्र में वे परिजन को संबोधित करते [हैं] "गुरु तत्व में हम सब की वैसी ही निष्ठा [होनी] चाहिए जैसी कि अपने मनमें धारण करने का प्रयत्न कर रहे हैं । परन्तु इतना स्मरण र[खना] चाहिए कि मनुष्य आखिर मनुष्य ही है । [उसमें] दोष होना संभव है । मुझे आप निर्दो[ष] समझें । इतना मानने –समझ लेने के बाद अपनी निष्ठा को केन्द्रीभूत करें । देवता मान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से आपकी साधना को हानि पहुँच सकती है ।" कितना बेबाक स्पष्टवादी मार्गदर्शन है । यहाँ यह बताना उचित होगा कि उस समय वे "मैं क्या हूँ ?" जैसी गूढ़ उपनिषद् स्तर की पुस्तक लिख चुके थे । तथापि सभी को सत्साहित्य पढ़ते रहने व सत्यधर्म की दीक्षा लेने का ही आग्रह करते थे । गुरुदीक्षा तो उनने तब देना आरंभ की जब चौबीस लक्ष के चौबीस महापुरश्चरण पूरा कर उनने पूर्णाहुति कर ली । ज्येष्ठ सुदी १० गायत्री जयन्ती १९५३ (संवत्२०१०) को उनने अपने जीवन की पहली दीक्षा तीस साधकों को देकर एक महान शुरुआत की । लगभग पाँच करोड़ व्यक्तियों को मात्र ३६–३७ वर्ष में अध्यात्म पथ पर दीक्षित कर जिसने उच्च प्रगति के सोपानों पर चढ़ा दिया हो वह स्वयं शक्ति अर्जित किए बिना औरों को अनुदान कैसे देता ? यही कारण था कि उनके सत्परामर्श मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक सूत्रों से युक्त होते थे ।

ईश्वर भक्ति संबंधी परामर्श भी अध्यात्म पथ के पथिक अपनी ओर से उन्हें दिया करते थे , जिसे वे सिरमाथे रख अपनी महानता का परिचय देते थे । एक पत्र जो फरवरी १९४६ में लिखा गया, वे लिखते हैं –"ईश्वर भक्ति संबंध में आपका विचार ही हमें अधिक उचित प्रतीत होता है । राम और कृष्ण यद्यपि ऐतिहासिक पुरुष भी हुए हैं पर उनसे हमारे इष्टदेव भिन्न हैं ? व्यक्ति आदर्श हो सकते हैं, ईश्वर नहीं । ईश्वरीय सत्ता वाले राम या कृष्ण की अन्तःकरण में धारणा करनी चाहिए । ऐतिहासिक राम, कृष्ण के चरित्रों में कुछ दोष भी हैं । उनको इष्टदेव मानने से हम घाटे में रहेंगे । ध्यान प्रतिमा–इष्टदेव उच्च आदर्शों एवं दिव्य गुणों से ही सम्पन्न होनी चाहिए । मानवीय दोषों का उनके साथ समन्वय कर देने से उलझनें बढ़ जाती हैं । अच्छा हो आप भी एक आदर्श नियत कर लें । राम, कृष्ण या बुद्ध की प्रतिमाएँ ध्यान के योग्य उत्तम हैं । आप हमें या किसी अन्य जीवित पुरुष को उस आसन पर बिठाने की भूल न करें ।"

कितना सही अध्ययन है एक व्यक्ति की मनःस्थिति का एवं तदनुरूप उसके समाधान का ? जबतक बुद्धि सक्रिय हो, तर्क श्रद्धा–समर्पण में आड़े आता हो तबतक समाधान किस स्तर का दिया जाना चाहिए , इसे वे भली भाँति समझते थे । प्रतीकपूजा, मूर्त्तिपूजा , गुरुवरण पर भाँति भाँतिके विचार रखने वाले परिजनों के लिए उनका इसी स्तर का मार्गदर्शन रहा करता था ।

प्रत्येक पत्र स्वयं में एक पाठ्य सामग्री होता था गूढ़ विवेचना एवं व्यावहारिक तर्क सम्मत मार्गदर्शन से युक्त भी, यह लिखने वाले उस मनीषी की ही विशेषता थी । कभी यह आग्रह नहीं होता था कि सामने वाला उनकी बात को माने ही । वे अपना विनम्र निवेदन प्रस्तुत कर देते , आत्मीयता भरा अनुरोध भी तथा लिखते कि जो लिखा , वह आपको ठीक लगे तो ही ग्रहण करें ।

यज्ञ की व्याख्या एक तार्किक जिज्ञासु को लिखते हुए उनने स्पष्ट किया –"यज्ञ मनुष्य का प्रधान कर्तव्य है । धर्म का प्रमुख आधार है । गीता के अनुसार यज्ञ कई प्रकार के हैं । उनमें से एक अग्निहोत्र भी है । कोई अग्निहोत्र को ही यज्ञ मानते हैं परन्तु ज्ञान यज्ञ आदि भी उतने ही पवित्र हैं, जितना अग्निहोत्र । रुचि भिन्नता के अनुसार सभी उत्तम हैं , सभी फल दायक हैं । हो सकता है कि महर्षि दयानन्द ने मूर्त्तिपूजा के पाखण्ड से लोगों का चित्त हटाने के लिए हवन की पद्धति के कर्मकाण्ड पर विशेष जोर दिया हो । वर्तमान समय में हमारे देश के दो प्रधान रोग हैं– (१) अज्ञान (२) दरिद्रता इन दो को हटाने के कार्य में जो क्रिया सहायक न होती हो , वह सामयिक युगधर्म के अनुसार शायद यज्ञ न ठहराई जा सकेगी । ज्ञानयज्ञ, विचारक्रांति शायद उसका सही स्वरूप होगा ।"

उपरोक्त पत्र उनने एक अक्टूबर १९४३ को एक साधक को लिखा था । तब उनकी आयु थी ३२ वर्ष , वे आर्य समाज (चौक) मथुरा के प्रधान थे एवं संभवतः पूछे गए प्रश्न का उत्तर इससे समुचित सटीक व अधिक कोई और नहीं हो सकता था ।

समय–समय पर नर मानवों को उनकी प्रसुप्त सुसंस्कारिता जगाने के निमित्त वे लिखते "आप साधारण परिस्थिति में गुजर जरूर कर रहे हैं, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस्तुतः अत्यन्त उच्च कोटिकी आत्मा हैं। रोटी खाने और दिन गुजारने के लिए आप पैदा नहीं हुए। विशेष प्रयोजन ले कर ही अवतरित हुए हैं। उस प्रयोजन को पूरा करने में ही लग पड़ना चाहिए। आत्मबल द्वारा ही साहसपूर्ण कदम उठाये जाते हैं। आप अब उसी की तैयारी करें और हमारे सच्चे उत्तराधिकारी की तरह हमारा स्थान सँभालें।

स्वयं अपने संबंध में बार-बार परिजनों के लिखने पर वे उन्हें प्रत्युत्तर देते "भविष्य वाणियाँ (जो आपने लिखीं) हमारे अपने ही संबंध में हैं। लोग पहचान नहीं पा रहे हैं। समय निकल जाने पर पहिचानेंगे और पछतायेंगे। आपको इस संदर्भ में क्या करना होगा सो हम मिलने पर बतायेंगे।" (१८/३/७०)। इसी प्रकार एक साधक को ११-९-१९६३ को लिखते हुए उनने स्पष्ट किया -"रामकृष्ण परमहंस का चित्र पूजा के स्थान पर रखने में कोई हर्ज नहीं। अब से तीसरा पूर्व शरीर हमारी ही आत्मा ने रामकृष्ण परमहंस का धारण किया है। वही आत्मा आपके वर्तमान गुरुरूप में विद्यमान है।

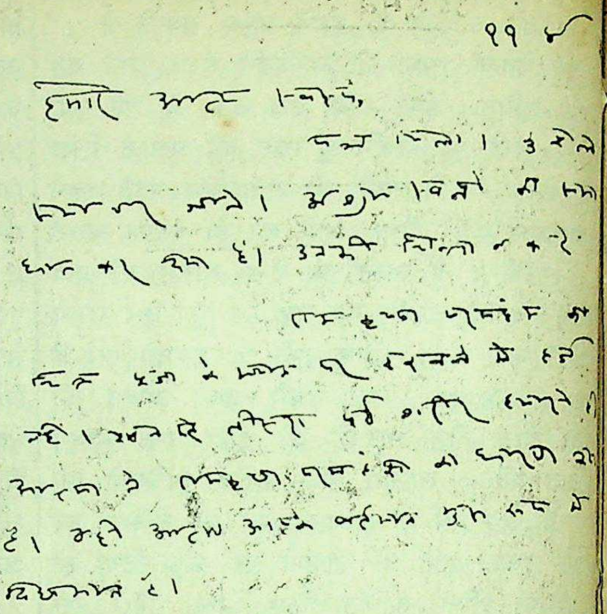

प्रस्तुत है इस पत्र की फोटो प्रतिलिपि।

इन सब विस्तृत जानकारियों के बाद भी क्या कि[illegible] के मन में कोई संदेह होना चाहिए? एक युग पु[illegible] के संबंध में उस उच्च मार्गदर्शक सत्ता के विषय [illegible] जो उन्हें उँगली पकड़ कर चलना सिखाती रही व अ[illegible] साथ नाव में बिठा कर उन्हें जन्म जन्मान्तरों के लि[illegible] निहाल कर गयी।

*

"आत्मवत् सर्वभूतेषु" का संदेश देने वाले रामतीर्थ अमेरिका पहुँचे। जहाज सान फ्रांसिस्को बंदरगाह पर रुका। जहाज खड़ा होते ही सभी यात्री जल्दी-जल्दी अपना सामान सँभालने लगे। सब में उतरने की जल्दी और उत्सुकता दिखाई दे[ने] लगी। जहाज में एक तरफ एक व्यक्ति शान्तभाव से डैक पर खड़ा था। उसके चेहरे पर न कोई घबराहट दिखाई दे रही थी और न ही उतरने की उतावली। वह कुछ दे[र] तक एक अमेरिकन व्यक्ति देखता रहा और अन्त में बोला -"क्यों महाशय, आपको यहाँ नहीं उतरना है क्या? अपना सामान क्यों नहीं सँभालते"?

व्यक्ति स्वाभाविक मुसकराहट की मुद्रा में प्रत्युत्तर देते हुये बोला -"मेरे पास को[ई] सामान नहीं है"। "तो पास में पैसे तो होंगे ही जिससे खाने-पीने का काम चल[ता] होगा"? यह तुरन्त दूसरा प्रश्न हो उठा। "मैं अपने पास पैसे भी नहीं रखता।" "तब [तो] यहाँ कोई आपका मित्र होगा, जिसके यहाँ ठहरना होगा"? यह युवक का तीसरा प्रश्न था।

स्वामी रामतीर्थ में प्रचण्ड आत्म-विश्वास था और सबमें अपनी ही आत्मा देख[ने] का आत्म-भाव भी। इसी आधार को लेकर तो वे इतनी लम्बी यात्रा आरम्भ [कर] रहे थे।

स्वामी जी युवक को प्रत्युत्तर देते हुये बोले . "हाँ, यहाँ हमारा एक मित्र है जि[स] यहाँ हमें रुकना है और जो हमारी सब सहायतायें भी करेगा।" वह व्यक्ति कौन है[?] सच्चे वेदान्ती रामतीर्थ जी हँसे और उसके कंधे पर हाथ रखते हुये बोले "आप ही [वह] मित्र हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं महाप्राण !

सम्पूर्ण सृष्टि मेरा विधान, मैं ही अदृश्य, मैं दृश्यमान ,
मैं उद्गम मैं ही विलय स्वयं ,फिर क्या मेरा उद्भव–प्रयाण ?
तन की सीमा के आर–पार, बिल्कुल अछोर मेरा प्रसार ।
मैं अखिल विश्व का स्वयं मूल, मैं ही कारण,मैं ही निदान ।
मैं स्वयं धैर्य, मैं हूँ अधीर , मैं स्थूल–सूक्ष्म–कारण शरीर ,
मैं सुगम–अगम हूँ एक साथ ,मैं हूँ लघुतम, मैं हूँ महान ।
मैं आदि मध्य हूँ, और अन्त, मैं हूँ अनादि ,मैं हूँ अनन्त ,
मैं सुबह और दुपहर मैं ही, मैं ही संध्या दिवसावसान ।
मैं चाहूँ तो बढ़ चले सूर्य, मेरी इच्छा से ढले सूर्य ,
पाकर मेरा संकेत मात्र, रुक जाता नभ में अंशुमान ।
मैं सविता का स्वर्णिम प्रकाश, प्राणों में बहता हुआ श्वास ,
जन--जन, अणु–अणु में विद्यमान, चेतनता ही मेरा प्रमाण ।
मेरी इच्छा से बनी सृष्टि, मेरी समष्टि, प्यारी समष्टि ,
मैं अंधकार मैं दिशाज्ञान, हर संशय का मैं समाधान ।
मैं स्वयं बना नश्वर शरीर, हरने को जग की गहन पीर ,
संघर्ष असुरता से करके , करने धरती का परित्राण ।
मेरे वंशज सपूत ! बढ़ चलो, क्रान्ति के अग्रदूत !
पुरुषार्थ तुम्हारा सावधान, लाएगा कल नूतन विहान ।

–शचीन्द्र भटनागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड-ज्योति मासिक

रजिस्टर्ड नं० एम.टी.आर. ९८ लाइसेन्स संख्या एम.टी.आर. ८ डाक व्यय की पहले अदायगी
रजि० नं० आर. एन. २१६२/५२ किये बिना डाक में डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त

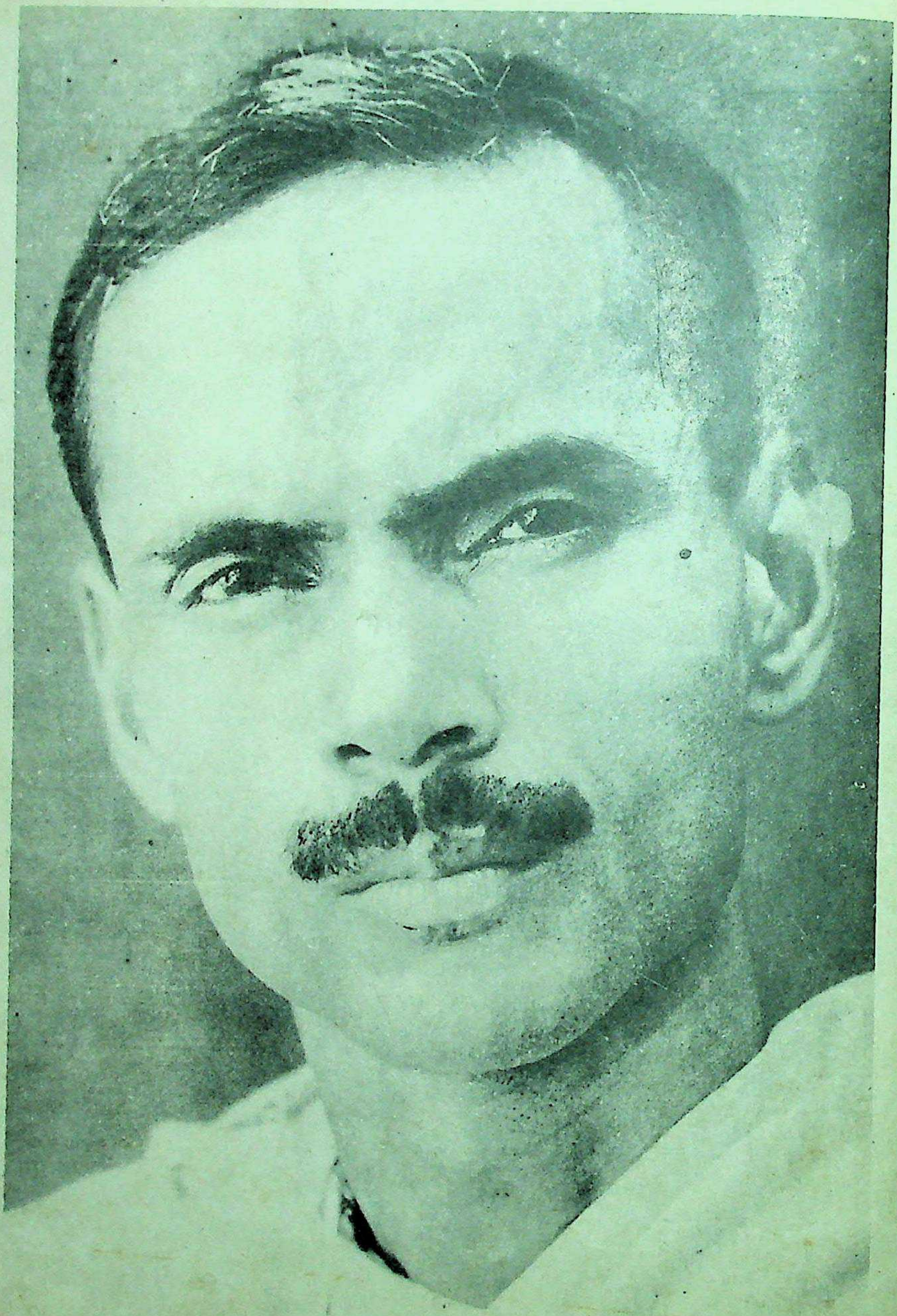

सम्पादक - भगवती देवी शर्मा प्रकाशक व मुद्रक - मृत्युञ्जय शर्मा
अखण्ड-ज्योति संस्थान द्वारा जन जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड-ज्योति

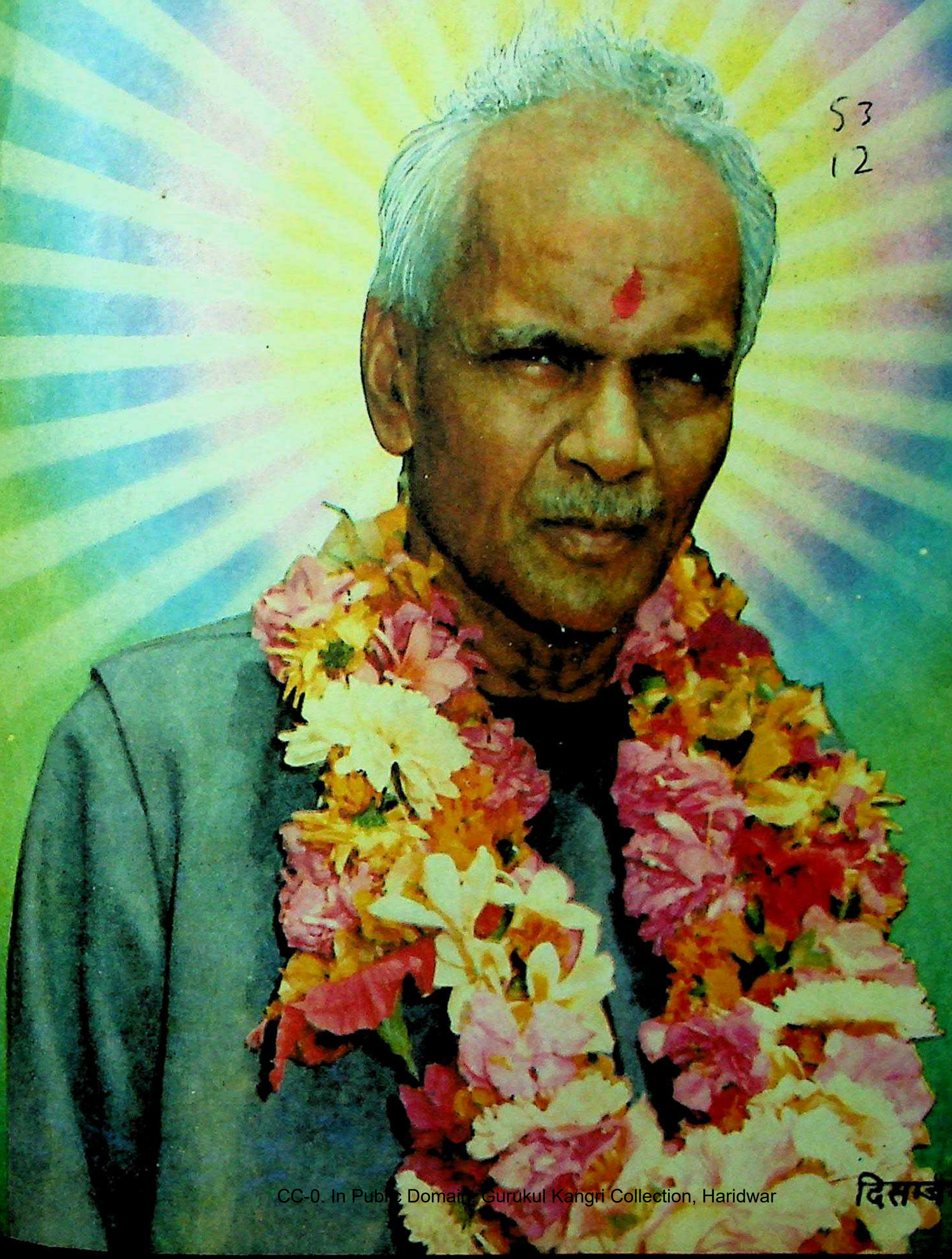

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दिसम्बर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय–सूची

१– परिष्कृत दृष्टिकोण ही स्वर्ग है १
२– प्यार प्यार में अन्तर २
३– आइए ! चेतना के विज्ञान पर शोध करें । ३
४– स्थूल से परे सूक्ष्म की सामर्थ्य ५
५– कूड़े के ढेर से जन्मा एक महामानव ७
६– ईश्वर का अस्तित्व एवं अनुभूति ९
७– उनके शरीर से शोले फूटते हैं ११
८– दैवी–प्रेरणा बनाम् अंतः स्फुरणा १३
९– मैं व्यक्ति नहीं, विचार हूँ १५
१०– विधाता के साथ समस्वरता १७
११– गायत्री का ब्रह्मवर्चस् १९
१२– उज्ज्वल भविष्य सम्बन्धी पूर्वानुमान भी संभव २१
१३– जब संवेदना का अंकुर पल्लवित हुआ २२
१४– ध्यान सार्थक कब बनता है ? २३
१५– अहिंसा के नूतन आयाम २५
१६– उत्कृष्टता का सृजन २७
१७– व्यावहारिक अध्यात्म का मर्म २८
१८– हमारा चिरपुरातन गौरव एवं बहुमूल्य थाती २९
१९– युग के विश्वामित्र द्वारा राम–लक्ष्मण की माँग ३१
२०– अध्यात्म भगोड़ों का नहीं शूरवीरों का क्षेत्र ३३
२१– 'साहित्य' दिव्य जीवन का मानचित्र ३५
२२– कौन करेगा भावीयुग का नेतृत्व ? ३७
२३– उच्चस्तरीय सान्निध्य की परिणति ३९
२४– 'वसुधैव कुटुम्बकम' की ओर बढ़ते चरण ४०
२५– क्षमतावान नहीं प्रतिभावान ४१
२६– युगधर्म के निर्वाह में ही समझदारी ४३
२७– मधु संचय ४६
२८– कुरीतियों की बेड़ी जिन्हें जकड़ न सकी ४७
२९– शतायु जीवन का मर्म ४९
३०– साधक का सात्विक आहार विहार ५०
३१– विद्याविस्तार आज की सर्वोपरि सेवा साधना ५१
३२– श्रद्धांजलि. वर्ष के नूतन निर्धारण ५४

सम्पादक– भगवती देवी शर्मा
शान्तिकुंज
हरिद्वार (उ.प्र.)

प्रकाशक–अखण्ड–ज्योति संस्थान, मथुरा २८१००३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

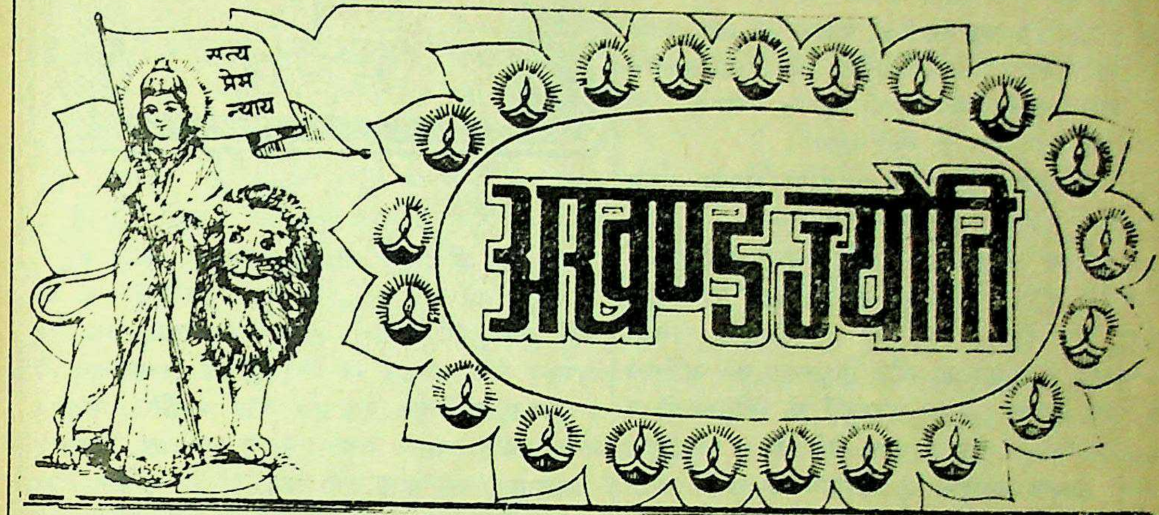

वर्ष ५३
अंक १२
दिसम्बर १९९०

संस्थापक—श्रीराम शर्मा आचार्य

वार्षिक चन्दा—३५/—
विदेश में—३००—
आजीवन—५००/—

परिष्कृत दृष्टिकोण ही स्वर्ग है

धन वैभव से शारीरिक सुख–साधन मिल सकते हैं । विलास सामग्री कुछ क्षण इन्द्रियों में गुदगुदी पैदा कर सकती है, पर उनसे आन्तरिक एवं आत्मिक उल्लास मिलने में कोई सहायता नहीं मिलती । धूप–छाँव की तरह क्षण–क्षण में आते जाते रहने वाले सुख–दुख शरीर और जीवन के धर्म हैं । इनसे छुटकारा नहीं मिल सकता । जिनने अपनी प्रसन्नता इन बाह्य आधारों पर निर्भर कर रखी है, उन्हें असंतोष एवं असफलता का ही अनुभव होता रहेगा । वे अपने को सदा दुखी ही अनुभव करेंगे ।

सच्चा एवं चिरस्थाई सुख आत्मिक सम्पदा बढ़ाने के साथ बढ़ता है । गुण, कर्म, स्वभाव में जितनी उत्कृष्टता आती है, उतना ही अन्तःकरण निर्मल बनता है । इस निर्मलता के द्वारा परिष्कृत दृष्टिकोण हर व्यक्ति , हर घटना एवं हर पदार्थ के बारे में रचनात्मक ढंग से सोचता और उज्ज्वल पहलू देखता है । इस दृष्टिकोण की प्रेरणा से जो भी क्रिया पद्धति बनती है, उसमें सत्य, धर्म एवं सेवा का ही समावेश होता है ।

वस्तुतः परिष्कृत दृष्टिकोण का नाम ही स्वर्ग है । स्वर्ग किसी स्थान विशेष का नाम नहीं , वह तो मनुष्य के सोचने , देखने और करने की उत्कृष्टता मिश्रित प्रक्रिया मात्र है । जो केवल ऊँचा ही सोचता और अच्छा ही करता है, उसे हर घड़ी स्वर्ग का आनन्द मिलेगा । उसके सुख का कभी अन्त नहीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यार-प्यार में अन्तर

प्यार मनुष्य की उच्चस्तरीय मनःस्थिति है। उसके बिना आनंद और उल्लास की अनुभूति नहीं हो सकती। इसके बिना व्यक्ति नीरस, निरानंद मनःस्थिति में बना रहता है। निरानंद और स्नेह सद्भाव रहित मनुष्य को एक प्रकार का जड़ पदार्थ माना जा सकता है जो जीवितों की तरह हलचलें भर कर सकने में समर्थ है। आनंद का रसास्वादन वह कर ही नहीं पाता।

प्रेम का क्षेत्र जितना विस्तृत होगा, मनुष्य उतना ही अधिक पुलकित प्रफुल्लित रह सकेगा। उसका दायरा जितना छोटा होगा उसकी प्रसन्नता भी हलकी एवं उथली होगी। निकृष्ट योनियों वाले प्राणी इसी विभूति से वंचित रहते हैं। इसलिए उनकी मानसिकता में उत्कृष्टता और प्रफुल्लता का अस्तित्व नहीं पाया जाता। मात्र उदरपूर्ति के निमित्त ही वे अपना अधिकांश समय लगा देते हैं। यदाकदा प्रजनन अथवा झगड़ने के उभार भी उनमें उठते देखे जाते हैं। इसी हेय स्थिति में वे अपनी जीवन अवधि गुजार देते हैं।

मनुष्य में जहाँ शरीर संरचना, मानसिक विलक्षणता और भाव संवेदनाओं की अनेकानेक विशेषताएँ पाई जाती हैं वहाँ सर्वोच्च स्तर की एक और विभूति उसे उपलब्ध है-प्रेम-भावना का रसास्वादन। इसे कोई कितना ही घटा या बढ़ा सकता है। परिधि के अनुरूप ही उसकी सफलता प्रफुल्लता घटती-बढ़ती रहती है।

क्षुद्र स्तर के मनुष्य मात्र अपने शरीर को प्यार करते हैं। इन्द्रिय स्वाद ही उनके लिए सब कुछ होता है। इसी प्रयोजन तक वे सोचने और करने तक सीमित रहते हैं। वासना, तृष्णा और अहंता के निकृष्ट स्तर तक ही उनकी आकांक्षा, अभीप्सा केन्द्रित रहती है। इसी दायरे में कल्पनाएँ, इच्छाएँ उठती हैं और जो कुछ करते बन पड़ता है वह उन्हीं प्रयोजनों के लिए होता है।

स्नेह रहित व्यक्ति का अपनापन विलास और अहंकार की पूर्ति से आगे तनिक भी नहीं बढ़ पाता। यहाँ तक कि छोटे बच्चों तक के लिए उनके सहयोग उत्थान, कल्याग तक का कोई भाव नहीं रहता। उनसे भी उनके संबंध मात्र क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति तक के लिए होते हैं। उसमें कमी पड़ने पर उनके लिए अपने भी विराने हो जाते हैं। कामुकता के प्रति असाधारण लगाव होने पर वे पत्नी के स्वास्थ्य और बच्चों के भविष्य और अपने आर्थिक दायित्व तक को भुला देते हैं। उनके लिए इन्द्रिय लिप्सा ही सब कुछ होती है।

शरीर को ऐसे क्षुद्र लोग प्यार करते हैं यह भी नहीं कहा जा सकता। अन्यथा स्वाद के लिए अभक्ष्य खाने उन्माद के लिए इन्द्रिय आवश्यकता में वे अपना शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक संतुलन क्यों बर्बाद करते रहते हैं? दुर्बलता, रुग्णता, अकालमृत्यु के ग्रास क्यों बनते हैं? इसलिए यह कहना ही उचित होगा कि नीरसता के रहते, मनुष्य कम से कम अपने शरीर को तो प्यार करता होता। आत्मा का प्यार इससे आगे की बात है। गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता से ही मनुष्य महान बनता है और संतोष सम्मान जैसे रसास्वादन कर पाता है। जो आत्मा को प्यार नहीं करता वह मात्र नरक के दायरे में ही परिभ्रमण करता रहता है।

सच्चे प्यार का अर्थ है उत्थान के निमित्त सहयोग। इसमें अपने लोगों की तुलना में प्रियपात्र के उत्कर्ष को प्रधानता देनी पड़ती है, पर यह सब बन तभी पड़ेगा जब अपने स्वार्थ पर अंकुश लगाया जाय, उसे गौण माना जाय। इसके अभाव में वह प्यार न रहकर छद्म मात्र बनकर रह जाता है। ठगों का व्यवसाय चापलूसी पर आधारित है। वे अपने शिकार को सज्जन व्यवहार से फुसलाते और प्रलोभनों के आकर्षण दिखाकर अपना स्वार्थ साधते और भोले भावुकों को बहेलियों की तरह जाल में फँसाते और जो भी हाथ लगे, उसका अपहरण करते रहते हैं। नाम कोई चाहे तो इसे भी प्यार का दे सकता है, पर सच्चाई देखने पर थोड़े ही प्रयत्न से पता चल जाता है कि यह प्यार था या जाल-जंजाल में फँसाकर सर्वनाश करने का कुचक्र। हम प्यार तो हर किसी से करें, पर उसके पीछे अपहरण की विडम्बना न हो इसका सतर्कतापूर्वक ध्यान भी रखें। *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आइए ! चेतना के विज्ञान पर शोध करें ।

अध्यात्म और विज्ञान में सामंजस्य और सहयोग का तालमेल बिठाने में इन दिनों विज्ञ समुदाय द्वारा समुद्र मंथन जैसा प्रयास चल रहा है । सर्वत्र यही सोचा जा रहा है कि दोनों महाशक्तियों का समन्वय किया जाय । इनके मध्य जो खाई खुद गई है , उसे पाटने के लिए प्रयत्न किया जाय इतने पर भी दोनों को पृथक् शक्तियाँ मानने वालों के सामने यह स्पष्ट नहीं है कि उनके प्रतिपादन का उद्देश्य और स्वरूप क्या है ?

यथार्थतः विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय की माँग करने वाले यह भूल जाते हैं कि जीवन सत्ता ही तब प्रकट होती है, जब चेतना और पदार्थ का समन्वय होता है । जड़ और चेतन का मिलन ही हलचलों का केन्द्र है । काया का दृश्यमान पक्ष जड़ तत्वों से विनिर्मित प्रत्यक्ष भौतिक विज्ञान का चमत्कार है तो उसमें सन्निहित अदृश्य चेतन सत्ता अध्यात्म है । दोनों का मिलन ही जीवन की स्थिरता का चिन्ह है । दोनों के मध्य सामंजस्य की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है , जब स्रष्टा ने 'एकोहम् बहुस्यामि ' की इच्छा की तो चेतन –अचेतन के दो प्रवाह फूट पड़े । दोनों एक दूसरे से सर्वथा पृथक् रह कर अपना अस्तित्व नहीं बनाये रख सकते । पदार्थ के बिना चेतना पंगु है , तो चेतना की प्रखरता के बिना पदार्थ अन्धे के समान । अन्धे और पंगे की जोड़ी मिलकर ही नदी पार करने की योजना बना सकते हैं और पार पाने में सफल होते हैं ।

गहराई में प्रवेश करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों में टकराव तब उत्पन्न हुआ , जब विज्ञान को फिजिक्स से एवं सुविधा –साधन जुटाने वाली मशीनों , कल कारखानों से सम्बन्धित मानने तक मानवी बुद्धि सीमित हो गयी , जब कि इसका तात्विक अर्थ कुछ और है । विज्ञान कहते हैं प्रगतिशीलता को – वैज्ञानिक दृष्टिकोण को । हम जो भी सोचें जो भी करें उसमें वैज्ञानिकता का समावेश हो , वह तर्क , तथ्य एवं प्रमाणयुक्त हो , इसी में हमारे चिंतन कथन और कर्तव्य की प्रामाणिकता है । विज्ञान मात्र प्रकृति से सम्बन्धित सूक्ष्म जगत का रहस्योद्घाटन करने और उससे लाभान्वित होने तक सीमित न होकर जीवन से, प्राणि शरीरों से भी सम्बन्धित है । चेतना उसी से लिपटी एवं सघनतापूर्वक गुँथी हुई सक्रिय है । उसकी शक्ति अदृश्य होते हुए भी इतनी प्रचण्ड है कि अनगढ़ पदार्थ जगत को सुनियोजित कर स्वर्गोपम सुखद परिस्थितियाँ पैदा कर दे । इसे ही अध्यात्म कहते हैं । भौतिक साधन एवं चेतना के अदृश्य पक्ष को मिला देने पर जीवन में समन्वय स्थापित होता और प्रगति का आधार खड़ा होता है ।

पदार्थ सत्ता की सूक्ष्म जानकारी विज्ञानियों के हाथ लगती है, तो चेतन सत्ता वाले सूक्ष्म अध्यात्म जगत के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान मनीषीगण प्राप्त करते और उससे लाभान्वित होते हैं । वैज्ञानिक मनीषी प्रोफेसर ए. ई. वाइल्डर स्मिथ के अनुसार प्रकृति विज्ञानी जिस तर्क बुद्धि या कल्पना शक्ति के सहारे पदार्थ जगत के अध्ययन और अनुसंधान में निरत रहते हैं , यदि उनसे यह पूछा जाय कि इस सब का जन्मदाता कौन है ? उनके स्वयं के जीवन के पीछे विचार या शब्द , बुद्धि या कल्पनाएँ कौन प्रस्फुटित कर रहा है अनुसंधान की प्रेरणा कौन उभार रहा है ? तो इसका उत्तर देने में वे असमर्थता अनुभव करते हैं । कारण स्पष्ट है कि वह उनकी खोजी संभावनाओं से बाहर है । इसे यों भी कहा जा सकता है कि इस ओर उनका ध्यान ही आकृष्ट नहीं हुआ । इतना ही नहीं जिस गुरुत्वाकर्षण शक्ति की वे बात करते और कहते हैं कि उस बल के सहारे पृथ्वी समेत सभी ग्रह–नक्षत्र अधर में लटके रहकर नियत कक्षा में नियत गति से परिभ्रमणशील हैं , वस्तुतः उनके मध्य चेतन तत्व ही सक्रिय भूमिका निभा रहा है । वैज्ञानिक बुद्धि न तो इस तरह के निर्माण कर सकती है और न उन्हें व्यवस्थित क्रम , गति प्रदान कर सकती एवं सम्पदाओं से भरा पूरा बना सकती है । यह कार्य परम चेतना का है । पदार्थों के सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणुओं –उप परमाणुओं , उनके व्यवहार एवं ऊर्जा उत्सर्जन की प्रक्रिया का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यही तथ्य सामने आता है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म कण के पीछे नया क्रम , नया नियम कार्यरत है, जिसे किसी अदृश्य चेतना की इच्छाशक्ति से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचालित माना जा सकता है । अध्यात्मवेत्ताओं ने इसे 'यूनिवर्सल फोर्स' या ब्रह्माण्डव्यापी चेतना माना और कहा है कि सृष्टि में सर्वत्र उसकी इच्छाशक्ति ही कार्यरत है ।

मानव जीवन के दो पक्ष हैं । पहला पदार्थ परक साधन सामग्री , जिसे विज्ञान कहते हैं । इसका सम्बन्ध बुद्धि से है जो यह निर्णय करती है कि लोक व्यवहार कैसा हो । दूसरा पक्ष अध्यात्म कहलाता है, जिसका सम्बन्ध चिन्तन, भाव संवेदना एवं प्रज्ञा से है । यह सभी चेतना की उच्चस्तरीय परतें हैं , जो यह निरूपण करती हैं कि ऊर्ध्वगामिता का अनुगमन किस प्रकार किया जाय । पाश्चात्य मनोविज्ञानी सी.जी. जुंग भी इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि मानवी चेतना के चार कार्य हैं तर्क बुद्धि , अनुभव , भाव संवेदना और अन्तः प्रज्ञा । यह सभी एक से बढ़कर एक उच्चस्तरीय विभूतियाँ हैं । विज्ञानी इनमें से मात्र तर्क बुद्धि तक सीमित रहकर अधूरे सत्य की खोज में संलग्न हैं । समग्रता की उपलब्धि सम्पूर्ण पक्षों को अपनाने पर ही संभव हो सकती है ।

विख्यात भौतिकी विद् जीन ई. चेरोन के अनुसार हम चेतना और पदार्थ को अलग मानते और उनमें से किसी एक की खोज में निमग्न हो जाते हैं । विज्ञानी पदार्थ जगत में अपने को सीमाबद्ध कर लेते हैं, तो अध्यात्मवेत्ता चेतना के निरीक्षण –परीक्षण में लगे रहते हैं, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि चेतना और पदार्थ इतनी अधिक जटिलता से परस्पर गुँथे हुए हैं कि उनमें से किसी एक की महत्ता को कम नहीं किया जा सकता । यद्यपि चेतना की महिमा और गरिमा सर्वोपरि है । उनके अनुसार जिसे हम मैटर या "मास" कहते हैं, वह चेतना का ही एक भाग है और इसका निर्माण उसी की इच्छाशक्ति के आधार पर हुआ है । जिस तरह पॉजिटिव और निगेटिव तारों के मिलने पर उनमें विद्युत प्रवाहित होती है और बल्व जलने से लेकर भारी मशीनों का संचालन तक होने लगता है । यही तथ्य चेतना और पदार्थ के सम्मिलन से उद्भूत जीवन पर भी लागू होता है । इलैक्ट्रॉन और पॉजिट्रान नामक ऋणात्मक एवं धनात्मक कणों के सम्मिलन से जिस तरह 'फर्स्ट मैटर' का निर्माण होता है , उसी तरह जीवन का प्रादुर्भाव जड़–चेतन से समन्वित दो सूक्ष्म इकाइयों के सम्मिलन से भ्रूण–कलल के रूप में आरम्भ होता और अन्ततः ५–६ फुट लम्बे काय–कलेवर वाला मनुष्य बन जाता है । इस निर्माण के पीछे प्राणी विशेषज्ञ जिस जेनेटिक कोड की बात करते और कहते हैं कि सूक्ष्म परमाणुओं से निर्मित इकाइयाँ 'जीन' इसके लिए उत्तरदायी हैं, वस्तुतः मैटर के अन्दर समाहित चेतना ही वहाँ कार्यरत रहती और अपने अनुकूल उपयुक्त परमाणुओं की काटछाँट करती तथा विकास क्रम का निर्धारण करती है ।

विचारशीलता , भावना , इच्छा एवं सक्रियता चेतना के प्रमुख गुण हैं । चेतन सत्ता के साथ छोड़ते ही मृत शरीर को ठिकाने लगाने की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है और सारा कलेवर पंचभूतों में बिखर जाता है । विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन को पदार्थ जगत के अनुसंधान के चरमोत्कर्ष पर पहुँचने के पश्चात् यह अनुभूति हो गई थी कि समूचा विश्व–ब्रह्माण्ड चेतना का खेल है । कार्बनिक, अकार्बनिक जड़ पदार्थों से लेकर जीव जगत तक में उसकी सक्रिय हलचलें ही क्रीड़ाकल्लोल कर रही हैं । मनुष्य में इसकी सघनता अधिक है । इस तथ्य की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए उनने अपने वसीयतनामा में लिखा था कि मरणोपरान्त मेरे शरीर का तो संस्कार कर दिया जाय परन्तु सिर वैज्ञानिकों को परीक्षण के लिए दे दिया जाय , ताकि यह जाना जा सके कि मस्तिष्क में कोई विशिष्टता या क्षमता मरने के बाद भी विद्यमान है क्या ? जो मस्तिष्क जीवन पर्यन्त प्रकृति पदार्थों में सन्निहित रहस्यमय शक्तियों की खोज करने में निमग्न रहा , क्या वह ज्ञान चेतना अब भी उसके स्नायु कोषों में सुरक्षित है ? जैसा सबको विदित है कोई विलक्षणता उस जड़ पिण्ड–लिबलिबे ग्रे व ह्वाइट मैटर से बने पदार्थ में नहीं पाई गई । चेतना की शक्ति का संचार होने पर ही मस्तिष्क विभूति सम्पन्न बनता है, यह तथ्य प्रतिपादित करना ही आइंस्टीन का लक्ष्य था ।

पदार्थ जगत पर चेतना का आधिपत्य है । चेतना स्वामी है तो मैटर दास । समस्त जीवों , पदार्थों , विभिन्न क्षेत्रों, दिशाओं और परिस्थितियों में चैतन्य शक्ति ही उनके स्तरों के अनुरूप अविरल गति से गतिमान है । यह सृष्टि परमचेतना का मात्र एक कौतुक भर नहीं है , वरन् उसमें समग्र सत्यदर्शन का लक्ष्य सन्निहित है । तभी तो आइन्स्टीन ने कहा था कि "ईश्वर पासे नहीं खेलता । उसके द्वारा सृजित एकल परमाणु से लेकर ग्रहगोलकों एवं उसके निवासी मनुष्यों तक सभी सुनियोजित ढंग से विनिर्मित हैं ।" सत्यम् , शिवम् , सुन्दरम् का दिग्दर्शन कराना उसका परम लक्ष्य है उस उपलब्धि की दिशा में अग्रसर होना ही हमारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए । *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थूल से परे सूक्ष्म की सामर्थ्य

मनुष्य मात्र पंचभौतिक शरीर ही नहीं है, वरन् उसकी एक प्रचण्ड सामर्थ्ययुक्त सूक्ष्म सत्ता भी होती है जिसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं , आत्मा का वाहन भी । इसी पर सवार होकर आत्मा लोक-परलोक की यात्राएँ करता तथा मरणोत्तर जीवन के पश्चात् पुराने कलेवर को छोड़कर नये कलेवर में प्रवेश करता है । तपस्वी एवं सिद्ध योगीजन अपने इसी शरीर से स्वल्प समय में दूरवर्ती दुर्गम क्षेत्रों की यात्रायें करते एवं जरूरतमंदों की सहायता करते देखे-सुने जाते हैं । सूक्ष्म शरीर से अन्य शरीरों में प्रवेश करने की कथा-गाथाओं का भी उल्लेख मिलता है । जिन कार्यों को मनुष्य स्थूल काया से सम्पादित नहीं कर पाता, वह दिव्य दर्शन, दूरश्रवण, दूर सम्प्रेषण, दूरगमन जैसे कठिन कार्य सूक्ष्म शरीर को विकसित कर लेने पर सहज संभव हो जाते हैं ।

भारत का प्राचीन इतिहास आध्यात्मिक उपलब्धियों से भरापूरा है । इसे आध्यात्मिक उपलब्धियों की श्रृंखला कहें तो आध्यात्मिक साहित्य और दर्शन को तत्वदर्शी ऋषि-मनीषियों, योगी और सन्तों का इतिहास कहना पड़ेगा । आध्यात्मिक जगत की ऐसी कितनी ही घटनाएँ हैं जो इस तथ्य पर प्रकाश डालती हैं कि स्थूल शरीर से परे जीवात्मा का वाहन 'सूक्ष्म शरीर'-जिसे 'एस्ट्रल बॉडी, एटलर बॉडी' के नाम से भी जाना जाता है, विलक्षण क्षमता सम्पन्न एक सुनिश्चित सत्ता है । इसे अदृश्य प्रवृत्तियों और शक्तियों का केन्द्र भी कहा जाता है । इसको विकसित कर लेने पर लोक-लोकान्तरों की यात्राएँ की जा सकती हैं । अपनी सूक्ष्म सत्ता को दूसरों की काया में प्रवेश कराकर उनसे मनचाही दिशा में कार्य कराया जा सकता है । इस संदर्भ में आद्यशंकराचार्य की वह घटना प्रसिद्ध है जिसमें महान विद्वान मण्डन मिश्र के पराजित होने पर उनकी पत्नी विदुषी भारती ने मोर्चा सँभाला था और उनके गूढ़ प्रश्नों के उत्तर देने के लिए शंकराचार्य को एक मृत राजा के शरीर में परकाया प्रवेश करना पड़ा था । तत्पश्चात् अपने शरीर में वापस आकर उन्होंने भारती के प्रश्नों का उत्तर दिया और उन्हें परास्त किया । परकाया प्रवेश की यह घटना पिण्ड की सामर्थ्य के उस चेतन पक्ष का परिचय देती है जिसे रहस्यमय विभूतियों से सम्पन्न माना जाता है ।

इतिहास में इस घटना की तरह ही पाटलिपुत्र के सम्राट महापद्मनन्द और चाणक्य की कथा भी प्रख्यात है । लोग जानते हैं कि महापद्मनन्द का शरीर एक था, पर उस शरीर से यात्राएँ दो आत्माओं ने की थीं । एक स्वयं महापद्मनन्द ने तो दूसरे तत्कालीन विद्वान आचार्य उपवर्ष के प्रसिद्ध योगी शिष्य-इन्द्रदत्त ने ।

नाथ सम्प्रदाय के आदिगुरु महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ के विषय में कहा जाता है कि सूक्ष्मशरीर से वे अपनी इच्छानुसार गमनागमन विभिन्न लोकों में करते थे । उन्हें परकाया प्रवेश की सिद्धि प्राप्त थी । एक बार अपने शिष्य गोरखनाथ को स्थूल शरीर की सुरक्षा का भार सौंपकर मृत राजा के शरीर में उन्होंने सूक्ष्मशरीर से प्रवेश किया था । गोरखनाथ स्वयं एक महान योगी थे और अध्यात्म जगत की विभूतियों से सम्पन्न थे । महाभारत के "शान्तिपर्व" में वर्णन है कि सुलभा नामक विदुषी अपने योगबल की शक्ति से राजा जनक के शरीर में प्रविष्ट कर विद्वानों से शास्त्रार्थ करने लगी थी । उन दिनों राजा जनक का व्यवहार भी स्वाभाविक न था । 'अनुशासन पर्व' में ही कथा आती है कि एक बार इन्द्र किसी कारणवश ऋषि देवशर्मा से कुपित हो गये । उन्होंने क्रोधवश ऋषि की पत्नी से बदला लेने का निश्चय किया। देवशर्मा का शिष्य-'विपुल' योगसाधनाओं में निष्णात् और सिद्ध था । उसे योग दृष्टि से यह मालूम हो गया कि मायावी इन्द्र गुरुपत्नी से बदला लेने वाले हैं । विपुल ने सूक्ष्म शरीर से गुरुपत्नी के शरीर में उपस्थित होकर इन्द्र के हाथों से उन्हें बचाया ।

पातंजल योगदर्शन में सूक्ष्मशरीर से आकाश-गमन करने, एक ही समय में अनकों शरीर धारण करने, अदृश्य होने, परकाया प्रवेश करने जैसी अनेकों योग विभूतियों का वर्णन है जो प्रकारान्तर से जीवात्मा की अकूत सामर्थ्य और काया से परे उसकी स्वतंत्र सत्ता का प्रतिपादन करती है । सत्, रज, तम से बने संसार और पंचभौतिक काया से जुड़े आकर्षणों से अत्यधिक लिप्त होने के कारण अपनी मूल सत्ता, जो समस्त शारीरिक एवं मानसिक हलचलों का केन्द्र है, का बोध नहीं हो पाता । बाह्याकर्षणों के आवरणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चीरकर निकल सकना संभव हो सके तो प्रतीत होगा कि अपनी ही आत्म सत्ता में ऋद्धि-सिद्धियों का ऐसा विलक्षण भण्डार छिपा पड़ा है जिसे जानकर समष्टि चेतन सत्ता से संबंध जोड़ सकना तथा विभूति सम्पन्न-सामर्थ्यवान बन सकना संभव है। शास्त्र में इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हुए ऋषि कहते हैं - "योगी को अदृश्य जगत् दृश्यवत् दीखता है। उसे दूरदर्शन, दूरश्रवण की विभूतियाँ उपलब्धियाँ होती हैं। ध्यान मात्र से योगी भूत, भविष्य, वर्तमान तथा प्राणियों के मनोगत भाव जान लेता है।"

अदृश्य जगत को जान लेना- उसमें सूक्ष्मशरीर द्वारा प्रवेश कर सकना संभव है। विज्ञानवेत्ता भी अब इस तथ्य को स्वीकारने लगे हैं और सूक्ष्मशरीर की विशिष्ट क्षमता को उद्घाटित करने निरत हुए हैं। अनुसंधानकर्ताओं ने स्थूल काया से सूक्ष्मशरीर के बाहर निकलने की प्रक्रिया को-'ऐक्सोमेटिक स्टेट" तथा 'आउट ऑफ बॉडी एक्सपीरियेन्स' (ओ.बी.ई.) अर्थात्-शरीर से बाहर अतीन्द्रिय अनुभव आदि नामों से संबोधित किया है। पाश्चात्य योग साधकों में से डा. माल्थ कारिंगटन, हैवर्टलमान, लिण्डार्स, डुरावेल मुलडोन, ओलिवर लॉज, डा. मेस्मर, डेविडनील, पाल ब्रण्टन आदि के अनुभवों और प्रयोगों में सूक्ष्मशरीर की प्रामाणिकता सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण उपस्थित किये गये हैं। जे. मुलडोन अपने स्थूल शरीर से सूक्ष्मशरीर को पृथक करने के कितने ही प्रदर्शन कर चुके थे। उनने इन सबकी चर्चा अपनी पुस्तक-"द प्रोजेक्शन ऑफ एस्ट्रल बॉडी" में विस्तारपूर्वक की है।

फ्रांस के प्रख्यात कथाकार गुई दि मोपासां ने अपने संस्मरण में लिखा है कि जब कभी वह लिखने बैठते तो उनके सम्मुख एक सूक्ष्म शरीरधारी पुरुष बैठा मिलता। वह उनसे आग्रहपूर्वक वही लिखाता जो उसकी इच्छा होती। लेखन समाप्त होते ही वह अदृश्य हो जाता। कहानी पढ़ने पर प्रतीत होता कि किसी उच्चस्तरीय साहित्यकार की आत्मा ने उसमें अपने प्राण उड़ेल दिये हैं। इसी तरह के एक संस्मरण का उल्लेख करते हुए अँग्रेजी के ख्याति प्राप्त कवि बायरन ने अपने समकालीन कवि शेली के सूक्ष्मशरीर से यात्राएँ करने का वर्णन किया है। एक ही समय में उनके दो भिन्न स्थानों में उपस्थिति रहने की सामर्थ्य का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि जब एक बार वह किसी जंगल से गुजर रहे थे तो उनकी भेंट शेली से हो गई और वार्तालाप करने से पूर्व ही अदृश्य हो गये। खोजबीन करने पर पाया गया कि उस वक्त शेली कहीं दूसरी जगह अपने मित्रों से बातचीत करने में मशगूल थे।

पुराणों में उल्लेख है कि प्राचीन काल के योगी तपस्वी ऋषिकल्प आत्माएँ न केवल सूक्ष्मशरीर से गमनागमन करने में समर्थ थीं वरन् इच्छानुसार रूप धारण करने और जब चाहे अदृश्य होने और पुनः प्रकट हो जाने की विभूतियों से भी सम्पन्न थीं। बीसवीं सदी में भी इस तरह के कितने ही उदाहरण विद्यमान हैं जो मानव में अन्तर्निहित प्रचण्ड सूक्ष्म शक्ति- सामर्थ्य को प्रकट करते हैं। ब्राजील निवासी राजास केमिलो नामक एक ईसाई साधक का उदाहरण कुछ इसी प्रकार का है। केमिलो की ईश्वर पर दृढ़ आस्था थी और उसने अपने जीवन को बहुत ही पवित्र एवं प्रखर बना लिया था। फलतः अन्तर्निहित शक्तियाँ विकसित हो गई थीं। इच्छानुसार वह अदृश्य या प्रकट हो सकता था। उसकी इस विलक्षण क्षमता की पुष्टि जाँचकर्ता वैज्ञानिकों एवं पत्रकारों ने भी की थी।

इसी तरह अलबानिया के काउण्ट एडुवर्डो नामक व्यक्ति को सूक्ष्म शरीर से यात्रा करने, अदृश्य होने आदि की सामर्थ्य प्राप्त थी। मंगोलिया के बौद्ध भिक्षु थ्यांग ने भी कठिन अभ्यास के द्वारा इस तरह की क्षमताएँ विकसित कर ली थीं। सब के सामने वह अचानक प्रकट हो जाता और फिर अदृश्य होकर सबको अचंभे में डाल देता। इस तरह के कितने ही प्रदर्शन उसने मूर्धन्य वैज्ञानिकों, विद्वानों एवं पत्रकारों के समक्ष प्रस्तुत किये थे। आस्ट्रेलिया के सुप्रसिद्ध पत्रकार डेविड नील ने जब थ्यांग से उसकी विलक्षणता का कारण पूछा तो उत्तर मिला- "सूक्ष्म शरीर से यात्रा करना, अदृश्य होनां आदि साधक की अपनी इच्छा शक्ति पर निर्भर करता है। अपनी समस्त मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों को केन्द्रित करके कोई भी व्यक्ति इस तरह की क्षमताएँ विकसित कर सकता है।" योगी एवं तपस्वी स्तर के भारतीय साधकों की एक महान परम्परा रही है जो इस तथ्य को उद्घाटित करती है कि मानव जीवन स्रष्टा का वह अनुपम उपहार है जिसका यदि सदुपयोग बन पड़े तो हर मनुष्य दिव्य विभूतियों का स्वामी बन सकता है। पवित्रता एवं प्रखरता द्वारा पात्रता अर्जित कर हर साधक योगसाधना के माध्यम से भौतिक सफलताएँ एवं अध्यात्म जगत की विभूतियाँ हस्तगत कर सकता है। ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूड़े के ढेर से जन्मा एक महामानव

कूड़े के ढेर को उसने कुछ उलटा-पलटा । डोबारिका शहर के इस होटल के पीछे पड़ी इस जगह में होटल वाले अपनी बची जूठन, रोटियों के टुकड़े डाल जाते थे । उसके सिवा यहाँ की छान-बीन करने कुछ कुत्तों के अलावा और कोई नहीं आता था । शायद किसी को आने की जरूरत भी नहीं थी । उसने आँखें ऊपर की ओर उठाईं । सूर्य डूब रहा था । थोड़ी देर के लिए एक बादल ने आकर उसे ढक लिया फिर वह हट गया, ठीक सामने क्षितिज के किनारे सूर्य निकल आया और खाली पड़ी जमीन को ज्योति से भर दिया । कूड़े के ढेर में अकस्मात सुवर्ण बरस पड़ा । इसके बाद सूर्य अस्त हो गया । उसने एक नजर अपनी ओर डाली । शरीर पर फटे चीथड़ों के अलावा और क्या था ?

शरीर को भेदती हुई उसकी नजर और गहरे चली गई । वर्तमान के परे का अतीत झलकने लगा । १४ मार्च १८५८ में रूस के निजनी नोवा स्थान में उसने पहली बार अपनी आँखें खोली थीं । गरीबी और विवशता यही उसकी मित्र बनी । क्या कुछ नहीं देखा उसने तब से आज तक । दोनों मामाओं की मार खा कर पिता को मरते देखा था । मनुष्य की दयामाया का इस तरह दिवाला निकलते देख कितना रोया था वह । याद में उसकी आँखों से आँसू ढुलक पड़े । नाना की क्रूर स्वार्थी प्रवृत्ति के शिकार उसके रँगाई कारखाने के श्रमिकों को कोल्हू के बैल की तरह काम करते और आधे पेट भूखे सोते भी उसने देखा था । मानव का दर्द दिल की गहराइयों से अनुभव करता आया था वह । एक दिन वह भी आया जब कृपण-निष्ठुर नाना ने बूढ़ी नानी के साथ उसे निकाल दिया था । माँ पहले ही पता नहीं कहाँ चली गई थी । तब वह करीब आठ साल का होगा ।

तब से अब, अतीत से अतल सागर से उबरते हुए मुसकराया । मुसकान में पीड़ा और कर्मठता का अजीब सा मिश्रण छलछला रहा था । क्या कुछ उसने नहीं सहा-अपमान, तिरस्कार, फटकार, मार । कूड़े का यह ढेर उसका बहुत दिनों का साथी था । यहीं से फटे कागजों को उठाकर, तुड़े-मुड़े सड़-गल रहे अक्षरों को जोड़कर उसने पढ़ना सीखा था । यही उसकी पाठशाला थी । पढ़ने का शौक इतना उभरा कि जब कभी किसी के पास अच्छी पुस्तक का पता चलता, उसके पास पहुँच जाता । उसकी मजदूरी करता, बदले में एक-आध दिन के लिए किताब माँगकर पढ़ लेता । देने वाले हँसते, तिरस्कार भरे स्वर में कहते क्या करेगा पढ़कर यह सब तू ! बदले में वह चुप्पी साध लेता । इस चुप्पी के पीछे कितना कुछ छुपा है किसी को क्या पता ?

उसके हाथ तेजी से कूड़े के ढेर को उलटने-पलटने लगे । शाम का धुंधलका बढ़ता जा रहा था । निशा के सागर की बलवती लहरें-घहराती बलखाती जैसे समूची धरती सारे आसमान को एक साथ अपने आगोश में ले लेना चाहती हो । बाहर की तरह उसके भीतर भी कुछ घटित हो रहा था । यादें घुमड़-घुमड़ कर मन पर छा जातीं कुछ ढूँढ़ते हुए हाथों की गति मन्द पड़ने लगती । अब तो नानी को भी मरे बहुत दिन हो गये । रात्रि को रेल्वे स्टेशन में चौकीदारी करता । दिन भर अपनी कोठरी में कुछ पढ़ता लिखता रहता । उसका निवास जिसे कोठरी की अपेक्षा कालकोठरी कहना अधिक सही होगा । बदबू और सीलन भरी जगह और वस्त्र उनकी तो चर्चा भी बेकार । जब पहनने के लिए कपड़े नहीं जुट रहे तो ओढ़ने-बिछाने के लिए कहाँ से आए ।

कचरे के ढेर में कुछ निकालते हुए बुदबुदाया-चलो कुछ तो मिला । सामने कोई आ रहा था । "कौन ?" उसने सारी शक्ति को आँखों में केन्द्रीभूत करते हुए - घंने होते जा रहे धुंधलके को भेदने की चेष्टा की । आने वाला धीरे-धीरे बढ़ रहा था । स्पष्ट न दीख पड़ने पर भी छाया जैसी हिलडुल रही एक आकृति बढ़ती हुई नजर आ रही थी । प्रश्न अभी यथावत् था । नजरें अभी भी उठी थीं । हाथों की हरकत शान्त थी । इतने में आने वाला पास आ चुका था । दोनों ने एक दूसरे को पहचाना । उल्लास की रेखाएँ चेहरों पर चमकीं और अँधेरे में विलीन हो गईं । आने वाले ने स्नेहपूर्वक कहा- "भले आदमी अपने शरीर का ख्याल करो । रात भर जागकर चौकीदारी दिन भर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किताबों में सिर खपाना । न ढंग से खाना, न ठीक से सोना । इस तरह कब तक चलेगा ।" यह था उसका मित्र ग्रेगरी ।

बातों-बातों में आने वाले की नजर उसके हाथ की ओर गई । उसमें रोटी का टुकड़ा थमा था । "तो क्या आ.....ज.........भी "। बोलने वाला हकला गया ।

दरअसल क्या ....? उसने कुछ छिपाने की कोशिश करते हुए कहना चाहा । दरअसल क्या ?" सारी तनख्वाह किताबों में झोंक दी होगी । भूख लगी तो कूड़े के ढेर से रोटी बीनने आ गए ।"

"मुझे समझने की कोशिश करो, ग्रेगरी ! मेरी एक ही साध है कि मैं मानव का दर्द साहित्य के माध्यम से मानव को समझा सकूँ । जब तक यह नहीं कर लेता....।"

"तुम्हारी इस साध को मैं पागलपन कहता हूँ । कौन सुनेगा तुम्हारी । नक्कार खाने में तूती की आवाज नहीं गूँजा करती । सिर टकराने से कहीं दीवारें भी टूटी हैं ?"

"जबकि मेरा पूरा विश्वास है कि यदि श्रम और समय का नियोजन हो सके । उसमें पूरा मनोयोग जुट सके, मनोबल बरकरार रहे तो सभी कुछ सम्भव है ।" उसने मित्र की आँखों में झांका"जानते हो सिर्फ श्रम बोझ होता है मनोयोग के बिना । मनोयोग लगे पर श्रम न हो तो व्यावहारिक जगत में कुछ नहीं बन पड़ता और यदि समय का सही नियोजन न हो तो दोनों इधर-उधर भटकते रहते हैं । जैसे ही तीनों मिले कि सभी कुछ सम्भव दिखने लगता है ।"

"फिर क्यों लौट आती हैं, तुम्हारी रचनाएँ "।

"शायद मेरे में अभी कुछ कमी होगी ।" कुछ सोचता हुआ बोला-"जो दो-चार बार हारने पर ही हार मान बैठे- वह भी कोई इन्सान है ।" वाणी आत्मविश्वास से सनी थी ।

"हाँ-हाँ जो तुम्हारी तरह बार-बार सिर टकराता रहे, वही इन्सान है, बाकी तो सब.....।" आगे के शब्द गले में फँस गए ।

"कुछ भी कहो, जब तक मैं मानव को कर्तव्य बोध नहीं करा लेता रुक नहीं सकता, अवरोध मुझे झुका नहीं सकते ।"

"मत रुकना ! मत झुकना ! चौकीदारी करने चलना है कि नहीं ।"उसे जैसे कुछ याद आया । एक साथ- चार कदम अँधेरे के सागर को चीरते बढ़ने लगे । दोनों मौन थे पर सतही ढंग से भीतर कुछ घट रहा था किन्तु एक जैसा नहीं सर्वथा अलग-अलग । कारण मनोभूमि की भिन्नता थी । एक परिस्थितियों के अनुरूप ढलपाने, हर कदम पर समझौता कर बैठने को ही जीवन मानता था । आदर्श और सिद्धान्त उसके लिए बेवकूफी थे । दूसरे के लिए यही सब कुछ थे । इन्हीं के द्वारा उसे परिस्थितियों को मोड़ना था । इनमें से कौन श्रेष्ठ था, इसका मूल्यांकन समय के सिवा और कौन करे ?

रेल्वे स्टेशन पर टिमटिमा रही बत्तियों को देखकर दोनों चौंके । चौंकने के साथ ही दोनों के मुख पर से दो शब्द निकले- आ गया । पहुँचते ही अखबार बेचने वाले की आवाज कान में पड़ी- वह कुछ कह रहा था । आवाज को अनसुना करते हुए उसने एक अखबार लिया । यह काकेशस का विशेषांक था । पेज पलटते ही उछल पड़ा वह । मुख मण्डल पर सैकड़ों आश्चर्य एक साथ तैर गए । वह जैसे प्रसन्नता के सागर में समाने लगा हो ।

भावों का यह परिवर्तन मित्र से छुपा न रह सका । कंधा हिलाते हुए उसने पूछा- "क्या हुआ अलेक्सी"!"आज मेरा जन्म हुआ है ग्रेगरी "।

"जन्म....."। "हाँ ! साहित्यकार के रूप में और जन्मदाता है कूड़े का ढेर । जिसने मेरा पोषण किया । उसी के बल पर आज ।" कहते हुए उसने अखबार ग्रेगरी के सामने कर दिया । बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था- भाकार चन्दा । इस कहानी का लेखक था वह स्वयं ।

अरे तुम गोर्की कब से बन गए । मित्र के चेहरे पर भी प्रसन्नता छलक पड़ी ।

"गोर्की अर्थात्- तेज"।"मैं तेजी से समाज की विवशताओं के बन्धन काटना चाहता हूँ न इसलिए गोर्की बना"। दोनों किन्हीं सुखद अनुभूतियों में खोने लगे । यह गोर्की और कोई नहीं विश्व के सर्वश्रेष्ठ रूसी साहित्यकार मैक्सिम गोर्की ही थे, जिनके साहित्य ने रूस की क्रान्ति को दिशा दी । समाज को विवशता से उबारा । आज हर मानव उन्हीं की तरह अपने श्रम, समय, मनोयोग का नियोजन हो रही महाक्रान्ति के लिए कर सके, तो भावी युग मानव जाति का अभिनन्दन किए बिना न रहे । *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर का अस्तित्व एवं अनुभूति

भगवान को निराकार चेतन सत्ता कहा गया है, इसीलिए उसकी सर्वव्यापकता है, कण-कण में उसकी विद्यमानता बतायी गई है। कोई सत्ता इतनी निकट हो और हमें उसका आभास तक न मिले, ऐसा हो नहीं सकता। किसी न किसी रूप में तो उसकी उपस्थिति का एहसास हमें मिलना ही चाहिए, पर ऐसा प्रायः नहीं होता। तो क्या उसकी सत्ता से इनकार कर दिया जाय अथवा किसी स्थान विशेष में उसकी उपस्थिति मान ली जाय? पर यह भी उचित नहीं होगा, क्योंकि प्राचीन ऋषियों ने भी सर्वव्यापकता के सिद्धान्त का ही समर्थन किया है।

भिन्न-भिन्न दर्शनों ने अपने-अपने प्रकार से इसकी व्याख्या की है। किसी ने स्याद्वाद (संदेहवाद) का सिद्धान्त दिया, तो किसी ने शून्यवाद का, जबकि नीत्से जैसे दार्शनिकों ने तो "भगवान मर गया" यहाँ तक कह डाला। इतनी महान और महत्वपूर्ण सत्ता के संबंध में इतनी मतभिन्नता? आखिर क्यों? यदि वस्तुतः वह घट-घटवासी है, तो जनसामान्य को उसकी अनुभूति क्यों नहीं होती?

इसका उत्तर मूर्धन्य मनीषी राल्फ वाल्डो ट्राइन अपनी पुस्तक "इन ट्यून विद दि इनफाइनाइट" [illegible] देते हैं। पुस्तक के "दि सुप्रीम फैक्ट ऑफ दि ह्यूमन लाइफ" अध्याय में एक कहानी का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि उनके एक मित्र का कमल फूलों से सुशोभित एक सुन्दर तालाब था। उसके आस-पास प्राकृतिक घाटी की सुन्दरता व्याप्त थी। तालाब में पानी पास के एक पहाड़ी झरने से आता था। गर्मियों के दिनों में इसकी सुषमा और भी अद्भुत हो जाती थी। खिले हुए रंग-बिरंगे कमल फूलों [illegible] रहता था। तालाब के किनारों पर भी तरह-तरह के फूल सुशोभित होते रहते। ऐसे में भिन्न-भिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों के झुण्डों की उपस्थिति वहाँ के वातावरण को और भी नैसर्गिक बना देती। यही कारण है कि वहाँ पर्यटकों की भीड़ सदा बनी रहती। बच्चे, बूढ़े, युवक हर प्रकार के लोग हमेशा वहाँ आते-जाते दिखाई पड़ते। तालाब में पानी आने-जाने के लिए एक सुन्दर मार्ग और उसमें एक द्वार बना हुआ था, जो सदा पूरी तरह खुला रहता था, जिसके कारण पानी बह-बह कर आस-पास के क्षेत्र को भी हरा-भरा बनाये रखता था।

कुछ वर्षों के उपरान्त किसी आवश्यक कार्य से मित्र को एक साल के लिए कहीं बाहर जाना पड़ा। वह अपने स्थान पर देखभाल के लिए एक निरीक्षक नियुक्त कर गया। निरीक्षक बड़ा ही संकीर्ण और स्वार्थी प्रकृति का व्यक्ति था। जिस वस्तु और व्यक्ति से उसका कुछ स्वार्थ सिद्ध होता, लाभ मिलता, उससे ही वह अपना संबंध रखता, शेष की उपेक्षा कर देता। उसने आते ही तालाब में आने वाले पानी का मार्ग बन्द कर दिया और उसे निजी क्षेत्र घोषित कर लोगों का आना - जाना रोक दिया। पानी बन्द हो जाने से कुछ ही दिनों में वहाँ की सुन्दरता कुरूपता में बदल गई। पक्षियों का कलरव, पशुओं का निर्भय विचरण, मन को [illegible] फूलों की [illegible] वातावरण [illegible] नष्ट हो गया।

[illegible] वाल्डो [illegible] हैं कि इतना [illegible] परिवर्तन [illegible] विच्छेद [illegible] के कारण हुआ। मनुष्य जीवन से इस [illegible] की संगति बिठा[illegible] कहते हैं [illegible] मनुष्य उस अनन्त चेतना के सा[illegible] है। उसी से वह उत्पन्न हुआ है, पर यहाँ के अधिसंख्यक लोग उस संकीर्ण और स्वार्थी निरीक्षक की भाँति आचरण करते हैं और स्वतः ही उस परम चेतना से सम्पर्क का अपना द्वार बन्द कर लेते हैं, फलतः न सिर्फ उस शक्ति और सत्ता का अनुभव नहीं कर पाते, वरन् उसका मार्गदर्शन पाने और लाभ उठाने से भी वंचित रह जाते हैं।

रिचार्ड मोरिस बक अपनी पुस्तक "कॉस्मिक कॉन्शसनेस" में इसी बात को दूसरे ढंग से समझाते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य मूलतः शुद्ध पवित्र अन्तःकरणयुक्त होता है, पर सर्वत्र प्रदूषित वातावरण होने और उसी में पलने-बढ़ने के कारण धीरे-धीरे वह उससे प्रभावित होकर अपवित्र बन जाता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबकि उसे कीचड़ में कमल की भाँति अप्रभावित रहना चाहिए । वे कहते हैं कि कमल कीचड़ में खिलकर भी उसकी सड़न और दुर्गन्ध से सर्वथा मुक्त होता है और अपनी माकदता बिखेरता रहता है । उसका यही आकर्षण उसके पास मधुमक्खियों को भी खींच बुलाता है और भृंगों एवं मनुष्यों को भी । यदि उसमें रंगों का सौन्दर्य न हो और सदा बदबू ही बिखेरता रहे, तो मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी उसके निकट न फटकें । रिचार्ड मोरिस का कहना है कि मनुष्य की तरह भगवान भी आकर्षणों के पीछे भागते हैं, अन्तर एक ही है- मनुष्य आमतौर से बुरे आकर्षणों की ओर उन्मुख होता है और जो अच्छा एवं कल्याणकारी है, उससे परहेज करता है, किन्तु ईश्वर ऐसा नहीं करते, उनका पलायन सदा अच्छे आकर्षणों की ओर होता है । वह उन्हीं व्यक्तियों की ओर आकर्षित होते हैं, जो अपने सद्गुण और सद्व्यवहार से आस-पास के वातावरण को एवं सत्कार्यों द्वारा समाज के वातावरण को चन्दन की तरह सुवासित करते रहते हैं । प्रकारान्तर से यही वह मानदण्ड है, जिसके आधार पर परमसत्ता की न सिर्फ अनुभूति होती है, वरन् मार्गदर्शन भी मिलता है ।

आज जो विरोधाभास दिखाई पड़ता है या अनीश्वरवादियों के शब्दों में कहें, तो ऐसी किसी सत्ता की जो शून्यता या अनुपस्थिति प्रतिभासित होती है, उसका एक प्रमुख कारण मनुष्य की मलिनता है । दैनिक जीवन में हम देखते भी हैं कि बालक माता का कितना ही प्रिय क्यों न हो, वह तब तक उसे अपनी गोद में नहीं उठाती, जब तक पूरी तरह आश्वस्त नहीं हो जाती कि वह साफ-सुथरा है, मलमूत्र में सना नहीं है । फिर सर्वथा शुद्ध-पवित्र ईश्वरीय सत्ता का सान्निध्य-लाभ हम अपने अपरिष्कृत और अपवित्र स्वरूप से कैसे कर सकते हैं ? किन्तु ईश्वर की अनुभूति प्राप्त करने की दिशा में मनुष्य का आत्म-परिष्कार ही सब कुछ नहीं होता । इसे लक्ष्य की दिशा में आधा रास्ता तय करना ही कहा जा सकता है । यह तो व्यक्तिगत जीवन की एक श्रेष्ठ उपलब्धि मात्र है । मनुष्य सामाजिक प्राणी भी है, वह समाज में रहता है, इसलिए उसके कुछ सामाजिक दायित्व भी होते हैं, जिसे उसे अनिवार्य रूप से पूरा करना पड़ता है । इसे प्रयोजन का उत्तरार्ध कहा जा सकता है । इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में चिन्तन और व्यवहार में उदात्तता और सामाजिक जीवन में सेवा-सहकार की अनिवार्यता-यह दोनों मिल कर ही सम्पूर्ण उद्देश्य की पूर्ति कर पाते हैं । चिन्तन यदि पवित्र हो और व्यवहार भी शालीन हो, किन्तु सामाजिक जीवन में निष्क्रियता बनी रहे, तो भी व्यक्ति आत्मोन्नति के क्षेत्र में-ईश्वर-साक्षात्कार के संदर्भ में वह लाभ नहीं उठा सकेगा, जो सेवा-सहकार का दूसरा और महत्वपूर्ण पक्ष साथ-साथ क्रियान्वित होने से हो सकता था । कोई मूर्तिकार मूर्ति बहुत सुन्दर, सजीव और आकर्षक बनाता हो, उसे देखते ही दर्शकों को किसी जीवन्त नारी का भ्रम हो जाता हो, पर इतने से ही तो प्रतिमा बोलने नहीं लग जाती । इतना सब होने के बावजूद भी उसमें एक कमी रह जाती है- प्राण की और यही कमी उसके लिए सबसे बड़ी कमी साबित होती है । यही बात उस साधक पर भी लागू होती है, जो ईश्वर-दर्शन की आकांक्षा तो रखता है, इसके लिए आत्म-परिष्कार की आवश्यक साधना भी करता है, पर लोक-आराधना के अभाव में वह अंकुरित बीज पौधा बनने से पूर्व ही सूख जाता है ।

> *परचुरे शास्त्री को कुष्ठ रोग हो गया वे गाँधी जी की कुटिया के पास ही रहते थे ।*
>
> *किसी ने दवा बताई कि काला साँप हांडी में बंद करके जलाया जाय । उसकी भस्म शहद के साथ खाई जाय तो कुष्ठ रोग दूर हो जायगा ।*
>
> *शास्त्री जी ने कहा इससे तो अच्छा है कि मुझे ही किसी संदूक में बंद करके जला दिया जाय । दूसरे का प्राण हरण करके अपने लिए सुविधा पाने में क्या न्याय है ?*

राल्फ वाल्डो के शब्दों में यही सिंचन का वह द्वार है, जिसके खुला रहने से तालाब और उसके उद्गम स्रोत के बीच जो सम्बन्ध होता है, उस स्तर का सम्बन्ध बना रहता है, जिसका प्रतिफल सुखमय जीवन के रूप में सामने आता है । मनुष्य जीवन में जीवन-साधना और लोक-आराधना के रूप में यह दो द्वार हैं । इन्हें खुला रखने से ही ईश्वर-उपासना अर्थात्- निकटता एवं उसकी अनुभूति की बात बनती है तथा परमसत्ता का बोध सदा, सर्वदा और सर्वत्र हो सकता है । ऐसा संभव हो सके, तो फिर कोई चार्वाक् या नीत्से यह नहीं कह सकेगा कि "ईश्वर मर गया ।" ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके शरीर से शोले फूटते हैं

न्यूयार्क के एक दोनों आँखों से अन्धे एन्थोनी एलिबर्टी नामक व्यक्ति को अपने अंधत्व पर कोई दुख नहीं है क्योंकि वह आँखों का काम कानों के सहारे चलाता है । वह नित्य लांग आइलैण्ड से वॉक्स तक भारी भीड़ भाड़ वाला रास्ता इस होशियारी से पार करता है कि कोई उसके अन्धे होने का अनुमान नहीं लगा सकता । कोई साथी तो क्या लाठी का सहारा तक वह अपनी दैनिक यात्रा में नहीं लेता ।

एन्थोनी कुश्ती लड़ने , गोला फेंकने, छलांग लगाने जैसे खेलों में भाग लेता है । वह बढ़ई का भी काम कर लेता है , साथ ही लोहा मशीन पर पुर्जे भी खरादता है । साइकिल चलाता है, पियानो बजाता है और अच्छी आमदनी करके परिवार का गुजारा करता है । इन कामों में उसे अभी तक किसी चोट या दुर्घटना का शिकार नहीं होना पड़ा । दृष्टि क्षमता न होने की बात डाक्टरों द्वारा अनेक बार जांची जा चुकी है । पत्रकारों को वह बताता है कि कोई भी अन्धा व्यक्ति अपनी दिव्य दृष्टि को अभ्यास द्वारा विकसित कर सकता है । मात्र मनोबल की प्रचण्डता इस के लिए चाहिए ।

जापान के टोक्यो नगर की बारह वर्षीय बालिका सयूरी तनाका ने भी इसी तरह अतीन्द्रिय क्षमता विकसित कर ली है और वह आँखों का काम नासिका के अग्रभाग से लेती है । सामान्य आँखों पर मोटी पट्टी बांध देने पर भी वह पुस्तकों को उसी तरह पढ़ लेती है जैसे कि नेत्रों से । वह न केवल टेलीविजन पर चल रहे कार्यक्रमों को देख लेती और अक्षरशः वर्णन कर देती है, वरन् उसने इस क्षमता को इतना अधिक विकसित कर लिया है जिसके द्वारा सामान्य नेत्रों से सम्पन्न होने वाले सभी कार्यों को करने में वह सक्षम बन गई है । तृतीय नेत्रों की तरह ही उसकी नासा दृष्टि से कुछ भी छिपा नहीं रहता । दो वर्ष की छोटी उम्र से ही वह अनुसंधान कर्ताओं के लिए खोज का विषय बनी हुई है । विशेषज्ञों ने उसकी इस विलक्षणता को कितनी ही बार जांचा-परखा है और पाया है कि नासाग्र को ढक देने पर तनाका छटपटाहट सा महसूस करती है । वे मात्र इतना ही जान पाये हैं कि यह सामर्थ्य मानसिक चेतना के एक जगह पर केन्द्रीभूत होने के कारण उद्भूत हुई है । यह संभावना हर किसी में विद्यमान है ।

चीन के लेनजहोन शहर के निकट रहने वाले वेल रुओयांग नामक एक किशोर की आंखें एक्सरे की तरह पारदर्शी हैं । दीवालों के उस पार क्या हो रहा है व पृथ्वी के गर्भ में कहाँ क्या छिपा हुआ है ? उसकी आँखे उन्हें स्पष्ट देख लेती हैं । मानवी काया की भीतरी संरचना , उस में उत्पन्न विकार ट्युमर आदि की स्पष्ट जानकारी उसकी सूक्ष्म दृष्टि एक्सरे की तरह रोगी के सामने उजागर कर देती है । वेल ने अपने कानों को भी पारदर्शी एवं अति संवेदनाशील बना लिया है और उनसे पढ़ने का काम लेता है । परीक्षणकर्ता वैज्ञानिकों एवं मूर्धन्य पत्रकारों ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि उसकी यह प्रतिभा जन्मजात है जिसको अभ्यास द्वारा विकसित करके उसने इस स्तर तक पहुँचा दिया है कि लोग उसे दिव्य द्रष्टा की संज्ञा देने लगे है ।

कितने ही लोग जन्मजात विलक्षणता लिए होते हैं , पर कई बार ऐसा भी होता है कि किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों में किसी दुर्घटना के कारण भी ऐसी दिव्य क्षमताएँ उभर आती हैं । पिछले दिनों सोवियत संघ के यूक्रेन प्रान्त की एक खान में कार्यरत ३६ वर्षीय महिला जुलिया वोरोवियेव के साथ कुछ ऐसा ही घटित हुआ । उच्च धारा वाले बिजली के तार से छू जाने के कारण उसे ६ महीने अस्पताल में भर्ती रहना पड़ा । इसी मध्य एक दिन उसने अनुभव किया कि उसकी आँखे एक्सरे की भाँति किसी भी वस्तु या व्यक्ति के आरपार एवं उसके भीतर झाँक सकती हैं । सूर्य की अति सूक्ष्म अल्ट्रावायलेट किरणों तक को वह देख लेती है । धरती के गर्भ में छिपी खनिज सम्पदा, जल स्रोत , विवर आदि कुछ भी उसकी आँख से बच नहीं पाते और अपना रहस्य उगल देते हैं । मौसम-परिवर्तन एवं तूफानों के आगमन की पूर्व जानकारी उसे बहुत पहले ही हो जाती है । डोनेटुक अस्पताल के चिकित्सा विज्ञानी जुलिया की इस अतीन्द्रिय क्षमता के माध्यम से उन जटिल रोगों का पता लगाते हैं जिन्हें वे स्वयं महँगे वैज्ञानिक उपकरणों से भी ज्ञात नहीं कर पाते । जब कि वह जटिल से जटिल रोगों की जानकारी ५ से १० सेकण्ड के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर प्राप्त कर लेती है ।

इटली के प्रसिद्ध पर्यटक स्थल फामिया में रहने वाले ११ वीं कक्षा के छात्र बेनेदेत्तो सुपीनों की आँखों से चिनगारियों का फब्बारा छूटता है । जब कभी वह किसी वस्तु पर देर तक नजरें टिका देता है, उसमें आग लग जाती है । अब न तो वह नेत्रों पर जोर देकर पुस्तकें पढ़ सकता है और न ही कुछ लिख सकता है । परिवार के सदस्यों की तरफ भी वह एक टक नहीं देख सकता , अन्यथा किसी के चेहरे पर नजर टिकी कि वह झुलसने लगता है । परीक्षणकर्ता वैज्ञानिकों ने इसे प्राणशक्ति का चमत्कार बताया है, जो किन्हीं कारणों से बेनेदेत्तो में जाग्रत हो गई है , पर उसके सुनियोजन की कला ज्ञात न होने से वह मात्र तमाशा दिखाने या हानि पहुँचाने जैसे कौतूहल ही प्रस्तुत कर सकती है ।

इसी तरह रूस के यूक्रेन का शशा नामक एक किशोर छात्र जिस किसी वस्तु का स्पर्श कर लेता है, वह जलने लगती है । अब तक वह अपने तन ढकने के वस्त्रों से लेकर घर की प्रायः सभी वस्तुओं को भस्मसात कर चुका है । अपनी इस विलक्षण शक्ति के कारण उसे कितनी ही बार स्थान परिवर्तन के लिए रिश्तेदारों के यहाँ भेजा गया , किन्तु वहाँ से भी इस प्रक्रिया के कारण उसे भागना पड़ा । शशा की असाधारण क्षमता का अध्ययन कर रहे सुप्रसिद्ध चिकित्सा विशेषज्ञ डॉ. वाल्दीमिर कोरचिन्कोव का कहना है कि उसकी पूरी काया डायनुमों की भाँति वैद्युतीय आवेश से भरी रहती है और जब तब उसमें उफान सा उठता है और सम्पर्क में आने वाली वस्तु में आग लग जाती है । इसी तरह का निष्कर्ष यूक्रेनियन एकेडमी आफ साइन्सेस के प्रमुख रसायन विज्ञानी डॉ. ए नातोली पोपोव का हैं । उनने इसे प्राणाग्नि का एक स्थान पर अधिक परिमाण में संचय बताया है और माना है कि मनुष्य का शरीर भी सूर्य की तरह ही एक आग का गोला है । इस छोटे से पिण्ड में अगणित शक्तियाँ समाहित हैं जिनमें से प्राण एक है । यह सारा खेल उसी का है ।

मेनचेस्टर की श्रीमती पालिन शा नामक एक अधेड़ महिला चलते फिरते जीवंत बिजली घर के रूप में प्रसिद्ध है । जिस किसी वस्तु को वह स्पर्श कर लेती है , धमाके की आवाज के साथ उसमें से शार्ट सर्किट की तरह चिनगारी निकलने लगती है । हाथ मिलाने वाले झटके खा कर दूर जा गिरते हैं । जाँचकर्ता वैज्ञानिकों ने पाया है कि पालिन के शरीर से दो हजार वोल्ट तक का वैद्युतीय प्रवाह निकलता है । इससे बचने के लिए डॉक्टरों ने उसे विद्युत रोधी दस्ताने पहनने और दिन में कई बार नहाने की सलाह दी है । अपने बायें टखने में वह सदा एक अर्थ वायर बांधे रखती है जिससे शरीर में उत्पन्न होने वाली अतिरिक्त विद्युतीय तरंगे धरती में समा जायें ।

पालिन शा पहले एक कंप्यूटर कंपनी में क्लर्क के पद पर कार्यरत थी , पर कुछ दिनों पश्चात् उसके अन्दर कुछ ऐसा परिवर्तन हुआ कि उसकी उपस्थिति मात्र से कंप्यूटरों ने सही ढंग से काम करना ही बंद कर दिया । फलतः राशियाँ और परिणाम गलत निकलने लगे । उसका स्थानान्तरण अन्य जगह कर देने पर मालिक को दूसरी तरह की परेशानियाँ सुनने को मिलने लगी कि जो भी उसके सम्पर्क में आता है , वैद्युतीय झटके का शिकार बन जाता है । अंततः उसे नौकरी छोड़नी पड़ी । अपनी वैद्युतीय क्षमता का परिचय सबसे पहले उसे तब मिला , जब एक दिन मछलियों से भरे एक्वैरियम को छूने मात्र से उसके कांय विद्युतीय न्यू प्रवाह को प्रवाह सह न पाने कारण वे सबकी सब मछलियाँ छटपटा कर मर गई ।

उपरोक्त घटनाएँ महर्षि वशिष्ठ के उस कथन की पुष्टि करती हैं जिसमें कहा गया है कि मानवी काया से श्रेष्ठ और अद्भुत संरचना इस सृष्टि में और कोई दूसरी नहीं है । समस्त ऋद्धि-सिद्धियों के भाण्डागार इसी देह में प्रसुप्त अवस्था में भरे पड़े हैं । आवश्यता मात्र उन्हें पहचानने , जाग्रत और विकसित करने तथा सदुपयोग में लाने भर की है । आन्तरिक विभूतियाँ कितनी बहुमूल्य हैं, इसे अनुभव से ही जाना जा सकता है ।

उपरोक्त वृत्तान्त चाहे वे अतीन्द्रिय क्षमता के जागरण के हों अथवा प्राण शक्ति के एक स्थान पर केन्द्रीकरण से चमत्कारी परिणति दिखाने वाले , एक ही तथ्य प्रमाणित करते हैं कि ऋद्धि-सिद्धियों का समुच्चय मनुष्य में अंदर प्रसुप्त पड़ा है । यदि प्रयासपूर्वक उन्हें जगाया उभारा जा सके तो अपनी सामान्य क्षमताओं के अतिरिक्त इन सामर्थ्यों से वही लाभ लिया जा सकता है जो प्राचीनकाल में ऋषिगण अपनी काया रूपी प्रयोगशाला में तपश्चर्या द्वारा प्रत्यक्ष कर दिखाते थे । भौतिक उपलब्धियों की तुलना में आत्मिक विभूतियाँ निश्चित ही बहुमूल्य हैं , इस तथ्य पर किसी प्रकार विवाद नहीं है । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैवी प्रेरणा बनाम अंतःस्फुरणा

भगवद् शक्ति के क्रियान्वित होने का एकमात्र माध्यम मनुष्य शरीर ही है । वह निराकार सत्ता कुछ भी उदात्त कार्य इसका प्रयोग कर पूरा करा सकती है । समय-समय पर होने वाली महत्वपूर्ण वैज्ञानिक शोधों एवं खोजों के पीछे यही रहस्य छुपा हुआ है । परम पिता और मनुष्य उसका श्रेष्ठ व ज्येष्ठ राजकुमार होने के नाते वह सत्ता सदा उसे उच्चस्तरीय प्रेरणाएँ दिया करती है अथवा कोई ऐसा कार्य करवा लेती है, जिसे मनुष्य संयोग समझ बैठता है, पर वही संयोग जब बाद में महत्वपूर्ण खोज बन जाता है, तो उसे आश्चर्य होता है कि आखिर ऐसा क्यों हुआ ? ऐसी बात नहीं कि कोई एक आविष्कार में ऐसी घटना घट गई हो । आदिम काल में आग से लेकर वर्तमान के आग्नेयास्त्रों तक के अनुसंधानों का इतिहास ऐसी ही स्फुरणाओं अथवा भूलवश घटी घटनाओं से भरा पड़ा है, जो बाद में महत्वपूर्ण आविष्कार साबित हुईं । यह बात दूसरी है कि मनुष्य इसे अपनी स्वयं की उपलब्धि मान बैठता है, पर सच पूछा जाय तो इसके पीछे उसी परम सत्ता की इच्छा-आकांक्षा काम करती रहती है ।

वोल्गाना विश्वविद्यालय, इटली के प्राध्यापक लुइगी गेल्वीनि एक दिन अपनी प्रयोगशाला में जीव-जन्तुओं की नाड़ियों एवं मांसपेशियों में विद्युत प्रवाह के प्रभाव का अध्ययन कर रहे थे । उन्होंने मेढ़क को काटने के लिए स्टील का औजार प्रयुक्त किया । उसी समय उनके सहायक ने उसी कमरे में स्थिर विद्युत मशीन से विद्युत प्रवाह उत्पन्न किया, जिससे एक वैद्युतिक चक्र बन गया और अचानक मेढ़क की मांसपेशियों एवं नाड़ियों में ऐसी फड़कन अनायास हुई मानों कोई जोर लगाया गया हो । मरे हुए मेढ़क में इस परिवर्तन ने विद्युत धारा के सम्बन्ध में एक रास्ता खोल दिया, जो आगे चलकर चिकित्सा क्षेत्र में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ ।

सन् १८३७ के पहले फोटो लेने की मशीन का निर्माण नहीं हुआ था । इसके पूर्व मात्र हाथों के प्रयोग से ही चित्र बनाये जाते थे । प्रायोगिक फोटोग्राफी के सम्बन्ध में खोज करने का श्रेय लुईस डेगुइर को जाता है, किन्तु सही अर्थों में यह खोज उनकी भी नहीं थी, वरन् यह तो अनायास ही हो गया था । डेगुइर प्राकृतिक दृश्यों को बनाने वाले चित्रकार मात्र थे । अतः सहायता के लिए अँधेरा एवं धुँधला फोटो लेने वाला कैमरा प्रयुक्त किया करते थे । वे फोटोग्राफिक प्लेट में सिल्वर का आवरण लगाते थे एवं संवेदनशील बनाने के लिए आयोडिन प्रयुक्त करते थे । परन्तु उससे जो चित्र मिलते थे, वह अस्पष्ट एवं धुँधले होते थे । एक दिन एक प्लेट जिसमें चित्र खिंच चुका था, एक पात्र में पड़े रसायन में धोने लगे और उस प्लेट का पुनः उपयोग किया दूसरे दिन उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई, क्योंकि जो चित्र प्राप्त हुआ वह बहुत ही स्पष्ट एवं साफ दिखाई दे रहा था, किन्तु परेशानी तब हुई कि कैसे पता लगाया जाय कि एक या अनेक रासायनों के सम्पर्क से यह परिवर्तन हुआ । इसके लिए कई दिनों तक प्रयोग-परीक्षण चलता रहा, पर उन्हें निराशा ही हाथ लगी क्योंकि जो सूत्र मिला वह आधा-अधूरा ही था । उनकी निगाह प्रयोग के दौरान बिखरी पड़ी चमकती हुई बूँदों पर पड़ी । इसका जब उन्होंने अध्ययन किया, वे जोर से चिल्ला पड़े- "मैंने प्रकाश को पकड़ लिया, मैंने उसकी उड़ान को पकड़ लिया । भविष्य में सूर्य को भी कैमरे में कैद होना पड़ेगा ।" यह विजय वस्तुतः डेगुइर की नहीं, अपितु कोई शक्ति उनसे भूलें करवाकर यह प्रयोग सफल करवाना चाहती थी ।

सन् १८३९ के पहले रबर का उपयोगी स्वरूप प्रकट नहीं हुआ था, वह रबर जो इस समय दैनिक जीवन क्रम में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इसकी खोज भी अचानक घटने वाली घटना के ही फलस्वरूप हुई । रबर का प्रारंभिक रूप उपयोग रहित था । गरम अवस्था में चिपकने वाला एवं ठंडा होने पर कड़ा, जो निरुपयोगी था । अमेरिका के चार्ल्स गुडइयर रबर को उपयोगी बनाने के लिए कई वर्षों से प्रयत्नरत थे । एक दिन कच्चे रबर को घुलाने के लिए गंधक का उपयोग कर रहे थे, कि नीचे गरम स्टोव में कुछ सल्फर एवं रबर गिर पड़ा । रबर गल गया, तब सल्फर से जब प्रतिक्रिया हुई, तो रबर का वह उपयोगी स्वरूप सामने आया, जो वर्तमान में प्रयुक्त होता है । यह घटना यदि नहीं घटी होती, तो शायद आज हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रबर से वंचित ही बने रहते, पर कदाचित् भगवत् सत्ता को मनुष्य की यह पिछड़ी स्थिति स्वीकार नहीं थी, इसी कारण उसने उक्त घटना द्वारा उसे एक ऐसे युग में प्रविष्ट करा दिया, जिसे रबर एवं प्लास्टिक युग कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।

मरने के बाद कुछ समय तक जीव-जन्तुओं का हृदय क्यों धड़कता रहता है, इस सम्बन्ध में ग्रेट ब्रिटेन के डॉ. रिंजर विभिन्न प्रकार के परीक्षणों में निरत थे । नमक की कुछ मात्रा मेढ़क के रक्त में मिलाने पर मरने के बाद भी हृदय धड़कता रहा, किन्तु यह बहुत कम समय के लिए था । एक दिन डॉ. रिंजर यह देखकर हैरान हुए कि नल के पास कई घंटे पहले मृत पड़े मेढ़क का हृदय अब भी धड़क रहा है । वे आश्चर्यचकित थे कि आखिर यह कैसे संभव हुआ ? इसका कैसे पता लगाया जाय, इसका उत्तर भी जल्दी ही मिल गया । प्रयोगशाला में काम करने वाले सहायक लड़के ने बताया कि उसने "रिंजर सोल्यूशन" के बदले नल के जल का ही प्रयोग किया । किन्तु सौभाग्य से उस दिन नल के जल में सही अनुपात में पोटेशियम एवं सोडियम की मात्रा मिली हुई थी, जो आगे चलकर "रिंजर सोल्यूशन" कहलाया, जिसका उपयोग चिकित्सा एवं जैविक परीक्षणों में अति महत्वपूर्ण है । उस दिन यदि वह लड़का स्वतः प्रेरणा से नल का पानी प्रयुक्त न करता, तो इसकी खोज नहीं हुई होती । ऐसा लगा, मानो कोई चेतन सत्ता ने मनुष्य को हारते देखकर खोज के लिए अनुकूल परिस्थिति बनाई हो ।

फ्रांस के हेनरी बाक्वारल, रोण्टजन की "एक्स-रे" की खोज के बाद से यह समझने लगे थे कि सूर्य किरण ही एक्स किरणों के रूप में बदलती है । इसी सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिए एक प्रयोग के दौरान उन्होंने फोटोग्राफिक प्लेट को काले पेपर से ढँक दिया । उसके बाद उसके पास स्वतः दीप्तिमान पदार्थ, सौभाग्य से यूरेनियम को रखा और सोचा कि इससे निःस्सृत किरणों का प्रभाव प्लेट पर पड़ेगा । इतना मालूम था कि यह सूर्य किरणों के निकलने पर चमकती है, किन्तु सूर्य कई दिनों तक उदित नहीं हुआ, मौसम खराब होने के कारण । अतः प्रतीक्षा करने के लिए बाक्वारेल ने सभी सामग्रियों को एक दराज में बन्द कर दिया । बाद में जब बाक्वारेल ने इसे साफ किया तो पता चला, यह तो प्रभावित हुआ है । तब उन्होंने सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि कुछ ऐसे तत्व हैं, जिनसे प्रकाश की अनुपस्थिति में भी कुछ किरणें निकलती हैं । उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यूरेनियम के अन्दर मौजूद किसी अज्ञात तत्व से यह रेडियेशन निकल रहा है । इस तरह आगे की खोज के लिए उन्होंने एक नया रास्ता बनाया । इसी सूत्र के आधार पर १९११ में मैडम क्यूरी ने रेडियम की खोज की, परन्तु क्या होता यदि बाक्वारेल के प्रयोग के दिनों सूर्य निकल जाता ? तब शायद यह महत्वपूर्ण अनुसंधान संभव न होता ।

सर अलेक्जेण्डर फ्लेमिंग रोगों के निमित्त कारण बैक्टीरिया पर कुछ शोध कर रहे थे । १९२२ के एक दिन उन्हें जुकाम हो गया । अचानक उड़ आयी बैक्टीरिया का कुछ अंश उछलकर उनके नाक एवं मुँह में गिर गया । फ्लेमिंग दुखी हुए कि मेहनत बेकार गई । किन्तु तब वे आश्चर्य में पड़ गये जब इससे उनका जुकाम ठीक हो गया । इसी के आधार पर वे आगे प्रयोग-परीक्षण करते गये और अन्ततः एक ऐसी खोज की जिससे प्राणरक्षक पेनीसिलिन दवा बनायी जा सकी । वह घोल जिससे दवा बनी थी, फफूँद से बना था व गलती से ही बन गया था । किंतु एक महत्वपूर्ण आविष्कार उसी से संभव हुआ ।

न्यूटन का तीसरा नियम एवं गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त फल को पेड़ से टपकते देखकर होना, फैराडे द्वारा विद्युत की खोज चुम्बक के चारों ओर लिपटे कुण्डलीय तार के कारण होना, पक्षियों को देखकर वायुयान की कल्पना चित्र बनना, उबलती हुई केतली को देखकर स्टीम इंजन का, इसके द्वारा आविष्कार, माता के डाँटने पर कि शाम को पौधों को न सताओ, इसके द्वारा पेड़-पौधों में चेतना होने की जगदीश चन्द्र बसु द्वारा खोज, यह सब तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि जहाँ मानवी बुद्धि असफल होकर हताश-निराश सिद्ध होने लगती है, वहीं परमसत्ता स्फुरणा के रूप में, दुर्घटना, संयोग अथवा भूल या सामान्य घटना के माध्यम से व्यक्ति का मार्गदर्शन करती है । यह बात और है कि व्यक्ति उसे ऐसा ही मान लेता है, पर इनके पीछे वस्तुतः उसी समर्थ सत्ता का हाथ होता है, जिसने यह सृष्टि बनायी है । इन दिनों यदि हम अपने अन्तराल को तनिक-सा पवित्र बना लें, तो जीवन-यापन के संदर्भ में ऐसी ढेरों सत्प्रेरणाएँ अनायास प्राप्त कर सकते हैं, जो हमारे जीवनक्रम को सरल-सहज बना दें, क्योंकि आज हम महाकाल की सक्रिय गतिविधियों के महत्वपूर्ण सन्धिकाल से गुजर रहे हैं । विश्व घटनाक्रमों पर दृष्टि डाल कर इसका स्पष्ट आभास प्राप्त किया जा सकता है । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं व्यक्ति नहीं, विचार हूँ !"

महासागर के शान्त वक्षस्थल पर भयानक झंझावात उठने के पहले एक घोर निस्तब्धता छा जाती है। उस समय वायुमण्डल उत्तेजित हो उठता है और सारा वातावरण एक आशंका से शून्य सा हो जाता है। आकाश के वक्ष पर ज्वालामुखी के फटने के पहले एक घोर दबी हुई अशान्ति फैल जाती है, उसका नीला रंग धूमिल हो जाता है और एक भय से सारा आकाश–मण्डल वायु से रिक्त हो जाता है।

कारागार के इस कक्ष में कुछ ऐसी ही शून्यता-रिक्तता छाई हुई थी। दीवारें तक सहम कर मलिन हो उठी थीं। उनके पास बैठे इन सबकी दशा तो और बदतर थी। अन्दर के उद्वेलन के बावजूद इन्हें अनुभव हो रहा था जैसे रगों में लहू की भाग दौड़ सांसों की घुसपैठ सभी कुछ थमने को है। निराशा, भय, आशंका रिक्तता के इस माहौल में सिर्फ एक वही प्रसन्न लग रहे थे। पता नहीं कौन सी ऐसी अमर मूरि थी उनके पास।

"तब फिर आप नहीं ही चलेंगे।" पास बैठे सत्ताइस-अट्ठाइस साल के युवक ने पूछा ? भावों के अतिरेक से उसका गला रुंधा था। काफी देर से समीप बैठा आँखें नीचे किये पैर के अँगूठे से फर्श खुरच रहा था। उसे सूझ नहीं रहा था क्या करे वह।

न्यायालय से उन्हें मृत्युदण्ड घोषित किए जाने के बाद इन सबने उनको कारागार से छुड़ाने की योजना बनाई थी। सब कुछ ठीक हो गया था पर किया क्या जाय वह स्वयं मना कर रहे थे। जेल कर्मचारियों की भी गुप-चुप सहमति थी। सभी को पता था, न्यायाधीशों ने विद्वेषियों के दबाव में आकर फैसला सुनाया था। उनके रहने से कितनों का ही कल्याण हो रहा था। कितने ही भटकन से उबरे थे। पर अब ...उसने उनके चेहरे की ओर देखा। सत्तर वर्ष से अधिक अवस्था हो जाने के बाद भी झुर्रियों और मलिनता के निशान न थे। प्रफुल्लता भरी ताजगी थिरक रही थी।

"अरे ! मृत्यु मेरी है और उदासी तुम सबके चेहरों पर," हँसते हुए उनने उसका कंधा थपथपाया। फिर गम्भीर हो बोले- "कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं जब किसी की मृत्यु का मोल जीवन से अनेकों गुना अधिक हो जाता है। जिस समय स्थूल शरीर सूक्ष्मतर शक्तियों के क्रियाकलाप में अवरोध बनने लगे। ऐसी दशा में ठीक यही है कि इस खोल को उतार दिया जाय। सभी दम साधे सुन रहे थे। कौन क्या बोले ? बोले भी तो क्या ?

"पर आपके रहने से अनेकों का भला ...।" एक अन्य ने निवेदन करना चाहा। उसकी वाणी में हिचकिचाहट के साथ अनुनय का पुट था।

"फीडो ! लगता है तुम लोग मुझे पहचान नहीं पाए। इन सबकी आँखों में झाँकते हुए बोले- "मैंने कितनी बार समझाया कि मैं व्यक्ति नहीं हूँ।"

इस कथन को सुन पास आ रहे एक जेल कर्मचारी के पाँव ठिठक गए। वह बताने आ रहा था निकलने का सभी सुयोग बन चुका है। किन्तु "मैं व्यक्ति नहीं हूँ" सुनकर अवाक् रह गया। सोचने लगा-कैसा विलक्षण है यह आदमी जो कह रहा था कि मैं आदमी नहीं, व्यक्ति नहीं।

"तो महाशय आप क्या हैं।" उसकी जिज्ञासा होंठों से निकले बगैर रह न सकी।

"मैं विचार हूँ मित्र !" चेहरे पर गम्भीरता और आँखों में एक अनोखी चमक खेल रही थी। कुछ रुक कर बोले- "जहर पीस लिया गया।"

यहाँ तो....।"

"नहीं ! तुम जहर पीसो।"

सुनने के साथ उसके पैर द्वार की ओर मुड़ गए।

वह पुनः अपने शिष्यों को समझाने लगे- तुम सबके दुःखी निराश होने का कारण यही है कि तुम लोग मुझे व्यक्ति के रूप में पहचानते आए हो। आज जबकि इसके खो जाने का, बिछुड़ने का समय आ गया सब के सब विकल हो। पर मैं व्यक्ति था ही कब ? यदि मेरे द्वारा किसी का भला हुआ भी है तो सिर्फ विचारों के कारण।

"विचारों की शक्ति आपसे भी ज्यादा !" गुरु से बिछुड़ने के दुःख ने उसके मन में अजीब सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सनसनाहट भर दी थी । समझना चाहकर भी समझ नहीं पा रहा था ।

"हाँ इनकी अपार शक्ति है प्लेटो ।" वह उनका सर्वाधिक प्रिय शिष्य था । विनम्र और मितभाषी । सारी उम्र उन्होंने जो ज्ञान की मशाल जलाई, अब उसे प्रज्ज्वलित रखने का दायित्व उसी का था, अन्यों को तो सिर्फ सहायक भर होना था । विचार कर्म के प्रेरक हैं । वह अच्छे कर्मों में लग जाएँ तो अच्छे और बुरे मार्ग में प्रवृत्त हो जाएँ तो बुरे परिणाम प्राप्त होते हैं । सच मानो यदि कोई आदमी किसी अकेली कोठरी में बन्द होकर विचार करे और ऐसा ही करते हुए मर जाए तो वे विचार कुछ समय बाद कोठरी की दीवारों को भेद कर बाहर निकल पड़ेंगे और अनेकों को प्रभावित किए बिना न रहेंगे । वात्सल्य के अनुपान में सने ये शब्द सुनने वालों के दिलों में समाए बिना न रह सके ।

शिष्यों को अपने गुरु की व्यथा मालूम थी । उन्हें ज्ञात था कि उनकी मुसकान के आवरण में कितनी तड़पन छुपी है । सारी उम्र उन्होंने जीवनों को सँवारा है और अब जबकि वह स्वयं महाप्रयाण की ओर गतिमान हैं। वामन से विराट होने की दिशा में पाँव बढ़ा रहे हैं, उनके कार्य का गुरुतर दायित्व शिष्य परिकर को ही तो वहन करना पड़ेगा ।

"देख नहीं रहे लोक जीवन का प्रवाह ।" उनकी वाणी अन्तराल की गहराइयों से उभरी ।" तनिक प्रचलित जीवन शैली का विश्लेषण तो करो-शरीर क्या है ? मलमूत्र से भरा और हाड़-मांस से बना घिनौना किंतु चलता-फिरता पुतला । जीव क्या है ? आपाधापी में निरत, दूसरों को नोच खाने की कुटिलता में संलग्न चेतना स्फुल्लिंग । जीवन क्या है ? एक लदा हुआ भार जिसे कष्ट और खीज के साथ ज्यों-त्यों वहन करना पड़ता है । पेट और प्रजनन इसका लक्ष्य बन गया है, लिप्सा और लोलुपता की खाज-खुजाते रहना, इसका प्रिय प्रसंग ।"

कितनी सटीक विवेचना है- आज के सामाजिक और वैयक्तिक जीवन की । उन सबके मन अपने गुरु से एकाकार हो रहे थे ।

जन समुदाय को इस विडम्बना से उबारने के लिए उसके विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन करना होगा । इस परिवर्तन के बाद ही वह समझ सकेगा कि शरीर-भगवान का मन्दिर है । व्यक्तित्व आस्था है और मनुष्य श्रद्धा । चेष्टाएँ-आकांक्षाओं की प्रतिध्वनि हैं । इन सबके समायोजन का ही उपाय है कि विचार बदलें- तुम लोग मेरे विचारों के संवाहक बनो ।

बात-चीत का क्रम चल रहा था, इतने में जेल का अधीक्षक स्वयं विष के घोल से भरा प्याला लेकर आ गया । उसकी स्वयं की आँखें डबडबाई हुई थीं । उसे देखकर अन्यों की आँखें भर आईं । पर सभी विवश थे ।

उन्होंने मुसकराते हुए प्याले को हाथ में लिया और बोले । इसमें निहित द्रव अज्ञान की बूँदों का संघटन है । मैं विष नहीं अज्ञान पीने को तत्पर हुआ हूँ । मेरे सशरीर न रहने पर तुम सबकी जिम्मेदारी अब की अपेक्षा असंख्यों गुना बढ़ जाएगी । विश्वास रखो- विचारों के रूप में मैं जीवित था, जीवित हूँ और जीवित रहूँगा । प्रेरक शक्ति के रूप में तुम सब प्रतिपल मुझे अनुभव कर सकोगे । पहले मैं एक शरीर के रूप में कार्य करता था और आज से तुम सभी के माध्यम से अनेकों शरीरों द्वारा कार्य करूँगा । अद्भुत होगा ज्ञान और कर्म शक्ति का यह समन्वय । चमत्कारी परिणाम देखकर चौंक उठेगा संसार ।"

प्याला अधरों से जा लगा । सिसकियाँ फूट पड़ीं । एक-एक घूँट के बढ़ते क्रम के अनुसार प्रत्येक के दिल में तूफान और ज्वालामुखी का वेग बढ़ता जा रहा था । उनके मुख पर प्रसन्नता और आँखों में दीप्ति यकायक बढ़ी और फिर मन्द पड़ने लगी । उनके आखिरी शब्द थे-चिन्तित मत हो, घबड़ाओ नहीं तुम सभी विचारों के रूप में, ज्ञान के रूप में और मार्गदर्शक के रूप में हर पल- हर क्षण महसूस करोगे । ध्यान रखना कर्म शक्ति मन्द न पड़े ।

स्वयं को व्यक्ति नहीं विचार कहने वाले यह महामानव थे- यूनानी दर्शन के पितामह- सुकरात । जिनके द्वारा जलाई गई ज्ञान की मशाल को उनके शिष्यों ने निज का प्राणार्पण कर जलाए रखा । अब हम सबकी बारी आ पहुँची है- "युग सुकरात" के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने की । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधाता के साथ समस्वरता

अपनी समूची गति से सक्रिय विश्व जीवन का यह अरणि मन्थन अकारण नहीं है । इसकी हलचलों से राजतंत्र, समाजतंत्र, धर्मतंत्र सहित विश्व व्यवस्था का हर छोटा-बड़ा घटक उद्वेलित है । मनुष्य समुदाय का हर वर्ग इसे आश्चर्य से आँखें फाड़े देख रहा है । जहाँ कहीं जो कुछ घट रहा है- आश्चर्यजनक है । सिर्फ जीवन की बाह्य भूमि घटनाओं की वारिश से भीग रही हो, ऐसा नहीं है- अन्तर्मन में भी उथल-पुथल व्यापक है । उन विवेकशीलों ने इसे सूक्ष्मता और गहराई से समझना शुरू किया है, जिन्हें विश्वास हो चुका है कि यह अरणि मन्थन समूचे जीवन की संरचना में फेर-बदल कर डालने के लिए किया जा रहा नियन्ता का तप है, जिसका ताप महसूस करने के लिए सभी को बाध्य होना पड़ रहा है । यह उष्णता जाग्रत मन का मन्थन करे- यह स्वाभाविक है, सोचेंगे जीवन्त ही । जिन्होंने अपने शरीर और मन पर निष्क्रियता के ताले डाल रखे हैं- उनका कहना ही क्या ? नव सृजन के विधाता के तप का प्रत्येक स्पन्दन एक आह्वान है प्रत्येक हलचल एक सन्देश, जिसकी हर गूँज में स्वर समाविष्ट है- आगे आने और साथ निभाने के ।

तप में साथ निभाने की बात मन के पर्दे पर सवालों की अनेकों आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींच जाती है । भूखे रहने, एक पाँव के बल खड़े होने जैसे तरह-तरह के कल्पना चित्र मन के सामने नाचने लगते हैं । यही तो तप का लोक प्रचलित रूप है । तो क्या सृजेता को आज-कल कुछ ऐसा ही उलटा-पुलटा करना पड़ रहा है । यदि ऐसा है तो उसमें भागीदारी एक संशय भरा सवाल उपजा कर हतोत्साह की खाई में फेंक देती है । पर असलियत भिन्न है- प्रचलन हमेशा सही नहीं होते । यथार्थता के रत्न जिस गहराई में रहते हैं वह लोक प्रचलनों के उथलेपन में कहाँ ?

इसका महत्वपूर्ण कारण- यह भी है कि प्रचलन प्रायः साधारण मनोभूमि के लोगों में पनपते हैं और इस मनोभूमि के लोगों के दो वर्ग हैं । एक परपीड़क-जिसे दूसरों को पीड़ा देना सुखकर लगता है । दूसरा स्वपीड़क- जिसे अपने को सताने में मजा आता है । परपीड़कों के वर्ग में आने वाले ज्ञात रूप से अज्ञात रूप से उस ओर सरकते रहते हैं- जहाँ वह दूसरों को पीड़ा दे सकें । शिक्षण, प्रशासन सुधार के नाम पर सदा ही किसी न किसी को सताने के अवसर की खोज बनी रहती है ।

स्वपीड़क उत्पीड़न के वे सारे प्रयोग एक-एक करके अपने ऊपर कर डालते हैं । ईश्वर के नाम पर, प्रार्थना के नाम पर ऐसों की संख्या कम नहीं है जो कील-काँटों की शैय्या पर लेटते हैं, महीनों-महीनों भूखे रहते हैं । ऐसे लोग भी हैं जो लगातार जगते रहने की कोशिश में लगे रहते हैं, ये सालों खड़े रहे और कोई मुद्रा नहीं अपनाई । उनकी टाँगें करीब-करीब मुर्दा हो चुकीं । एक हाथ उठाए जो जी रहे हैं- एक हाथ मृत हो रहा है । हड्डियों का ढांचा हो गए इस हाथ में खून संचरित नहीं है । प्रकारान्तर से यह एक प्रकार की हिंसा है । "वैरायटीज ऑफ रिलीजस एक्सपीरियेन्सेज" के लेखक विलियम जेम्स ने अपनी इस रचना में ऐसे तथाकथित तपस्वियों के जीवन का गहरा सर्वेक्षण किया है । विवेचन करते हुए उसने प्रश्न उठाया है- क्या यह तप है ? आनन्द के स्रोत परमेश्वर की ओर जाने के लिए क्या यही मार्ग है ?

जेम्स को उसके सवालों का जवाब मिला या नहीं-यह तो नहीं मालूम । पर सहस्राधिक वर्षों से गीता अपने सत्रहवें अध्याय के पाँचवें-छठवें श्लोकों के माध्यम से इस तरह का जीवन जीने वालों को दम्भ-अहंकार का लबादा लपेटे अविवेकी असुर कहती आयी है । उसके अनुसार ये सभी मनोव्याधि से पीड़ित हैं । आज के मनोविज्ञान के सन्दर्भ में परखें तो चर्चा उचित है । जे. बैरोन अपने चिन्तकोश "साइकोलाजिकल प्रिन्सिपल्स" में इसे "सैडिज्म" कहते हैं । इसके मुताबिक हिटलर, स्तालिन, माओत्से तुंग इन सबके साथ ऐसे अनेक तपस्वियों को इलाज की जरूरत है । ऐसा इलाज जो इन्हें समझदारी सिखा सकें- जो बता सके कि जीवन उत्पीड़न नहीं संवेदना है और तप इसकी चरमावस्था की प्राप्ति है ।

उत्पीड़न कोई मार्ग नहीं- यह तो आक्रमण है, चाहे अपने ऊपर हो या दूसरों पर । आक्रामकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी तप नहीं बन सकती । दूसरों के शरीर को उत्पीड़ित करने व अपने शरीर को सताने में क्या भेद ? शरीर है दूसरों का, स्वयं का शरीर भी दूसरा है- हाँ यह औरों के शरीर से जरा ज्यादा नजदीक है । बस इसीलिए यह जल्दी हिंसा का शिकार बन सकता है । न जाने कितने वर्षों से मानवता इसे झूठे लोक प्रचलन को ढो रही है कि यह ईश्वर के साथ चलने-उससे भागीदारी निभाने का रास्ता है ।

भगवान तो संवेदनाओं का घनीभूत पुंज है । वह संवेदना को हरण करने की बात क्यों सुझाने लगा । बल्कि इसके उलटे उसने मनुष्य को संवेदनाएँ दी हैं । संवेदनशीलता की अनुभूतियों को स्वयं के साथ औरों को लाभ देने के लिए प्रदत्त किया है । पीड़ा पहुँचाने से तो इनका हरण हो जाता है । फिर यह हरण विलासिता द्वारा हो या काँटों के बिस्तर पर लेट कर । आज का मनोविज्ञान विलासिता अतिशय भोग को भी उत्पीड़न का एक प्रकार मानता है । क्योंकि भोग की क्रमिक वृद्धि शनैः-शनैः इन्द्रियों को, मन की चेतना को संवेदना शून्य बनाती जाती है । मानव मन की सूक्ष्मताओं के पारखी ए. हानेगग का "काम्पलेक्स फ्री पर्सनैलिटी" में कहना है कि व्यक्तित्व की किसी न किसी ग्रन्थि के कारण व्यक्ति भोगों में डूबता है, नशेबाज बनता है अथवा स्वयं को सताने लगता है । परिणाम में आती है- मुर्दानगी-चेतनाशून्यता ।

संवेदनशून्य शरीर और मन भला कैसे अनुभव करेंगे उस आशीष को जो उसके अस्तित्व का विधाता उस पर लगातार बरसाए जा रहा है । हर पल घट रही अनुग्रह वर्षा की इस अनुभूति को विलास और उत्पीड़न से मृतप्रायः जीवन कहाँ अनुभव कर सकते हैं ? ईश्वर के साथ समस्वरता बिठाने के लिए हमें कहीं अधिक संवेदनशील होने की जरूरत है । क्योंकि यह व्यक्तित्व की आँख है, अनन्त की ओर खुलने वाला झरोखा है । जब स्वयं का अस्तित्व इससे ओत-प्रोत होता है तो हवा का हल्का झोंका भी गहरे स्पर्श की अनुभूति कराता है । साधरण पत्थर नदी की लहरें-समूची प्रकृति एक संदेश देती दिखाई पड़ती है । जीवन शून्यता की दशा में कोई इसे कैसे अनुभव करेगा ?

वास्तविकता यही है- जिसने अपने में जितनी संवेदनशीलता जगाई वह उतना ही अधिक तपस्वी हुआ । यही तपस्या-जीवन के विधाता के साथ समस्वरता है । इसी कारण गीता के महोपदेष्टा योगेश्वर कृष्ण ने गीता के सत्रहवें अध्याय में तप के प्रकरण को स्पष्ट करते हुए उन तकनीकों को गिनाया है, जिनसे अस्तित्व की जागरूकता बढ़े । उनके अनुसार शरीर का तप है- सेवा-सरलता और श्रम । वाणी का तप है-सत्य-प्रिय और हितकारक वचन और मन का तप है-प्रसन्नता, सौम्यता तथा विचारशीलता ।

यही वह तकनीकें हैं-जिनसे जीवन की पुरानी पड़ गई गाँठों को खोला जा सकता है और तपश्चर्या है ही ग्रन्थि मुक्त सहज-सरल जीवन जीने की मनोवैज्ञानिक प्रणाली । क्योंकि जीवन जितना जटिल होता जाएगा, संवेदना उतनी खोती जाएगी । उत्पीड़क और विलासी दोनों अपने जीवन को संवेदना शून्य बना अनेकानेक ग्रन्थियों से कुरूप बना देते हैं । निष्ठुर तो जटिलता का मूर्तिमान रूप ही है । जबकि सरल जीवन का मतलब होता है, बिना उलझाव का जीवन । सहज जीवन गहरी समझ का जीवन होता है ।

होता यह है कि तप के नाम पर लोग सहजता और सरलता गँवा बैठते हैं । करने लगते हैं अनुकरण बन्दर के बच्चे जैसी नकल । महावीर नग्न रहते थे- हमें भी नग्न रहना चाहिए । बुद्ध ७ दिन पेड़ के नीचे बिना हिले-डुले बैठे रहे, हम सत्तर दिन बैठे रहेंगे । आखिर बुद्ध और महावीर से बड़ा जो बनना है । अहं के पोषण का यह प्रयास हमें जड़ता के अंधेरे में ले पटकता है । महावीर की नग्नता के पीछे अनुभव की गहरी समझ थी । उनकी वह अनुभूति थी कि दिशाएँ ही वस्त्र हैं । उनके पंचभूतों के शरीर ने प्रकृति के पंचमहाभूतों से एकत्व बिठा लिया था । बुद्ध की लम्बी बैठक का कारण, ध्यान मग्नता थी । मन का शरीर भाव से ऊपर उठ कर निस्पन्द हो जाना था । जबकि हमारे जीवन में आती है-सिर्फ नकल । लाओत्से कहता था- "नकल से उत्पन्न जड़ता मृत्यु है ।"

आज खोज इस बात की करनी है कि अपने व्यक्तित्व की किस ग्रन्थि के कारण हम मुख्य धारा से अलग-थलग पड़ गए । थोड़ा सा आत्मनिरीक्षण, विवेचन सब स्पष्ट कर देगा, हमारे व्यक्तित्व की जटिल ग्रन्थियों को खोल देगा । हम परिवर्तनकारी शक्तियों के अधिष्ठाता से समस्वरता व सामंजस्य की अनुभूति करने लगेंगे । तपश्चर्या की इसी भागीदारी को आज भगवान के साथ हमें निभाना है । *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायत्री का ब्रह्मवर्चस

गायत्री उपासना का उच्चस्तरीय सोपान 'ब्रह्मवर्चस्' कहलाता है । इसमें दो शब्द हैं- ब्रह्म+वर्चस् । ब्रह्म अर्थात्- ब्रह्म विद्या, ब्रह्मज्ञान । वर्चस् अर्थात्- तेजस्, ब्रह्मतेज । अतः ब्रह्मवर्चस के दो पक्ष हुए- प्रथम ब्रह्मविद्या अर्थात्- दृष्टिकोण का, क्रियाकलाप का परिष्कार एवं भावनात्मक कायाकल्प । दूसरा वर्चस् अर्थात्- प्रसुप्त अन्तः शक्तियों का जागरण, ओजस्, तेजस् का सम्वर्धन । इस प्रकार ब्रह्मवर्चस् उस समग्र अध्यात्म का समन्वय है जिसमें अध्यात्म, तत्वज्ञान एवं आत्मिक प्रखरता दोनों का समुचित सुसन्तुलित समावेश है ।

गाड़ी की पुर्णता दो पहियों के मिलने से है । एक के रहने से वह अधूरी रहती है । एक हाथ, एक पैर से किसी प्रकार काम चल तो सकता है, किन्तु उसमें सहज गतिमयता, प्रखरता और परिपूर्णता नहीं आ पाती । चिन्तन तथा क्रिया दोनों का समन्वय ही समग्र अध्यात्म साधना है । चिन्तन की उत्कृष्टता ब्रह्मविद्या या अध्यात्म-तत्वज्ञान का ज्ञान पक्ष है । क्रिया की प्रखरता उसका विज्ञान पक्ष है । ज्ञान एवं कर्म का समन्य ही ब्रह्मवर्चस् है परिपोषण तथा उन्मूलन दोनों ही तथ्य इसमें समाविष्ट हैं ।

ईश्वर का अवतार दो प्रयोजनों के लिए होता है-धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश । पुण्य से प्रेम तथा पाप से घृणा की उभयपक्षीय प्रवृत्तियों का सन्तुलन बनाये रहने की प्रेरणा को ब्रह्मवर्चस् कह सकते हैं । सदाशयता के संवर्धन में उदारता और सहकारिता की नितान्त आवश्यकता है । किन्तु दुष्टता के प्रति यही नीति नहीं अपनाई जा सकती, अन्यथा सर्प को पालने, दूध पिलाने, आततायी को सहयोग देने या सहन करने के अतिवादी और भयपरक उदारता के अनर्थकारी दुष्परिणाम उत्पन्न होंगे । सज्जनता एवं सत्प्रवृत्तियों के प्रति उदार सहयोग तथा आन्तरिक दोष-दुर्गुणों एवं समाजगत अनाचारों का उग्र प्रतिकार-दोनों ही आवश्यक हैं । असुरता और पाशविकता के तत्व अपने भीतर और इस संसार में कम नहीं । उनसे जूझने के लिए मात्र सदाशयता और सज्जनता अपर्याप्त है । उनके प्रति 'मन्यु'-सिद्धान्तनिष्ठ आक्रोश का उभरना स्वयं के प्रति कठोर होना आवश्यक है ।

रावण द्वारा मारे गये ऋषियों के अस्थिपंजरों के पहाड़ जैसे विशाल ढेर देखकर भगवान राम ने 'मन्यु' की ही अभिव्यक्ति की थी और भुजा उठाकर प्रण किया था -"निशिचर हीन करौं महि ।" इसी प्रकार दुर्योधन पक्ष की दुर्नीति एवं दुराग्रह के दलन के लिए भगवान कृष्ण को महाभारत रचाना पड़ा था और सुदर्शन चक्र भी घुमाना पड़ा था । तेजस्विता तथा उदारता परस्पर सम्बद्ध रहनी चाहिए । पवित्रता एवं प्रखरता दोनों ही समन्वित रहें, यही उचित है । ब्रह्मवर्चस् इसी समन्वयात्मक रीति-नीति को जीवन में उतारने की प्रशिक्षण प्रक्रिया को कहते हैं । इसे आगम एवं निगम, वैदिक एवं तांत्रिक पक्षों का समन्वय कहा समझा जाना चाहिए ।

मानवीय चेतना में दैवी एवं आसुरी- दोनों ही तत्व कार्यरत रहते हैं । दैवी अंश को उत्कृष्टता, सद्भावना और सज्जनता का खाद-पानी देकर बढ़ाया जाता है । आसुरी अंश का उन्मूलन करने की आवश्यकता पड़ती है । माली पौधों को सींचता है तो साथ ही अनावश्यक कुरूप टहनियों की काट छाँट भी करता है और बगीचे में उगे हुए खर-पतवार की सफाई भी करता है । किसान उपयोगी पशुओं को पालता है, साथ ही हानि पहुँचाने वाले जंगली जानवरों को भगाता भी है । अपने भीतर एवं अपने समाज के भीतर सत्प्रवृत्तियों, सद्भावनाओं का अभिवर्धन जितना आवश्यक है, दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन प्रायश्चित एवं इष्टापूर्ति भी उतनी ही आवश्यक है । भक्ति एवं प्रायश्चित दोनों ही उपासना के अंग हैं । श्रेष्ठता को प्रोत्साहन और निकृष्टता पर बंधन दोनों ही आवश्यक हैं ।

द्रोणाचार्य के कन्धे पर धनुष, पीछे तरकश, और हाथों में वेद देखकर किसी ने प्रश्न किया । 'आचार्य प्रवर ! वाण और वेद एक साथ क्यों ? द्रोणाचार्य ने उत्तर दिया- "अग्रतः चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनु । इदं ब्रह्मं इदं क्षात्रं शास्त्रा दपि शरादपि ।" अर्थात्- आगे हैं चारों वेद तो पीछे धनुष वाण । वेद ब्राह्मण धर्म है तो धनुष-वाण क्षात्र-धर्म । शास्त्र एवं शस्त्र दोनों ही के द्वारा सदाचरण का पथ प्रशस्त किया जाता है ।" विद्या और बल, ज्ञान और भक्ति दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही महत्वपूर्ण एवं आवश्यक हैं । यही प्राचीन आर्ष परम्परा रही है । श्रीराम को महर्षि विश्वामित्र ने दोनों ही प्रकार का शिक्षण दिया था । श्रीकृष्ण को भी संदीपन के आश्रम में उभयपक्षीय शिक्षा प्रदान की गई थी । प्राचीन गुरुकुल परम्परा में यह प्रशिक्षण क्रम समन्वय सर्वत्र विद्यमान था । अध्यात्म क्षेत्र में यही परम्परा भक्ति और कर्म का समन्वय करने वाले तत्वज्ञान के रूप में है । अर्जुन और हनुमान- दोनों ही उत्कृष्ट भक्त थे, साथ ही दोनों को सदा सक्रिय जीवन जीना पड़ा । दोनों को ही भगवान द्वारा निरन्तर कर्म की प्रेरणा एवं शिक्षा दी गयी । आत्मोत्कर्ष और लोक-कल्याण की यही समन्वित व्यवस्था भारतीय अध्यात्म की आर्ष परम्परा है । ब्रह्मवर्चस् उसी परम्परा को गतिशील बनाने वाली प्रक्रिया है ।

एकांगी दृष्टिकोण. अपूर्ण ही नहीं, हानिकर भी होता है । जिन दिनों भारत में उदारता, सहनशीलता और भक्तिभाव तक ही चिन्तन को सीमाबद्ध किया गया और अहिंसा के अतिवाद में पराक्रम को अनावश्यक ठहराया गया, उन दिनों तेजस्विता-प्रखरता की उपेक्षा होती चली गई और मध्य एशिया से आये मुट्ठीभर आक्रान्ता इस विशाल देश को पराधीन बनाने में सफल होते चले गये । इसी प्रकार तेजस्विता का अभ्यास होने पर भी उसके साथ में विवेक का मार्गदर्शन न होने पर एक समय आक्रान्ताओं की कुटिल चालों के सामने असंगठित तेजस्वी योद्धा हारते चले गये । भक्ति एवं कर्म, भावना एवं तेजस्विता दोनों को समन्वित रखने वाला तत्वज्ञान ही भारतीय अध्यात्म विद्या का समग्र आधार रहा है । उसके स्थान पर एकांगी चिन्तन अपनाने की भूल जब भी की गई है तो दुर्गति का सामना करना पड़ा है जबकि दोनों के समन्वय से सफलता और प्रगति का द्वार प्रशस्त होता है । गाँधी जी के सत्याग्रह में सत्य और अहिंसा का जितना समावेश था, अनीति के निर्भीक प्रतिकार का उतना ही प्रखर संकल्प एवं साहस भी था । यह समन्वय ही ब्रह्मवर्चस् की साधना-प्रक्रिया का पथ है ।

ब्रह्मज्ञान एवं ब्रह्मतेज-दोनों के समन्वय से ब्रह्मवर्चस्-साधना सम्पन्न होती है । महान ऋषियों द्वारा प्रतिपादित समग्र अध्यात्म यही है । प्रज्ञा और पराक्रम का यही युग्म ब्रह्मवर्चस् की लक्ष्य-प्राप्ति में समर्थ बनाता है । अध्यात्म परम्परा में इन्हें ही ब्रह्मविद्या एवं तपश्चर्या कहा गया है । पौराणिक कथाओं में ब्रह्मा जी की दो पत्नियाँ बताई गई हैं- एक गायत्री, दूसरी सावित्री । गायत्री को ब्रह्मविद्या पक्ष की और सावित्री को तपश्चर्या पक्ष की माना जाता है । तपश्चर्या किस की ? ब्रह्माग्नि की स्फुरणा उद्भव की । आंतरिक अग्नि-चेतन ऊर्जा ही ब्रह्माग्नि है-प्राणाग्नि है । गायत्री या ब्रह्मविद्या से शान्ति का-मोक्ष का द्वार खुलता है तो सावित्री से सर्वतोमुखी समर्थता प्रखरता की उपलब्धि होती है । दोनों ही परस्पर अविच्छिन्न जुड़े हैं । सुसंस्कार और सत्सामर्थ्य दोनों ही परस्पर अन्योन्याश्रित कहे जा सकते हैं । इन दोनों का सम्मिलन ही प्रगति का पाथेय बनता है । प्रज्ञा की उदारता, पवित्रता, उत्कृष्टता से मिलने वाली उपलब्धियों को गायत्री-उपासना से प्राप्त अमृत, पारस और कल्पवृक्ष कहते हैं । प्रखरता, पराक्रम और पुरुषार्थ की उपलब्धियाँ ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मदण्ड और ब्रह्मपाश के रूप में सामने आती हैं । गायत्री और सावित्री के रूप में दोनों के सम्मिलन का प्रतिपादन किया गया है । साधना विज्ञान की भाषा में इसे योग और तप का समन्वय कहा जाता है । योग से आत्मा को देवात्मा, परमात्मा स्तर तक विकसित होने का अवसर प्राप्त होता है । तप से शक्ति उत्पन्न होती है । सशक्तता ही प्रगति, समृद्धि और विभूति के त्रिविध सत्परिणाम उत्पन्न करती है । साधना से मिलने वाली सिद्धियाँ शक्ति-सम्पादन का ही परिणाम हैं । योग एवं तप दोनों की समन्वित साधना, प्रक्रिया ब्रह्मवर्चस् का आधार है ।

योग और तप पवित्रता तथा प्रखरता, आस्था और क्रिया, ज्ञान एवं तेज-दोनों पक्षों की समन्वित साधना ही गायत्री की समग्र साधना है । उच्चस्तरीय सत्परिणाम इसी से मिलते हैं । ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मतेज दोनों के समन्वय द्वारा ही सर्वांगपूर्ण साधना संभव हो पाती है । अभीष्ट दोनों हैं- तत्वज्ञान भी तथा तेजस्विता भी । एक के बिना दूसरा अपूर्ण है । यह गायत्री साधना विधान की विशेषता है कि इसमें दोनों ही प्रतिफलों की प्राप्ति होती है तथा व्यक्ति ओजस्, तेजस्, वर्चस् का समुच्चय बनता है । अथर्व वेद के मंत्र "स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम्...." में जिस सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि की बात कही गयी है, वह ब्रह्मवर्चस् ही है । साथ ही यह भी कहा गया है कि यही ब्रह्मलोक ले जाने वाला, बंधनों से मुक्ति दिलाने वाला एक मात्र मार्ग है । हम सब गायत्री के ब्रह्मवर्चस् की साधना कर आत्मबल संपन्न बनें । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उज्ज्वल भविष्य सम्बन्धी पूर्वानुमान भी संभव

२६ जुलाई १९७३ को अमेरिकी वायु सेना के मुख्यालय में फोन घनघना उठा, जिसमें से आवाज आई- "मैं जेन्डोलिन मार्क्स बोल रही हूँ। कृपया लाकहर्स्ट झील के ऊपर किये जा रहे हवाई प्रदर्शन को रोक दीजिए, क्योंकि तीन दिन के भीतर बहुत बड़ी दुर्घटना देख रही हूँ। यह कल्पना नहीं है, अपितु यथार्थ है। कृपया शीघ्र निर्णय लीजिए।" उक्त फोन मिलने पर वायुसेना के मुख्य लोगों को आश्चर्य हुआ कि आखिर हमारी गुप्त बातें इन्हें कैसे मालुम हुईं ऊहापोह और सूचना देने वाली महिला की खोजबीन में दो दिन बीत गए। उड़ान जारी रहा।

किन्तु फोन आने के ४८ घन्टे बाद दो नीले, युद्धक जेट विमान आपस में टकराकर क्षील में डूब गये। तो पूर्व सूचना देने वाली लड़की मार्क्स को लोग पुनः ढूँढ़ने लग गये। आगे चलकर यह लड़की वायुसेना में सम्मिलित हो गई और हर माह घटने वाली सभी महत्वपूर्ण घटनाओं को पहले ही स्पष्ट करने लग गई। इनकी अधिकांश भविष्यवाणियाँ सच निकलती गईं जो समय- समय पर प्रकाशित होती रहीं।

जेन्डोलीन मार्क्स अद्भुत् शक्ति सम्पन्न थी। बाल्यावस्था में अपने निकट घटने वाली छोटी-बड़ी घटनाओं को जब पहले ही बता देती, तो लोगों को आश्चर्य होता था। स्कूल में पढ़ने जाती, तो बच्चे घेर लेते और पूछते - बताओ, आज मास्टर जी क्या पढ़ाएँगे एवं मार किनको खानी पड़ेगी और विशेष बात यह कि जिसका नाम वह बताती उसी छात्र को मार खानी पड़ती। अनेक प्रमुख घटनाओं को तो चित्र बना कर बता देती थी एवं स्थान भी। उनका कहना था कि अतीन्द्रिय क्षमता एवं स्वप्न के द्वारा भी भविष्य में होने वाली घटनाओं को देख लेती हूँ, किन्तु इस अद्भुत् क्षमता का मैंने कभी दुरुपयोग नहीं किया और न ही भविष्य में कभी करूँगी। दुर्घटनाओं को पहले से जानकर उनसे बचने के लिये लोगों को सावधान करना ही अब तक का मेरा लक्ष्य रहा है और आगे भी यही रहेगा।

फरवरी १९७४ में उसने कहा था कि १ मार्च से ३ मार्च का समय अमेरिकी वायुयान के लिए महाविपत्ति का समय है। इस अवधि में बाद में अनेक घटनाएँ घटीं।

"द पीपुल्स एलमनेक" में डेविड वेलिकनिस्की एवं इरविंग वेलेज ने जेन्डोलीन मार्क्स के भविष्य कथन का उल्लेख करते हुए १९८० से २००१ के २१ वर्ष की अवधि को उज्ज्वल भविष्य की तैयारी के वर्ष कहा है। उनके अनुसार इसमें ऐसी सफलताएँ मिलेंगी, जिससे मनुष्य जाति की प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। जेन्डोलीन मार्क्स लिखती हैं-

बीसवीं सदी के अन्त तक अधिकांश लोग स्वयमेव ही परिवार नियोजन के उपक्रम को अपनायेंगे, जिसमें यान्त्रिक विधि-व्यवस्था का कोई स्थान नहीं होगा, अपितु हर व्यक्ति यह अनुभव करेगा कि बहुप्रजनन से अनेकानेक संकट उपजते हैं एवं मात्र पति-पत्नी की युगल जोड़ी के लिए ही नहीं, वरन् समूचे समाज के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं अतएव वैवाहिक जीवन में संयम की नीति अपनायेंगे। पति–पत्नी परस्पर मित्रवत् व्यवहार करेंगे एवं एक-दूसरे को भावनात्मक एवं वैचारिक दृष्टि से उठाने का प्रयास करेंगे। प्रजनन की ओर से विमुख होने से नारियों की प्राणशक्ति में बढ़ोत्तरी होगी, जिससे महिलाएँ भी वे सभी कार्य सम्पन्न कर सकेंगी, जिसे अब तक पुरुष ही सम्पन्न किया करते थे। शौर्य, पराक्रम एवं जीवट के क्षेत्र में वह पुरुषों के बराबर सिद्ध होंगी। इस प्रकार से परिवार नियोजन "न्यूडायमेन्सन" नये आयाम में प्रवेश करेगा और हर धर्म के व्यक्ति इस नई आत्मानुशासन वाली विधा का परिपालन करेंगे। इसी में उन्हें अपनी, परिवार एवं समाज की भलाई दिखाई देगी।

१९८० की दशाब्दी चिकित्सा के क्षेत्र में नई उपलब्धि अर्जित करने की अवधि है एवं नब्बे का दशक आरंभ होते ही विज्ञान रोगों के कारणों को ढूँढ़ने के लिए निरन्तर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अवस्थाओं में प्रवेश करता चला जायेगा और इस सदी के अन्त में विज्ञान यह सिद्ध कर देगा कि रोगों का कारण बाहरी बायरस, कीटाणु, अथवा बैक्टीरिया नहीं है, अपितु व्यक्ति अपने ही असंयम से अपनी प्राणशक्ति को क्षीण कर डालता है, फलतः अनेकानेक आधि व्याधियों का शिकार होता चला जाता है। खान-पान, रहन-सहन, सोचने-विचारने में अतिशय का अतिवाद समाये रहने से ही रोग उत्पन्न होते हैं। अतः इनका समाधान वही निकलेगा, जो प्राच्य देशों के पूर्वकालीन दर्शन व चिकित्सा ग्रन्थों में विद्यमान है। सन् २००० तक की अवधि में इस प्रकार की अनेकों उपलब्धियाँ मानवता के समक्ष आएँगी।

प्रसंग यूटोपिया या एक व्यक्ति के भविष्य उद्घाटन का नहीं है। जब क्रियाकलाप उस दिशा में चल पड़ें तो परिणति भी वही होकर रहती है। उज्ज्वल भविष्य की ओर महायात्रा के संकेत अभी से दिखने लगे हैं। विश्वास किया जाना चाहिए कि आने वाला एक दशक एक महत्वपूर्ण भूमिका समग्र मानव समुदाय के लिए निभाने जा रहा है। *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब संवेदना का अंकुर पल्लवित हुआ...

वह फटी-फटी आँखों से देखे जा रही थी। सूखते-चटकते तालाब तड़पते, विकल होते, प्राण छोड़ते जानवर और मनुष्य क्या कहा जाय उनके बारे में सब कुछ तो प्रत्यक्ष दीख रहा था। हाय ! पेट का वह धधकता ज्वालानल ! सभी तो दिन-रात उसी आग में पतंगों की तरह जले भुने जा रहे हैं। क्षुधा तृषा से पीड़ित कृषक मजदूर इस दुष्काल में कौन सुनता है इनकी। सिवा उस धरती के जिसकी छाती अपनी सन्तानों के दुःख से सूख-चटख कर विदीर्ण हो रही थी। जो कभी सभी का पेट भरते थे आज वे स्वयं ही ......। आगे कुछ सोच न सकी वह..दोनों हाथों सिर थाम कर बैठ गई।

आज वर्षों बाद उसका इधर आना हुआ। सुना था दुष्काल है, चारों ओर आर्त स्वर उठ रहे हैं। अनुभव इसलिए नहीं हुआ क्योंकि उसके पिता स्वयं बड़े श्रेष्ठी थे। उनके निजी आगार में अनाज की विशाल राशि थी, जल दूर की नदी से बहँगियो में आता था। उसी के घर क्यों आस-पास के सभी घरों में यही स्थिति थी। वैभव की इतराहठ-विलास की उन्मादी गूँज में अकाल पीड़ितों के कारुणिक स्वर भला कैसे घुसें। एक ओर कुत्ते भी पेट भर दूध छकते थे दूसरी ओर इन्सान पानी के लिए तड़प रहा था। क्या कहा जाये इसे ?

वह कौन सी चीज है जिसने हम लोगों की मनुष्यता, हमारी मान-मर्यादा, भूख का, अन्न -प्यास का जल सभी कुछ छीन लिया। कहा जाता है कसाई खाने में कटे बैल का मांस, बैल ही ढोकर ले जाते हैं। पर बैल तो बेचारे बेजबान, विवश हैं। लेकिन मनुष्य वह तो अकलमन्द है, क्या हो गया है उसे जो अपने जाति भाइयों की लाशें ढो रहा है- उनके घरों में आग लगाकर जिन्दा जला रहा है। वह सोचते-सोचते लौट पड़ी। ऐसे दुष्काल में श्रेष्ठियों के समूह की यह निर्दयता नहीं....नहीं, वह पिता से कहेगी, भीख माँगेगी हाथ पासारेगी, कुछ भी हो अकाल से लड़ेगी उसे पराजित करके रहेगी। बढ़ते कदम उसे हवेली तक ले आए। पता तो तब चला जब पिता ने म्लान मुख बेटी की परेशानी का कारण जानना चाहा।

सारी बात सुनकर पिता ने उसास भरी। बेरुखे स्वर में कहा-"हम कर भी क्या सकते हैं- बेटी- सब का अपना भाग्य है। इस तरह यदि हम लोग अन्न-धन लुटाने लगे तो चल चुका व्यापार। अब उस ओर न जाना।" चलो स्नान आदि करके भोजन करो। पुत्री के सिर पर हाथ फेरते हुए उन्होंने अपनी बात पूरी की।

"भोजन ! न,न, एक कौर भी नहीं, एक दाना भी नहीं। आप को दया नहीं आती पिताजी, अनेकों भूख से तड़पते हुओं को जान गँवाते देख कर। किसी दिन अपने कृषि प्रधान देश के गाँव ही प्राण थे, आज वे ध्वंसोन्मुख हैं। जानते हैं क्यों ?" वह आक्रोश से उबल पड़ी। "सिर्फ इसलिए कि आप जैसे लोग सदाशयता को भूलकर शोषण में जुट गए। इसके सिवा क्या सम्बन्ध है आप लोगों का किसानों से। जो लोग इस देश के मुख का अन्न जुटाते आ रहे हैं, वे ही आज निरन्तर, निरक्षर, निरुपाय होकर मृत्यु पथ में तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। क्यों अब कुछ बोलते क्यों नहीं ?"

वृद्ध पिता ने मुँह फेरकर ज्यों ही देखा, त्यों ही उसके दोनों होंठ थर-थर काँपने लगे। वह बोली- "मनुष्य होकर मनुष्यता की कोई बात न हो- यह कैसे हो सकता है, पिताश्री !" कह कर उसने दांतों से भींचकर अपने होंठों का काँपना रोक लिया, लेकिन आँखों के कोनो से झर-झर करके आँसू बह निकले।

अब वह प्रतिवाद न कर सके। ऐसा लगा- मानो उनकी सुरमा अंजित आँखों की दीप्ति कुछ धीमी पड़ गई हो। बड़ी मुश्किल से कंठ से स्वर फूटा- मेरा सब कुछ तेरा, तू कुछ भी कर।

एक घर- दो घर- दस घर- प्रायः सभी धनिकों के यहाँ नंगे पाँवों वह भागती फिरी। उसके द्वारा किए गए कारुणिक चित्रण ने अनेकों के दिलों में संवेदना के बीज बो दिए। आगार खुल गए। अन्न-वस्त्रों की बाढ़ लग गई। उसने सब कुछ ला समर्पित किया- तथागत के उन्हीं चरणों में- जिनके पास बैठकर एक दिन उसने अकाल की कहानी सुनी थी। दुष्काल पीड़ित क्षेत्र को देखने की प्रेरणा ग्रहण की थी।

आज समूचा भिक्षु संघ इस अनोखी बाला के सम्मुख नतमस्तक था। हतप्रभ था उसके कर्तब के सामने। एक छोटी से दुबली पतली लड़की- अकाल के दानव को इस तरह पराजित कर सकेगी- कौन सोच सकता था भला ? सचमुच अकाल पराजित हो तो गया- सभी तो उसका गुणगान कर रहे थे।

भिक्षुओं के आश्चर्य को भंग करते हुए तथागत का स्वर गूँजा- "भाव सेवेदना की शक्ति असीम है पुत्रो ! जिसका जीवन सुप्रिया की तरह इन उदात्त भावों का घनीभूत पुंज बन गया हो उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।"

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान सार्थक कब बनता है ?

योगाभ्यास में ध्यान प्रक्रिया की प्रमुखता है । लययोग, राजयोग, हठयोग, नादयोग, बिन्दुयोग आदि अनेकों योग हैं । उनकी संख्या ८४ बतायी जाती है । इन सबकी जो क्रियाएँ कर्मकाण्ड निर्धारित हैं, वे तभी सफलता तक पहुँचते हैं जब उनमें मनोयोग का गहरा पुट लगा हुआ हो । उपेक्षापूर्वक, अन्यमनस्क भाव से उन कृत्यों की लकीर पीटते रहा गया या उनमें गहरी श्रद्धा विश्वास न हो और रसानुभूति उत्पन्न करने की स्थिति न बन पड़े तो समझना चाहिए कि प्रयास में कदाचित ही कुछ आंशिक सफलता मिल सके ।

चक्रबेधन, कुण्डलिनी जागरण आदि में जिस स्थान पर जो स्थिति बतायी गयी है उसे करना पड़ता है । दिवा स्वप्नों के व्याख्याकार कहते हैं कि भूत-प्रेत जैसी कल्पनाएँ विश्वास का गहरा पुट लग जाने पर ठीक वैसी ही बन जाती हैं जैसी कि मान्यता रखी गई थी । न केवल उनका स्वरूप वैसा दीखता है वरन् त्रास या उल्लास भी वैसा ही मिलता है । भूत-प्रेतों के सम्बन्ध में जैसी अशुभ कल्पना की जाती है, ठीक देवी-देवताओं के सम्बन्ध में भी वैसी ही होती है । एक काला पक्ष है एक उज्ज्वल । देवी-देवता या भूत-प्रेत होते हैं या नहीं ! उनके सम्बन्ध में यथार्थता का तो अभी सर्वसम्मत समाधान नहीं हो सका पर इतना निश्चित रूप से सच है कि मान्यताओं के आधार से व्यक्ति वैसा ही अनुभव करता है और डरावने तथा लुभावने ऐसे साक्षात्कार करता है जो श्रद्धा के अनुरूप प्रतिफल दे सके ।

इस विज्ञान को "साइकोमेट्री" के आधार पर मान्यता मिली है । क्रिश्चियन साइंस में प्रार्थना द्वारा रोग निवारण का प्रयोग चलता है और उसकी सफलता भी वैसी ही देखी गयी है । मस्तिष्क विज्ञान के आधार पर कितनी ही क्षमताओं, विशेषताओं के कतिपय केन्द्र निर्धारित किये गये हैं । वहाँ तक किसी बाह्य सामर्थ्य का प्रभाव पहुँचने के लिए "इलेक्ट्रोड्स" काम में लाये जाने लगे हैं । पर साथ ही यह भी देखा गया है कि वैसा ही प्रतिफल विश्वासपूर्वक किये गये ध्यान का भी होता है । "स्वसम्मोहन," ऑटो सजेशन या हिप्नोटिज्म का आधार ही संकल्पबल या इच्छा शक्ति का प्रयोग है । इनका उपयोग चमत्कारी प्रतिफल प्रस्तुत करता देखा गया है । संगीत माध्यम के साथ विश्वास का संयोग हो जाने पर कितने ही शारीरिक और मानसिक रोगों पर प्रभाव पड़ता देखा गया है । उन केन्द्रों या अंग अवयवों को विकसित एवं क्रियाशील भी किया जा सकता है । इनका प्रयोग विज्ञान जगत में अब गंभीरतापूर्वक हो रहा है और पाया गया है कि औषधि चिकित्सा या शल्य चिकित्सा की तरह इन प्रयोगों का भी समुचित प्रभाव होता है । जापान के डॉक्टर हिरोशी मोटोयामा ने अपने योगों से सिद्ध किया है कि विश्वास उपचार भी अन्य चिकित्सा पद्धतियों से कम फलप्रद नहीं है । इस आधार पर निष्क्रियता को सक्रियता में बदला जा सकता है और संचित विकृतियों को निकाल बाहर किया जा सकता है ।

व्यक्तित्व के उत्थान-पतन में अपने सम्बन्ध में बनायी गयी मान्यता ही फलित होती है । योग-वशिष्ठ का यह कथन सर्वथा सत्य है कि जो अपने सम्बन्ध में जैसी धारणा बनाता है वह क्रमशः उसी ढाँचे में ढलता जाता है । इस मान्यता के आधार पर ही लोग ऊँचे उठते और नीचे गिरते हैं । सामान्यतया मनुष्य भी अन्य जीवों की तरह एक प्राणी है पर वह जब अपने सम्बन्ध में श्रेष्ठ, सामान्य या निकृष्ट होने की मान्यता बना लेता है तो वह मान्यता ही उसमें उसी स्तर की विशेषताएँ पैदा कर देती हैं और वह उसी दिशा में बढ़ते-बढ़ते अन्ततः पूरी तरह वैसा ही बन जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर या देवताओं के सम्बन्ध में इन मान्यताओं को भी सृजन का श्रेय प्राप्त है । अन्यथा एक ही ईश्वर के इतने चित्र-विचित्र प्रकारों की आकृतियाँ कैसे हो सकती हैं ? इन मान्यताओं में यथार्थता रही होती तो हर धर्म और देश में उसी प्रकार की समान अनुभूति होती । दार्शनिकों के इस कथन में बहुत कुछ सत्य है कि मनुष्य को ईश्वर ने गढ़ा है तो यह भी झूठ नहीं है कि ईश्वर सम्बन्धी मान्यताओं का सृजनकर्ता मनुष्य ही है । जिस प्रकार भक्तजनों की मान्यता है ईश्वर अपने को उसी रूप और स्वभाव का बना लेता है । यहाँ प्रधानता ईश्वर की नहीं भक्त की ही ठहरती है ।

भावना अर्थात्- ध्यान । परिपक्व मान्यता और परिपुष्ट ध्यान में कोई अन्तर नहीं है । प्रधान किसे कहा जाय, गौण किसे ? यह प्रश्न उतना ही उलझा हुआ है जितना कि बीज से वृक्ष हुआ या वृक्ष से बीज ? पहले स्त्री उत्पन्न हुई या पुरुष ? वस्तुतः ये अन्योन्याश्रित हैं । मकान, सड़क, पुल आदि की तरह पहले व्यक्तित्व या देवी-देवता कल्पना क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं पीछे वे आकृति और प्रकृति के रूप में प्रत्यक्ष परिचय देने लगते हैं ।

ध्यान ही योजना है । योजना ही ध्यान । उन्हें प्रतिपादन और निर्धारण की तरह अन्योन्याश्रित भी कह सकते हैं । वस्तुतः ध्यान का उपयोग अप्रत्यक्ष जगत की संरचना में उतना सार्थक नहीं होता जितना कि प्रत्यक्ष जीवन को योजनाबद्ध बनाने में । अच्छा हो अपने जीवन यापन की अब से लेकर अन्त समय तक की एक सार्थक कल्पना करें और उसे किस प्रकार व्यतीत करें इसकी रूपरेखा बनाएँ । जीवन प्रत्यक्ष देवता है उसका उच्चतम अनुग्रह किस प्रकार की साधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, इसकी रूप-रेखा बनाने में दिशाधारा विनिर्मित करने में ध्यान योग का उपयोग कर सकें तो वह प्रयास अधिक सार्थक और अधिक प्रत्यक्ष हो सकता है ।

लोग जिन्दगी को किसी प्रकार जीते और मौत के दिन पूरे करते हैं । न उसका कोई उद्देश्य निर्धारित कर पाते हैं और न कार्यक्रम । बिना लगाम के घोड़े की तरह अनियन्त्रित मन की तरह जीवन भी जिधर-तिधर बहता और ज्यों-त्यों करके बीतता है । इसकी परिणति प्रत्यक्ष है । खीजते-खिजाते, डरते-डराते श्मशान में रहने वाले भूत-पलीतों की तरह नीरस और निरर्थक जीवन जीना । यह कल्पना शक्ति के अभाव का कारण है । लाटरी खुलने पर मिलने वाली राशि को ऐसे ही लोग एकाध वर्ष के भीतर बर्बाद कर देते हैं । फण्ड, बोनस में जिन्हें लम्बी रकमें मिलती हैं , उनके पास भी वह राशि अधिक समय नहीं ठहरती । कारण एक ही है कि उस उपलब्ध धन को व्यय करने का कोई सारगर्भित कार्यक्रम नहीं बन पाता । यही बात जीवन सम्पदा के सम्बन्ध में भी है । वह जिस-तिस प्रकार खर्च होता और समय कटता रहता है ।

अच्छा होता हमारा ध्यान जीवन का महत्व समझने और उसे किसी उच्च उद्देश्य के लिए नियोजित करने में लगता और उसके सदुपयोग की कोई कारगर योजना बन पाती । सोचा जाता कि बुढ़ापे की कठिनाइयों का समय रहते बचाव कर लिया जाय और मौत के उपरान्त जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है । उनसे निपटने के लिए ऐसा प्रबन्ध कर लिया जाय जिससे समय निकल जाने पर पश्चाताप न करना पड़े ।

निज का जीवनयापन करने और भविष्य का भला-बुरा निर्धारण करने की बात जिस तरह अपने हाथ में है । उसी प्रकार यह भी अपना ही दायित्व है कि पत्नी को भी ऐसी स्थिति में रखा जाय कि वह अच्छा साथी मिलने के लिए भाग्य को सराहती रहे और कृतज्ञता व्यक्त करती रहे । बच्चों का दायित्व इससे भी अधिक बढ़कर है । उन्हें बुला कर दुर्गति में फँसा देने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा था कि उन्हें बुलाया ही न जाता ।

ध्यान उस विश्व चेतना का भी रखना है जिसके प्रत्येक घटक का असीम अहसान अपने ऊपर लदा हुआ है । व्यक्ति एकाकी स्थिति में तो असहाय अनाथ है । उसे इस विश्व की असंख्य इकाइयाँ मिल कर जीवित रह सकने की स्थिति बनाती हैं । उनके प्रति भी अपना कुछ कर्तव्य है क्या ? जीवन किसी प्रयोजन विशेष के लिए मिला है क्या ? ध्यान रखने योग्य यह सब बातें भी हैं । इन्हें भुला देने पर मात्र पूजापाठपरक ध्यान अधूरा एवं खिलवाड़ भर रह जाता है । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिंसा के नूतन आयाम

अहिंसा को धर्म धारणा में प्रमुख स्थान दिया गया है। किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना साधारणतया अहिंसा का प्रकट अर्थ समझा जाता है। पर बात इतने भर से नहीं बनती। अहिंसा शब्द निषेधात्मक है। उसका विधेयात्मक पक्ष प्रेम, दया, करुणा, सेवा, सहिष्णुता के रूप में उदित होता है। इस हेतु कुछ करना पड़ता है, करने से ही पुण्य बन पड़ता है। न करने पर भावना मात्र से एक कल्पना ही मन पर छायी रह जाती है। उसे यदि चरितार्थ होने का अवसर न मिले तो भाव संवेदना में औचित्य का समावेश रहते हुए भी उसका कोई प्रत्यक्ष प्रतिफल प्रस्तुत न हो सकेगा।

स्थूल अहिंसा का पालन तो पेड़, पर्वत भी करते हैं वे किसी को कष्ट नहीं पहुँचाते। यह उनकी जड़ताजन्य विवशता है। ऐसी दशा में उन्हें अहिंसक होने का श्रेय नहीं मिल सकता। प्रकृति के सभी पदार्थ ऐसे हैं जो अपनी जगह पर स्थिर रहते अपने निर्धारित चक्र पर भ्रमण भर करते रहते हैं। उनमें वह भावना नहीं रहती जो सचेतन में पाई जाती है। ऐसी दशा में वे जान-बूझ कर हिंसा नहीं करते। उनसे टकरा कर कोई अपना पैर तोड़ ले तो उनकी मर्जी।

कृमि कीटकों पर भी अहिंसा का आदेश लागू नही होता। उनमें से अधिकांश मांसाहारी प्रकृति के होते हैं। अपने से छोटों को मारते खाते रहते हैं। इनकी प्रकृति को नहीं बदला जा सकता और न उनमें यह भाव जगाया जा सकता है कि अपने लाभ के लिए दूसरों को हानि न पहुँचाएँ। लाभ-हानि तक का उन्हें विचार नहीं होता और न उन्हें यह सूझ पड़ता है कि उनकी किस क्रिया से किसी को क्या कष्ट होगा? छिपकली, मकड़ी आदि घरेलू कीड़े अपने से छोटों को मारते खाते रहते हैं। बड़ी मछली भी छोटी को खाती देखी गई है। बिल्ली, व्याघ्र, मगरमच्छ, सर्प, बाज जैसे प्राणी भी मांसाहारी होते हैं। भूख लगने पर अपनी प्रकृति के अनुरूप वे शिकार पकड़ते उदरस्थ करते रहते हैं। उन तक अहिंसा का संदेश पहुँचना या पहुँचाया जाना कठिन है।

मनुष्य भावनाशील है, विवेकवान भी। उसे उचित अनुचित का बोध आरंभ से ही मिला है। सहकारी प्राणी होने के नाते उसके लिए नीति नियम भी यही है कि दूसरों के साथ वैसा व्यवहार करे जैसा दूसरों से अपने लिए चाहता है। क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। सज्जनता बरतने वाले बदले में वैसा ही सद्व्यवहार अन्यों द्वारा अपने साथ होते देखते हैं। दुष्टता की प्रतिक्रिया भी आक्रोश प्रतिशोध में होती है। इसलिए अपने को त्रास न सहना पड़े इसका एक ही सही तरीका है कि दूसरों के साथ दुर्व्यवहार न किया जाय, अन्यथा प्रतिक्रिया एक नहीं तो दूसरे तरीके से होगी और अपना किया कृत्य शब्दवेधी वाण की तरह उसी तरकस में लौट आयेगा, जहाँ से निकाल कर कि उसे फेंका गया था। दूरदर्शी विवेकशीलता का यही तकाजा है कि दूसरों के साथ सद्व्यवहार करने में ही अपना लाभ समझा जाय और वैसा ही आचरण करने के लिए मानस बनाया जाय। अहिंसा इस दृष्टि से आत्मरक्षा की ढाल सिद्ध होती है। दूसरों के प्रति उदार रह कर प्रकारान्तर से अन्यों को अपने साथ सद्व्यवहार करने के लिए आंमत्रित किया जाता है। हिंसा पर उतारू होकर उसकी प्रतिक्रिया से बचा नहीं जा सकता। जिसे सताया गया है वह दुर्बल एवं प्रतिशोध में असमर्थ हो सकता है। किन्तु दूसरी शक्तियाँ तो संसार में मौदूद हैं वे उस अनाचार का बदला लिए बिना नहीं छोड़ेंगी। इसलिए जिन्हें चैन से रहना अभीष्ट है, उन्हें दूसरों को भी चैन से रहने देना चाहिए।

अहिंसा का सृजनात्मक पक्ष है - आत्मीयता। अपनों के साथ दया करुणा, का सद्भाव और ममता का व्यवहार ही बन पड़ता है। माता-पिता अपने बच्चों के प्रति अनवरत स्नेह लुटाते हैं और उनके साथ सेवा-सहायता का व्यवहार सहज स्वाभाविक करते रहते हैं। यह सब उनसे स्वाभाविक रूप से बन पड़ता है। एहसान जताने, पुण्य करने जैसा कोई भाव उनके मन में नहीं उठता। यही भावना संकीर्णता की परिधि से आगे निकलकर जब विराट के साथ संबन्ध जोड़ती है तो सभी अपने बन जाते हैं। जो अपना है वह स्नेह सद्भाव सहृदयता का पात्र बन ही जाता है। आत्मीयता का ही एक पक्ष दया और करुणा है। यह भी विकसित मानस में सहज स्वभाव चल पड़ता है। सहायता का बदला सहायता के रूप में मिलते देख कर प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रत्युत्तर प्रेम में पाकर प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता । इस प्रकार अहिंसा का प्रतिफल हाथों-हाथ मिलता है । यह नकद धर्म है । जिसके आधार पर- "जिओ और जीने दो, बढ़ो और बढ़ने दो" का सिद्धान्त सहज ही चरितार्थ होता चला जाता है ।

अहिंसा में विक्षेप उचित कष्ट से नहीं होता । इसलिए अहिंसा में कष्ट नहीं औचित्य मुख्य है । डॉक्टर अस्पतालों में ढेरों रोगियों की शल्य क्रिया करता रहता है । कितनों को ही सुई चुभोता है । मोटी दृष्टि से यह हिंसा हुई, पर वस्तुतः ऐसा है नहीं । उद्देश्य रोगी के प्रति दया भाव होने के कारण ऊँचा ही रहा । ऐसी दशा में तात्कालिक पीड़ा का कोई महत्व नहीं रहा । देखा यही गया है कि रोगी का हित किसमें है । हित कामना को देखते हुए कष्ट पहुँचाने की भी गुंजाइश है । न्यायाधीश अभियुक्त को फाँसी की सजा देता है । इससे समाज व्यवस्था का संरक्षण होता है । यदि उस अपराधी को क्षमा कर दिया गया होता तो खुल कर न जाने कितनों की हत्या करता कितनी अव्यवस्था फैलाता । इस तथ्य को ध्यान में रखकर यदि न्यायाधीश ने मृत्युदण्ड दिया और अपराधी को कष्ट हुआ तो इसके लिए क्या किया जा सकता है । अहिंसा को रूढ़ि मानकर न्याय और विवेक को झुठलाया तो नहीं जा सकता ।

अहिंसा में विवेक को भी जुड़ा रखना पड़ता है । आत्म रक्षा के लिए हिंसा भी अपनाई जा सकती है । घर पर डाकू आक्रमण करे तो उनका सामना करना ही पड़ेगा, भले ही उनमें से कोई आक्रान्ता, मारा ही क्यों न जाय ? घर में पलने वाले साँप बिच्छुओं पर कब तक दया करते रहा जायगा । चूल्हे की आग जलाते समय, यात्रा में चलते समय धूप में कपड़े सुखाते समय कुछ जीव मर सकते हैं । इनकी रक्षा किया जा सकना असंभव है ।

हिंसा वहाँ से आरंभ होती है जहाँ दूसरों को पराया समझकर अपनी संकीर्ण स्वार्थ की सिद्धि के लिए अनीतिपूर्वक दूसरों को कष्ट पहुँचाया जाय जिससे निर्दोषों को उत्पीड़न सहना पड़े जिसके साथ अनीति का आधार जुड़ा हुआ हो ।

हिंसा शारीरिक आघात तक सीमित नहीं है, उसका मानसिक आघात भी एक पक्ष है । अपमान, तिरस्कार, दुर्व्यवहार भी हिंसा का ही एक रूप है, जिससे मनको, सम्मान को आघात लगे उसे भी हिंसा ही कहा जायगा . . किसी को गलत परामर्श देकर कुमार्ग पर चलने के लिए सहमत कर लेने से तत्काल न सही परिणाम सामने आने पर तो कष्ट उठाना ही पड़ता है । इस प्रकार का जिसने कुचक्र रचा उसे भी हिंसक ही कहा जायगा ।

हिंसा का तात्पर्य है अन्यायपूर्वक उत्पीड़न । मात्र शारीरिक या मानसिक कष्ट पहुँचाना हिंसा नहीं है । कुकर्मियों और कुमार्गगामियों को जब समझाने बुझाने से सही राह पर लाना सम्भव नहीं रहता , जब दुरात्माओं का अहंकार, दुराग्रह और आतंक चिर सीमा तक पहुँच जाता है तो वे दया क्षमा को कर्त्ता की दुर्बलता मानते हैं और इस प्रकार के सौम्य व्यवहार को अपनी जीत मानकर अनीति पर और भी अधिक वेग के साथ उतरते हैं । ऐसी दशा में प्रताड़ना के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह जाता । शठता को शठता की भाषा ही समझ में आती है । उन्हें सुधारने के लिए जो विवेकपूर्ण हिंसा प्रयुक्त की जाती है उसे अहिंसा ही कहना चाहिए । ✱

एक ब्राहमण जंगल में जा रहा था कि सहसा सामने से आते बाघ से उसका मुकाबला हो गया । मौत सामने थी । पर ऐसे समय में उसने साहस नही खोया और सूझबूझ से काम लिया ।

बाघ जब समीप आ गया तो ब्राहमण ने दोनों हाथ उठाये और जोर-जोर से मंत्र बोलने लगा । ऐसा अद्भुत अवसर बाघ को कभी पहले देखने को नहीं मिला था । उसने आश्चर्य से पूछा यह क्या कर रहे हैं और क्या कह रहे हैं ?

ब्राहमण ने कहा "मैं आपके वंश का कुल पुरोहित हूँ । आपके पूर्वज भी हमारे पूर्वजों के यजमान रहते आये हैं । आपके मिलने से बड़ी प्रसन्नता हुई । हाथ उठाकर , मंत्र पढ़कर आशीर्वाद दे रहा हूँ । अब आपका कर्तव्य है कि पुरोहित को दक्षिणा दें "।

बाघ ने कहा "आपका कथन सत्य हो सकता है । पर मेरे पास दक्षिणा देने को तो कुछ नहीं है , क्या दूँ " ?

ब्राहमण ने कहा-"मेरे साथ चलिए, निवास स्थान देख लीजिए । प्रतिदिन आकर मुझे प्रणाम कर जाया कीजिए साथ ही यह भी ध्यान रखिए कि उस अवसर पर आप किसी से भी छेड़खानी नहीं करेंगे -'। बाघ दोनों शर्तें स्वीकार करके दक्षिणा के ऋण से उऋण हुआ ।

ब्राहमण के घर नित्य सिंह आने लगा । पालतू होने जैसा व्यवहार करने लगा । किसी को उसने काटा नहीं इसे लोगों ने ब्राहमण की सिद्धि समझा, उसकी पूजा होने लगी और दक्षिणा भी बढ़-चढ़ कर मिलने लगी । यह था साहस, धैर्य और सूझबूझ का फल ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्कृष्टता का सृजन

अंधकार कितना ही सघन और व्यापक क्यों न हो, उस भयभरी स्थिति को अपनी सीमा से दूर कर सकने में जलता दीपक भी सफल हो जाता है। जलते दीपक ही अन्य अनेकों बुझे हुओं को नये सिरे से जलाने में समर्थ हो जाते हैं।

दुराचारी, अपराधी, नशेबाज, दुर्व्यसनी अपने स्तर के अनेकों अन्य साथी-सहयोगी एकत्रित कर लेते हैं, अपने द्वारा अपनाई गई दुष्प्रवृत्तियों का अभ्यस्त बना लेने में सफल हो जाते हैं। महामारी के रोगाणु एक बड़े क्षेत्र को अपनी चपेट में ले लेते हैं, फिर कोई कारण नहीं कि युग सृजेताओं का परिकर उत्पादित, प्रशिक्षित एवं कार्यरत न बनाया जा सके। अवांछनीयता को विस्तृत और सफल होने का अवसर इसलिए मिल जाता है कि उनके सूत्र-संचालकों की कथनी और करनी में एकता होती है, भले ही वह बुराई ही क्यों न हो। परंतु जहाँ भी मान्यता और सक्रियता का समन्वय होता है वहाँ समर्थता उत्पन्न होगी और साथी-सहयोगी को निकट आने के लिए अनायास ही आकर्षित करेगी। बिजली के दोनों तार मिल कर करेंट उत्पन्न करते हैं। दोनों पहियों का सहारा मिलने पर गाड़ी आगे चलती है।

पिछले दिनों नीति, धर्म, सदाचार, कर्तव्य पालन, पुण्य-परमार्थ की चर्चा तो बहुत होती रही, पर जो अपनी कथनी को करनी में, निजी जीवन में समाविष्ट कर सके हों, ऐसे प्रवक्ता मार्गदर्शक आगे नहीं आ सके, इसलिए उनके सुधार प्रयास एकांगी रह गये। श्रेष्ठता का सुखद वातावरण बनाने के लिए प्रचार कार्य करते तो अनेकों देखे गये, पर ऐसी प्रतिभाओं का अभाव ही रहा, जो अपने उच्चस्तरीय कर्तृत्व के आधार पर अन्यान्यों को प्रभावित करते, साथी-सहयोगी बनाते। बुझे हुए दीपक दूसरों को जलाने में समर्थ कहाँ होते हैं?

प्राचीन सतयुगी वातावरण में जन साधारण की भूमिका को सशक्त बताया जाता रहा है, पर उसका मार्गदर्शन उन महामानवों ने किया है, जिनने अपनी कथनी और करनी को एक रखते हुए आदर्शवादिता का प्रत्यक्ष प्रमाण सामने रखा और अपने चुम्बकत्व से अनेक साथी-सहयोगियों को आकर्षित करके प्रभावोत्पादक वातावरण का समर्थ उत्पादन किया।

हनुमान-जामवन्त के नेतृत्व में रीछ-वानरों की निहत्थी सेना इतना साहस प्रदर्शित कर सकी थी, कि असुरता दमन, और धर्म-राज्य की संस्थापना वाले दोनों ही कार्य भली प्रकार पूरे हो सके। बुद्ध और गाँधी को असाधारण त्याग और पुरुषार्थ करने वाले सहयोगियों-अनुचरों की कमी नहीं रही। इसी प्रक्रिया को युग सृजेताओं की समर्थ मंडली बनने में भी कार्यान्वित होते हुए देखा जा सकता है। उपयुक्त नेतृत्व में सामान्य मनोबल वाले भी प्रबल पुरुषार्थ करते और असाधारण सफलता प्राप्त करते देखे जाते हैं। कुटिलता और कायरता भरा नेतृत्व बड़े प्रयोजन सिद्ध कर सकेगा, इसकी आशा नहीं ही करनी चाहिए।

इन दिनों विलासिता और अहमन्यता की पूर्ति ही महत्वाकांक्षा बन कर रह गई है और उसी हेय प्रयोजन में अधिकांश लोगों को निरत देखा जाता है। स्वर्गीय वातावरण वाले सतयुग को विनिर्मित करने की चर्चा करते हुए यह भी मानना पड़ता है कि चरित्रवान और परमार्थ के, साहस के धनी नेतृत्व की जिन दिनों कमी नहीं थी, उन दिनों अब से भी कम सुविधा रहते हुए ऐसे असंख्यों सृजन शिल्पियों का उत्पादन किया गया, जिनके साहसी प्रयत्नों ने वैसी परिस्थितियाँ गढ़ीं, जिनका स्मरण इन दिनों पुरातन देवयुग के रूप में होता है।

उज्ज्वल भविष्य की संभावनाओं से भरी इक्कीसवीं सदी की चर्चा करते हुए हमें इन तथ्यों को ध्यान में रखना होगा कि असंख्य विपन्नताओं से भरी हुई वर्तमान परिस्थिति कुटिल और अनाचारी व्यक्तित्वों एवं कर्तृत्वों के कारण ही विनिर्मित हुई है। इन्हें बदलना हो, तो लोकचिन्तन को उत्कृष्ट बनाने की महत्वपूर्ण मुहिम संभालनी होगी। ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावहारिक अध्यात्म का मर्म

महाराज रविशंकर के पास कहीं से सवा सौ मन अनाज आया था। उनके पास सम्पन्न व्यक्ति प्रायः इस उद्देश्य से कुछ न कुछ भिजवाते थे कि उसे निर्धनों में बँटवा दिया जाय और जिनके पास खाने–पीने पहनने ओढ़ने के पर्याप्त साधन नहीं हैं उनकी कुछ सेवा सहायता हो सके। महाराज रविशंकर ने हमेशा की भाँति वह अनाज बाँटने का प्रबन्ध किया और गरीबों की बस्ती में गए। उस बस्ती में खेल रही थी एक बालिका। महाराज ने उसे देखकर कहा जा बिटिया तू भी कोई बर्तन लेआ और अपने हिस्से का अनाज ले ले।

लड़की ने कहा मेरी माँ मजदूरी से आती होगी। पैसे उसी के पास हैं जब वह आएगी तब हम अनाज ले लेंगे।

लड़की समझती थी कि महाराज अनाज खरीदने के लिए कह रहे हैं। परन्तु जब उसे बताया गया कि यह अनाज बेचा नहीं जा रहा, बल्कि मुफ्त में बाँटा जा रहा है तो उसने लेने से इनकार कर दिया। उन्होंने इसका कारण पूछा तो वह बोली स्वामी जी ! मेरी माँ ने मुझे सिखाया है कि मुफ्त में किसी से कुछ न लेना चाहिए देने वाला भले ही भगवान क्यों न हो।

"अच्छा।" छोटी सी बालिका के मुख से यह बात सुनकर वह आश्चर्य चकित रह गए। उन्होंने निश्चय किया कि जो माँ अपने बच्चों को इतने अच्छे संस्कार दे सकती है, उसका चरित्र साधारण न होगा, उससे मिलना चाहिए। उनने बालिका से कहा "क्या तुम मुझे अपनी माँ से मिलवा सकती हो।"

"ठीक है ! आप अपने काम से निबट जाइए तब तक मेरी माँ भी आती ही होगी" और वह लड़की खेलने में व्यस्त हो गयी तथा महाराज अपने काम में। जब उनके काम का अन्तिम चरण चल रहा था तभी वह लड़की आयी और उनको अपनी माँ से मिलवाने ले गई। रविशंकर जी ने देखा उस लड़की की माँ साधारण कपड़े पहने एक प्रौढ़ आयु की स्त्री थी। उस स्त्री ने उठकर उनका अभिवादन किया। उनने उसे देखकर पूछा "देवि ! तुमने अपनी लड़की को कोई वस्तु मुफ्त में न लेने की सीख दी है"?

इसमें कौन बड़ी बात है "महाराज ! जब भगवान ने हाथ पैर दिए हैं तो फिर मेहनत करके अपना पेट पालना चाहिए। इसमें सिखाने या समझाने जैसी कौन बात है ?"

उन्होंने उस महिला से गृहव्यवस्था और निर्वाह कैसे चलता है ? आदि बातें पूछीं तो उसने बताया कि "वह युवावस्था में विधवा हो गई थी, तभी से जंगल में से लकड़ियाँ काट कर लाती और उन्हें बेचकर अपना गुजारा करती"। महाराज से न रहा गया उन्होंने पूछा "क्या तुम्हारे पति की कोई जमीन जायदाद नहीं थी ?"

तब उस महिला ने कहा "थी तो महाराज ! कोई तीस बीघा जमीन और एक जोड़ी बैल थे। मैंने सोचा यह तो इस बेटी के पिता की सम्पत्ति है। उस पर मेरा क्या अधिकार। मैंने उसे प्राप्त करने या बढ़ाने में कोई योगदान तो दिया था नहीं। इधर मैं कई दिनों से देख रही थी कि इस गाँव की माँ बहिने पानी लाने के लिए गाँव से बाहर करीब तीन–मील जाती हैं। आस–पास कोई कुँआ नहीं था, रेगिस्तानी इलाका होने के कारण बहुत गहरे खोदने पर पानी निकलता है, इसलिए कोई कुँआ खोदता भी न था। अतः मैंने अपने सारे खेत और बैलों की जोड़ी गाँव के ही एक सेठ की सहायता से बेच दिये। जो कुछ मिला उससे गाँव में एक कुँआ बनवा दिया। जमीन काफी थी बेचने पर पैसा भी अच्छा मिला इसलिए कुँआ बन जाने के बाद भी कुछ पैसा बचा तो उससे पशुओं की प्यास बुझाने के लिए एक हौदी बनवा दी। अब गाँव वालों को गर्मियों में भी पानी का अभाव नहीं रहता।"

उस विधवा के उत्सर्ग और त्याग की कथा सुनकर रविशंकर महाराज बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा धन्य हो देवि ! तुम इस समूचे गाँव की माँ हो। धन से न सही मन से तो तुम इतनी धनवान हो कि तुम्हारी सम्पन्नता को कोई लखपती तो क्या करोड़पति भी नहीं पहुँच सकता। तभी तो तुम्हारी लड़की को देखकर मैंने समझ लिया कि यह किसी साधारण माँ की बेटी नहीं है।

महाराज ! शर्मिंदा मत कीजिए कहकर माँ ने उनके चरणों में अपना सिर रख दिया।

हैं कहीं ऐसी आदर्शवादी माँ, जिसे दूसरों का दर्द अपना लगता हो, सारे समुदाय की सेवा में जिसे आनन्द आता हो तथा स्वाभिमानी कोई भी चीज मुफ्त में नहीं लेता, यह अपने बच्चों को जिसने सिखाया हो ? यही तो है सच्चा अध्यात्म जिसका अवलम्बन व्यक्ति को महापुरुषों की श्रेणी में ला खड़ा कर देता है। ऐसे सिद्धान्तों का अवलम्बन करने वालों को ही भारतीय संस्कृति में "भूसुर" पृथ्वी वासी देवता कहकर पुकारा जाता रहा है। आवश्यकता आज ऐसे ही ब्रह्म बीजों की है। ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा चिरपुरातन गौरव एवं बहुमूल्य थाती

हमारी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर इतनी समृद्ध थी कि उसने एक समय समस्त विश्व को अपने रंग में रँग लिया था । इसका पता विभिन्न देशों की संस्कृतियों, वास्तुकलाओं , एवं पुरातत्व अवशेषों के अध्ययन से सहज ही मिल जाता है । अमरीका भी भारतीय संस्कृति से अछूता नहीं था, इसकी जानकारी इतिहासकारों की विभिन्न रचनाओं से मिलती है ।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार दुनिया के किसी भी भाग से अमेरिका जाने के लिये रास्ता न होने के कारण अमेरिका निवासी एशिया आदि से नहीं गये , वरन् उन्होंने स्वयं अपना विकास किया है, किन्तु वर्तमान में भौगोलिक भूगर्भीय पुरातत्व और प्राणिशास्त्र सम्बन्धी खोज इन तर्कों का खंडन करती है । "हॉम्सवर्थ हिस्ट्री आफ द वर्ल्ड " नामक संकलन में लिखा है कि 'उत्तरी अटलांटिक समुद्र हमेशा से जलमय नहीं था । वहाँ की भूमि पुरातन विश्व से मिली थी और अमेरिका में मनुष्य ने पुरानी दुनिया से ही प्रवेश किया । कोलम्बिया इक्वेडर, पेरू बोलेविया चिली आदि में जो प्रमाण बिखरे पड़े हैं, उससे पता चलता है कि किसी समय वहाँ की स्थिति सुविकसित देशों जैसी थी । किन्तु यह सभ्यता कहाँ से पहुँची इसका उत्तर उनके धार्मिक विश्वासों उनके चेहरे की बनावट उनके कुशलशिल्प और निर्माणों उनके पूर्वकालिक गमनागमनों से ही मिल जाता है ।

अमेरिका की "जॉन होपकिन्स " नामक पत्रिका तथा हाम्सवर्थ हिस्ट्री आफ दि वर्ल्ड एवं उन पर समीक्षा लिखने वाले भारतीय विद्वान श्री उमेशचन्द्र ने अनेक प्रमाण यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किये हैं कि प्राचीन भारत और प्राचीन अमेरिका में घनिष्ठ सम्बन्ध था । व्यापारी और धर्मोपदेशक लम्बी जल यात्राएँ करके आते जाते थे । इन्द्र, गणेश, अग्नि, शिव, सूर्य एवं अन्य देवी–देवता भारत की तरह वहाँ भी पूजे जाते थे । उक्त इतिहासकार बताते हैं कि उस समय अमेरिका एक प्रकार से भारतवर्ष का सांस्कृतिक उपनिवेश था । मैक्सिको में अब भी राम सितवा त्यौहार भारी उत्साह के साथ मनाया जाता है , जिसमें राम लीला की झाँकियाँ निकाली जाती हैं । भारत की तरह स्मृति रूप में समाधि, स्तूप एवं स्मारक वहाँ भी बनते थे , जिन्हें "टिकल" कहा जाता था । इसके अतिरिक्त उनके यहाँ वैवस्वत मनु की जलप्लावन की कथा अब भी प्रख्यात है तथा जनश्रुति का एक अंग है ।

मेक्सिको के प्राचीन मन्दिर 'कोपन' की दीवारों पर हाथी पर सवार महावत के भित्ति चित्र 'निकल' में मुण्डधारी शिव की प्रतिमा अनन्त वासुकि, तक्षक सर्प देवताओं की प्रतिमाएँ आदि भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला की अमिट छाप हैं । 'क्वीरिग्वा' में मिली मिट्टी की प्राचीन प्रतिमाओं में भारतीय शिल्प देखा जा सकता है । टोलो (मैक्सिको) में विशालकाय पाषाण स्तम्भों पर भारतीय देवताओं की प्रतिमाएँ बड़े कलात्मक ढंग से खुदी हुई हैं । कोयून (हाण्डुरॉस–मध्य अमेरिका) में दैत्य की मूर्ति भी उसी आकृति में है, जिस प्रकार असुरों का हमारे यहाँ वर्णन पाया जाता है । 'कपूरगो ' (ग्वालेभाटा) में उपलब्ध शिला प्रतिमाओं में स्पष्टतः भारतीय शिल्प छलकता देखा जा सकता है । जिस प्रकार अनेक स्तम्भों वाले मन्दिर भारत में जहाँ–तहाँ दिख पड़ते हैं, उसी प्रकार 'यूक्टास' के ध्वंसावशेष ' थाइजेण्ड कालम्स' (हजार स्तम्भों) को देखा जा सकता है । बिना चूने–गारे की सहायता से केवल पत्थरों से बने भवन भारत की विशिष्ठ वास्तु कला है । ऐसा ही एक तक्षशिला जैसा ध्वस्त खण्डहर चाको (द. अमेरिका) में विद्यमान है । सन् १९२७ में 'तिआहुआन' (पेरू द. अमेरिका) में पुरातत्व विभाग ने जो खुदाई कराई है, उसमें एक ऐसा शिव त्रिशूल मिला है , जिसकी ऊँचाई ८५० फीट है । इसी में २० टन भारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और २४ फीट लंबा एक शिवलिंग भी है, जिस पर ग्रह नक्षत्रों की अन्तरिक्षीय स्थितियाँ अंकित हैं । एक ही पत्थर से तराशा हुआ १० टन भारी सूर्य मन्दिर , तीन कतारों में उपलब्ध ४८ प्रतिमाएँ भी उस काल की भारतीय कला एवं संस्कृति की साक्षी देती हैं ।

भारत के प्राचीनतम साहित्य में अमेरिका का उल्लेख भी है । ऐतरेय ब्राह्मण के इन्द्र महाभिषेक में अपाच्यों के राजाओं का वर्णन है और कहा गया है कि ये पश्चिम दिशा में हैं । भूगोल के अनुसार भी मैक्सिको राष्ट्र में अपाच्य नामक मूल निवासी अब तक रहते हैं । महाभारत में लिखा है कि उद्दालक मुनि पाताल में ही निवास करते थे। हाम्स हिस्ट्री आफ दि वर्ल्ड ' में लिखा है कि पाताल अमेरिका को ही कहा जाता था । बलि नामक राजा भी पाताल देश में निवास करता था । पाताल देश में राजा बलि की राजधानी दक्षिण अमेरिका में अभी भी बोलिविया नाम से प्रसिद्ध है । अर्जुन की उलूपी नामक एक पत्नी भी इसी मूल की थी और वेदव्यास भी वहाँ कई बार गये थे । इसका उल्लेख स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में भी किया है । भारतीय पौराणिक उल्लेखों और मेक्सिको में प्रचलित ''किजक्स ' गाथाओं में आश्चर्यजनक साम्य है । विष्णु पुराण' में पाताल लोक का और भी अधिक विस्तारपूर्वक वर्णन है और वह अमेरिका की प्राचीन स्थिति पर वैसा ही प्रकाश डालता है जैसा कि पुरातत्ववेत्ता बताते हैं ।

विद्वान लेखक चेसली बैटी ''अमेरिका बिफोर कोलम्बस " में लिखते हैं कि मेक्सिको नाम माया +कसको से पड़ा है, जिसका अर्थ वहाँ के प्राचीन आदिवासियों की भाषा में 'मय' का अनुयायी ' है । लैली मिचेल द्वारा लिखित 'कांक्वेस्ट आफ दि माया' ग्रन्थ में मेक्सिको में उपलब्ध ऐसे अनेक प्रमाणों का वर्णन है, जिनसे पुरातन भारत और मैक्सिको की सांस्कृतिक घनिष्टता सहज ही सिद्ध होती है । वाल्मीकि रामायण में भी ''मय'' सभ्यता के अनुयायी भारतीयों की चर्चा लगभग उन्हीं शब्दों में की गई है ।

भारतीयता के प्रभाव की साक्षी देने वाला दक्षिणी अमेरीकी राष्ट्र है पेरू । 'पेरू ' का शब्दार्थ संस्कृत में 'सूर्य का देश,'सूर्य पुत्रों का देश है ।' वस्तुतः ''पेरू'' नाम रखा ही गया इस कारण कि जब भारत में सूर्य अस्त हो जाता था तब वहाँ दिन का समय होता था । पूर्व में भारत व पश्चिम में पेरू एक दूसरे से इतनी दूर होने के बावजूद सांस्कृतिक रूप से एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप से जुड़े थे । पूज्य गुरुदेव द्वारा रचित ग्रन्थ ''समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान " में पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति के प्रसार-विस्तार का विशद एवं गूढ़ विवेचन किया गया है ।

एक मूर्तिकार मूर्तियाँ बनाता और उन्हें बेचकर गुजारा करता । उसकी एक मूर्ति प्रायः एक रुपये में बिकती ।

लड़का बड़ा हुआ तो मूर्तिकार ने उसी धन्धे में उसको भी [illegible] । वह कुशाग्र बुद्धि था जल्दी ही अच्छी मूर्ति[illegible]ने लगा और वे बाप की अपेक्षा दूने दाम [illegible] अर्थात् दो रुपये में बिकने लगीं ।

इतने पर भी बाप ने अपना नित्यक्रम जारी रखा । वह लड़के की मूर्तियों को बहुत बारीकी से देखता और उनमें जो नुक्स होता उसे सुधारने की सलाह देता ।

लड़के के अहंकार को चोट लगी उसकी मूर्तियाँ दूने दामों में बिकने लगी थीं । तब भी प्रशंसा मिलने के स्थान पर उसके कार्य में बाप द्वारा मीन मेख ही निकाली जाती थी । उसने अपने दुख मानने की बात बाप पर भी प्रकट कर दी

बाप को भारी दुख हुआ । उसने कहा बेटे तेरी भावी प्रगति अब रुक गई । दो रुपये से अधिक मूल्य की वस्तु न बना सकेगा । यह भूल मुझ से बचपन में हुई थी और एक रुपये की प्रतिमा बनाने के बाद अधिक प्रगति न कर सका । वही भूल तुम अब कर रहे हो ।

लड़के ने अपनी भूल समझी और समीक्षा को न केवल बाप से वरन् दूसरों से भी कहने लगा । गलतियाँ मालूम करना और उन्हें सुधारना यही तो अनवरत प्रगति का मार्ग है ।

वस्तुतः भारतीय सांस्कृतिक गौरव एक अमूल्य थाती है । समय आ रहा है कि यही आलोक पुनः समस्त विश्व में संव्याप्त होने जा रहा है । कभी जिसे ''ब्रह्मवर्त्त " कहा जाता था वह ब्रह्मनिष्ठ आत्माओं के समुच्चय से भरा पूरा सारा विश्व ही था । पूर्वात्य आध्यात्मिक स्थापनाएँ अगले दस वर्षों में विश्व के कोने कोने में भिन्न भाषाओं में जब पहुँचेंगी तो इसे सही अर्थो में सतयुग की वापसी के रूप में देखा जा सकेगा । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग के विश्वामित्र द्वारा राम–लक्ष्मण की माँग

सभी बैठे हुए थे कि शोर मचा–जत्था आ गया ! पश्चिम में गर्द उड़ती हुई नजर आ रही थी , मानों पृथ्वी उन यात्रियों के स्वागत में अपने रजरत्नों की वर्षा कर रही हो । गाँव के स्त्री–पुरुष सब काम छोड़–छोड़ कर उनका अभिवादन करने दौड़ पड़े । क्षण में तिरंगी पताका हवा में फहराती दिखाई दी ।

जरा देर में यात्रियों का दल साफ नजर आने लगा । दो–दो आदमियों की कतारें थीं । हर एक की देह पर खद्दर का कुर्ता था, सिर पर गाँधी टोपी, बगल में लटकता हुआ थैला , दोनों हाथ खाली जैसे नए जमाने का आलिंगन करने के लिए तैयार हों । उनके मरदाने गले से एक तराना निकल रहा था , गर्म , गहरा, दिलों में स्फूर्ति डालने वाला । जिसे सुनकर सभी के भाव उमगने लगे । गाँव वालों ने कई कदम आगे बढ़कर उनका स्वागत किया । उनके सिरों पर धूल जमी थी होंठ सूखे हुए चेहरे संवलाए पर आँखों में नव समाज की भव्यता प्रदीप्त थी ।

आने के साथ उन सब ने अपने पटुके से धूल साफ की हाथ पैरों को धोया तनिक विश्राम करने के साथ ही गाँव के चौधरी को निवेदन किया "हम लोग अपने मार्गदर्शक की कुछ बातें आप को बताना चाहते हैं । सुनने की कृपा करेंगे । " चौधरी सहर्ष तैयार हो गया । शाम को उसके दरवाजे पर मशालें जलने लगीं । गाँव के अनेकों आदमी जमा हो गए । महिलाएँ छतों पर खड़ी थीं । दल के नायक ने खड़े होकर कहना प्रारम्भ किया ।

"भाइयो । आप सब ने हम लोगों का आदर सत्कार किया वह हम में से किसी व्यक्ति का सत्कार न होकर बदलते समाज का सत्कार है । मैंने पूरब और पश्चिम के बहुत से देशों को देखा है और तजुरबे से कहता हूँ कि आप में जो सरलता जो ईमानदारी जो श्रम और धर्म बुद्धि वह कहीं और नहीं । इन दैवी गुणों के बावजूद आप लोगों को विवशता और घुटन की जो त्रासदी सहनी पड़ती है उसका एक ही कारण है भटकाव ।"

सुनने वाले अचकचा कर सोचने लगे भटकाव कैसा ? भटका हुआ कौन ? वह कह रहे थे "आपके श्रम सीकरों की रत्नराशि को दहेज का डाकू लूट ले जाता है, मृतक भोज के गिद्ध नोच ले जाते हैं , जो कुछ बचता है वह मुकदमेबाजी की आग में स्वाहा हो जाता है ।" सही तो कह रहे हैं । अनेकों होंठ बुदबुदाए । कहने वाले की वाणी गतिमान थी सब कुछ लुटने गँवाने के बाद भी चैन नहीं । कन्याओं के आँसू पोंछने में हमारे हाथ असमर्थ हैं, जिन्दगी में चैन हम नहीं ला पा रहे हैं, जानते हैं क्यों ? "क्यों ?" अनेकों ने इस एक शब्द को दुहराया ।

"सिर्फ इसलिए कि हम धर्म को भूल गए हैं"। धर्म को भूल गए हैं, भला यह कैसे ? धर्म तो हमारा प्राण है ।" नहीं भाई यह बात सच नहीं है ।" न चाहते हुए आखिरी शब्द किसी के कण्ठ से जोर से निकल गए ।" तनिक फिर से परखिए जिसे आपने धर्म कहकर छाती से चिपटा रखा है, वह धर्म है अथवा कुरीतियाँ , कुप्रचलन अथवा आड़ी टेढ़ी प्रथाएँ । धर्म के तीन रूप है पहला यह कि व्यक्ति अपनी आन्तरिक शक्तियों को अधिकाधिक उभारे प्रतिभावान क्षमतावान बने । दूसरा यह कि परिवार सृजन की प्रयोगशाला बने । तीसरा यह कि व्यक्ति एवम् परिवार की क्षमताओं का अधिकतम लाभ समाज को मिले । इनमें से कौन सा रूप है आपके पास ।"

सुनकर सभी मौन थे । कहें भी क्या ? वह कहे जा रहे थे "लुट रहें हैं, बरबाद हो रहे हैं, सर्वनाश हो रहा है , वह भी स्वयं अपने हाथों से ।" आवाज दर्द भरी हो उठी । व्यक्तित्व की अपनी वाणी है जो जीभ या कलम का इस्तेमाल किए बिना भी लोगों के अन्तराल को छूती है ।

एक आवाज आयी "हम किस लायक हैं ?"

"यही तो आपका भ्रम है । आप ही के कन्धों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर इतना बड़ा राज टिका हुआ है । आप इन बड़ी–बड़ी फौजों, बड़े–बड़े अफसरों के मालिक हैं । नायक कह रहे थे "समझिये अपनी शक्ति को । टटोलिए अपने को, आ मिलिए सृजन के इस तूफान में, जो समाज की सारी दुर्गन्ध को उड़ा फेंकने के लिए उतारू है । अब सोचिए कि आप हमारी कुछ मदद करेंगे ? मर्दों की तरह निकल कर अपनों को इस घुटन से बचाएँगे या कायरों की तरह बैठे हुए तकदीर को कोसते रहेंगे ? युग के विश्वामित्र ने हर गाँव हर घर से राम –लक्ष्मण माँगे हैं जो ताड़का मारीच सुबाहु जैसी आसुरी शक्तियों को पराजित कर भावी युग का नेतृत्व सँभाल सकें "।

सभा में सन्नाटा छा गया । सभी कुछ जैसे निस्पन्द निष्प्राण । सिर्फ सामने खड़ा पीपल का पेड़ कभी–कभी अपने पत्ते खड़का कर अपने सप्राण होने की खबर देता । नायक का थमा हुआ कण्ठ स्वर फिर मुखरित हुआ "सोच लो ऐसा अवसर शायद फिर कभी न आए । अगर इस वक्त चूके तो शायद हमेशा हाथ मलें । हमें ऐसे वीरों की जरूरत है जिनके दिलों में सब कुछ नया गढ़ डालने की उमंग हो । जो ईश्वर पर अटल विश्वास रख कर मानव हित के लिए सभी कुछ झेल सकें ।"

कोई आगे नहीं बढ़ा । सन्नाटे ने सभी को डुबा दिया । सब के सिर झुके थे । यदि किसी का मस्तक उठा था सिर्फ उसका । अपनी लठिया पकड़े सबके पीछे आशीर्वाद बनी खड़ी थी । उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं , मुख से गौरव की ऐसी झलक आ रही थी, मानों वह कोई महारानी हो, सारा गाँव उसका है ये सभी युवक अपने बालक हैं । नायक की वाणी से वह अपने अन्दर में अद्‌भुत शक्ति विकास और उत्थान का अनुभव कर रही थी । उसने एक नजर सब पर घुमाई पर सभी मुर्दों की तरह निःचेष्ट थे । कहीं कोई हलचल न देखकर इशारे से दो तरुणों को अपने पास बुलाया । लाठियों को एक ओर फेंक कर अपने दोनों हाथों से दोनों युवकों का हाथ पकड़ा और तनिक डगमगाते हुए मंच की ओर चल दी ।

उपस्थित जनसमुदाय ने तो तब ध्यान दिया जब उसके मुख से निकला "नायक जी ! सँभालिए मेरे राम लक्ष्मण–देश के लिए–समाज के लिए , मैं इन्हें सौंपती हूँ । आपके विश्वामित्र को उन्हें मेरा प्रणाम कहना ।" सुनकर नायक भी विह्वल हो उठा उसने लपक कर बुढ़िया के चरणों में सिर रखा । वृद्धा ने काँपते हाथों से उसे उठाया नायक को अपने सिर पर टपक पड़े गर्म जल की बूंदों का अहसास हो रहा था । यह और कुछ नहीं वृद्धा की अश्रुधार थी ।

गाँव का चौधरी हतप्रभ हो बोला "यह क्या करती हो काकी । इनकी तो बारात जाने वाली थी । अब "

बात काटते हुए वृद्धा बोली "बीते को बिसार दो चौधरी । अब राष्ट्र से इनका विवाह होगा । समाज की आपत्तियों को देखकर भी ऐश–मौज की सोचना मनुष्य का काम नहीं है ।" कहकर वह चुप हो गई ।

> *गाँधी जी की जीवनचर्या बड़ी नियमित तथा सन्तुलित थी । एक बार वे आगा खाँ महल में ठहरे हुए थे । उस दिन श्रम कुछ अधिक करना पड़ा, व्यस्तता भी असाधारण रही । इसलिए सुबह कुछ देर से आँख खुली ।*
>
> *इस भूल पर बापू को बहुत ग्लानि हुई । क्षोभ से हृदय मथने लगा । मन किसी प्रकार हलका ही नहीं हो पा रहा था । बापू ने प्रायश्चित्त करने की बात सोची । उस दिन उन्होंने भोजन नहीं किया, तब कहीं जाकर मन का उतार–चढ़ाव कम हुआ और अन्तर्द्वन्द्व मिटा । महापुरुषों के जीवन की ये छोटी बातें ही उनकी महानता का परिचय देती हैं ।*

नायक ने तरुणों का हाथ पकड़ा झोले से मालाएँ निकाल कर उन्हें पहनाईं । एक माला बुढ़ियाँ माँ के गले में डाली । जवाब में उसने लड़कों को चेतावनी दी "मेरे दूध की लाज रखना , मेरे बच्चो ।"

सुनकर नायक बोल पड़ा तुम्हारा दूध अमर रहेगा माँ । युग के विश्वामित्र के लिए राम–लक्ष्मण माँगने वाले यह नायक थे महावीर त्यागी । गाँधी जी के अनन्य सहयोगी । बीतते वर्षों के बाद भी पुकार मन्द नहीं पड़ी है । युग के विश्वामित्र ने अपनी सृजन सेना के लिए सेनानी माँगे हैं । भावी युग के कर्णधार यही होगें । अपने को टटोलें हृदय में उमग रही भावनाओं के बीच हम अपने मध्य भी राम–लक्ष्मण का गौरव चमकता पाएँगे । हर बढ़ते कदम के साथ वैसी ही प्रतिभा–क्षमता का विकास होता हुआ चला जाएगा । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्म भगोड़ों का नहीं शूरवीरों का क्षेत्र

वैयक्तिक जीवन में आत्म परिष्कार, पारिवारिक जीवन में सहयोगियों का पोषण —सम्वर्धन , सामाजिक जीवन में सत्प्रवृत्तियों का समर्थन जैसे उत्तरदायित्व हर किसी के सामने मौजूद हैं । उनका निर्वाह भली प्रकार किया जाना चाहिए । इन तीनों ही मोर्चों पर कर्म कौशल का शौर्य—साहस का—विवेक सन्तुलन का परिचय दिया जाना चाहिए । इन से मन हटा लेना और तथाकथित धर्म या अध्यात्म के कोंतर में जा छिपना और कल्पना लोक में विचरण करके मन को समझाना, ऐसा प्रयत्न है जिससे किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती ।

भाग खड़े होने से समस्याएँ और भी अधिक विकराल होती हैं और पहले जितना उपद्रव चल रहा था , उस में और भी अधिक वृद्धि हो जाती है । मन जिस समाधान को खोजने चला था वह भी भटकाव भरी पगडंडियों में कहाँ मिलता है ? उपेक्षा , उदासीनता की रीति—नीति से चैन मिलने की कल्पना जिनने भी की है, उन्हें प्रयोग के उपरान्त निराशा ही हाथ लगी है ।

प्रायः कायरता से उत्पन्न पलायनवाद की चपेट में बहुत से लोग धर्म का—अध्यात्म का आवरण ओढ़ते और व्यावहारिक जीवन से जुड़ी हुई समस्याओं से मुँह मोड़ते देखे जाते हैं । अपने कर्तव्यों और आश्रितों से उदासीन हो जाने वालों के लिए उदासी से उत्पन्न शिथिलता भी भारी पड़ती है । ऐसे ही धर्मात्मा सर्वत्र उपहासास्पद बनते हैं । इसी तरह भगोड़ों में से कितने ही एकान्त में भजन करने और शान्ति पाने की बातें सोचते हैं तो कितने ही लोग आरंभ में ही एकान्त ढूँढ़ते और पहले ही दिन समाधि लगाने की बात सोचते हैं । उनकी बालबुद्धि इस तथ्य से अनभिज्ञ बनी रहती है कि अध्यात्म साधना एक वैज्ञानिक अन्वेषण एवं अभ्यास का प्रकरण है । उसमें अन्तर्मुखी होकर सूक्ष्म अतिसूक्ष्म सत्ता के गहरे समुद्र में डुबकी लगाने और वहाँ से बहुमूल्य रत्न—राशि ढूँढ़ लाने के लिए कुशल पनडुब्बे का सा—दुस्साहस भरा महत्वपूर्ण कदम उठाया जाता हैं और वह भी बन तब पड़ता है जब पहले मन को भली प्रकार निग्रहीत कर लिया जाय ।

यह समय साध्य और अभ्यास साध्य प्रक्रिया है । इसके लिए उनकी पूर्व तैयारी तो होती नहीं । जो उत्साह होता है वह भी श्रद्धाजन्य नहीं, जीवन संग्राम की भयंकरता से डर कर कहीं जा छिपने की पलायनवादी मनोवृत्ति से उत्पन्न हुआ होता है । उसमें न श्रद्धा होती है और न गहराई । फलतः मन वहाँ भी नहीं लगता । वापिस लौटने में उपहास होने की झिझक से एक नया असमंजस और खड़ा हो जाता है ।

श्रम करने पर ही उपलब्धियाँ हस्तगत होती हैं । धर्म क्षेत्र में प्रवेश करने पर व्यक्तित्व में तद्विषयक प्रखरता उत्पन्न न हो तो सहज ही उसे निरर्थक ठहराया जाने लगेगा । दर्शकों और पर्यवेक्षकों में सहज ही उसकी बुरी प्रतिक्रिया होगी । धर्मात्माओं की अपरिपक्वता का दोष धर्म पर धार्मिकता पर मढ़ा जायेगा । देखा यही जाता है कि धर्म—चर्चा करने वाले लोग अपने स्वजन सम्बन्धियों से उदास होते जाते हैं । जिम्मेदारियों से हाथ खींच कर उन्हें और भी अधिक विकृत करते हैं, साथ ही स्वयं भी निराश , निष्क्रिय बन कर अपने आप के लिए भारभूत बनते हैं । जहाँ रहते हैं वहाँ भी नीरसता का वातावरण उत्पन्न करते हैं । जिस समुदाय के बीच रहा जाय, जिन लोगों के साथ घनिष्ठतापूर्वक निर्वाह किया जाय, उन्हें पारस्परिक स्नेह, सहयोग, विनोद , उल्लास—उत्साह का लाभ मिलना चाहिए । इसके बिना सह निर्वाह के साथ जुड़े हुए कर्तव्य की अवहेलना ही होती है । जो माँ स्वयं उदास रहती है और अपने बच्चे तथा पति पर, परिवार पर उदासी थोपे रहती है वह प्रकारान्तर से उन पर अत्याचार ही करती है भले ही वह निर्दोष दुखी ही क्यों न हो ? यह बात उपेक्षा बरतने वाले हर नर—नारी बाल—वृद्ध पर लागू होती है । सहजीवन में साथियों के प्रति रुचि घटा लेना , उनके प्रति अपने कर्तव्यों में शिथिलता बरतना हर दृष्टि से अनुचित है । भले ही इस के लिए धार्मिकता की आड़ क्यों न ली गई हो ? धर्म—धारणा का निर्वाह करने के लिए नीरस और उत्तरदायित्व विहीन जीवन क्रम अपनाना आवश्यक नहीं है । उसे सरसता और सक्रियता के साथ अपेक्षाकृत और भी अच्छी तरह निभाया जा सकता है ।

ऐसी पलायनवादी धार्मिकता पर करारे व्यंग करते हुए सुप्रसिद्ध दार्शनिक मनोविज्ञानविद् विन्सेन्ट पील ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ग्रंथ में लिखा है "कमजोर मनःस्थिति के लोग जीवन संग्राम की स्वाभाविक कठिनाइयों को तिल का ताड़ बनाते हैं और भयभीत होकर मुँह छिपाने का कोई आसरा तकते हैं । कोई धर्म रूपी अफीम का पल्ला पकड़ते हैं तो कोई किसी नशे का आश्रय लेते हैं, पर इससे उन्हें मिलता कुछ नहीं । ऐसे सभी आसरे परिस्थिति में सुधार नहीं बिगाड़ ही उत्पन्न करते हैं ।" धर्म को अफीम की गोली कह कर अनास्थावादी लोगों ने उसे खूब बदनाम किया है और कहा है कि इस जंजाल में फँसने वाले लोग काहिली और गैर जिम्मेदारी से लद जाते हैं । यह बदनामी किसी भी भले बुरे इरादे से क्यों न की जाती हो, इसमें इतना तथ्य तो है ही कि धार्मिकता उद्देश्यहीनता से जुड़ कर उदासीनता के साथ जब पर्यायवाचक बनती दिखाई पड़ती है तो उस परिणाम को देखते हुए इस प्रकार के निष्कर्ष निकालने वालों को अधिक दोष नहीं दिया जा सकता ।

मनीषीगणों ने कहा है धार्मिकता, आध्यात्मिकता, औषधियाँ पूजा–अर्चा, कथा–कीर्तन आदि सभी साधन यदि सुनियोजित रूप में प्रयुक्त किये जायँ तो ही इनके सहारे प्रगति होती है और प्रसन्नता मिलती है । किन्तु इन पर इतना आश्रित न बना जाय कि कठोर कर्तव्यों की उपेक्षा ही होने लगे । औषधियों पर आश्रित रहने से नहीं स्वास्थ्य रक्षा के ठोस प्रयत्नों से काम चलता है । मनोरंजन के अवसर ढूँढ़ने से नहीं आन्तरिक उल्लास से प्रसन्नता स्थिर रहती है । इसी तरह धर्म के कल्पना लोक में विचरण करने से नहीं, जीवन संग्राम में कर्म का गाण्डीव उठाने से समाधान मिलता है । कर्म निष्ठा का स्थान यदि पलायनवादी धार्मिकता ग्रहण करने लगे तो उसमें अनर्थ की ही संभावना बनी रहती है ।

धर्म का वास्तविक तात्पर्य है –मानवी चेतना में ऐसी सत्प्रवृत्तियों का समावेश जो सदाचरण और कर्तव्य पालन के रूप में वातावरण को उल्लासपूर्ण बनाने में समर्थ हो । सहिष्णुता, दया, प्रेम, विवेक, उदारता, संयम, सेवा जैसे गुणों में सच्ची धर्म निष्ठा का परिचय मिलता है । कर्तव्य परायणता को, आदर्शवाद को जीवन में प्रमुखता देने वाला व्यक्ति धर्मात्मा कहा जा सकता है, किन्तु आज तो इन सब की उपेक्षा करके मात्र पूजा–पाठ के ढकोसले में निरत रहना ही धर्म–धर्म परायणता का चिन्ह बन गया है । धर्म के प्रति अनास्था इसी विकृति के कारण उत्पन्न हुई है । धर्म के कारण लोग पिछड़ेपन के शिकार नहीं हुए हैं, वरन् पिछड़े एवं पलायनवादी लोगों ने धर्म का आडम्बर ओढ़ कर उसकी उपयोगिता में सन्देह उत्पन्न कर दिया है ।

नींद की गोली खाने से नशा पीने से, भाग्यवाद का आश्रय लेने भाग खड़े होने, उदासीनता धारण कर लेने से उलझनें सुलझती नहीं और न पलायनवादी धार्मिकता से किसी को समाधान मिलता है । तथ्यों को समझा जाना चाहिए और समस्याओं का समाधान ढूँढ़ा जाना चाहिए । वह एक तरह से न सही तो दूसरी तरह हल हो सकती है । जिस तरह हम हल चाहते हैं वही एक मात्र उपाय हो, ऐसी बात नहीं है । खोजने पर ऐसे अनेकों आधार मिल सकते हैं जिससे प्रस्तुत कठिनाइयों से आसानी से निपटना या बचना संभव हो सके । निराशा कायरता और भीरुता में लिया गया धर्मावलम्बन किसी के कुछ काम नहीं आ सकता । धर्म तो कर्तव्य परायणता का पर्यायवाचक है । धर्मनिष्ठा और कर्मनिष्ठा समान अर्थबोधक हैं । दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाकर अपनी और अपने सम्पर्क क्षेत्र की समस्याओं का समाधान करने की क्षमता का विकास ही सच्ची धार्मिकता है । इसी विशेषता के कारण धर्मतत्व को मानव जीवन में सम्मान और उच्चस्थान मिला है । इस मौलिकता से विरत होकर तो वह अनुपयोगी बन जाता है ।

धर्म और ईश्वर के प्रति आस्था होने का तात्पर्य है जीवन की गरिमा और उसकी श्रेष्ठता पर सुदृढ़ विश्वास । इस आस्तिकता के सहारे ही ईश्वर विश्वास विकसित किया और सत्कर्मों में उसकी सहायता मिलने का भरोसा रखा जा सकता है । आस्तिकता के माध्यम से आत्म गौरव और आत्म विश्वास बढ़ाते हुए आत्मावलम्बन की दिशा में आगे बढ़ा और आत्म निर्भर रहा जा सकता है । धार्मिकता का तत्वज्ञान हमें कर्तव्य परायण बने रहने और जीवन संग्राम के हर मोर्चे पर आदर्शों की लड़ाई लड़ने का शौर्य साहस प्रदान करता है । क्या यह उपलब्धियाँ जीवन को सार्थक बनाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं ? धर्म और अध्यात्म को पलायनवाद का पर्याय क्यों बनाया जाय, जब कि उसमें सज्जनता, शालीनता एवं प्रखरता प्रदान करने वाली विभूतियाँ आदि से अन्त तक भरी पूरी हैं । यह मानकर चलना चाहिए कि अगले दिनों अनेक क्षेत्रों की सफाई अवांछनीयताओं की निष्कासन प्रक्रिया की तरह धर्म–अध्यात्म के क्षेत्र में श्री महाकाल बुहारी लगाएगा व मात्र वे ही अपना अस्तित्व बनाये रख सकेंगे जिनका आधार आदर्शवादी कर्मनिष्ठा, ब्रह्मपरायण चिंतन व जीवन है । *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यः दिव्यजीवन का मानचित्र

एक क्षण के लिए पलकें झपकीं, दृष्टि पुनः सामने बह रही नदी की जल धारा से एकाकार होने की कोशिश में लग गई। फ्लोरेंस के शहरी जीवन से थोड़ा हटकर इस टेकरी पर खड़े वृक्षों के घने झुरमुट के बीच बनी झोंपड़ी में वह विगत कई वर्षों से रह रहे थे। इस टेकरी के ठीक नीचे यह नदी बहती थी, जिसके किनारे बैठे शाम से ही कुछ सोच रहे थे ? सोच क्या थे मन की पोथी को उलटने –पुलटने का प्रयास ?

इस उलट पुलट में जब से होश सँभाला था, तब से लेकर अब तक की यादें, जीवन की घटनाएँ एक–एक करके मुखर हो उठीं। जन्मते ही उन्हें वह परिस्थितियाँ प्राप्त हुईं जिनके मिलने पर मनुष्य को सौभाग्यशाली समझने की परिपाटी है। किन्तु परिपाटियाँ तो अक्सर भ्रमों से सनी होती हैं। सौभाग्य और दुर्भाग्य सुख और दुःख, शान्ति और अशान्ति, कहाँ है यह सब ? अन्दर या बाहर ! उनके अधरों से टपक पड़ी मुसकान को बह रही सरिता ने लहरों के आंचल में थाम लिया।

वैभव शान –शौकत रोब दाब ऐशो–आराम के किले में रहने वाले स्वजनों को उन्होंने अतृप्ति के धधकते ज्वालानल में जलते अनुभव किया था।' ओह ! शायद विलासिता के पाशव उन्माद में मानव अपनी मानवता गवाँ बैठता है। उनकी देह में सिहरन दौड़ गई। मानस पटल पर दृश्य साकार हो उठा। शराब के टकराते जामों की झनकार में दासों की देह पर बरस रहे कोड़ों की विलय होती सीत्कार। आखिर उस दिन वह बेचारा प्राण छोड़ ही बैठा।

अमीरी और गरीबी सुख और दुख के प्रचलित पर्याय। न न वह होंठों ही होंठों में बुद बुदा उठे। उफ ! कितना भ्रम है। सारा खेल तो मन का है। मन की सुगढ़ता सुख है और इसी की अनगढ़ता दुख जैसे वह अपने आप से कहने लगे मन की समस्याएँ मन के समाधान। लोक मन के अनगढ़ होने के कारण ही तो कितना भोंड़ा कुरूप, बेडौल होता जा रहा है लोक जीवन।

इसी को भव्य और दिव्य बनाने के लिए ही तो . . .। हवा के एक तेज झोंके के साथ चिन्तन श्रृंखला को झटका लगा। अन्तर में झाँकने की कोशिश कर रही दृष्टि फिर से बाहर लौट आई। प्रहरी की भाँति सीधे तने खड़े पेड़ कभी–कभी हिल डुल कर अपनी सचेतनता का आभास दिला देते थे। नदी अपनी गोद में तारों को लहरों की प्यार भरी थपकियाँ देकर सुलाने का यत्न कर रही थी। रात्रि के गतिमान चरण अपनी सघनता की ओर बढ़ रहे थे।

वह उठा, नपे–तुले कदमों से अपनी झोंपड़ी की 'ओर चलने लगा। कितनी खट्टी मीठी स्मृतियों की साक्षी बनी है यह। जब उसने लोक सेवा के लिए, जन मन को जीवन बोध कराने के लिए, वैभव के किले से अपने पैर बाहर निकाले सुवर्ण की अर्गलाएँ तोड़ीं तब सभी तो विरोधी थे हर कोई उसे मूर्ख, कहता था। अभी ही कौन से कम हैं ? सोचते–सोचते पैर को ठोकर लगी झुक कर नीचे की ओर देखा एक पत्थर का टुकड़ा था। सँभलकर दोनों हाथों से उठा एक ओर फेंक दिया। पैर फिर बढ़ने लगे। दिव्य जीवन की राह में भी तो इसी तरह अवरोध हैं। इन अवरोधों से कैसे बचा जाय संभल कर कैसे बढ़ें जीवनोद्देश्य की ओर–इसी के लिए तो उसने नक्शा तैयार किया है। आज ही तो उसकी समाप्ति हुई है। भले उसका स्वरूप काव्य हो पर यथार्थ में वह दिव्य जीवन का नक्शा है।

झोंपड़ी आ चुकी थी। आहिस्ते से द्वार खोला। दीपक की पतली लौ अन्दर के तम से एकाकी जूझ रही थी। भले वह दुर्बल हो, कमजोर हो किन्तु उसकी लगन निष्ठा के सामने चारों ओर पसरा हुआ अंधेर, हारने को मजबूर हो रहा था। आखों की पुतलियाँ इधर से उधर हुई पैनी दृष्टि ने कुछ भांपने की कोशिश की। शायद कोई आया है सामान की बेतरतीबी से ऐसा कुछ लग रहा था। अभी वह कुछ और सोचते कि पीछे से किसी ने वार करने का प्रयास किया। दीपक के प्रकाश में उसकी हिलती–डुलती छाया दिखी। उन्होंने झुक कर वार बचाया और पीछे मुड़ कर उसके हाथ पकड़ लिए।

यह सब एक क्षण में बिजली की तेजी से हुआ। वार करने वाला हतप्रभ था। हाथ का गँड़ासा छीन कर उसे रोशनी में लाते हुए पुछा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम कौन हो भाई । मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है , जो मुझे मारने की कोशिश कर रहे थे । मुझे मार डालने से तुम्हें मिलेगा भी क्या ? कुछ माल मत्ता तो मेरे पास है नहीं ।"

सुनने वाला मौन हो टुकुर टुकुर उनकी ओर देखे जा रहा था । शायद उसका प्रयत्न उनका चेहरा पढ़ने का हो अथवा यह सोच रहा हो कि अब क्या होगा मेरा !

"बताते क्यों नहीं ? मुझे अपना मित्र समझो । कुछ परेशानी समस्या हो तो निःसंकोच कहो ।" वाणी में मधुरता थी , प्यार छलक रहा था ।

व्यवहार की इस मधुरता ने उस में आत्म ग्लानि भर दी । स्वपरिताप से आँखों से आँसू ढुलक पड़े । सिसकते हुए बोला "आप से मेरा कोई वैर नहीं । मुझे तो फ्लोरेंस की साहित्यिक सभा के अध्यक्ष ने भेजा था । उसके आदेश के मुताबिक आपको मार कर कोई एक किताब चुरानी थी जिसे आपने लिखा है " । "ओह"! सुनकर उन्होंने गहरी श्वास ली । *"यही है पाण्डित्य , यही है विद्वता जिसका एक ही काम बचा है कि अपने अहंकार के पत्थरों से लोकहित को कैसे कुचलें । विद्वता विभूति है जब वह अपने को जनहिताय समर्पित करे और दुर्भाग्य है तब जबकि इस में आड़े आए ।"*

"तुम जानते हो वह किताब कैसी है "।

"न "

"अच्छा , तुम्हें उसका एक अंश सुनाता हूँ । सुनकर निर्णय करना "। कहकर कपड़े में लिपटी एक हस्तलिखित पोथी उठाई । उसके कुछ पन्ने पलट कर दीपक के प्रकाश में पढ़ना शुरू किया । लोक भाषा का माधुर्य हृदय की गहराइयों से निकला काव्य रचनाकार की वाणी से झरने लगा ।

'सुनने वाला निस्तब्ध था । *"इतनी अच्छी बातें । रोजमर्रा के जीवन से लेकर अध्यात्मिक ऊँचाइयों तक का इतना मर्मस्पर्शी मार्गदर्शन । ऐसी कृति को नष्ट करने चला था वह"* अन्तरात्मा *धिक्कार उठी । अनजाने में कितना बड़ा अपराध हो जाता सोचकर वह* सिहर उठा ।

काव्य पाठ चलता रहा । भावों के मोती झरते रहे साथ ही कहने और सुनने वालों के अश्रुबिन्दु । पता नहीं कितनी देर तक यह क्रम चला । बन्द होने के साथ ही एक अन्य व्यक्ति ने अन्दर प्रवेश किया ।

"अरे तुम कब आए "! रचनाकार ने बड़ी तत्परता के साथ उसे गले से लगा लिया ।

"मैंने सुना था कि तुमने लैटिन को छोड़कर लोक भाषा में कोई काव्य लिखा है , पर उसमें इतना अकल्पनीय सौन्दर्य होगा , इतना सार्थक जीवन बोध होगा , ऐसी कल्पना नहीं थी "।

"तो तुम भी सुन रहे थे "। अपने बाल मित्र की ओर आश्चर्य से देखा ।

"हाँ बाहर खड़े होकर" 'पर इतनी रात को कैसे ?'

"लैटिन के पण्डितों ने साहित्यकारों ने आज की रात तुम्हें समाप्त करने की योजना बनाई थी । उन मूर्खों को क्या पता साहित्य का मर्म –'। कहते हुए आगन्तुक ने मुँह बिचकाया ।"

"कुछ ही क्षणों के वार्तालाप में सारी बात स्पष्ट हो गई । "सच कहते हो मित्र ! यथार्थ में साहित्य दिव्य जीवन का मानचित्र है । जो कलात्मक ढंग से सीधे-सच्चे सुखप्रद जीवन की राहें सुझाता है । इसकी सार्थकता तभी है जब सभी समझें । ऐसा होने के लिए आवश्यक है कि यह सहज , सरल सुबोध और भावों से ओत प्रोत है , ताकि सरलता से ग्राह्य हो । यही मैंने किया है" बात पूरी करते हुए एक बारगी दोनों की ओर देखा ।

"तुम पूर्णतया सफल हो । अपने अहंकार का ढोल बजाने वाले ये पण्डित क्या समझेंगे इन चीजों को । "

"इस लोक भाषा को क्या नाम दोगे "?

इटली की है इसलिए इतालवी '

'ठीक बिल्कुल ठीक ।'

"कल से हम दोनों गाँव –गाँव पहुँच कर औरों को लेकर तुम्हारा यह मानचित्र समझाएँगे , डिवाइन कमेडी गाएँगे । "

वह किन्हीं भावों में डूबने लगे । डिवाइन कमेडी के रूप में दिव्य जीवन का मानचित्र बनाने वाले रचनाकार थे दाँते । जिन्हें न केवल इटैलियन के जनक के रूप में बल्कि दिव्य जीवन के पथ प्रदर्शक के रूप में समूचा इटली २२ मई को याद करता है । ७०० वर्ष बीत जाने पर आज भी लगभग उनकी लिखी एक लाख प्रतियों को प्रति वर्ष लोग खरीदते हैं ।

भारतीयता के परिवेश में युग साहित्य के रूप में ऐसे ही मानचित्रों का सृजन हुआ है, जिसके सहारे हमारे अपने कदम सही राह पर बढ़ सके । गहराई से पहचानें इन नक्शों को और गति दें अपने रुके पावों को । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन करेगा भावी युग का नेतृत्व ?

उज्ज्वल भविष्य के चित्रांकन में निरत विश्व–मनीषा ने अनेकों मोहक चित्र प्रस्तुत किए हैं। आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक पहलुओं के अनुरूप प्रत्येक का अपना सौन्दर्य है। अन्तर्दृष्टि के बल पर प्रकाश युगीन सामाजिक संरचना, व्यवस्था प्रणालियों आदि का जीवन्त चित्रण कर रही कल्पना की तूलिका यकायक ठहराव सा अनुभव कर रही है। कैसे होंगे वे व्यक्ति जिनके ऊपर भावी समाज के नेतृत्व का भार होगा ? सही माने में संरचना व्यवस्था–प्रणालियाँ तो कलेवर मात्र हैं। प्राण तो ये ही व्यक्ति हैं जिनके रहते तक कायकलेवर अपना सौन्दर्य बरकरार रखता है। इनके जर्जरित होते ही अच्छी से अच्छी संरचना अपना अस्तित्व गवाँ बैठती है।

मानवीय इतिहास की पोथी को उलट–पुलट कर देखें तो यह तथ्य कहीं अधिक मुखर हो अपना स्पष्टीकरण देता है। कबीले यूथों के सामुदायिक निवास से राजतन्त्र, लोकतन्त्र, साम्यवाद समाजवाद के उत्थान और अवसान की गहराइयों में यही स्वर गूँजते हैं। यथार्थ में कोई भी प्रणाली या विधि व्यवस्था उतनी खराब नहीं होती, जितनी कि हम सब समझ बैठते हैं। यदि राजतन्त्र का नेतृत्व करने वाले विक्रमादित्य और चन्द्रगुप्त सदृश व्यक्ति हों, जिन्होंने अपने समूचे जीवन का उद्देश्य एक मात्र जन कल्याण मान रखा हो। तो शायद राजतन्त्र अभी भी अपनी सामयिकता सिद्ध कर सके। इसी प्रकार लोकतन्त्र की बागडोर जनहित में आधी धोती पहनने वाले गाँधी के हाथ में हो तो राम राज्य अभी भी अंपनी अभिव्यक्ति किए बिना न रुके। यही बात अन्य प्रणालियों के बारे में सत्य है। हो सकता है, यह सवाल किसी के मन को परेशान करने लगे कि यदि व्यक्ति की इतनी महत्ता है, कर्णधार इतने अधिक उपादेय हैं तब फिर यह प्रणालियों में उलट–फेर क्यों ? क्या नयी प्रणालियों का जन्म देने वालों की अकल गड़बड़ थी ? इन प्रश्नों के जवाब में यही कहा जा सकता है कि व्यवस्था की अपनी उपादेयता है। इनकी संरचना में फेर बदल करने वाले भी असंदिग्ध रूप से बुद्धिमान थे। इतने पर भी नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों का महत्व कम नहीं हो जाता। बदलते समय के अनुरूप व्यवस्था की संरचना में फेर बदल सिर्फ इसलिए करनी पड़ती है, ताकि इसकी सहायता से मानव महासागर में खोये उपेक्षित पड़े सुयोग्य प्रतिभाशाली, चरित्रवान नर रत्नों को उभारा जा सके। इन्हें अपना नेतृत्व सौंपकर तत्कालीन समाज चैन की साँस ले सके। कोई भी प्रणाली जब अपना यह दायित्व निभा सकने में अक्षम होने लगती है नीतिज्ञ उसे बदल डालने के लिए नई स्थानापन्न विधा की ढूँढ़–खोज में लग जाते हैं।

प्रकारान्तर से यह ढूँढ़ खोज नेतृत्व सँभाल सकने योग्य व्यक्तियों की होती है। उसका स्वरूप और प्रक्रिया भले ही कुछ और कैसी हो। स्वाभाविक है इसे जानने की लालसा बहुतों में जगे। हर कोई यह जानना चाहे कि वह कौन सी योग्यता है जो मनुष्य को इसके योग्य बनाती है। विशेषकर जिनका सम्पादन करके हम में से कोई भावी समाज की नौका का कर्णधार बन सकने योग्य बन सके।

सही भी है, संसार के सभी महत्वपूर्ण कार्यों के लिए एक विशेष योग्यता और शक्ति की आवश्यकता होती है। अनेक व्यक्ति कुछ महत्वपूर्ण करने की आकांक्षा तो करते हैं, पर उनको करने के लिए जिस क्षमता एवम् शक्ति की जरूरत होती है उसे सम्पादित नहीं करते फल स्वरूप उन्हें सफलता से वंचित ही रहना पड़ता है। जिनने भी कोई बड़ा पुरुषार्थ किया है, बड़ी विजय प्राप्त की है। उनने तात्कालिक परिस्थितियों से ही सब कुछ प्राप्त नहीं किया। अपितु उनकी पूर्व तैयारी ही उस सफलता का कारण रही है।

मैन मॉरल सोसाइटी के कृतिकार ब्रिटिश विद्वान जे. सी. फ्ल्यूगेल सदाशयता सद्व्यवहार, संघटन शक्ति चरित्रनिष्ठा और सामाजिक हितों के लिए समर्पित बुद्धि को नेतृत्व की योग्यता बताते हैं। उनके अनुसार मॉरल अर्थात् चरित्र ही वह प्राण स्रोत है जो व्यक्ति और समाज दोनों को ऊर्जस्विता प्रदान करता है। सिद्धान्तकार लैम्प्रैरण्ट की दृष्टि से सोचें तो अगले दिनों जो समाज का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप बनेगा उसके मुताबिक नेतृत्व की योग्यता के लिए महज चरित्र निष्ठा काफी नहीं बल्कि चाहिए तप–शक्ति । लैम्प्रेरण्ट की सोच के अनुसार मानव समाज कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं से होता हुआ प्रगति करता है । जिन्हें क्रमशः प्रतीकात्मक आदर्श प्रधान परम्परा प्रधान व्यक्ति तथा भाव प्रधान नाम दिये हैं । उनके अनुसार भाव–प्रधान समाज के नेतृत्व हेतु पूर्ण व्यक्ति चाहिए । पूर्ण व्यक्ति का तात्पर्य है जिसका व्यक्तित्व तप के साँचे में ढला हो ।

इतिहासविद् राधाकुमुद मुखर्जी की रचना "मैन एण्ड थाट इन एंशिएण्ट इण्डिया" के अनुसार पूर्वकाल में लाखों वर्षों तक सतयुग की सुख–शान्ति भरी परिस्थितियाँ इस संसार में रही हैं । इसका कारण एक ही रहा है कि उस समय के लोक नायक मार्ग दर्शक आत्मशक्ति से सम्पन्न रहे और केवल वाणी से नहीं अपनी आन्तरिक महानता की किरणें फेंक कर लोक–मानस को प्रभावित करते रहे । मस्तिष्क की वाणी मस्तिष्क तक पहुँचती है और आत्मा की आत्मा तक । कोई सुशिक्षित व्यक्ति अपनी ज्ञान शक्ति का लाभ सुनने वालों की जानकारी बढ़ाने के लिए दे सकता है । पर अन्तःकरण में जमी हुई आस्था में हेर फेर करने का कार्य ज्ञान से नहीं तप शक्ति से सम्पन्न होना सम्भव हो सकता है । प्राचीन काल के लोक नायक ऋषि मुनि इस तथ्य को भली भाँति जानते थे । इसीलिए वे दूसरों को उपदेश देने उनकी बाह्य सेवा करने में जितना समय खर्च करते थे । उतना ही प्रयत्न स्वयं के जीवन को सँवारने, तप के साँचे में ढालने के निमित्त करते थे । तप से ही वह उर्जा मिलती है जिसकी प्रेरणा से किसी के मन पर जमी बुराइयों के आकर्षक कुसंस्कारों को हटाकर अच्छाइयों के कष्ट साध्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जा सके ।

प्राचीन इतिहास की ही भाँति पिछले दो हजार वर्षों में भी इसी आधार पर जन मानस का सुधार एवम् परिष्कार सम्भव होता रहा है । भगवान बुद्ध के मन में अपने तथा संसार के दुखों के निवारण की लालसा जगी । इसके लिए उन्होंने पच्चीस वर्ष की आयु से मोह बन्धनों को तोड़ बीस वर्ष तक लगातार आत्मनिर्माण की साधना की । पैंतालीस वर्ष की आयु में उनका व्यक्तित्व लोक नायक के रूप में उभरा । भगवान महावीर ने अपनी आयु का तीन चौथाई भाग तप में और एक चौथाई जन नेतृत्व में लगाया । इन दोनों महापुरुषों ने उपदेशों की बौछार उतनी नहीं की जितने आज के सामान्य उपदेशक कर लेते हैं । तब भी उनका प्रभाव पड़ा और आज भी संसार की एक चौथाई जनता उनके मार्गदर्शन पर आस्था रखती है ।

समस्त विवादों से परे तप की एक ही सार्वभौमिक परिभाषा है स्वयं के जीवन की समस्त खोटों को निकाल फेंकना । साथ ही आध्यात्म के उन प्रयोगों को दैनन्दिन जीवन में समावेश करना जो व्यक्तित्व की अन्तर्शक्तियों को जगाते हैं । आदि गुरु शंकराचार्य ने बीस वर्षों की ऐसी ही तपश्चर्या के बल बूते अपने समय के मार्गदर्शन का दायित्व सँभाला । गुरु गोविन्द सिंह ने लोकपत नामक स्थान में जो तप–प्राण बटोरा उसी को बिखेर कर स्वयं को युग निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित कर सके । छत्रपति शिवाजी का व्यक्तित्व गढ़ने वाले समर्थ रामदास ने तप कौशल से स्वयं को साँचे में डाला था । सम्वतः १९२४ के कुम्भ में स्वामी दयानन्द को हरिद्वार प्रवास के दौरान कोरी वाणी फीकी मालूम पड़ी । इस न्यूनता को पूर्णता के लिए उन्होंने कठोर तप को ही साधन बनाया ।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने पचास वर्ष की आयु में विशुद्ध तीस वर्ष तप साधना में लगाए । योगी अरविन्द घोष, महर्षि रमण, स्वामी रामतीर्थ की तपश्चर्या प्रसिद्ध है । वैष्णव आचार्यों में से रामानुज, मध्व , निम्बार्क आदि ने जितना ज्ञान संचय किया उतनी ही तप साधना की ।

संसार के अन्य महापुरुष जिनने लोगों को उच्च भूमिका की ओर बढ़ाया निश्चित रूप से तपस्वी थे । महात्मा ईसा के जीवन में ३६ वर्ष तपश्चर्या में लगे । पैगम्बर मुहम्मद ने पच्चीसवें वर्ष में साधना की ओर कदम बढ़ाया और चालीस साल तक उसी में लगे रहे । यहूदी धर्म के यहोवा और पारसी धर्म के देवदूत जरथुस्र की दीर्घकालीन तप साधनाएँ प्रसिद्ध हैं ।

मानवीय जीवन क्रम में आदि काल से लेकर अब तक एक ही तथ्य समय–समय पर स्पष्ट होता रहा है कि अध्यात्म साधनाओं द्वारा स्वयं के जीवन को उत्कृष्टतम बनाने वाली आत्माएँ ही लोक जीवन को सच्चा नेतृत्व दे सकने में समर्थ हो सकती हैं । नए समाज में ओछे हल्के बाचाल व्यक्तियों का कोई स्थान न होगा । फिर नेतृत्व जैसे महान कार्य के लिए इन जैसों के बारे में सोचना ही ठीक नहीं । यह महानकार्य महान आत्माएँ ही कर सकेंगी और महान आत्माओं के अनेक गुणों में प्रमुख एक तपश्चर्या भी है । जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । महाकाल आज ऐसे ही तपस्वियों की प्रतीक्षा कर रहा है । ✷

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चस्तरीय सान्निध्य की परिणति

गर्ग संहिता के सूत्र ६२/९ में कहा गया है 'गंगा पाप का, चन्द्रमा ताप का और कल्पवृक्ष दीनता के अभिशाप का अपहरण करता है, किन्तु महामानवों की संगति , उनका सान्निध्य पाप, ताप और दैन्य तीनों का नाश करते हैं । महापुरुष, सम्पर्क में आने वालों की बुद्धि की जड़ता, मन की मलिनता को दूर कर उसे परिष्कृत स्तर का बनाते , वाणी में सत्य का संचार करते और सम्मान में अभिवृद्धि करते हैं । कोई भी व्यक्ति या वस्तु महान का आश्रय पाकर उत्कर्ष को प्राप्त हुए बिना नहीं रहती । सत्संगति का प्रतिफल भी यही है ।

उच्चस्तरीय मस्तिष्क कमजोर वालों को किस प्रकार इच्छित दिशा में घसीट ले जाते हैं, इस संदर्भ में मनोवेत्ताओं एवं भौतिक विज्ञानियों ने अपने-अपने ढंग से अनुसंधान किये हैं । दोनों क्षेत्रों के निष्कर्ष लगभग समान हैं । उसके अनुसार कमजोर एवं अपरिष्कृत मन-मस्तिष्क वाले मनुष्यों को यदि परिष्कृत व्यक्तित्वों का सतत् सान्निध्य मिलता रहे, तो उन्हें जैसा चाहें सोचने, मान्यता बनाने और गतिविधियाँ अपनाने के लिए विवश किया जा सकता है । उदाहरण स्वरूप परिष्कृत व्यक्तित्व एवं शुद्ध सात्विक मनःस्थिति का प्रचण्ड प्रभाव देखना हो तो वह विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, अब्राह्म लिंकन मार्टिन लुथरकिंग आदि महापुरुषों के रूप में देखा जा सकता है जिन्होंने अकेले ही अपने समाज तथा संसार में महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत किये ।

वस्तुतः परिष्कृत मन की शक्ति अणुशक्ति से किसी भी प्रकार कम नहीं है, वरन् उससे अधिक ही समर्थ और प्रचण्ड है । इस स्तर के व्यक्तित्वों के सम्पर्क में आने वाले भी तदनुरूप बनते और ढलते चले जाते हैं । इतिहास पुराणों में वर्णित हृदय परिवर्तन एवं जनमानस के परिष्कार की घटनाएँ इसी मनःशक्ति के सृजन उपयोगों के उदाहरण हैं । इस तथ्य को भारतीय तत्वदर्शियों ने बहुत पहले जान लिया था कि परिष्कृत चेतना ही अनगढ़ स्वभावों में सुधार परिवर्तन कर सकने में सक्षम हो सकती है । विज्ञानवेत्ता भी अब इस तथ्य का समर्थन करने लगे हैं । प्राणिशास्त्री विंचिस्टन एवं मनोविज्ञानी वेलोस्कोव जैसे मूर्धन्य अनुसंधान कर्ताओं का कहना है कि मानसिक विकास की बहुत कुछ संभावना इस बात पर निर्भर है कि अविकसित मस्तिष्क वालों का सतत् सान्निध्य मिलता रहे । मनुष्य का बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास बहुत कुछ उच्चस्तरीय संगति पर निर्भर करता है । समीपता के कारण उनके सोचने का ढंग और भावनाएँ बहुत कुछ वैसी ही बनने लगती हैं, जैसे कि प्रभावशाली व्यक्तित्वों का निज का होता है ।

प्राचीनकाल से लेकर अर्वाचीन काल तक के ऋषि मनीषियों ने आत्मवेत्ताओं ने इस तरह के कितने ही प्रयोग किये और सफलता प्राप्त करने में कृत कार्य हो चुके हैं । बुद्ध की समीपता पाने वालों में से कितने ही उन्हीं की तरह महानता अर्जित कर सके, यह कोई छुपा तथ्य नहीं है । अपने समय में अकेले बुद्ध की प्रचण्ड विचार धारा ने लगभग ढाई लाख व्यक्तियों को अपनी विलासी एवं भौतिकवादी महत्वाकांक्षी गतिविधियाँ छोड़कर उस कष्ट कर प्रयोजन में सहभागी बनने के लिए विवश कर दिया था , जो बुद्ध को अभीष्ट था । भगवान राम ने रीछ बानरों को ऐसे कार्य में जुट जाने के लिए संलग्न कर दिया था जो उन दिनों असंभव माना जाता था कृष्ण ने महाभारत की भूमिका रची और उसके लिए मनोभूमियाँ उत्तेजित कीं उनके समीप आने वाले ग्वाल-बाल तक अपने व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बना सके ।

ईसा मसीह, मुहम्मद साहब , जरथुस्त्र आदि धार्मिक क्षेत्र के मनस्वी ही थे, जिन्होंने लोगों को अभीष्ट पथ पर चलने के लिए विवश किया । उपदेशक लोग आकर्षक प्रवचन देते रहते हैं, पर उनकी कला की प्रशंसा करने वाले भी उनके उपदेशों पर चलने को तैयार नहीं होते । इसमें उनके प्रतिपाद्य विषय का दोष नहीं, उस मनोबल की कमी ही कारणभूत तत्व है,जिसके बिना सुनने वालों के मस्तिष्क में हलचल उत्पन्न किया जा सकना संभव न हो सका । नारद जैसे मनस्वी ही अपने स्वल्प परामर्श से लोगों की जीवनधारा बदल सकते हैं । बाल्मीकि, ध्रुव, प्रह्लाद, सुकन्या आदि कितने ही आदर्शवादी उन्हीं की प्रेरणा भरी प्रकाश किरण पाकर आगे बढ़े थे ।

सत्संग उसी स्तर के महामानवों का किया जाना चाहिए , जिनकी उत्कृष्टता से सुसम्पन्न व्यक्तित्व का तेजस् दूसरे अल्प तेजस् व्यक्तियों में प्रवेश करके उन्हें देखते-देखते समर्थ बनाकर रख दे । दीपक से दीपक जलने का, पारस-स्पर्श से लोहा सोना होने का कौवे का कोयल और बगुले का हंस बन जाने के उदाहरण सर्वविदित हैं जो इसी संदर्भ की पुष्टि करते हैं , कि मनुष्य का मन और दृष्टिकोण उच्चस्तरीय सान्निध्य से ही परिष्कृत होता है ।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसुधैव कुटुम्बकम् की ओर बढ़ते चरण

धर्म और संस्कृति दोनों ही सार्वभौम और सर्वजनीन है। शारीरिक संरचना की तरह मानवी अन्तःकरण की मूलसत्ता भी एक ही प्रकार की है। भौतिक प्रवृत्तियाँ भी लगभग एक सी हैं। अतः एकता व्यापक और शाश्वत है। पृथकता सामयिक है और क्षणिक। हम सब एक ही परमपिता की संतानें हैं। एक ही धरती पर पैदा हुए हैं। एक ही आकाश के नीचे रहते हैं। एक ही सूर्य से गर्मी पाते हैं और बादलों के अनुदान से एक ही तरह गुजारा करते हैं, फिर कृत्रिम विभेद से बहुत दिनों तक बहुत दूरी तक किस प्रकार बँधे रह सकते हैं। औचित्य को आधार मानकर परस्पर आदान-प्रदान का द्वार जितना खोलकर रखा जायेगा उतना ही स्वच्छ हवा और रोशनी का लाभ मिलेगा। खिड़कियाँ बन्द रखकर हम अपनी विशेषताओं को न तो सुरक्षित रख सकते हैं और न स्वच्छ हवा और खुली धूप से मिलने वाले लाभों से लाभान्वित हो सकते हैं। संकीर्णता अपनाकर पाया कम और खोया अधिक जाता है।

अब राष्ट्रवाद के दिन लदते जा रहे हैं। देश भक्ति के जोश को अब उतना नहीं उभारा जाता जिसमें अपने ही क्षेत्र या वर्ग को सर्वोच्च ठहराया जाय अथवा विश्व विजय करके सर्वत्र अपना ही झण्डा फहराने का उन्माद उठ खड़ा हो। ऐसी पक्षपाती और आवेशग्रसित देश भक्ति अब विचारशील वर्ग में नापसंद की जाती है और विश्व नागरिकता की वसुधैव कुटुम्बकम् की बात को महत्व दिया जाता है। विश्व एकता के सिद्धान्त को मान्यता मिली है और राष्ट्र संघ बना है। इस दिशा में अभी तक प्रगति के चरण धीमे रहे हैं किन्तु अब अपेक्षा यही की जानी चाहिए कि अगले ही दिनों व्यापक समस्याओं के समाधान के लिए समूचा विश्व एकता के सूत्र में आबद्ध होगा। एक राष्ट्र एक भाषा, एक संस्कृति एक धर्म अपनाकर ही उज्जवल भविष्य की विश्व शान्ति की स्थापना हो सकेगी। यह तथ्य मानवी विवेक ने स्वीकार कर लिया है और विभेद उभारने वाले, कट्टरता के कठघरे में मनुष्य की बुद्धि को कैद रखने वाले तत्वों को अब अमान्य ठहराया जा रहा है। धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में भी ऐसी ही व्यापक एकता उत्पन्न करने वाला वातावरण विनिर्मित हो रहा है।

नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना के लिए ऐसे एकतावादी विवेक को जागृत करने की अब आवश्यकता है जिसमें अपने ही पक्ष को सर्वोपरि ठहराये जाने का आग्रह न हो। अपने पराये का भेद भाव न करके औचित्य, न्याय, तथ्य और विवेक को ही जब मान्यता दी जाएगी तो फिर उपयोगिता स्वीकार करने की मनःस्थिति बन जायेगी। तब जो कुछ भी तथ्य तर्क सम्मत होगा वह स्वीकार कर लिया जायेगा।

मनुष्य के अपने रहन-सहन एवं सोचने विचारने के तरीके अलग-अलग हैं जिसे सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है। अपने नाम, रूप धन, परिवार क्षेत्र आदि की तरह ही भाषा एवं धर्म भी लोगों को प्रिय लगता है। यह प्रियता बहुधा कट्टरता का रूप धारण कर लेती या पक्षपात के रूप में बदल जाती है और अपने को श्रेष्ठ तथा दूसरों को निकृष्ट ठहराने लगती है। पूर्वाग्रह और पक्षपात का गहरा पुट रहने से प्रायः यही भ्रम बना रहता है कि मानों सत्य अपने ही हिस्से में आया है और सभी गलत सोचते और झूठ बोलते हैं। अपना धर्म श्रेष्ठ दूसरे का निकृष्ट, अपनी जाति ऊँची दूसरे की नीची, अपनी मान्यता सच-दूसरे की झूठ ऐसा दुराग्रह यदि आरंभ से ही हो तो फिर सत्य-असत्य का निर्णय हो ही नहीं सकता। एकता के लिए न्याय और औचित्य की रक्षा के लिए आवश्यक है कि तथ्यों को ढूंढने के लिए खुला मस्तिष्क रखा जाय और अपने पराये का भेद भाव न रख कर विवेक और तर्क का सहारा लेने की नीति अपनाई जाय। सत्य को प्राप्त करने का लक्ष्य इस नीति को अपनाने से ही पूरा हो सकता है।

मूर्धन्य मनीषियों, भविष्य दर्शियों का कहना है कि अगले दिनों मानवी विवेक और अधिक विकसित होगा और समूचे विश्व को एकता के सूत्र में आबद्ध करेगा। अध्यात्म पक्ष की इस संदर्भ में महती भूमिका होगी। शास्त्र उल्लेख और आप्त वचनों को ही तब पूर्ण न मानकर नये अनुसंधानों के लिए उसका द्वार खुला रखा जायगा ताकि उसकी प्रखरता, प्रामाणिकता और उपयोगिता को कसौटियों पर कसने के उपरान्त ही उसे सार्वभौम मान्यता मिले। विवेक दृष्टि जाग्रत होते ही धर्म-सम्प्रदाय सम्बन्धी परस्पर विरोधी असंख्य मान्यताओं के संबंध में यह सोच उभरेगा कि सच्चाई तो एक ही हो सकती है, फिर समग्रता को समझते हुए असहमतियों को शिथिल करते हुए किसी एक निश्चय पर क्यों न पहुँचा जाय?

इतना बन पड़ने पर सम्प्रदाओं की भिन्नता एकता में विकसित होकर लोक कल्याण में भली प्रकार समर्थ हो सकेगी। विग्रहों में भिन्नताओं में जो शक्ति खर्च होती है, उसका उपयोग सदुद्देश्यों के लिए बन पड़ना सम्भव होगा यह सब अगले दस वर्षों में होने जा रहा है। *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षमतावान नहीं, प्रतिभावान

वह आगन्तुकों से लिपट कर रो पड़े। अन्तर की संवेदना आँसू बन कर झरने लगी। यों वह शान्त और अपने में खोए से रहने वाले व्यक्ति थे। हाँ बच्चों से जरूर हँसते, मिलते, बोलते, खेलते थे। कहा करते थे इन सीधे, सरल, निश्छल बालकों के बीच उन्हें जितनी शान्ति अनुभव होती है उतनी और कहीं नहीं। शायद इसी शोक ने, न शोक नहीं चिरन्तन आवश्यकता, हाँ। इसी के कारण विगत कुछ वर्षों से एक छोटे से स्कूल में बच्चों को पढ़ाने लगे थे। अन्यथा क्या कुछ नहीं था उनके पास विश्व विश्रुत वैज्ञानिक होने का लोक सम्मान। जिस राष्ट्र जिस देश में जाएँ वहीं देखने-मिलने वालों की भीड़ उमड़ पड़े। मोटर, कोठी, नौकर-चाकर सभी कुछ तो था उनके पास।

पर सभी कुछ तो छोड़ दिया उनने। जब छोड़ा तो मिलने-जुलने वालों ने सनकी-पागल कहा- सामने नहीं तो चोरी-छुपे। साथी वैज्ञानिकों ने कहा कि वह अपनी प्रतिभा के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। किन्तु वह इन विविध तर्कों के सामने मौन साधे रहे। तर्क से उलझनें कब सुलझी हैं। तर्क अर्थात् उलझाव से और अधिक उलझाव की ओर। सत्य हृदय की सम्पदा है, भावों की पेटी में छुपी। बुद्धि तरह-तरह के प्रश्न-प्रतिप्रश्न खड़े कर महात्वाकांक्षाओं के लुभावने आकर्षण दिखाकर सत्य से विरत करती हैं। होश खोता जाता है मनुष्य। होश तो तब आए जब उसे ध्यान आए कि वह मनुष्य है। कितना दुर्लभ है यह ख्याल वह- वैज्ञानिक है, डॉक्टर है, प्रोफेसर है, व्यापारी है, राजनेता है, प्रशासनिक अधिकारी है, विद्वान है, बुद्धिमान है, कवि, लेखक क्या कुछ नहीं है, नहीं है तो सिर्फ मनुष्य।

वह भी मनुष्य को छोड़ इन्हीं में से एक था। उसी के एक आविष्कार ने द्वितीय विश्वयुद्ध में ... उफ .... । आगन्तुक भी जापानी ही थे। जापान में ही तो .... साकार हो उठा अतीत कल्पना के नेत्रों के सामने। एक-एक करके उभरने लगे दृश्य! एक तेज विस्फोट अनेकों सूर्य एक साथ प्रकाशित हो उठे। भीषण गर्मी, छटपटाते मनुष्य, पशु-पक्षी कुछ भी तो नहीं बचा। ध्वंस ही ध्वंस खिले चमन उजड़ गए। और उजाड़ने वाला सम्मानित हुआ, प्रशंसित हुआ। किसने किया यह सब .... एक बेअकल ने। किन्तु उसकी मंशा तो यह नहीं थी। उसने आविष्कार तो इसलिए किया था कि परमाणु ऊर्जा से जगमगा उठेंगे नगर-ग्राम। लोक जीवन की आवश्यकताएँ पूरी होंगी। किन्तु जीवन और जीवन की आवश्यकताओं में प्रथम कौन? हाँ यहीं तो उससे गलती हुई और तब से वह अपनी भूल का प्रायश्चित कर रहा था।

आप कुछ अस्वस्थ लग रहे हैं मित्र। आने वालों में से एक ने धीरे से कहा। अस्वस्थ नहीं मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। स्वस्थ होने का मतलब आखिर रोग मुक्त होना ही तो नहीं हुआ करता। स्वस्थ माने स्वस्थ अर्थात् अपनी पूरी चेतना में, पूरी प्राणवत्ता में, पूरी स्फूर्ति में व्यक्ति का होना कहकर वह हलके से मुसकरा दिये।

आने वाले भाव विह्वल थे। ऐसा स्वागत, ऐसी अपूर्व आत्मीयता उन्हें जीवन में पहली बार मिली थी। वह अपने इन नवागन्तुक मित्रों को जो जापानी वैज्ञानिकों के प्रतिनिधि मण्डल के रूप में आए थे, विद्यालय घुमाना शुरू किया। उन्हें भी आश्चर्य था विश्व का सर्वोच्च वैज्ञानिक प्रयोगशाला से सन्यास ले इस छोटे से विद्यालय में क्यों अपने को अटकाए है। क्या इसकी प्रतिभा का दुरुपयोग नहीं हो रहा। जो प्रतिभा ....

आगे कुछ कोई सोचता इसके पूर्व उन्होंने एक छोटे से उपवन की ओर इशारा करते हुए कहा- आइए उधर बैठेंगे। सभी वहाँ पहुँच कर एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोल घेरे में बैठ गए । लहराते पुष्पों, उड़ती तितलियों के बीच हरी घास पर बैठते ही एक अपूर्व ताजगी आ गई । "यदि मैं आपसे आपके व्यक्तिगत जीवन के बारे में पूछूँ" प्रश्नकर्ता का स्वर शालीन था । "प्रसन्नता होगी" कह कर वह जिज्ञासा की प्रतीक्षा करने लगे । "शायद आप का मतलब इस बाल विद्यालय में किए जा रहे अध्यापन कार्य से है ।" "हाँ ।" "प्रतिभा के बारे में बहुत भ्रम फैल गया है मित्र"। उन्होंने एक हलकी मुसकान के साथ अपनी बात शुरू की ।" प्रतिभावान वह नहीं है जिसने कोई बड़ा पद हथिया लिया हो, जिसकी शारीरिक और बौद्धिक क्षमताएँ बढ़ी-चढ़ी हों । इसके साथ एक शर्त और यह भी जुड़ी है कि उसकी दिशा क्या है । दिशा विहीनता की स्थिति में व्यक्ति क्षमतावान तो हो सकता है, किन्तु प्रतिभावान नहीं । अन्तर उतना ही है जितना वेग और गति में, एक दिशाहीन है दूसरा दिशायुक्त । उन्होंने भौतिक विज्ञान की भाषा में समझाया । सामर्थ्य दोनों में है, क्रियाशील भी दोनों हैं पर एक को अपने गन्तव्य का कोई पता ठिकाना नहीं, दूसरा प्रतिपल अपने गन्तव्य की ओर बढ़ रहा है ।" "अरे ! यह तो बहुत बड़ा अन्तर है"। बोलने वाले के स्वरों में आश्चर्य था ।

"बस यही दशा आज जीवन की है । आज की स्थिति में यह उस जहाज की तरह है जिसका नेव्हीगेटर बेहोश है, बस चला जा रहा है, बता सकते हैं उसका परिणाम ! जरूर कहीं न कहीं अनेकों को नष्ट कर स्वयं नष्ट हो जाएगा"। सुनने वालों में से एक का जवाब था । "ठीक कहते हैं"। उन्होंने चिन्तक की मुद्रा में कहा । हर मनुष्य सोचता है कि कुछ करना है और वह करता भी है । पर क्या करना है ? परिणति क्या होगी ? इसके गुण-दोषों पर विचार करने की उसे फुरसत नहीं होती और परिणाम होता है, क्षमताओं का उन्मत्त नर्तन जिसमें वेग तो होता है पर दिशा नहीं । पिछले विश्वयुद्ध में यही तो हुआ, हिटलर ही क्यों- पूरी जमात की क्षमताएँ उन्मादी होकर थिरक रही थीं । राजनेता वैज्ञानिक सभी तो शामिल थे । उनमें से अनेकों के बारे में दुनिया प्रतिभाशाली होने का भ्रम पाले हुए है"। उनका संकेत अपनी ओर था ।" तो फिर प्रतिभा".....एक अन्य की जिज्ञासा उभरी । "अर्थात् वह क्षमता जिसकी दिशा सृजन की ओर हो । जिसके हर बढ़ते कदम का स्वागत मानवीय मुसकान करे । छटपटाहट विफलता आल्हाद में बदल जाए । क्षमताएँ सभी के पास हैं, मात्रा का थोड़ा बहुत भेद भले हो । इनके वेग को सृजन की ओर बढ़ती गति में बदलकर हर कोई प्रतिभाशाली बन सकता है । किन्तु स्वयं आपकी प्रतिभा का उपयोग....."? प्रश्नकर्ता अपने मूल विषय पर आ गया ।" वह तो मैं मानवीय जीवन की प्रथम आवश्यकता की पूर्ति में कर रहा हूँ । प्रथम आवश्यकता ? हाँ प्रथम आवश्यकता, जो टी. वी., टेलीफोन नहीं, स्वादिष्ट व्यंजन, सुख के सरंजाम नहीं, हेलीकाप्टर, राकेटलांचर, अणु, परमाणु आयुध भी नहीं । मित्रो वह है जीवन कैसे जिया जाय, इस बात की जानकारी । समूची जिन्दगी कैसे अनेकों सद्गुणों की सुरभि बिखेरने वाला मुसकराता गुलदस्ता कैसे बने, इस बात का पता । इसके बिना सभी कुछ बन्दर के हाथ में उस्तरे जैसा है, जिसका उपयोग वह सिवा अपनी और दूसरों की नाक काटने के और कुछ नहीं करेगा । अच्छा हो बन्दर पहले नाई बने फिर उस्तरा पकड़े ।" आप तो दार्शनिकों की सी बातें करते हैं" सुनने वालों ने उल्लास भरे स्वरों में कहा । "दार्शनिक तो नहीं, अभी तक के अनुभवों ने सोचना सिखा दिया है और अभी तक के अनुभवों के आधार पर प्रतिभा का जो स्वरूप समझ में आया है, वह है प्रकाश की ओर गतिमान जीवन । उसी के अनुरूप इन बच्चों को प्रतिभाशाली बना रहा हूँ । उन्हें मनुष्य होने का शिक्षण दे रहा हूँ ।"

"अर्थात् आप बन्दरों को नाई बना रहे हैं," कहने वाले का संकेत पेड़ों पर उछल-कूद कर रहे विद्यालय के बालकों की ओर था । ठीक कह रहे हैं ताकि वे अपने उस्तरे की सहायता से मनुष्यता के चेहरे का सौन्दर्य निखार सकें और वह "तमसो मा ज्योतिर्गमय" की पुकार लगाती हुई प्रकाश के युग में पहुँच सके । प्रतिभा की यथार्थता समझाने और स्वयं का जीवन तदनुरूप गढ़ने वाले यह विश्वविश्रुत वैज्ञानिक थे 'अलबर्ट आइन्सटीन' जिनके द्वारा लिखे गए ऑटो बायोग्राफिकल नोट्स आज भी हम सबको प्रतिभावान बनने का सुझाते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग धर्म के निर्वाह में ही समझदारी

उत्सव आयोजनों, निर्माणों, दुर्घटनाओं प्रकृति प्रकोपों जैसे अवसरों पर संबंधित व्यक्ति ही नहीं, अन्य भावनाशील भी उन कार्यों में सहयोगी बनने के लिए अनायास ही दौड़ पड़ते हैं। इसके लिए निमंत्रण देने, बुलाने के लिए नहीं जाना पड़ता। दर्शकों तक की क्रियाशीलता उभर पड़ती है और वे अपने योग्य काम तलाश कर स्वयं ही कुछ न कुछ करने लगते हैं। मेलों में जब सर्वत्र हलचलें दीख पड़ती हैं तो वहाँ जा पहुँचने वाले भी चुपचाप बैठे नहीं रहते वरन् कहाँ क्या हो रहा है यह देखने के लिए चल तो पड़ते ही हैं। अरुणोदय, प्रभात बेला में भी सर्वत्र हलचलें दीख पड़ती हैं। पक्षी चहचहाने, पुष्प खिलने और प्राणी समुदाय उदीयमान ऊर्जा से अनुप्राणित होकर अपने-अपने स्तर की क्रियाशीलता का परिचय देने लगते हैं। मदारी, सपेरे और बाजीगर जब कुछ कौतुक दिखाने लगते हैं तब भी बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के ठट्ठ जमा हो जाते हैं और जरूरी काम छोड़कर भी उस अभिनव क्रियाकलाप में रस लेने लगते हैं।

युग परिवर्तन की बेला भी ऐसी ही है जिसमें बहुमुखी परिवर्तन दृष्टिगोचर होंगे। बीन बजने पर सर्प लहराने लगते हैं। मेघ गर्जन पर मोरों का नाचना आरंभ हो जाता है। बसंत उभरा देखकर तितलियों, भौंरों से लेकर कोयलों तक की चित्र-विचित्र हलचलें दीख पड़ती हैं। लगता है उनको भाव-संवेदनाएँ अवसर के अनुकूल उत्तेजित करतीं और कुछ न कुछ करने के लिए जुटा देती हैं। युद्ध के नगाड़े बजने पर सैनिकों की भुजाएँ फड़कती हैं। सावन आते ही गीत-मल्हारों की धूम मच जाती है। भोर का प्रकाश आरंभ होते ही सभी की नींद खुल जाती है और नित्य कर्म से निपटकर ताजगी अनुभव करने और निर्धारित क्रियाकलापों में जुटते सभी को देखा जाता है। जुलूस को आरंभ करने में ही कुछ जुगाड़ बिठाना पड़ता है पीछे तो रास्ता चलते लोग साथ हो लेते हैं और प्रमुखों की तरह ही प्रदर्शन करने और नारे लगाने लगते हैं। नदी के प्रवाह में कूड़ा-करकट भी बहता है। अन्धड़ के साथ तिनके-पत्ते भी घोड़े की चाल दौड़ने लगते हैं।

युग सृजन बड़ा काम है। इसमें जीर्ण-शीर्ण खण्डहरों को उखाड़ा और उनके स्थान पर भव्य भवन खड़ा किया जाना है। दिवाली पर घर का कूड़ा-कचरा तो बुहारा ही जाता है साथ ही पुताई रंगाई के अतिरिक्त सजावट के लिए भी मन हुलसता है। युगसंधि को ऐसी ही हलचलों से भरा पूरा मानना चाहिए। प्रस्तुत दस वर्षों के उपरान्त नये दृश्यों, विधानों और क्रियाकलापों का सिलसिला चल पड़ेगा। मुर्दों के साथ श्मशान तक भी भीड़ जाती है और बारात के आगमन पर दूल्हा को देखने के लिए भी लोग काम छोड़कर बारात पर टकटकी लगाने लगते हैं। प्रस्तुत परिवर्तन अभूतपूर्व ही होने जा रहा है। इसमें आश्चर्य का गहरा पुट रहेगा। जीवित लोगों में से इस प्रकार की महान क्रान्ति कदाचित् ही किसी को देखने को मिली होगी। स्थानीय और क्षेत्रीय घटनाएँ तो आश्चर्यजनक होती भी रहती हैं। पर जिनका प्रभाव विश्व के कोने-कोने पर पड़े और प्राणियों के चिन्तन, क्रियाकलापों में असाधारण अन्तर आये ऐसी कुछ कल्पना तो की जा सकती है पर उतनी व्यापक उथल-पुथल का घटनाक्रम तो असंभव जैसा ही लगता है। आज जबकि हर दिशा में अवांछनीयता का बोलवाला है इस बात पर कौन भरोसा करेगा कि वह परिवर्तन आँखों को देखने को मिलेगा, जिसके असंख्यों स्वप्न तो सँजोये पर कुछ बन न पड़ने के कारण निराश होकर ही चले आये।

अब की बार बात दूसरी है। इस भवितव्यता के पीछे सृष्टा की योजना, चेतना और प्रेरणा जो काम कर रही है। उसका संकेत पाकर तो "मूक होंहि वाचाल- पंगु चढ़हिं गिरिवर गहन" वाली उक्ति चरितार्थ होने लगती है। बीज को वृक्ष और भ्रूण को समर्थ जीवधारी बना देने वाले कौतुकी के लिए क्या कुछ असंभव हो सकता है। जो रात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दिन में बदल सकता है उसके लिए युग परिवर्तन क्यों कुछ कठिन होना चाहिए । भूतकाल में भी ऐसे परिवर्तन होते रहने की गाथाएँ और साक्षियाँ देखने सुनने को मिलती रहती हैं ।

बसन्त की बेला फूल ही नहीं खिलाती, प्राणियों में ऐसा आन्तरिक उल्लास भी उभारती है जो उन्हें प्रजनन-कृत्य में संलग्न होने को विवश करता है । आन्तरिक उमंगें जब उठती हैं तब ऐसा नियोजित और घटित होने लगता है जिसे देखने वाले आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहते । इन दिनों भी ऐसा ही कुछ दीख पड़े तो उसे अप्रत्याशित नहीं मानना चाहिए ।

भूमिपूजन, शिलान्यास, शुभारंभ तो आदर्शनिष्ठ व लोकसेवी अपने ढंग से अपनी छोटी हैसियत के अनुरूप छोटे स्तर पर कर रहे हैं । पर वह महान प्रक्रिया इतने छोटे परिकर तक ही सीमाबद्ध होकर नहीं रहने वाली है । चिनगारी, दावानल बनते देखी जाने वाली है । बुद्ध के धर्म चक्र प्रवर्तन एवं गाँधी के सत्याग्रह का आरंभ छोटा और क्रमिक विस्तार कितना हुआ था, इसे हम सभी जानते हैं । ईसा ने शरीर त्यागने के उपरान्त भी करोड़ों को अनुयायी बना लेने की भूमिका निभाई । साम्यवाद, प्रजातंत्र के जन्मदाता भी मात्र आरंभिक प्रतिपादन ही कर सके थे । उन मान्यताओं का विस्तार तो उनने किया जिनने उन्हें अन्तर की गहराई में प्रतिष्ठित कर लिया था ।

युग सृजन की प्रारंभिक भूमिका विचारशील वर्ग को दीप्तिमान करती है । प्रतिभाएँ ही अग्रिम पंक्ति में खड़ी होती हैं । साहस और पराक्रम के आधार पर ऐसे आदर्श उपस्थित करती हैं । जिनका अनुगमन करने में अनेकों के पैर सहज ही आगे बढ़ने लगें । प्रथम चरण विचार क्रान्ति है । जो चल रहा है उसमें से अधिकांश सड़ा-गला है । इसे बुहारना हटाना तो पड़ेगा ही, साथ ही उसे प्रस्तुत-उपस्थित भी करना होगा, जिसकी समय को अनिवार्य आवश्यकता है । इसके लिए लेखनी, वाणी, कला जैसे अनेकों विचारों के प्रभावित करने वाले तबके अग्रिम मोर्चा सँभालेंगे । लोगों को सोचने के लिए बाधित करेंगे कि जो अपना लिया गया है वह न तो उचित है और न श्रेयस्कर । इसके स्थान पर वही प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए जो यथार्थता, उपयोगिता, दूरदर्शिता और आदर्शवादिता के साथ जुड़ा हुआ है ।

अवांछनीय प्रचलनों की आदतों को छोड़े बिना कोई गति नहीं । नशेबाजी चाहे कितनी ही पुरानी क्यों न हो उसे छोड़े बिना कोई गति नहीं । आलस्य और प्रमाद का उपभोग भले ही चिरकाल से स्वभाव में सम्मिलित रहता चला आया हो पर जब प्रगति की आवश्यकता अनुभव हो तो उन्हें छोड़ना ही पड़ेगा । लोगों में लालच-संग्रह की, बड़प्पन-प्रदर्शन के लिए आतुर अहंकार की प्रवृत्तियाँ स्वभाव का अंग बनकर रह रही हैं । थोड़े लोगों के कुटुम्ब का स्वार्थ साधन ही समस्त विश्व के हित साधन से बढ़कर दीखता है । आवश्यकता से कहीं अधिक बटोरने और उसका अपव्यय दुरुपयोग करके बखेरते रहने की आदतें स्वभाव में घुस पड़ी हैं । इन्हें हटाये बिना किसी को सच्चे अर्थों में मनुष्य कहला सकने का अवसर मिलता ही नहीं । मार्यादाओं का पालन और वर्जनाओं का संयम रखकर ही कोई इस योग्य बन सकता है कि विश्व वसुधा की सेवा साधना में समर्थ हो सके । औसत नागरिक स्तर के निर्वाह में संतोष करने के उपरान्त ही ऐसा कुछ बन पड़ता है जिसे युग देवता के चरणों में समर्पित किया जा सके और वातावरण को नन्दन वन जैसा सुरभित बनाया जा सके ।

जिनके पास अतिरिक्त सामर्थ्य है उनके ऊपर अतिरिक्त जिम्मेदारियाँ भी आती हैं और उनका उपयोग युग परिवर्तन जैसे महान प्रयोजनों में बन पड़ने की आशा अपेक्षा तो की ही जाती है । जिनके पास भाव संवेदना का कोई कहने लायक अंश विद्यमान होगा वे अपनी विचार शक्ति का भरपूर उपयोग दिग्भ्रान्तों को सही रास्ते पर लगाने के लिये करेगा । वह कैसा ज्ञानी जो अपने बुद्धि कौशल का उपयोग मात्र धन सम्पदा एकत्रित करने में ही लगाता रहे । इसके लिए अनुचित मार्ग तक अपनाये और दूसरों को भी अपने भटकावे में सहयोगी बनाये । मनीषियों का प्रथम वर्ग है जिसे लोक चेतना की उत्कृष्टता की दिशा में उछालने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करना चाहिए । विचार क्रान्ति का अधिक दायित्व उन्हीं के कंधों पर है । युग साहित्य का सृजन, मार्गदर्शन, विचार विनिमय जैसे कृत्य यदि अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए किये जा सकें तो उसका प्रतिफल उच्चस्तरीय हुए बिना रह ही नहीं सकता । प्रज्ञा पुत्रों का प्रथम और प्रमुख यही कार्य है कि वे नवयुग के अनुरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिकोण, भाव संवेदना और साहस उत्पन्न करने में कमी न रखें। तद्नुरूप वातावरण बनाने में प्राणपण से जुट पड़ें।

जिनके पास पैसा है वे उसे विलास के लिए, संग्रह के लिए उत्तराधिकारियों के लिए और ठाठबाट के लिए खर्च न करे। वरन् उन पुण्य-प्रयोजनों के लिये लगायें जो गिरों को उठाने और उठों को उछालने में अपनी सार्थकता सिद्ध करें।

जो जा रहा है उसकी पूँछ पकड़ने से कुछ लाभ नहीं। जो आ रहा है और स्थिर रहने वाला है उसी की आरती उतारना दूरदर्शिता है। पिछले दिनों आसुरी सभ्यता का बोलबाला रहा है। उसी ने तथाकथित समर्थों को बुरी तरह भ्रमाया और नचाया है। इस कुचक्र से उन्होंने लाभ भी उठाया है भले ही उसने उन्हें तथा सहभागियों को सड़ा गला कर बर्बाद कर दिया हो। यह ग्रहण काल जैसे अनर्थ अब बिदा होने जा रहा है। उसका साथ समय रहते छोड़ देने में भलाई है। भलाई इसमें भी है कि जिस शालीनता के प्रतिष्ठित होने का समय आ रहा है उसके अनुरूप अपनी रीति-नीति को परिवर्तित कर लिया जाय। इस परिवर्तन में प्रतिभाओं को अग्रणी बनना चाहिए। प्रचलन से विरत होकर यदि प्रगतिशीलता अपनाने में कुछ घाटा दीखता हो तो उसको वरण नहीं करनी चाहिए। समय के अनुरूप बदलने में जो उत्साह का परिचय देते हैं उनका आग्रमन हर दृष्टि से हर किसी के लिये श्रेयस्कर ही सिद्ध होता है। भोर होने से पहले बांग लगाने वाला मुर्गा अकिंचन पक्षी होते हुए भी सर्वत्र चर्चा का विषय रहता है और अपनी दूरदर्शिता के कारण सराहा भी जाता है।

इन दिनों पाश्चात्य भौतिकवाद हर किसी के सिर पर चढ़ा है। विज्ञान क्षेत्र में उसने जो उपलब्धियाँ हस्तगत की हैं उसी के सहारे उसकी साख जम गई है और समर्थों के अनुकरण की परम्परा बन गई है। यह इन्द्रधनुषी आकर्षण है तो बहुत, पर नियति के साथ जुड़ा हुआ न होने से उनमें स्थायित्व नहीं है। कुकुरमुत्ते बरसात के दिनों उग तो सड़े कचरे में भी जाते हैं पर उनकी छायादार विशालता का लाभ किसी ने नहीं उठाया। समझा जाना चाहिए कि इन दिनों जिस प्रपंच का बोलबाला है वह बरसाती नदी की तरह अपना उफान देर तक बनाये न रह सकेगा। ऐसे नाले कुछ ही दिनों में तली तक पहुँच कर सूख जाते हैं। अवांछनीयता और कुप्रचलनों की तूती देर तक नहीं बोलती रह सकती।

सात्विकता और शालीनता में ही स्थिरता रही है। देव पक्ष ही स्थिर रहता और पूजनीय बनता है। भूत पलीत तो थोड़े समय उपद्रव खड़े करते और सदा के लिए समाप्त हो जाते हैं। प्रपंचों में ओत-प्रोत चतुरता गुब्बारे की तरह कुछ ही समय तक फूली हुई और आकाश में उड़ती हुई दीख सकती है पर वह स्वरूप स्थिर कहाँ रह सकता है। पानी के बबूले की उछल-कूद कुछ ही क्षण रहती है। टिकाऊपन तो हिम प्रदेश से झरने वालों झरनों में ही होता है। वे स्वयं शोभायमान लगते और असंख्यों की प्यास बुझाने की क्षमता धारण किये रहते हैं। समझना चाहिए कि देव स्तर की शालीनता को अपनाने, तदनुरूप ढलने और ढालने में ही कल्याण है। विचारवानों को समय रहते अपनी गतिविधियों में ऐसा परिवर्तन कर लेना चाहिए जिसमें लाभान्वित रहने और रखने के उभयपक्षीय प्रयोजन सिद्ध होते रहें। उपलब्ध क्षमताओं को नव सृजन के पुण्य प्रयोजन के लिए नियोजित करना ही अपने सामय की सबसे बड़ी बुद्धिमानी है। चूक जाने पर तो पश्चाताप ही हाथ रहेगा और घाटा उठाने का परिताप भी भुगतना पड़ेगा। ✱

चीन का एक सेनापति एक सन्त के पास स्वर्ग नरक की व्याख्या पूछने आया। सन्त ने मौखिक उत्तर से काम न बनता देखा तो उसे प्रत्यक्ष दिखाने का उपाय सोचा।

सन्त ने सेनापतिं से पूछा- "आप कौन हैं"? उत्तर मिला "सेनापति"। इस पर सन्त हँस पड़े और बोले- "लगते तो भिखारी से हो?" इस पर सेनापति को क्रोध आ गया और वह म्यान तलवार खींचने लगा। सन्त ने कहा- "यह तो लकड़ी की सी मालूम पड़ती हैं। तुम्हारी कलाइयों में इतना बल भी है जो मेरी गरदन काट सको।"

इस पर सेनापति आपे से बाहर हो गया और गाली देते हुए उन्हें मारने दौड़ा। सन्त इस बार फिर सौम्य हँसी हँसे और बोले- "देखा, यही नरक है, जिसमें तुम फँस गये।"

सेनापति ने विचार किया तो उसे लज्जा आई और सन्त से क्षमा माँगने लगा अब उसको शान्ति थी। सन्त ने बताया- "देखा यही स्वर्ग है। क्रोध में नरक और शान्ति में स्वर्ग है। इसमें से किसी एक को चुन लेना हर मनुष्य की अपनी मर्जी की बात है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

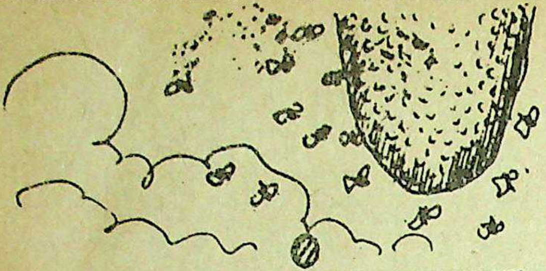

मधु संचय

विसर्जन-विलय

आप क्या मिल गए भ्रम परे हो गए,
विश्व तक दृष्टि के दायरे हो गए ।

हम स्वयं के सुरों पर बहुत मुग्ध थे,
किन्तु अब वे सभी बेसुरे हो गए ।

हम जिन्हें शक्तिशाली समझते रहे,
अब निरर्थक वही आसरे हो गए ।

यूँ उतारे परत - दर - परत आवरण,
भाव - चिन्तन हमारे खरे हो गए ।

आपने इस तरह कर दिया रिक्त मन,
रीत कर हम भरे के भरे हो गए ।

लोभ-लिप्सा स्वयं लुप्त होने लगी,
द्वेष-दानव सभी अधमरे हो गए ।

आपकी स्नेह-बौछार पाकर सुखद,
शुष्क अंकुर सभी फिर हरे हो गए ।

आपकी जो कृपा-दृष्टि हमको मिली,
देखलो हम अरे क्या से क्या हो गए ।

आपने इस तरह पंक्ति पहली पढ़ी,
हम सभी गीत के अन्तरे हो गए ।

—शचीन्द्र भटनागर

"तपस्वी को समर्पण"

जीवन करें समर्पित उनको ।
जिनने तपा लिया जीवन को ।।१।।

क्योंकि तपस्वी कम होते हैं ।
पर पीड़ा से नम होते हैं ।।
पीड़ा सहकर भी बिन कारण ।
पर पीड़ा का करें निवारण ।।

कहते विषपायी-शिव जिनको ।
जिनने तपा लिया जीवन को ।।२।।

जब उनका संबल मिलता है ।
जनसेवा का बल मिलता है ।।
जीवन धन्य बना देते हैं ।
श्रेय अनन्य दिला देते हैं ।।

कहते व्यक्ति - सृजेता इनको ।
जिनने तपा लिया जीवन को ।।३।।

तप उनका सूरज बन जाता ।
जन मानस का तम कट जाता ।।
लोभ-मोह के बन्धन कटते ।
घृणा-द्वेष के बादल छटते ।।

निर्मल कर देते वे मन को ।
जिनने तपा लिया जीवन को ।।४।।

वे सुषुप्त - देवत्व जगाते ।
मनुज-धरा को स्वर्ग बनाते ।।
वसुधा फिर कुटुम्ब हो जाती ।
जन मन में करुणा छलकाती ।।

स्रष्टा कहें और फिर किनको ।
जिनने तपा लिया जीवन को ।।५।।

—मंगल विजय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुरीतियों की बेड़ी जिन्हें जकड़ न सकी

लगा जैसे कानों में पिघला शीशा उड़ेल दिया गया हो। वह तो स्वयं में शोकाकुल थी। व्यथा हड्डियों तक को बेधे जा रही थी। ऊपर से यह...जले पर नमक-मिर्च का चूर्ण, पके फोड़े पर अंगारे का स्पर्श। संवाद पहुँचाने वाला चला गया था। उसकी पदचापों की ध्वनि क्रमशः दूर होती गई। उसकी गल्ती भी क्या है ? करे भी क्या ? हरकारा जो ठहरा ....बेचारा....। इस सब के पीछे तो उनका हाथ है जो अपने हैं। जिन्हें उसने इन्हीं हाथों से कभी आश्रय दिया था, अनेकानेक दुरावस्थाओं से रक्षा की थी। अब यही....।

उसने डबडबाई आँखों से पास खड़ी सहेली की ओर देखा। संग्रामों की भयानकता जिसके रणचण्डी स्वरूप को देख थर-थरा उठती थी। वनराज की दिल दहला देने वाली दहाड़ को शान्त करने के लिए जिसका एक बाण ही पर्याप्त था वही अब...। महल की दीवारें सहम गईं। भगवान के बनाये इस संसार को, मनुष्य ने जाने कितनी छोटी-बड़ी दीवारें तैयार करके सैकड़ों-हजारों कारागारों में बदल डाला है। उन दोनों ने महल की खिड़की से बाहर झाँकने की कोशिश की। बाहर तो जैसे रुद्र का ताण्डव ही मचा हुआ था। बिजली की चमक, मूसलाधार वर्षा, वज्रपात और हवा के झोंके प्रबल हो उठे थे। हर झोंके पर ऐसा लगता जैसे हजारों काले नाग एक साथ फुफकार उठे हों। ओह ! सचमुच काल रात्रि बन गई है, आज की निशा। बौछार से उन दोनों के चहरे भीग गए, फानूस की लौ काँप उठी। सभी चीजें उलट-पलट गईं।

"तो क्या....तो क्या ?" सखी ने खिड़की बन्द करते हुए उनसे पूछना चाहा। कितनी विवशता की अर्गलाओं में जकड़ी है नारी। जन साधारण से लेकर महारानी तक हरेक को कुरीतियों के वृश्चिक दंश उत्पीड़ित किए बिना नहीं चूकते। यह भी कुरीति ही तो है। कुरीति नहीं तो और क्या ? मृतक शरीर के साथ जीवित कुसुम कोमल सी देह, सौन्दर्य का पुंज आग की लपटों में....। भयवश आँखें मींच लीं।

कुछ पूछ रही थी, रामचेरी ...? सखी के चेहरे पर हो रहे भावान्तर को पढ़ते हुए उनने पूछा। कैसा संयोग दोनों लगभग एक साथ जन्मी। खेल-कूद, पढ़ाई-लिखाई यहाँ तक कि ब्याह भी लगभग एक ही समय। संक्षेप में कहें तो जन्म से लेकर आज तक निभता आ रहा है यह सहचरत्व। अनेकों अवसरों पर उन्होंने अपना कष्ट भूल कर उसके आँसुओं को पोंछा है। "क्या आप... आप भी औरों की तरह सती....?" आगे कुछ कह न सकी। वाणी रुद्ध हो गई।

"नहीं ! मुझे जीना है। स्वयं के लिए नहीं महाराज के सदुद्देश्यों के लिए। और मेरे विचार से पति के अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए अपने को तिल-तिल गलाना ही सच्चा सतीत्व है। जल मरना-पलायन भीरुता के अतिरिक्त और क्या है ?" उनकी आँखों में चमक और चेहरे पर शौर्य की झलक उभर उठी। कुछ ठहर कर उन्होंने पास खड़ी रामचेरी की ओर देखते हुए कहा- "कैसा विचित्र है अपना देश भी ? एक ओर ऊँचे दार्शनिक और बौद्धिक सिद्धान्तों की चर्चा, दूसरी ओर मूढ़ताओं, अन्धविश्वासों, कुरीतियों, चित्र-विचित्र परम्पराओं का अम्बार।"

"आपकी बात सौ फीसदी सच है महारानी। उनके इस कथन को सुन उसके चेहरे पर उल्लास की रेखाएँ उभर आयीं थी। अपने यहाँ के स्त्री हो या पुरुष, बालक हो अथवा बूढ़े सबकी अन्धविश्वासों पर जितनी अधिक आस्था है, उतनी शायद भगवान पर भी नहीं। कहते हुए उसने दृष्टि इधर-उधर घुमाई। हवा का शोर थमने लगा था, पर बूँदा-बाँदी अभी भी थी। बाहर के गलियारे में कुछ पदचाप सुनाई दे रहे थे। आवाजें क्रमशः निकट आती गईं। द्वार पर आहट हुई। रामचेरी ने उठकर द्वार खोला। एक-एक करके तीन व्यक्तियों ने प्रवेश किया। महारानी ने पहिचाना चन्द्रसिंह उनका देवर, अधारसिंह राज्य का प्रधान मंत्री और मोहनदास राज्य का सेनापति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भाभी रानी जी, भगवान और भाग्य पर काबू किसका है ।" चन्द्रसिंह ने धीरे से बात शुरू की । मैंने संवाद भेजा था । अपने घराने में सती का चलन चला आया है फिर जैसा आप उचित समझें ।" "मैं सती नहीं होऊँगी, चन्द्र !" उन्होंने तनिक रूखे स्वर में कहा । "तुम इस समय की व्यवस्था देखो ।"

पर कुल की रीति...। "रीति या कुरीति ?" वाणी में तनिक व्यंग था । भारतीय दर्शन, नीतिशास्त्र, आचारशास्त्र, आस्तिकता, कर्मफल, पुण्यपरमार्थ कितनी ही अच्छी चीजें हैं अपने धर्म में । पर इन्हें तो हमने तिरस्कृत कर रखा है, मानने अपनाने की सोचते भी नहीं । सिर्फ एक कुरीतियाँ ही बची हैं, जिन्हें चिपटाए रहने में ही हमने अपनी शान मान रखी है । आपका क्या विचार है दीवान जी, रावराजा.....। उन्होंने सामने खड़े दोनों अधिकारियों की ओर दृष्टि फिराई ।

"राज्य और प्रशासन की दृष्टि से आपका निर्णय सम सामयिक है ।" चन्द्रसिंह की बोलती बन्द हो गई ।

शवदाह की तैयारी हुई । बड़ी धूमधाम और पूरी परिपाटी के साथ सब सम्पन्न हुआ । शुद्धि और तेरहवीं के बाद राजकाज की बात चली । यों वीरनारायण का तिलक तो एक वर्ष बाद होना था । अधारसिंह और मान पण्डित ने देखा कि राज्य की नाव भँवर में है । ऐसे में पतवार कौन सँभाले ? इस कारण वीरनारायण का राजतिलक तुरन्त सम्पन्न हुआ । पर वह तो छोटा है, व्यवस्था कौन देखेगा ?

काम-काज किस तरह से चल पाएगा । इसकी चर्चा हुई । बात-चीत के क्रम में उन्होंने फिर स्पष्ट किया- "मैं पर्दा-वर्दा बिल्कुल नहीं करूँगी, हाथी की सवारी के समय झरप नहीं डालूँगी, दरबार में मुँह खोलकर बैठूँगी, जब आवश्यकता होगी पुरुषों का वेश धारण करूँगी ।"

चन्द्रसिंह बौखला गया । उसने रोष भरे स्वर में प्रतिवाद किया....भाभी रानी लगता है आपने तो कुल की सारी रीतियों को एक-एक करके नष्ट करने की शपथ उठा रखी है । आपके इस तरह के रहन-सहन से हमारे वंश को लांछन लगेगा ।

"फिर भूल गए चन्द्र, रीतियों को नष्ट करने की शपथ नहीं-कुरीतियों का सत्यानाश करने की । उन्होंने हलकी मुसकान के साथ कहा- "मेरा जन्म ही कुरीतियों को नष्ट करने के लिए हुआ है । बचपन में प्रचलित कथाओं के विरुद्ध पढ़ाई की । शास्त्र स्मृतियों का ज्ञान प्राप्त किया । अस्त्र संचालन, सैन्य संगठन व नियंत्रण आदि में कुशलता प्राप्त की । विवाह का समय आने पर "उपजातियाँ टूटें" इस आदर्श के अनुसार चन्देल होकर भी राजगोंड वंश में जन्मे महाराज से शादी हुई । महाराज के न रहने पर सती प्रथा को तोड़ा और अब पर्दा प्रथा, आगे न जाने कितनी और . . . . उनकी मुसकराहट चन्द्रसिंह के कलेजे में आग भड़काती जा रही थी । पर वह कर भी क्या सकता था, महारानी अपने कुशल प्रशासन, जनहित के कार्यों शौर्य और अद्भुत सैन्य प्रवीणता के कारण समस्त जन समुदाय के दिलों में देवी बनकर प्रतिष्ठित हो चुकी थी ।

सुनो चन्द्र ! जहाँ तक लांछन का प्रश्न है, यह क्रूर कर्मों के कारण और जनसमूह को सताने के कारण लगता है । पर्दा न करने से नहीं लगता लांछन ।

"मुझसे नहीं सहा जाएगा "। मैं महाराज संग्रामशाह का बेटा हूँ । "सहना पड़ेगा कुमार ।" राज पुरोहित मान पण्डित ने उसे डपटते हुए कहा-"परिवार में समाज में इन कुरीतियों के प्रवेश के कारण ही हम भीतर ही भीतर खोखले हो गए और उनका प्रायश्चित खून के आँसुओं से करना पड़ा है । देख नहीं रहे आक्रमणों की श्रृंखला ! कितने लज्जास्पद अपमानों, रोमांचकारी अत्याचारों से हताहत होना पड़ा है देश को । इसका कारण शौर्य का अभाव नहीं । कुरीतिजन्य आन्तरिक दुर्बलता ही रही है ।"

सब सहमें हुए सुन रहे थे राजपुरोहित का वक्तव्य । वह कह रहे थे-"किसमें है वह योग्यता जो महारानी का स्थान ले सके । वह अनोखी प्रतिभा, अपरिमित प्रतिभा, असहय शौर्य कहाँ है ? इस सबको तुम पर्दे की कारा में कैद करना चाहते हो ? नहीं यह न होगा । किसी को मेरी बात अमान्य हो तो कहे ? राज दरबार में सन्नाटा छा गया । कोई कुछ बोल न सका-सभी को आचार्य के कथन में यथार्थता की झलक दीख रही थी । "तो दरबार सहमत है ।" "हाँ ! हमें महारानी का नेतृत्व स्वीकार है ।" शत सहस्र कंठस्वर एक साथ गूँज उठे । कुरीतियों को तोड़ने के लिए जन्मी यह अद्भुत नारी थी- "महारी दुर्गावती", जिनके शौर्य के किस्से आज भी गोंडवाना मात्र में नहीं, अपितु समूचे भारत में गाए जाते हैं । ✱

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतायु जीवन का मर्म

लम्बी आयु जीने का रहस्य क्या है ? क्या आज भी प्राचीन काल की तरह शताधिक वर्ष तक स्वस्थ और निरोगी जीवन जिया जा सकता है ? अक्सर आये दिन इस प्रकार के प्रश्न अनेकों के मन में पानी के बबूले की तरह उठते और मिटते रहते हैं । ऐसे लोगों से एक ही बात कही जा सकती है कि यदि संयमपूर्वक जीवन जिया जाय, तो कोई कारण नही कि आज भी व्यक्ति प्राचीन काल की तरह शतायुष्य को प्राप्त न कर सके । यह संभावना तब और भी प्रबल और परिपुष्ट हो जाती है, जब आज भी विश्व के कई देशों के कई क्षेत्रों में ऐसे लोग देखे जाते हैं । रूस के अजरबेजान और कजिकिस्तान प्रान्त ऐसे ही हैं, जहाँ एक नहीं अधिकांश निवासी सौ वर्ष की उम्र तक जीते हैं । अब एक ऐसे ही गाँव का पता अमेरिका में चला है, जहाँ की अधिकांश आबादी सौ वर्ष की आयु तक जीती है ।

मिग्यूएल कार्पियो इसी छोटे से किन्तु प्रसिद्ध गाँव विलकेबम्बा के निवासी हैं । जिसका सम्बन्ध बाह्य दुनिया से मात्र पगडंडियों से है । न कोई आमोद-प्रमोद के साधन, न ही आवागमन की विशेष सुविधा । १९७१ की जनगणना से पता चला कि उस गाँव में ८१९ लोग हैं । इनमें १९ व्यक्ति शताब्दि पार कर चुके हैं एवं लगभग इनमें से १/५ प्रतिशत लोग ६५ से अधिक उम्र के हैं । सबसे अधिक उम्र तक जीने वाले १४२ वर्षीय जोस डेविड की मृत्यु १९७३ में हुई । उन्हीं के मित्र कार्पियो वहाँ के पुराने निवासी हैं ।

कार्पियो स्वयं सौ वर्ष पूरे करने वाले माता-पिता के पुत्र हैं । यह आश्चर्य की बात नहीं कि वे अपने इस लम्बे जीवन काल में कभी भी डाक्टर के पास नहीं गए । "डाक्टर किसे कहते हैं, हमें यह नहीं मालूम । हम न तो इन्फ्लूएंजा, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग एवं कैन्सर से परिचित हैं न किसी मानसिक परेशानी से ।" पूछने पर वे बड़े सहज भाव से उत्तर देते । वहाँ के निवासियों का जीवन क्रम प्राचीन काल के ऋषि मुनियों जैसा है । छोटे-छोटे झोंपड़े में वे निवास करते हैं, जहाँ न तो सुविधा साधन हैं न विद्युत व्यवस्था । भोगवादी सभ्यता को चुनौती देते हुए यह छोटा-सा गाँव स्पष्ट करता है कि अक्षुण स्वास्थ्य का लाभ भोग-विलास के साधनों के बीच रहने से नहीं मिलता, अपितु इसके लिए औसत नागरिक स्तर का निर्वाह पर्याप्त है । चिकित्सा सुविधा वहाँ अभी भी अनुपलब्ध है ।

विशेषज्ञों का कहना है कि लम्बी आयु का सम्बन्ध वहाँ के वातावरण से भी हो सकता है, जहाँ की जलवायु में प्रदूषण नहीं हो । पास में बहने वाली नदी स्वच्छ जल लेकर आती है । मौसम वहाँ का हमेशा एक समान बना रहता है, न ज्यादा ठंड, न गरम । तापक्रम ४० डिग्री फारेनहाइट बना रहता है । इसे स्वीकार करते हुए कार्पियो कहते हैं कि- "प्रधान कारण यह नहीं है । प्रमुखता तो उस रहन-सहन को मिलनी चाहिए, जिसमें किसी भी क्षेत्र में किसी भी प्रकार का प्रमाद अथवा असंयम नहीं बरता जाता ।"

४६ वर्षीय पत्रकार एवं विलकेबम्बा में जन्म लेने वाले जार्ज विवेन्को का कहना है कि लम्बी आयु का रहस्य चिन्ता रहित जीवनक्रम है । हम सभी जल्दी सोते एवं जल्दी उठते हैं, दिन भर सक्रियता बनी रहती है । न कहीं कोई कठिनाई, न चिन्ता, न तनाव और न ही कोई उद्विग्नता । हृदय रोग सम्बन्धी संगठन के अध्यक्ष जीम वाकर के अनुसार इस गाँव के लोग सदा तनाव रहित जीवन जीते हैं । इसीलिए हृदय संबन्धी किसी भी रोग से सर्वथा मुक्त हैं । खान-पान में भी सात्विकता का समावेश-एक प्रमुख कारण हो सकता है ।

कार्पियो एवं वहाँ के निवासियों ने स्वीकार किया है कि लम्बी आयु प्राप्त करने में खान-पान का महत्वपूर्ण स्थान है । कार्पियो एवं वहाँ के अन्य निवासी शुद्ध शकाहारी भोजन लेते हैं, जिनमें फल, सब्जी, पत्ते एवं शक्कर के स्थान पर गुड़ का सेवन प्रमुख होता है । तलेभुने एवं मसालेदार व्यंजनों का तो प्रचलन यहाँ है ही नहीं । प्रकृति के अनुकूल आहार-विहार ने ही उन्हें लम्बी आयु प्रदान की है । कठोर श्रम करने एवं भूख लगने पर खाने की नीति को वहाँ के निवासी अपने जीवनक्रम में सम्मिलित किये हुए हैं ।

लम्बी आयु जीने की आकांक्षा रखने वालों को सुझाव देते हुए कार्पियो कहते हैं- "जिन्हें लम्बी आयु जीना है, तो औसत नागरिक स्तर का जीवनक्रम अपनायें एवं भौतिकता की आकर्षक लगने वाली मृगतृष्णा से दूर रहें, सामर्थ्य भर श्रम करें, सात्विक भोजन ग्रहण करें तथा मानसिक उद्विग्नता, चिन्ता, भय, क्लेश आदि से सर्वथा मुक्त रहें ।" *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक का सात्विक आहार–विहार

आध्यात्मिक साधना के दिनों में उपासना परक जो नियम–उपनियम बनाये बताये गये हैं, वे तो श्रद्धापूर्वक समग्र अनुशासन के साथ पूरे करने ही चाहिए, पर साथ ही एक बात यह भी भूलनी नहीं चाहिए कि उन दिनों आहार–विहार की सात्विकता का अनुबंध भी ठीक तरह पालन करना चाहिए। अस्तव्यस्त जीवनचर्या अपनाते हुए पूजा–उपासना के कुछ नियम पालन कर लेने भर से साधना समग्र रूप से सफल नहीं हो सकती। जिस प्रकार पूजा काल में शरीर को शुद्ध करना आवश्यक है, धुले कपड़े ही पहनने चाहिए, उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि आहार–विहार की पवित्रता में व्यतिरेक न होने दिया जाय।

उक्ति प्रसिद्ध है कि "जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन।" मन भी शरीर का ही एक भाग है। मस्तिष्क को ही ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है। आहार से ही शरीर के दृश्यमान और अदृश्य अवयव विनिर्मित होते हैं। आहार में मात्र दृश्य शरीर को ही परिपुष्ट करने की क्षमता नहीं, वरन् उससे सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर भी प्रभावित होते हैं। मन का प्रवाह भी उसी दिशा में बहने लगता है। मद्य–माँस जैसे अभक्ष्य उदरस्थ करने पर उनका तामसिक प्रभाव अन्तःचेतना पर भी पड़े बिना नहीं रहता। शरीर से कोई व्यक्ति मोटा–तगड़ा या बलिष्ठ बन जाय, तो भी यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उसका मानसिक स्तर भी सात्विक बना रहेगा, आत्मबल बढ़ेगा और अन्तःकरण में सात्विक भावनाएँ उठेंगी। आहार का स्थूल प्रभाव अंग –अवयवों पर पड़ता है, पर उसकी सूक्ष्म शक्ति मनुष्य के अन्तराल तक जा पहुँचती है और अपना समुचित प्रभाव छोड़ती है।

इसलिए साधना के दिनों में उपवास का नियम है। फलाहार दूध, छाछ पर रहकर साधक अपना साधनाक्रम पूरा करते हैं। इतना न बन पड़े, तो रोटी–पूड़ी आदि न खाकर दलिया खिचड़ी जैसे अमृताशन आधे समय खाकर काम चलाना पड़ता है। कम से कम इतना तो करना ही चाहिए कि एक समय भोजन किया जाय और दूसरे समय उपवास रखा जाय। इससे पेट को विश्राम मिलने से स्वास्थ्य लाभ भी होता है और मनःक्षेत्र में सात्विकता बनी रहने से साधना की सफलता निश्चय रहती है।

आहार के बाद जीवन निर्वाह का दूसरा चरण है विहार। विहार अर्थात् रहन–सहन। इसे इन्द्रिय संयम भी कह सकते हैं। इन्द्रियों में कामेन्द्रियों को अधिक प्रबल माना जाता है। साधना काल में ब्रह्मचर्य पालन का प्रचलन है। शारीरिक काम सेवन की तरह ही कामुक चिन्तन का भी मानसिक पवित्रता पर बुरा असर पड़ता है। उन दिनों नर–नारी के बीच माता, भगिनी, पुत्री जैसे पवित्र संबंधों की ही कल्पना करनी चाहिए। ऐसा साहित्य नहीं पढ़ना चाहिए, ऐसे खेल तमाशे नहीं देखने चाहिए, जो मन में कामुकता के विचार भड़काते हों।

चटोरेपन में सम्मिलित हैं मसाले मिठाई पक्वान आदि। चटोरापन भड़काने वाले आहार का साधनाकाल में विशेष रूप से निषेध है। सात्विक जीवन जीना हो और आत्मबल बढ़ाना हो, तो आहार ही नहीं, विहार में भी सात्विकता का अधिकाधिक समावेश करना चाहिए।

अन्य इन्द्रियाँ भी विचारों को प्रभावित करती हैं, मन पर अपना प्रभाव छोड़ती हैं। इसलिए इनसे अश्लील बातें, निन्दा, चुगली, छल, कुटिलता जैसे मानसिक अनाचारों को न तो जीभ द्वारा प्रस्तुत होने देना चाहिए और न उन्हें सुनना ही चाहिए। जहाँ ऐसे प्रसंग चल रहे हों, वहाँ से उठ कर अन्यत्र ही चले जाना उचित है। आँखों से अश्लील आचरण के संबंध में उत्तेजना प्रदान करने वाले दृश्यों से अपने को बचाना चाहिए। अवांछनीय प्रसंगों से स्वयं को दूर ही रखना चाहिए।

अनाचारी चिन्तन और क्रियाकलाप में निरत रहने वाले व्यक्ति जब भी इकट्ठे होते हैं, अपने स्तर का वातावरण बनाते हैं। जब तक उनको कड़े विरोध द्वारा निरस्त न किया जाय, विरोध करके दूर न किया जाये, तब तक अवांछनीय प्रसंग अपना गहरा प्रभाव छोड़ने से रुकते नहीं। शरीर से भले ही अपना बचाव कर लिया जाय पर जो लोग वैसा कर रहे हैं, जहाँ का वातावरण वैसा है, वहाँ अपना सम्पर्क किसी प्रकार सधना भी उन लोगों के लिए हानिकर सिद्ध होता है, जो सात्विकता बनाये रहना चाहते और साधनारत होकर आत्मकल्याण का प्रयोजन साधने के इच्छुक हैं। ✻

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या विस्तार- आज की सर्वोपरि सेवा साधना

प्रतिभा परिष्कार मानवीय प्रगति और प्रसन्नता का एक मात्र आधार है । संस्कारवान् आत्मायें ही संवेदना अनुभव करतीं और पीड़ित मानवता के लिए अग्रसर होती हैं । इस युग में सब कुछ है पर ऐसी परिष्कृत प्रतिभा सम्पन्न आत्माओं का सर्वत्र अभाव दिखायी दे रहा है । इस उपार्जन को परम पूज्य गुरुदेव ने अपनी अन्तिम आकांक्षा कहकर अपनी दूसरी पीढ़ी को यह दायित्व सौंपकर महाप्रयाण किया है । यह हमारे लिए एक चुनौती है कि हम उसे किस प्रकार पूरा करें ?

प्रतिभाओं के उपार्जन के लिए एक ही धरातल है –"विद्या विस्तार "। 'विद्या ददाति विनयम् , विनयाद्याति पात्रताम् , पात्रता का विकास विद्या से होता है । विद्या आर्थात् शिक्षा और जीवन दर्शन का समन्वय । एकांगी शिक्षा से जीवन की भी यही है । परम पूज्य गुरुदेव ने सारे जीवन भर ज्ञान की ही आराधना की और जन–जन तक ज्ञानामृत ही बाँटा । यह श्रद्धांजलि वर्ष है । इस वर्ष हमें अपनी सारी शक्ति इस महान प्रयोजन में झोंक देने से ही इस समारोह की सार्थकता है और परम पूज्य गुरुदेव के प्रति श्रद्धांजलि की सच्ची अभिव्यक्ति भी ।

अखण्ड ज्योति का व्यापक विस्तार

भगीरथ ने राह बनायी और पतित पावनी गंगा युगों–युगों तक के लिए अमर हो गयी । परम पूज्य गुरुदेव नहीं रहे , पर उनकी वाणी – उनका हृदय , उनका अन्तःकरण तीनों अखण्ड ज्योति में समाहित हैं । इस गंगोत्री का प्रवाह अनन्तकाल

प्रत्येक संकल्प श्रद्धांजलि दर्द का दावानल बने

समस्याओं का समाधान नहीं होता । सद्ज्ञान से जीवात्मायें अपने अन्तःकरण में विराट् विश्वात्मा का बोध करती हैं , ज्ञान से ही भव–बंधन कटते हैं । सद्ज्ञान जब सत्कर्म में परिणत होता है , तब सर्वत्र सुख–समृद्धि का सागर लहराता दिखाई देता है । पीड़ा और पतन के वर्तमान दावानल से मनुष्य जाति को उबारने और अनास्था संकट के सर्वनाश से बचाने का एक ही रास्ता है –"ज्ञान यज्ञ" मनुष्य की समझदारी का विकास , उसके अज्ञान को मिटाना और लघुता में ही विराट् का बोध कराना । प्राचीनकाल का सामान्य व्यक्ति भी महान मानवीय गरिमा से ओत–प्रोत इसी आधार पर हुआ था कि उस समय सर्वत्र विद्या विस्तार का ही बोलबाला था । ज्ञान में ही लोग जन्मते और ज्ञान में विकसित होकर अन्त में विराट् ज्ञान को ही समर्पित हो जाते थे । स्वर्ग और मुक्ति की संज्ञा भी इसी ब्राह्मी स्थिति को बताया गया है ।

इस मिशन के लिए तो पहला और अन्तिम लक्ष्य

तक प्रवाहित होकर जनमानस का परिष्कार करता रहेगा , इसमें किसी को रत्ती भर भी सन्देह नहीं रहना चाहिए । वह जितना आगे बढ़ेगी , उतनी ही विराट् होती चली जायेगी । अभी उसे हिन्दी के अतिरिक्त मात्र गुजराती , मराठी , उड़िया, तेलगू, तमिल व बंगला भाषा में ही प्रकाशित किया जा रहा है । अगले दिनों वह न केवल सभी भारतीय भाषाओं में , अपितु विश्व की अन्य समृद्ध भाषाओं में भी प्रकाशित हो , वैसे उपक्रम शान्तिकुंज से जुटाये जा रहे हैं ।

मूल प्रकाशन हिन्दी भाषा का ही है । परम पूज्य गुरुदेव इतना लिखकर छोड़ गये हैं , जो हिन्दी में लम्बे समय तक चलता रहेगा । उसके अतिरिक्त सावित्री महाविद्या , यज्ञ विज्ञान तथा गीता दर्शन पर लिखी उनकी सर्वथा अप्रकाशित सामग्री पाठकों तक पहुँचाने की व्यवस्था की जा रही है । उनके जीवन के वह अछूते प्रंसग जो अब तक अविज्ञात रहे हैं, अब अखण्ड–ज्योति में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिजनों को नियमित रूप से पढ़ने को मिलते रहेंगे । विश्वास किया जाना चाहिए , अखण्ड-ज्योति विद्या विस्तार का मेरुदण्ड है । कोई भी ऐसा शिक्षित घर नहीं बचना चाहिए , जहाँ अखण्ड-ज्योति पढ़ी और सुनी न जाती हो । युग शक्ति गायत्री आदि अन्य सभी भाषाओं की पत्रिकाओं के लिए भी यही बात है क्योंकि वे अखण्ड-ज्योति का ही रूप हैं ।

आत्मीय कुटुम्बियों को ज्ञात होगा ,परम पूज्य गुरुदेव की स्मृति में निकाला गया अगस्त सितम्बर अखण्ड-ज्योति विशेषांक २४० पेज अर्थात् चार अखण्ड-ज्योति पत्रिकाओं के बराबर का है । ८४ पृष्ठ के आफसेट रंगीन चित्र और लगभग उतने ही श्वेत-श्याम चित्रों के ब्लाक हैं । उसे निकालने में कागज छपाई , ब्लाक प्रोसेसिंग आदि में प्रायः पच्चीस लाख रुपयों का बैंकों का कर्ज हो गया है । पत्रिका किसी भी तरह का अनुदान या विज्ञापन नहीं लेती । उधर पिछले एक वर्ष में ही कागज, स्याही , छपाई तथा पोस्टेज में असाधारण वृद्धि के कारण उत्पन्न संकट का सामना करना कठिन हो रहा है । बड़ी संख्या में निकलने वाली पत्रिकायें सरकारी छूट और सुविधाओं से भी वंचित कर दी गयी है । अतएव संकट और भी गहरा गया है ।

दो ही विकल्प बचे हैं, या तो अखण्ड-ज्योति के पृष्ठ कम किये जायें या फिर चन्दा बढ़ाया जाये । संजीवनी विद्या विस्तार जैसे आज के सर्वाधिक महत्व के विषय पर सामग्री कम करने का औचित्य कोई भी स्वीकार नहीं कर रहा है । इस स्थिति में अखण्ड-ज्योति के वार्षिक चन्दे में न्यूनतम वृद्धि की जा रही है जैसे कि पूर्व में सूचना दी गयी थी, अब उसका चन्दा ३५/- वार्षिक होगा, आजीवन सदस्यता शुल्क ५००/ रखा गया है । अन्य पत्र-पत्रिकाओं की तुलना में आज भी अखण्ड-ज्योति का चन्दा बिलकुल कम है । किसी भी छोटी से छोटी पत्रिका का भी चन्दा ३.५० प्रति अर्थात् ४२/- वार्षिक से कम नहीं है , जबकि उनके कलेवर और गेट अप में भी जमीन आसमान का अन्तर है । इन परिस्थितियों को स्वीकार करते हुए अपने कुटुम्बियों से इस सामान्य मूल्य वृद्धि को सहर्ष स्वीकार करने का हार्दिक अनुरोध है । इससे एक सीमा तक ही नुकसान की भरपाई होगी ।

यदि पत्रिका के सदस्यों की संख्या न बढ़ाई गई , तो यह आर्थिक दबाव दिनों-दिन बढ़ता रहेगा और बार बार परिवर्तनों की आशंका बनी रहेगी । अतएव अपने सभी परिजनों से इस वर्ष व्यक्तिगत अभिरुचि लेकर अखण्ड-ज्योति और अन्य पत्रिकाओं की सदस्य संख्या बढ़ाने की अपील की जा रही है । सदस्य बनाने का क्रम चाहे एकाकी पुरुषार्थ के बल पर हो या टोलीबद्ध प्रयत्नों द्वारा, रसीद बुकें अखण्ड-ज्योति संस्थान घीयामण्डी मथुरा से अथवा शान्तिकुंज हरिद्वार से मँगा लेनी चाहिए , उससे शुल्क संग्रह में सुविधा रहेगी ।

श्रद्धांजलि समारोह के समय सीमित संख्या में छपने के कारण स्मृति अंक सभी परिजनों को नहीं मिल सके थे, उन्हें तैयार करा दिया गया है । २५ रुपये का मनीआर्डर , पोस्टलआर्डर या ड्राफ्ट भेज कर इन्हें शान्तिकुंज हरिद्वार से मँगाया जा सकता है । जिन्हें अधिक संख्या में चाहिए हों वे रेलवे से मँगायें । समीपवर्ती रेलवे स्टेशन का नाम अँग्रेजी के कैपिटल अक्षरों में वेस्टर्न, सदर्न या नार्दन रेलवे जो भी हो, उसके सहित अंकित करके भेजें । ड्राफ्ट अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा के नाम बनवाकर भेजना चाहिए ।

> *जिस बोध वृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध को आत्म ज्ञान हुआ था । उसे प्रणाम करने वे अक्सर जाया करते थे ।*
>
> *शिष्य पूछते कि जड़ को नमन करने से क्या लाभ ? उत्तर देते जिनसे भी लाभ उठाया है उनके प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति करते रहना मनुष्य की अपनी सज्जनता है । जिसे हर स्थिति में बनाये ही रहना चाहिए ।*

ज्ञान रथ झोला पुस्तकालय

विद्याविस्तार कार्यक्रम में ज्ञान रथों और झोला पुस्तकालयों की भूमिका को अहं मानते हुए, उनके व्यापक विस्तार की तैयारियाँ की गयी हैं । साहित्य एवं यज्ञोपवीत , हवन सामग्री, पूजा उपकरण , अगरबत्ती, स्टीकर्स, चित्र आदि रखने का प्रबंध करना चाहिए । आवश्यकता पड़ने पर साहित्य उधार उपलब्ध कराने का भी प्रबंध किया जायेगा, पर ज्ञान यज्ञ अभियान को सशक्त बनाना, अब एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिवार्य सत्य बन गया है, उसकी बहुत पहले से ही माँग की जाती रही है। जिन शक्तिपीठों–प्रज्ञा संस्थानों ने अब तक ज्ञान रथ प्रारंभ नहीं किए, उन्हें अविलम्ब अपने मन्दिरनुमा बोलते–गाते ज्ञान रथ तत्काल या तो स्वयं बना लेने चाहिए या फिर शान्तिकुंज से प्राप्त कर लेने चाहिए और यह प्रबंध करना चाहिए कि ज्ञान रथ नियमित रूप से चलें और घर–घर अलख जगाते हुए, जन–जन तक प्रज्ञा प्रकाश पहुँचाने को सेवा साधना सम्पन्न करें।

व्यक्तिगत स्तर पर चलने वाले झोला पुस्तकालयों में भी नया साहित्य बढ़ाना आवश्यक है, उनका भी पुनर्गठन किया जाना चाहिए। नये सिरे से जिन लोगों तक यह साहित्य पढ़ाया जाये, उनका पूरा रिकार्ड रखा जाये, ताकि ऐसे भावनाशीलों को शान्तिकुंज में चलने वाली सत्र श्रृंखला में प्राथमिकता दी जा सके। परम पूज्य गुरुदेव की चुनी हुई पुस्तकों के रिप्रिन्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा से छप गये हैं उन्हें भी मँगाया जाना चाहिए।

संगीत और वीडियो कैसेट

शक्तिपीठों, शाखाओं और प्रज्ञा मंडलों का वातावरण विनिर्मित करने और जन जीवन को प्रेरक विचार एवं भावनाएँ प्रदान करने की दृष्टि से पूज्य गुरुदेव ने जनगायनों को बहुत महत्व दिया था। जिन शक्तिपीठों में प्रातःकाल गीतों के प्रसारण का क्रम चलता है, वहाँ का जन संपर्क भी अनेक गुना अधिक विस्तृत हुआ है और श्रद्धा सम्मान भी बढ़ा है। इन्हें जागृत तीर्थों के रूप में प्रतिष्ठा मिल रही है। यह क्रम सर्वत्र चलना चाहिए। व्यक्तिगत आयोजनों में भी इन गीतों का प्रसारण हो, तो यह अच्छी बात होगी। उसके लिए श्रद्धांजलि समारोह के अवसर पर नये और आकर्षक गीतों के कैसेट तैयार करा लिए गये हैं। इन्हें प्रामाणिक संस्थानों द्वारा सुयोग्य तकनीशियनों द्वारा तैयार कराया गया है, उससे उनका प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया है। ध्यान–धारणा, ऋषि चिंतन, पूज्य गुरुदेव के महत्वपूर्ण उद्‌बोधन आदि विषयों पर भी कैसेट उपलब्ध हैं। यह कैसेट शान्तिकुंज से अविलम्ब मँगा लेने चाहिए ताकि नवयुग के स्वागत का आकर्षक क्रम तत्काल प्रारंभ किया जा सके।

श्रद्धांजलि समारोह पर परम पूज्य गुरुदेव के जीवन दर्शन तथा मिशन के विराट् स्वरूप की जानकारी देने वाले चार वीडियो कैसेट्स भी अब शान्तिकुंज में उपलब्ध हैं। १५० रु. प्रति कैसेट की दर से यह वीडियो कैसेट किन्हीं आगन्तुकों के हाथ मँगाये जा सकते हैं, डाक से भेजना किसी भी तरह सम्भव नहीं।

आज का समाज पीड़ा और पतन से कराह रहा है, उस दर्द को इस मिशन के कोटि–कोटि परिजनों ने अनुभव किया है। भाव संवेदना को अब एक प्रचंड दावानल के रूप में फूटना चाहिए, ताकि अवांछनीयता, अपराध वृत्ति और अनैतिकता को जला कर भस्मसात् किया जा सके। खण्डनात्मक प्रयत्नों से नहीं विधेयात्मक प्रयत्नों से। यही आज की सबसे बड़ी सेवा, साधना और राष्ट्र भक्ति है। उसमें हर भावनाशील को सम्पूर्ण हृदय और अन्तःकरण से जुट जाने का ठीक यही समय है। *

एक पहाड़िन स्त्री पर्वत के शिखर पर घास खोद रही थी। अकेली पाकर उसे किसी गुण्डे ने धर दबोचा। स्त्री अपना शील बचाने के लिए भगवान का नाम लेकर पहाड़ पर से कूद पड़ी।

ईश्वर की कृपा उसे कोई चोट नहीं लगी। गाँव में चर्चा हुई तो उसकी शील और साहस की सराहना सभी ने की। उसे सर्वत्र यश मिला।

उसी के पड़ौस में एक और स्त्री रहती थी। उसने भी अपने शील का ढिंढोरा पिटवाने के लिए सर्वत्र यह चर्चा फैला दी कि वह भी उसी पर्वत पर से अमुक दिन कूदेगी और सिद्ध करेगी कि वह भी शीलवती है। घोषणा के अनुसार उस दिन भारी भीड़ उस कौतुक को देखने के लिए एकत्रित हो गई।

स्त्री कूदी पर गिरने पर चकनाचूर हो गई। लोग उसके शील पर भी संदेह करने लगे और भगवान की कृपा पर भी।

किसी ज्ञानी ने इन चर्चाओं का समाधान करते हुए कहा दोनों स्त्रियों की भावना में मौलिक अन्तर था। शीलवती भले ही दोनों रही हों। एक ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगाई थी। दूसरी ने प्रशंसा बटोरने के लिए अहंकार का पोषण किया था। भगवान भीतर की बात जानते हैं और उसी के अनुसार किसी की सहायता या उपेक्षा करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धांजलि वर्ष के नूतन निर्धारण

शान्तिकुंज में अक्टूबर माह के प्रथम सप्ताह में आयोजित संकल्प श्रद्धांजलि समारोह के विराट रूप को जिनने भी देखा व उसे सफल ठहराया, उसके मूल में सबको दो कारण समझ में आए । एक संघशक्ति का एकीकरण एवं दूसरा श्रद्धा से उपजे संकल्प की शक्ति का जागरण । ऋषिरक्त के संचय से कभी दुर्गा रूपी संघशक्ति का अवतरण हुआ था । इस पौराणिक आख्यान की पुनरावृत्ति आदिकाल में होती रही है । इसी को साकार होते हर जुड़े निष्ठावान परिजन ने पिछले दिनों देखा ।

श्रद्धा का, स्नेह, का केन्द्र विन्दु रहे पूज्य गुरुदेव सात दशक से भी अधिक समय तक सैकड़ों के हृदय पर राज्य करते रहे । उनके प्रति समर्पण भाव ने अन्दर सोए संकल्प बल को जगाया एवं विद्या विस्तार के निमित्त घर-घर अलख जगाने का जिम्मा अपने कंधों पर लेने के लिए प्रेरित किया । गुरुदेव अपनी थाती, निधि के रूप में एक विशाल परिवार छोड़ गए हैं, उसके लिए एक सुनियोजित कार्यक्रम दे गए हैं तथा प्रचण्ड आत्मबल संपन्न वातावरण देवात्मा हिमालय की छाया में गंगा की गोद में गायत्री तीर्थ शान्तिकुंज के रूप में बना गए हैं । जो ऊर्जा इस वातावरण में उनकी कठोर तपश्चर्या के फलस्वरूप विद्यमान है, उसकी अनुभूति हर परिजन ने समय-समय पर की है । इसे उनने इक्कीसवीं सदी गंगोत्री, नवयुग का निर्धारण केन्द्र, महामानवों की सर्वोच्च संसद तथा महाकाल का घोंसला कहा है । किसी को भी इसमें संदेह नहीं होना चाहिए कि उनकी प्रेरणा से, संव्याप्त सूक्ष्म व कारण शरीर की सत्ता के प्रभाव से जो भी महत्वपूर्ण निर्णय अगले दिनों लिए जाएँगे, वे भावी युग का संविधान रचेंगे ।

संकल्प समारोह की उत्साहवर्धक प्रतिक्रियाओं को दृष्टिगत रख इस वर्ष तीन प्रमुख कार्यक्रम सभी परिजनों के लिए महत्वपूर्ण निर्धारण के रूप में दिए गये हैं ताकि हर परिजन अपनी स्थिति के अनुरूप उनमें भागीदार बन कर लाभ उठा सके ।

पहला कार्यक्रम है संस्कारित देव मानवों की प्रसुप्त आत्माशक्ति के जागरण हेतु शान्तिकुंज की श्रृंखला का विस्तार एवं पुनर्निर्धारण । अब साधना स्तर की तपश्चर्याएँ बढ़ा दी गयी हैं व शीत ऋतु, वसंत को इसके लिए उपयुक्त समझकर इन्हें सर्वोच्च वरीयता देकर १९९० के अंतिम दो माह व १९९१ के पूर्वार्ध में चलाते रहने का निश्चय किया गया है ।

दूसरा कार्यक्रम है – महाकाल के साथ उज्ज्वल भविष्य के लिए साझेदारी में जन-जन को जोड़ने हेतु विशाल स्तर के आयोजन-दीपयज्ञ संगोष्ठियों का क्रम क्षेत्र में कर जन शक्ति का प्रबल मंथन करना । ये कार्यक्रम भी जनवरी १९९१ से आरंभ किये जा रहे हैं ।

तीसरा कार्यक्रम है विद्याविस्तार प्रक्रिया को नयी गति देकर चल देवालयों आदि के माध्यम से इस कार्यक्रम को प्रभावी बनाना, पूज्यवर की लेखनी के आलोक को राष्ट्र व विश्व के हर कोने में पहुँचाना । इस संबंध में पिछले पृष्ठों पर विस्तार से लिखा जा चुका है ।

तीन प्रकार की सत्र श्रृंखलाएँ शान्तिकुंज में अब चल रही हैं । एक नौ दिन के विशिष्ट साधना-अनुधान सत्र, एकमास के युग शिल्पी शिक्षण सत्र तथा तीसरे तीन-तीन के अतिथि सत्र । हैं सभी साधना प्रधान पर उनका स्तर तीनों में भिन्न-भिन्न हैं ।

यह सर्व विदित तथ्य है कि अन्दर प्रसुप्त पड़ी सुसंस्कारिता को जब तक तप साधना का खाद-पानी नहीं मिलता, वह अंकुरित पल्लवित नहीं होती । बड़े काम साधना पराक्रम के माध्यम से ही संपन्न होते हैं । पुरातन काल में तो वैसा वातावरण चहुँ ओर था एवं बहिरंग से हटकर अन्तर्मुखी हो आत्मचिन्तन की साधना करने का हर किसी के पास अवसर था । कुण्डलिनी जागरण, षटचक्र भेदन, निदिध्यासन-धारणा ध्यान समाधि स्तर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपक्रम अब भले ही उस सीमा तक संभव न हों, पूज्य गुरुदेव स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर के जागरण संबंधी ऐसे विशिष्ट साधन निर्धारित कर गए हैं कि उनका आश्रय लेकर निश्चित ही लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है । अखण्ड जप, नियमित यज्ञ, युगसन्धि महापुरश्चरण एवं करोड़ों गायत्री जप की ऊर्जा से अभिपूरित वातावरण इसमें सहायक भूमिका है । मनःस्थिति यदि बदलने को एवं नये प्रचलन को अपनाने को समुद्यत है तो आन्तरिक कायाकल्प सुनिश्चित हो जाता है । इन नौ दिवसीय अनुदान सत्रों में इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ही विशिष्ट साधना उपक्रमों का निर्धारण किया गया है ।

प्रातःकाल के सविता के स्वर्णिम प्रकाश की ध्यानधारणा जो पूज्य गुरुदेव के निर्देशों (टेप किए हुए) के अनुसार की जाती रही है को अब और विशिष्ट बनाया गया है । सामूहिक ध्यान साधना हेतु बने कक्ष को चारों ओर से ढँककर ऐसा बनाया गया है कि ध्यान बटे नहीं, निर्देशों के अनुरूप उन्मीलित नेत्रों से उस प्रकाश व दृश्य पर केन्द्रित रहे जो मंच पर दिखाई दे रहा है । प्रातःकाल प्राणायाम, बंध के विशिष्ट प्रयोग जोड़े गए हैं तथा त्रिकाल संध्या की तरह प्रातः के अलावा मध्यान्ह व संध्या के भी , इस प्रकार तीन ध्यान प्रयोग जोड़े गए हैं । सभी उपक्रम बंध मुद्रा को छोड़कर सामूहिक रूप से सम्पन्न होंगे । स्थूल सूक्ष्म व कारण शरीर के परिष्कार के लिए जड़ी बूटी कल्क अखण्ड दीपक को प्रणाम करते समय दिए जाने की व्यवस्था की गयी है । नौ दिन में यह प्रति तीन दिन में भिन्न-भिन्न प्रकार का साधक के परीक्षण के उपरान्त पाई गई स्थिति के अनुरूप होगा । विष्टिता स्थूलतः वनौषधि की कम व उसकी कारण शक्ति के जाग्रत रूप की अधिक है । नौ कुण्डी यज्ञशाला में नित्य यज्ञ के समय भी आधिभौतिक आधिदैविक एवं आध्यात्मिक प्रगति के लिए विशिष्ट वनौषधियों युक्त विभिन्न मंत्रों से आहुतियों को देने की व्यवस्था की गयी है ।

ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान में प्रत्येक शिविरार्थी का प्रयोग परीक्षण कर आत्मिक प्रगति का एक चार्ट बनाने की व्यवस्था की गयी है , जिसके अनुरूप परामर्श दिया जा रहा है । प्रायश्चित विधान के अन्तर्गत दशस्नान, हेमाद्रि संकल्प , विशिष्ट कर्मकाण्ड, इष्टापूर्ति-संकल्प एवं वंदनीय माताजी के समक्ष अपनी समस्याओं की भूतकाल की स्थिति की चर्चा भविष्य का निर्धारण करने की विशिष्ट व्यवस्था की गई है । भावी साधना का परामर्श भी इसी आधार पर दिए जाने की व्यवस्था बनाई गई है । नौ दिन तक गंगाजल ही पीने एक समय आहार लेने तथा ऊर्जा पूरित स्थान छोड़कर कहीं और न जाने का विधान रखा गया है ताकि संचित प्राणशक्ति का क्षरण न हो । आत्म देव की साधना तथा नादयोग की साधना भी विशिष्ट रूप में किये जाने तथा युगसन्धि पुरश्चरण में भागीदारी हेतु सामूहिक मौन जप आधा घण्टे एक साथ एक ही समय किए जाने का प्रावधान भी रखा गया है । परीक्षण के उपकरण नये बढ़ाये गये हैं, जिनसे साधक यह स्वतः जान सकेंगे कि उनमें आने से पूर्व की स्थिति में क्या परिवर्तन हुआ है । विभिन्न वर्णों तथा शब्द शक्ति का प्रभाव अन्तश्चेतना पर क्या पड़ता है, यह ब्रह्मवर्चस् के उपकरणों द्वारा परिजन जान सकेंगे । ध्यान यही रखना है कि यह परीक्षण सुविधा रोगियों के लिए नहीं मात्र साधना का अवलम्बन ले रहे लोक सेवियों के लिए उपलब्ध है । साधना आरण्यक का स्वरूप ब्रह्मवर्चस् के रूप में बनाया गया है, न कि किसी चिकित्सालय सैनिटोरियम जैसा ।

ये साधना सत्र प्रतिमाह १ से ९, ११ से १९ तथा २१ से २९ तारीखों में चलते रहेंगे । आवेदन के पश्चात् जिन्हें उपयुक्त समझा जाएगा, उन्हीं को स्वीकृति स्वरूप सत्र प्रवेश की एक विशिष्ट पुस्तिका नियमोपनियम संबंधी भेजी जायगी । इस प्रकार परिपक्वमनः स्थिति के साधक ही इसमें आ सकेंगे ।

सभी परिजन पूज्य गुरुदेव के जीवनवृत्त, मिशन के क्रियाकलाप भावी विद्या विस्तार संबंधी निर्धारणों पर लगायी जा रही विराट प्रदर्शनी का अवलोकन भी करते रह सकेंगे । यह अभी-अभी स्थायी रूप से शान्तिकुंज में लगायी गयी है व प्रत्येक के लिए दर्शनीय है ।

एक मास के युगशिल्पी सत्र चलेंगे तो पूर्ववत् हर माह एक से २९ तारीखों में ही किन्तु सभी में प्रथम नौ दिन साधना अनुदान शिक्षण अनिवार्य रूप से जुड़ा होगा । इस उन्तीस दिन की अवधि में प्रज्ञा संस्थानों , प्रज्ञामण्डलों, शक्तिपीठों का संचालन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व युगनेतृत्व की विधा का शिक्षण दिया जायगा । अगले दिनों नेतृत्व धर्मतंत्र से लोक शिक्षण करने वाले लोकसेवियों को ही करना है । कैसे स्वयं को मुखर बनाया जाय, अपनी झिझक को मिटाकर अपनी बात कैसे सामने वालों के गले उतारी जाय निज की प्रतिभा का संवर्धन परिष्कार कर किस प्रकार अपनी व्यवस्था बुद्धि का उपयोग करते हुए कार्यरत रहा जाय , यह समग्र शिक्षण लोकसेवियों के इन युगशिल्पी सत्रों में दिया जा रहा है ।

सभी प्रज्ञा संस्थानों शक्तिपीठों के ट्रस्टी एवं वरिष्ठ कार्यकताओं को वरीयता देते हुए पहले उन्हीं को बुलाया गया है । यदि वे अपनी व्यस्ततावश, अन्यान्य कार्यों में लगे रहने के लिए उतने लम्बे समय के लिए न आ सकें तो अपने स्थान के परिचित जीवट वाले व्यक्तियों को पूरे माह के लिए भेजें , स्वयं तो नौ दिन के सत्र में आ ही जायँ । इन सत्रों में यज्ञों से जुड़े कर्मकाण्ड, संगीत की टिप्पणियाँ, गायन–वादन की तथा संस्कारादि को सम्पन्न कराने की भी सुविधा रहेगी । स्वावलम्बन विद्यालय के कुटीर उद्योग स्तर के शिक्षण महिलाओं के लिए तो उपलब्ध रहेंगे ही , पुरुष भी स्वेच्छा से कोई एक उद्योग अपने लिए एक माह की अवधि के लिए चुन सकते हैं । सद्ज्ञान संवर्धन की युग सेवा हेतु प्रचार उपकरणों का उपयोग, उनका तकनीकी शिक्षण भी इन सत्रों में दिया जाएगा । जड़ी बूटी चिकित्सा, हरीतिमा संवर्धन तथा साइकिल द्वारा धर्म प्रचार की पदयात्रा इसी शिक्षण का एक अंग है । नये स्थान पर जाकर तीर्थ स्थापना कर कैसे आलोक विस्तार किया जाय, यह युगशिल्पी शिक्षण प्रक्रिया का प्राण है ।

तीन दिन के अतिथि सत्र उनके लिए हैं जो षोडष संस्कारों में से कोई भी संस्कार कराने के लिए अथवा क्षेत्रीय कार्यक्रम संबंधी या व्यक्तिगत चर्चा हेतु विचार विमर्श हेतु केन्द्र आना चाहते हैं । कई परिजन अपने जन्म दिन, विवाह दिवस शान्तिकुंज ही मनाते है । वे भी दो–तीन दिन ठहर कर तीर्थ की प्राणऊर्जा से लाभान्वित होना चाहते है । इन सभी के लिए प्रातः से मध्यान्ह तक आश्रम की निर्धारित दिनचर्या रहेगी । युगसन्धि पुरश्चरण की भागीदारी के बाद वे अपना दैनन्दिन क्रम घूमने आसपास के स्थान आदि देखने का बनाकर संध्या वीडियो फिल्म प्रदर्शन तक लौटकर आ सकते हैं । अपेक्षा उन से यही है कि वे जितने दिन तीर्थ में रहे यहाँ की प्रचण्ड प्राणचेतना से अनुप्राणित होने का प्रयास करें ।

स्थानीय सत्र निर्धारणों के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण कदम क्षेत्र के मंथन का उठाया गया है । अभी–अभी सभी परिजन संकल्प श्रद्धांजलि समारोह की ऊर्जा से ओतप्रोत होकर लौटे हैं । सभी का दृढ़ संकल्प है वे पूज्य गुरुदेव के व्यक्तित्व व कर्तृत्व को घर–घर जन–जन तक पहुँचायें । महाकाल के साथ साझेदारी के लिए जन–जन को प्रेरित करें, उन्हें संकल्प सूत्र में बाँधें । अभी–अभी यहाँ से जाने के बाद जो पत्र प्रवाह उमड़ा चला आ रहा है, वह यह बताता है कि कर्मठ परिजन सम्पर्क गोष्ठी, क्षेत्रीय आयोजन, छोटे बड़े दीपयज्ञों द्वारा लोकमानस के परिष्कार का जन–जन से संपर्क करने का ताना – बाना बुन

> ***दुनिया छोड़ने से पहले यह जान लेना समझदारी है कि संसार और जीवन दोनों ही एक –से एक बढ़कर आनन्ददायक हैं पर उनका अनुग्रह होता उन्हीं पर है , जो उनका गौरव और सदुपयोग समझ सकें ।***

रहे हैं । सूक्ष्म जगत के परिशोधन एवं राष्ट्र की अशांत अराजकता भरी स्थिति में एकता अखण्डता की शपथ दिलाकर हर व्यक्ति में सद्बुद्धि का विस्तार करना भी उद्देश्य है । धर्म सम्प्रदाय के नाम पर फैला भेदभाव तभी मिटेगा जब सार्वभौम अध्यात्म मंच द्वारा सबसे एक जुट होने का आव्हान कर उन्हें संकल्प में बाँधा जाय । यही तो युग निर्माण योजना का मूलभूत उद्देश्य है ।

इस क्षेत्रीय मंथन क्रम को तीव्रगति देने, क्षेत्रीय परिजनों को कार्यकम संचालन में सहयोग देने हेतु कुछ बड़े आयोजन छोटे–बड़े दीपयज्ञों सम्मेलनों के अतिरिक्त अगले माह से किये जा रहे हैं जिनमें वीडियो रथ प्रतिनिधियों सहित भेजे जा रहे हैं । प्रतिदिन प्रातःकाल ध्यान साधना के बाद पाँच कुण्डीय यज्ञशाला में अविवाहित कुमारी कन्याओं द्वारा गायत्री यज्ञ के साथ विभिन्न संस्कार तथा "महाकाल के साथ साझेदारी का विशिष्ट संकल्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी उपस्थित परिजनों को कराया जाएगा ।

इस विशिष्ट कर्मकाण्ड के बाद सारे दिन देवस्थापन कार्यक्रम संपन्न होगा । इसमें कार्यक्रम वाले कस्बे, गाँव या नगर में न्यूनतम १०८ संस्कारवान दम्पत्तियों के घर "प्रखर प्रज्ञा सजल श्रद्धा" गायत्री तीर्थ का अभिमंत्रित चित्र, ब्रह्मकुण्ड हरकी पैड़ी के जल व गंगा के तट की रज के साथ स्थापित किये जाने हैं । केन्द्र से गए परिजन इन सभी के घर स्वयं जा कर यह स्थापना कार्यक्रम संपन्न कर इन आत्माओं को इन स्थूल प्रतीकों के माध्यम से केन्द्र रूपी जेनरेटर से, ट्रांसफार्मर से जोड़कर इक्कीसवीं सदी के उज्ज्वल भविष्य का प्रवाह तीव्र बनाएँगे । इन प्रतीक स्थापनाओं के साथ बताया जाएगा कि वहाँ नियमित उपासना का तथा गायत्री तीर्थ की परिक्रमा की मानसिक ध्यान–धारणा का क्रम नियमित चलता रहे । साथ ही विशेष रूप से आगामी दस वर्षों में सन्धिकाल की पुरश्चरण साधना भी चलती रहे ।

संध्या काल में दीपयज्ञ होगा व व्याख्या सहित उद्बोधन । दीपयज्ञ कितना बड़ा हो, इसका निर्धारण परिजन पत्राचार द्वारा पहले कर लेंगे । प्रथम रात्रि के उद्बोधन के बाद शान्तिकुंज के विराट रूप पर दूसरी रात्रि में पूज्य गुरुदेव के जीवन वृत्त पर तथा तीसरे दिन सत्र श्रृंखला का परिचय व मिशन के कार्यकलापों पर वीडियो फिल्में रथों में लगे १०० इंच के पर्दों पर दिखाई जाएँगी । इस प्रकार पहले दिन मध्यान्ह पहुँचने वाला रथ चौथे दिन प्रातः ध्यान साधन के उपरान्त अपने गन्तव्य की ओर चल देगा ।

साधन साध्य होने के कारण फिलहाल दो वीडियो रथ ही भेजे जा रहे हैं व शेष वाहन पूर्व वर्ष की भाँति जाएँगे । आगे व्यवस्था बन जाने पर सभी प्रान्तों में एक या दो वीडियो रथ भेजे जा सकेंगे । इन कार्यक्रमों से निश्चित ही नूतन क्रियाकलापों का सूत्रपात नये स्थानों पर होगा व नये परिजन मिशन के सम्पर्क में आयेंगे ।

संकल्प श्रद्धांजलि समारोह के पश्चात् वंदनीया माताजी ने १९९१ के वर्ष को श्रद्धांजलि वर्ष घोषित किया था । इस वर्ष मिशन का विस्तार जितना भी संभव हो करना है तथा स्वयं सत्रों में भागीदारी कर अपनी देवात्म शक्ति को जगाकर आत्मबल सम्पन्न बनना है । परिजन दोनों ही कार्यों के लिए पत्राचार कर केन्द्र से सम्पर्क बनाए रखें, अपना सुनिश्चित निर्धारण इन्हीं दिनों कर लें । ✱

विभिन्न भाषाओं में अनुवाद एवं प्रकाशन

इस वर्ष का एक और महत्वपूर्ण संकल्प है, विभिन्न भाषाओं में पूज्य गुरुदेव के साहित्य को अनूदित कर उसे प्रकाशित करना । फिलहाल गुजराती, मराठी, बंगला, उड़िया, तमिल, तेलुगू इन छह भाषाओं में साहित्य पत्रिका या पुस्तक रूप में प्रकाशित होता है । उड़िया व गुजराती दोनों ही आत्म निर्भर स्वतंत्र संस्थान अब बन गए हैं एवं प्रायः सारा ही साहित्य प्रकाशित करने की स्थिति में हैं । बंगला, मराठी, तेलुगू तमिल में तथा असामी, कन्नड, मलयाली, गुरुमुखी उर्दू एवं अँग्रेजी अभी यह तंत्र पूरी तरह विकसित होना है । ये सभी अपने अपने यहाँ एक सम्मेलन अगले दिनों जनवरी, फरवरी माह में कभी भी केन्द्र के परामर्श से कर लें । इस सम्मेलन में उस भाषा से जुड़े सभी परिजनों को बुलाकर एक "बॉडी" ऐसी संगठित की जाय जो केन्द्र से भेजे गए साहित्य के अनुवाद व प्रकाशन की व्यवस्था कर सकें । केन्द्र से प्रतिनिधि भी इन सम्मेलनों में जा सकते हैं । आर्थिक व प्रबन्धकीय प्रकाशन व्यवस्था का ताना बाना बुना जाना मूल कार्य है । स्वरूप प्रारंभ में छोटा रखा जा सकता है । धीरे धीरे बढ़ाते हुए उसे २ या तीन वर्ष में व्यापक स्तर पर पहुँचाया जा सकता है । बहुभाषी परिजन वाले महा नगरों से संपर्क स्थापित कर अनुवादक उपलब्ध करवाने में भी केन्द्र मदद करेगा । पर पहला कदम तो क्षेत्रीय परिजनों को स्वयं ही उठाना पड़ेगा । संबंधित परिजन इस संबंध में पत्रा चार कर लें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड-ज्योति मासिक

रजिस्टर्ड नं० एम.टी.आर. ९८
रजि० नं० आर. एन. २१६२/५२

लाइसेन्स संख्या एम.टी.आर. ८ डाक व्यय की पहले अदायगी
किये बिना डाक में डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त

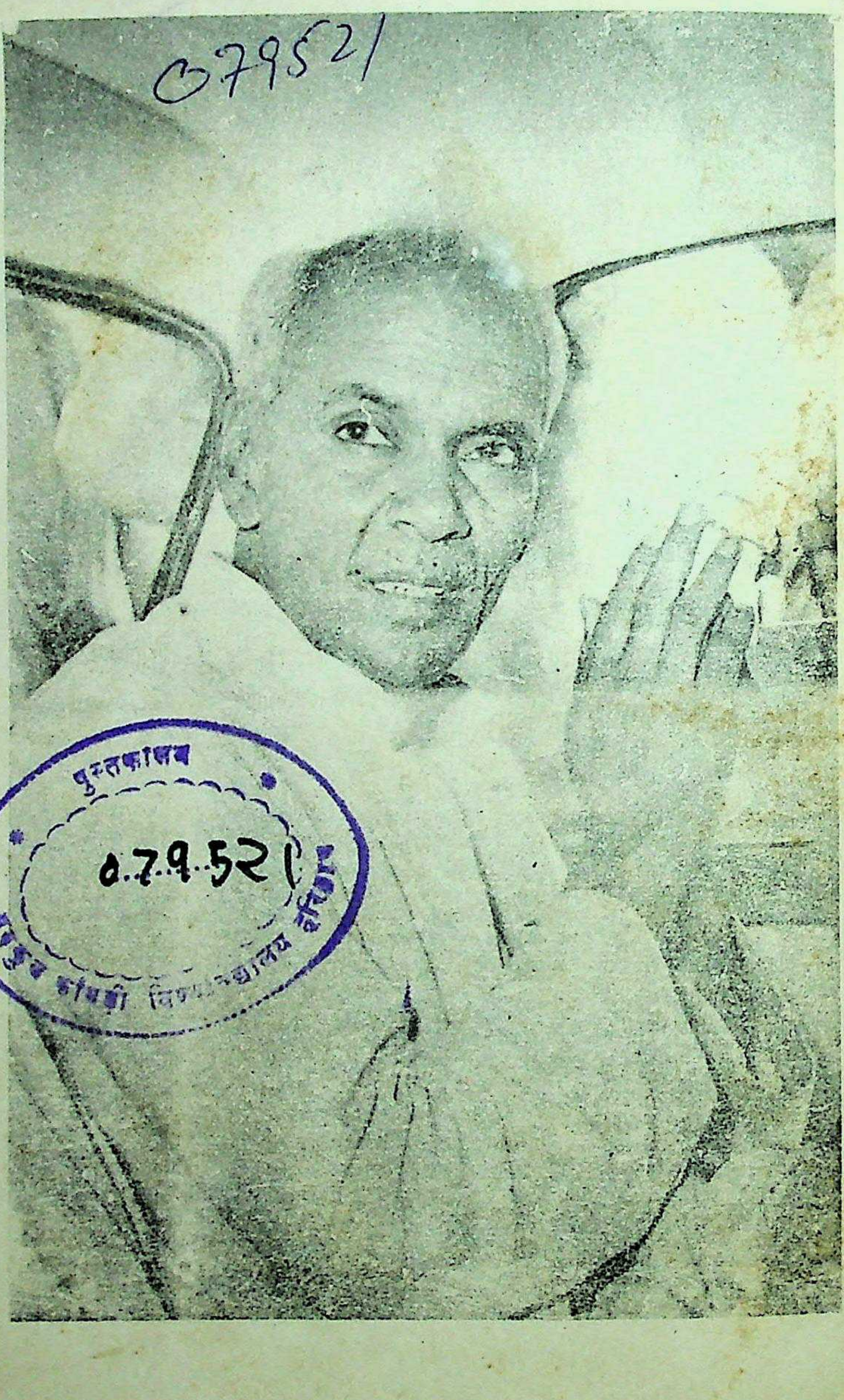

079521

पुस्तकालय
0.79521
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

सम्पादक - भगवती देवी शर्मा, प्रकाशक व मुद्रक - मृत्युञ्जय शर्मा
अखण्ड-ज्योति संस्थान द्वारा जन जागरण प्रेस मथुरा २८१००३ में मुद्रित ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri